मूल्य

दस रुपये

अनुवादक

देवेन्द्रकुमार वेदालंकार

विषय-सूची

पहला भाग : गलतियों का मनोविज्ञान

दूसरा भाग : स्वप्न

तीसरा भाग : स्नायु-रोगों का सामान्य सिद्धान्त

अनुवादक की ओर से

आज किसी शिक्षित व्यक्ति को सिगमड फ्रायड का परिचय देने की आवश्यकता नही। उन्नीसवी-बीसवी शताब्दियो में मानव-चिन्तन को सबसे अधिक प्रभावित करने वाली चार विभूतिया है मार्क्स, डारविन, गाधी और फ्रायड। इनमे से फ्रायड ने मन और उसके अचेतन व्यापारो के जो रहस्य उद्घाटित किए, और अपनी खोजो के आधार पर हजारो स्नायु-रोगियो को स्वस्थ करके जो नई चिकित्सा-शैली स्थापित की, उसका चिकित्सा-जगत् के साथ-साथ मानवीय अध्ययन की अन्य शाखाओ पर भी क्रातिकारी प्रभाव पड़ा है। हिन्दी आलोचना-साहित्य मे भी फ्रायड के साहित्य विषयक विचारो को लेकर बहुत काफी खडन-मडन हुआ है।

परन्तु अग्रेजी न जानने वाले पाठको के पास फ्रायड के सिद्धान्तो का मूलरूप जानने का कोई उपाय नही था। कई आलोचक फ्रायड के तथाकथित सिद्धान्त साराश रूप में देकर अपना खडन या मडन का काम चला लेते थे। इसी कारण इस विषय में बहुत कुछ अज्ञान लेखन हुआ है।

इन व्याख्यानो में फ्रायड ने बिलकुल बातचीत की भाषा में अपने मनोविश्लेषण विषयक सिद्धान्त पेश किए है। इसलिए इस विषय का ज्ञान न रखनेवाले पाठक को इनसे सरल और प्रामाणिक सामग्री अन्यत्र नही मिल सकती। पहले भाग में 'गलतियो' पर विचार किया गया है। भाषा-विज्ञान और मनोविज्ञान का मौलिक कार्य हिन्दी मे उपलब्ध न होने के कारण अनुवाद में मूल जर्मन के, या उसके अग्रेजी अनुवाद के उदाहरण लेने पडे पर इन उदाहरणो को हिन्दी के पाठको के लिए सुबोध बनाने का भरसक यत्न किया गया है। दूसरे भाग में 'स्वप्न' पर प्रकाश डाला गया है। एक-एक बात को पूरी तरह हृदयगम करके आगे बढने पर यह प्रकरण समझने में कठिनाई नही होगी। तीसरा भाग 'स्नायु-रोगो' के बारे में है जो बहुत कुछ टेक्निकल है, पर यदि पहली बात मन में स्पष्ट रूप से बैठाकर आगे पढा जाएगा तो, परिश्रम और धैर्य से, इसे भी पूरी तरह समझने में सफलता मिलेगी, और कुल उपलब्धि से सारे परिश्रम की क्षति-पूर्ति हो जाएगी।

मनोविश्लेषण के सिद्धान्त कई बार बडे सरल रूप मे रख दिए जाते है, और सुनने वाला उनके आधार पर कुछ धारणाएं बनाकर अपनी जानकारी को पूर्ण समझने लगता है। इन व्याख्यानो में कोरा सिद्धान्त-वर्णन नही है, जो अपेक्षया आसान काम था—इनमें फ्रायड ने यह दिखलाया है कि ये सिद्धान्त किन तथ्यो के कारण अनिवार्यत बनाने पडे और इन सिद्धान्तो को न मानने पर चिकित्सा और

वैज्ञानिक व्याख्या में किस तरह त्रुटि रहती थी। इसलिए सारा निरूपण क्रमिक सिद्धान्त-प्रतिपादन की शैली से हुआ है, और क्रमश सारी बात समझते जाने पर ही सिद्धान्त स्पष्ट होगा। किसी भी जगह सब सिद्धान्त निष्कर्ष रूप में लिखे हुए नही मिलेंगे।

नये विषय के अनुवाद में अनेक कठिनाइया रहती है, फिर यह तो मनोविश्लेपण जैसा वैज्ञानिक और टेक्निकल विषय है। अनुवाद की भाषा यथासभव सरल और सुबोध रखी गई है, और टेक्निकल शब्दो के अग्रेजी पर्याय फुटनोटो में दे दिए गए है। मूल का आशय पाठक को ज्यो का त्यो समझाने के लिए अनुवाद में, अपनी ओर से, पूरी सावधानी बरती गई है। फिर भी इस नए और कठिन कार्य मे त्रुटिया न होना ही आश्चर्य की बात होगी। जो विद्वान् पाठक त्रुटियो की ओर ध्यान खीचेंगे, उनका आभारी हूगा।
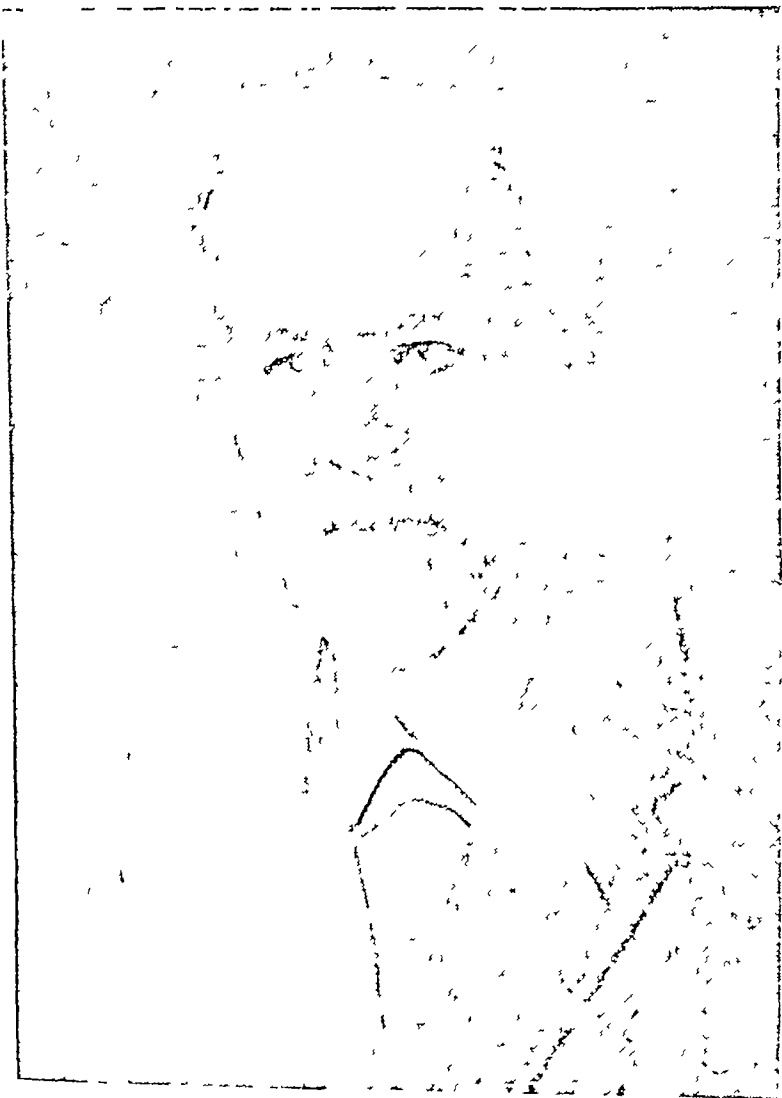
सिगमंड फ्रायड

सिगमंड फ्रायड

सिगमंड फ्रायड का जन्म चेकोस्लोवाकिया के एक छोटे कस्बे फ्रीडबर्ग में ६ मई, १८५६ को हुआ था। उनके माता-पिता यहूदी थे, और वे स्वयं भी यहूदी धर्म के अनुयायी रहे।

फ्रायड के पिता का परिवार पहले राइन नदी पर कोलोन में रहता था, पर १४वीं या १५वीं शताब्दी में यहूदियों पर अत्याचार आरम्भ होने पर वह पूर्व की ओर भाग गया था, और १९वीं शताब्दी में वह लियुआनिया से गैलीशिया होकर जर्मन आस्ट्रिया में आ बसा था।

चार वर्ष की आयु में फ्रायड वियेना आए थे, और उनकी सारी शिक्षा यहीं हुई। आप खेल-कूद में सात वर्ष तक अपनी कक्षा में प्रथम रहे, और अच्छे खिलाड़ी होने के कारण आपके परीक्षाएं पास करने पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था।

फ्रायड के पिता की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न होने पर भी उसने उन्हें अपनी प्रवृत्ति के अनुसार पेशा चुनने की छूट दे दी थी। चिकित्सा की ओर फ्रायड का कोई विशेष झुकाव नहीं था, पर प्राकृतिक रहस्यों की अपेक्षा मानवीय रहस्यो के विषय में उन्हे अधिक कुतूहल था, और इसकी निवृत्ति के लिए प्रेक्षण उन्हें सबसे अच्छा उपाय प्रतीत हुआ। अपने से बड़े एक मित्र के प्रभाव से फ्रायड ने कानून की शिक्षा प्राप्त करने का विचार किया, पर उन्हीं दिनो डारविन के सिद्धान्त ने, जो उस समय ज्वलंत चर्चा का विषय बना हुआ था, उन्हें बहुत आकर्षित किया; क्योंकि इससे संसार को समझने की दिशा में बड़ी प्रगति होने की आशा थी। उन्हीं दिनो गेटे का प्रकृति विषयक एक निबन्ध सुनकर उन्होने चिकित्सा-क्षेत्र में जाने का निश्चय कर लिया।

१८७३ में विश्वविद्यालय में प्रविष्ट होने पर फ्रायड को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, क्योंकि वहां यहूदियो को हीन और विदेशी समझा जाता था। इन कठिनाइयों ने उन्हे बहुमत के विरोध में खड़े होने का बल दिया जो बाद में उनके बड़ा काम आया। विश्वविद्यालय में अपने कार्य के लिए सुविधाएं न मिलने पर वे अर्न्स्ट ब्रुक की कायिकीय प्रयोगशाला (Physiological Laboratory) में स्थान पा गए और वहां उन्होने स्नायु सस्थान की ऊतिकी (Histology of the Nervous System) पर गवेषणा-कार्य किया। १८७६ से १८८२ तक प्रायः सारे समय आप इसी जगह कार्य में लगे रहे। फ्रायड को मनश्चिकित्सा (साइ-किएट्री) के अतिरिक्त और किसी चिकित्सा-शाखा में विशेष दिलचस्पी नहीं थी।

इसका परिणाम यह हुआ कि वे बहुत देर बाद १८८१ में, एम डी की उपाधि प्राप्त कर सके ।

१८८२ में फ्रायड के जीवन में एक मोड आया । उनके गुरु ने, जिसके प्रति ये बडी श्रद्धा रखते थे, इनसे अपने पिता की आर्थिक कठिनाई को दूर करने के लिए क्रियात्मक चिकित्सा-कार्य करने के लिए कहा। फ्रायड वियेना के जनरल हास्पिटल में चिकित्सक हो गए और वहा रहकर इन्होंने मनुष्य के केन्द्रीय स्नायु-सस्थान का अध्ययन किया। जनरल हास्पिटल के अध्यक्ष मेनर्ट के कहने से इन्होने मस्तिष्क के शारीर का ही अध्ययन करने का निश्चय कर लिया था। पर आर्थिक लाभ के लिए फ्रायड ने स्नायु-रोगों का अध्ययन आरम्भ किया।

१८८५ में फ्रायड स्नायु-रोगिकी (न्यूरोपैथोलौजी) के लेक्चरर हो गए और विशेष अध्ययन के लिए पेरिस गए। वहा आपने अपने गुरु चारकोट के व्याख्यानों का जर्मन में अनुवाद किया। पेरिस से लौटने पर १८८६ में सिगमड फ्रायड वियेना में चिकित्सा-कार्य करने लगे और अपनी प्रेमिका से, जो चार वर्ष से एक दूर के नगर में आपकी प्रतीक्षा कर रही थी, विवाह कर लिया।

परन्तु स्नायु-रोगियों के इलाज से जीविका चलना कठिन था । इसलिए उन्होंने विद्युत्-चिकित्सा और सम्मोहन या हिप्नोटिज्म को अपनाया । कुछ ही समय बाद उन्हें पता चल गया कि विद्युत्-चिकित्सा की प्रामाणिक पुस्तक (डब्ल्यू० अर्ब लिखित) भी कल्पित बातों से भरी पडी है। इसके बाद वे सम्मोहन से ही हिस्टीरिया का इलाज करते रहे और इसमें उन्हें अच्छी सफलता मिली, पर उसका परिणाम अस्थायी रहता था। १८८६ से १८९१ तक फ्रायड इसी कार्य में लगे रहे ।

रोगी सम्मोहित होने पर प्रश्नो के जो उत्तर देता था, वे जागने पर उसे या तो बहुत कम याद होते थे, और या बिलकुल भी याद नहीं होते थे। यहा से उनकी मनोविश्लेषण सम्बन्धी खोज आरम्भ हुई । इस दिशा में आगे चलते-चलते उन्होंने अपने प्रेक्षणों के आधार पर वे सब सिद्धान्त प्रतिपादित किए जो आजकल 'फ्रायड के मनोविश्लेषण सम्बन्धी सिद्धान्तो' के नाम से प्रसिद्ध है ।

फ्रायड के इन सिद्धान्तों से शिक्षित जगत् में बडी हलचल मची और उनका बडा विरोध भी हुआ, पर विरोध के बावजूद उनकी बातों की सत्यता समाज के मन में प्रवेश करती गई और उनकी खोजों के प्रकाश में शिक्षा में अनेक परिवर्तन किए गए। अपने जीवन-काल में फ्रायड ने अपने सिद्धान्तों का विरोध भी देखा, खडन भी सुना और फिर उन्हें व्यापक रूप से अपनाया जाता हुआ भी देखा। आपने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के लिए देश-विदेश में अनेक व्याख्यान दिए और अनेक पुस्तकें लिखीं। १९३९ में फ्रायड की लोक-लीला समाप्त हो गई।

❋ ❋ ❋

पहला भाग

ग़लतियों का मनोविज्ञान

विषय-प्रवेश

मै नही जानता कि मनोविश्लेषण के विषय में आपने पहले कितना पढ या सुन रखा है, और आपको इस विषय की कितनी जानकारी है। पर मेरे व्याख्यानो का शीर्षक ही 'मनोविश्लेषण पर परिचयात्मक व्याख्यान' होने के कारण मै स्वभावत. यह मानकर चलूगा कि आप इस विषय में कुछ नही जानते और आपको इसकी आरभिक वातो का भी परिचय कराने की आवश्यकता है।

परतु, मै समझता हू, इतना तो आप अवश्य जानते है कि मनोविश्लेपण स्नायु-रोगियो की चिकित्सा करने की एक विधि है। अब मै आपको इस वात का एक दृष्टात दे सकता हू कि मनोविश्लेपण की प्रक्रिया अन्य चिकित्सा-पद्धतियो में प्रचलित प्रक्रिया से भिन्न होती है, और बहुत वार तो उससे उल्टी होती है। जब हम किसी रोगी को किसी नई चिकित्सा-पद्धति से इलाज कराने के लिए कहते है, तब, प्राय उसकी कठिनाइया कम करके बताते है, और बडे विश्वास के साथ उसे इसके सफल होने का यकीन दिलाते है। मेरी राय में यह सर्वथा उचित है, क्योकि इस तरह सफलता की सभावना वढ जाती है। पर किसी स्नायु-रोगी का मनोविश्लेषण द्वारा इलाज करते हुए हमारा तरीका दूसरा होता है। हम उसे समझाते है कि इस विधि में कठिनाइया है, बहुत देर लगती है, और तुम्हे ये-ये परेशानिया उठानी पडेंगी और ये-ये त्याग करने होगे। परिणाम के वारे में हम उससे कह देते है कि हम कोई निश्चित वायदा नही कर सकते—हम कहते है कि सफलता इस बात पर निर्भर है कि तुम स्वय कितनी कोशिश करते हो, कितनी समझदारी और धीरज से काम लेते हो और अपने आपको कहा तक परिस्थितियो के अनुकूल बनाते हो। यह उल्टा दिखाई देने वाला तरीका हम कुछ महत्वपूर्ण कारणो से अपनाते है, जिनका थोड़ा परिचय शायद आपको आगे चलकर मिले।

जिस तरह की वात मै अपने स्नायु-रोगियो से कहा करता हू, उसी तरह की आपसे भी कहने के लिए माफ़ी चाहता हू। मै आपको निश्चित रूप से यह सलाह देता हू कि आप दूसरी वार मेरे व्याख्यान सुनने न आए। और इसी इरादे से मै

पर इतना भी नही हो सकता। सवाल-जवाब ही विश्लेषण है, और उस समय किसी और को वहा नही रखा जा सकता, यह प्रक्रम प्रत्यक्ष नही दिखाया जा सकता। अलवत्ता यह हो सकता है कि मनश्चिकित्सा पर व्याख्यान देते हुए स्नायु-दुर्बलता या हिस्टीरिया का रोगी दिखा दिया जाए। पर वह अपनी अवस्था और अपने रोग-लक्षणो की कहानी-भर सुना देगा—इससे अधिक नही। वह विश्लेपण के लिए आवश्यक बाते सिर्फ तब बताएगा जब वह चिकित्सक के साथ अपना विशेप स्नेह का सबध अनुभव करने लगे, यदि एक भी ऐसा आदमी मौजूद होगा, जिसके प्रति रोगी का उदासीन भाव हे, तो वह बिलकुल गूगा वन जाएगा। कारण यह हे कि जो बाते वह बताएगा, वे उसके बिल्कुल निजी और गुप्त विचारो और भावनाओ से सम्बन्धित होगी, वे ऐसी बाते होगी जो सामाजिक दृष्टि से स्वतन्त्र व्यक्ति होने के नाते उसे दूसरो से अवश्य छिपानी है, वे ऐसी वाते होगी जिन्हे वह अपने आपसे भी छिपाना चाहता है क्योकि वह उन्हे अपने लिए अनुचित मानता है।

इसलिए यह असभव है कि मनोविश्लेषण द्वारा इलाज के समय आप स्वय मौजूद रह सके, इसके बारे मे आपको बताया ही जा सकता है, और ठीक-ठीक कहा जाए तो आप सुन-सुना कर ही मनोविश्लेषण सीख सकते है। इस तरह दूसरे आदमी के जरिये मिलनेवाली शिक्षा से आपके लिए उस विपय मे स्वय अपना फैसला करना वहुत कठिन हो जाता है—आपका फैसला अधिकतर इस बात पर निर्भर हे कि आप जिस आदमी के ज़रिये जानकारी प्राप्त कर रहे है, वह कितना भरोसे का हे।

अब जरा देर के लिए आप यह कल्पना कीजिए कि मनश्चिकित्सा के वजाय आप इतिहास का कोई व्याख्यान सुन रहे थे, और कि व्याख्याता सिकन्दर महान् के जीवन और विजयो का वखान कर रहा था। उसने आपको जो कुछ वताया, उसपर विश्वास करने के लिए आपके पास क्या दलील है? यहा मनो-विश्लेपण वाले मामले से भी अधिक असतोषजनक हालत नजर आएगी, क्योकि सिकन्दर के युद्धो मे इतिहास के प्रोफेसर ने उतना ही हिस्सा लिया है, जितना स्वय आपने, मनोविश्लेपक तो फिर भी आपको वही वाते वता रहा है जिनमे वह स्वय शामिल था। पर तव यह प्रश्न पैदा होता हे कि इतिहासकार के पास अपने समर्थन मे क्या प्रमाण है। इतिहासकार उन पुराने लेखको के लेखो की दुहाई देगा जो घटनाओ के समय या उनके कुछ समय वाद जीवित थे, जैसे डायो-डोरस, प्लूटार्क, एरियन तथा अन्य लोग, वह राजाओ के पुराने सिक्के और स्टेच्यु या मूर्तिया पेश करेगा और पौपियाई की उन चित्रकृतियो के फोटो दिखाएगा जिनमे इसस नामक स्थान का युद्ध अकित होगा। तो भी, ठीक-ठीक कहा जाए तो इन कागज-पत्रो और अन्य प्रमाणो से इतना ही सिद्ध होता है कि पुरानी पीढी के लोग सिकन्दर के अस्तित्व और उसके कार्य को सत्य मानते थे, और यहा से

आप फिर नए प्रश्नो पर विचार शुरू कर सकते हैं। और तव आप देखेंगे कि सिकदर के बारे में जो कुछ कहा गया है, वह सबका सब विश्वास-योग्य नही, और बहुत-सी छोटी-मोटी बातो को सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण नही है, पर फिर भी मै यह नही मान सकता कि व्याख्यान के बाद आपको सिकन्दर महान् के कभी सच-मुच होने के बारे में भी सदेह होगा। आप मुख्यत दो बातें सोचकर अपने फैसले पर पहुचेंगे—एक तो यह कि ऐसा कोई कारण समझ में नही आता जिससे व्याख्याता आपको ऐसी बात पर विश्वास करने के लिए कहे, जिसपर उसे स्वय विश्वास नही है, और दूसरी यह कि सिकन्दर महान्-सम्बन्धी घटनाओ के बारे में सबके सब प्रामाणिक लेखक प्राय एकमत हैं। पुराने लेखको को भी आप इन्ही कसौटियो पर कसेंगे—कि वैसा लिखने में उनका क्या मतलब हो सकता था, और वे सब एकमत हैं। सिकदर के विषय में इस तरह की जाच से आप निश्चित रूप से कायल हो जाएगे पर मूसा और निमरोद जैसे व्यक्तियो के बारे में आप उस तरह कायल न हो सकेंगे। आगे चलकर आपको यह काफी स्पष्ट हो जाएगा कि मनोविश्लेपण के व्याख्याता को विश्वास-योग्य मानने में कौन-कौनसे सशय उठाए जा सकते हैं।

अब आप यह प्रश्न पूछ सकते हैं—यदि मनोविश्लेषण का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नही है, और उसका प्रक्रम भी प्रत्यक्ष नही दिखाया जा सकता तो फिर इसका अध्ययन ही कैसे हो सकता है, या अपने आपको इसकी सत्यता का निश्चय कैसे कराया जा सकता है ? सचमुच इसका अध्ययन आसान काम नही, और न ऐसे लोगो की सख्या ही इतनी अधिक है जिन्होने इसे पूरी तरह सीखा हो, फिर भी इसे सीखने का उपाय अवश्य है। मनोविश्लेषण सबसे पहले अपने ऊपर, स्वय अपने व्यक्तित्व का अध्ययन करके सीखा जा सकता है। यह पूरी तरह वही चीज़ नही है जिसे आत्म-परीक्षण[1] कहते हैं, पर इसके लिए अधिक अच्छा शब्द न होने के कारण हम इसे इस शब्द से पुकार सकते हैं। आत्म-विश्लेपण की रीति सीख लेने पर, बहुत सामान्य और सुपरिचित मानसिक घटनाओकी एक पूरी की पूरी श्रेणीको विश्लेपण की सामग्री बनाया जा सकता है। इस प्रकार मनुष्य मनोविश्लेपक द्वारा बताए गए प्रक्रमो की असलियत का, और इसकी अवधारणाओ[2] की सचाई का काफी निश्चय कर सकता है, पर इस तरह वह कुछ सीमा तक ही बढ सकता है। अपने-आपको किसी कुशल विश्लेपक के सामने विश्लेपण के लिए पेश करके, विश्लेषण का कार्य अपने मन पर करवाकर, और इस प्रकार विश्लेपक द्वारा प्रयोग मे लाई गई रीति की बारीकियो को समझने का अवसर पाकर मनुष्य बहुत आगे बढ सकता है। यही तरीका सबसे अच्छा है, पर यह एक आदमी के लिए चल सकता

है, छात्रो की पूरी कक्षा के लिए नही।

पर, मनोविश्लेपण के सम्बन्ध मे आपको जो दूसरी कठिनाई होगी, उसके लिए आप स्वय जिम्मेदार है, विशेषत वहा तक जहा तक आप अपनी डाक्टरी की पढाई से प्रभावित हैं। आपकी शिक्षा ने आपके मन का वह ढाचा बना दिया होगा जो मनोविश्लेषण के ढाचे से बहुत भिन्न होता है। आपको सिखाया गया है कि जीवपिंड[१] के कार्यो[२] और विक्षोभो[३] की शारीरीय[४] आधार पर स्थापना करो, रसायन[५] और भौतिकी[६] के शब्दो में उनकी व्याख्या करो और उन्हे जैविकीय[७] दृष्टि से मानो, पर जीवन के मानसिक पहलुओ में आपकी दिलचस्पी कभी नही जगाई गई—यद्यपि अद्भुत जटिलताओ वाले जीवपिंड के परिवर्धन[८] की अतिम परिणति उसीमें होती है। इस कारण, मन के मनोवैज्ञानिक ढाचे से आप अभी अपरिचित है। इसे सदेह की नजर से देखने और अवैज्ञानिक मानने और इसे आम जनता, कवियो, तान्त्रिको और दार्शनिको के लिए छोड देने की आपको आदत पडी हुई है। आपका इस तरह सीमा में वध जाना आपकी डाक्टरी दक्षता को हानि पहुचाने वाला है, कारण यह है कि जैसे अधिकतर मानवीय सम्बन्धो में होता है वैसे ही रोगी में भी उसका मानसिक पहलू सबसे पहले हमारी निगाह में आता है, और मुझे डर है कि आपको इसकी यह सजा मिलेगी कि आप जितना इलाज करने का लक्ष्य रखते है, उसका कुछ हिस्सा आपको नीमहकीमो, तान्त्रिको और जादू-टोने वालो के लिए छोडना पडेगा, जिन्हे आप नीची नजर से देखते है।

मैं मानता हू कि आपकी पहले की शिक्षा में यह कमी कुछ उचित कारणो से है। ऐसा कोई सहायक दार्शनिक विज्ञान नही है जो आपके पेशे में आपको लाभ पहुचा सके। विचारात्मक दर्शन[९] या वर्णनात्मक मनोविज्ञान[१०] या तथाकथित प्रायोगिक मनोविज्ञान[११] (जो ज्ञानेद्रियो की कायिकी[१२] के सिलसिले में पढाया जाता है), जिस रूप में स्कूलो मे पढाए जाते है, उस रूप में वे मन और शरीर के बीच के सम्बन्धो के बारे में कोई उपयोगी वात नही बता सकते, या मानसिक कार्यो में होनेवाली गडवड को समझने की राह नही दिखा सकते। यह सच है कि चिकित्साशास्त्र की मनश्चिकित्सा शाखा पहचानने योग्य मानसिक विक्षोभो[१३] के विभिन्न रूपो का वर्णन करती है, और इलाज की दृष्टि से उनके कुछ लक्षण-समूह बनाती है, पर असल में खुद मनश्चिकित्सको को भी यह सन्देह है कि उनके बिलकुल वर्ण-

---

१ Organism, २ Functions, ३ Disturbances, ४ Anatomical, ५ Chemistry, ६ Physics, ७ Biological, ८ Development, ९ Speculative philosophy, १० Descriptive psychology, ११ Experimental psychology, १२ Physiology, १३ Mental disturbances.

नात्मक समूहो को विज्ञान कहना चाहिए या नही। जिन लक्षणो से ये रोग-चित्र बनते है, उनके आरम्भ, कार्य की रीति, और आपसी सम्बन्ध का कुछ पता नही चला है। या तो मस्तिष्क में होनेवाले प्रदर्शन-योग्य परिवर्तनो से उनका सम्बन्ध जोडा ही नही जा सकता, अथवा यदि जोडा भी जा सकता है तो सिर्फ ऐसे परिवर्तनो से, जो किसी भी तरह उनकी व्याख्या नही करते। इन मानसिक विक्षोभो पर इलाज का असर तभी होता है जब यह पता चल जाए कि वे किस शारीरिक रोग के कारण हुए है।

मनोविश्लेषण इसी कमी को दूर करने की कोशिश कर रहा है। यह मनश्चिकित्सा को वह मनोवैज्ञानिक आधार देने की आशा रखता है, वह सामान्य आधार खोजना चाहता है, जिसपर शारीरिक और मानसिक रोग का आपसी सम्बन्ध समझ में आ सके। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसे सब तरह के बाहरी, पहले से बने हुए विचारो को—चाहे वे शरीर-सम्बन्धी हो, और चाहे रसायन-सम्बन्धी या कायिकी-सम्बन्धी हो—दूर रखना होगा, और शुद्ध रूप से मनोवैज्ञानिक ढग के विचारो से वास्ता रखना होगा और इसी कारण मुझे यह डर है कि शुरू मे यह आपको अजीब लगेगा।

अगली कठिनाई के लिए मै आपको, आपकी शिक्षा को, या आपके मानसिक ढग को दोषी नही बताऊगा। मनोविश्लेषण के दो सिद्धान्त ऐसे है जो सारी दुनिया को नाराज़ करते हैं, एक तो बौद्धिक पूर्वग्रहो[1] अर्थात् बने हुए सस्कारो को चोट पहुचाता है और दूसरा नैतिक तथा सौन्दर्य-सम्बन्धी सस्कारो या पूर्वग्रहो को। इन पूर्वग्रहो को मामूली चीज नही समझना चाहिए। ये बडी ज़बर्दस्त चीज़ है और मनुष्य के विकास की मज़िलो के कीमती और आवश्यक अवशेष है। उन्हे भावनाओ के बल से कायम रखा जाता है और उनसे बडा कडा मुकाबला है।

मनोविश्लेषण की इन बुरी लगने वाली बातो में से पहली यह है कि मानसिक प्रक्रम असल में अचेतन[2] (अर्थात् अज्ञात) होते हैं, और जो चेतन (अर्थात् ज्ञात) होते हैं, वे कोई इक्के-दुक्के काम होते हैं, और वे भी पूर्ण मानसिक सत्ता के हिस्से होते हैं। अब आप ज़रा यह याद कीजिए कि हमें इससे बिल्कुल उल्टी, अर्थात् मानसिक और चेतन को एक समझने की, आदत पडी हुई है। चेतना—हमें मानसिक जीवन को सूचित करने वाली विशेषता मालूम होती है और हम मनोविज्ञान को चेतना-सम्बन्धी अध्ययन ही समझते हैं। यह बात इतनी साफ और सीधी लगती है कि इसका खण्डन बिलकुल बकवास मालूम होता है, पर फिर भी मनोविश्लेपण को तो इसका खण्डन करना ही होगा और चेतन तथा मानसिक को एक मानने का विरोध करना ही पडेगा। मनोविश्लेषण के अनुसार मन की परिभाषा यह है कि इसमें अनुभूति, विचार और इच्छा के प्रक्रम होते हैं, और मनोविश्लेपण यह कहता

1. Prejudice; 2. Unconscious

व्याख्यान | २

ग़लतियों का मनोविज्ञान

अब हम सिद्धान्तो के बजाय एक जाच-पडताल से अपनी बातचीत शुरू करेंगे। इसके लिए हम कुछ ऐसी घटनाए लेंगे जो बहुत होती हैं। हम रोज देखते हैं, और नजरंदाज कर देते हैं, और जो किसी बीमारी के कारण नही होती, क्योकि हर स्वस्थ आदमी में वे दिखाई देती हैं। मेरा मतलब उन गलतियो से है, जो हर आदमी करता है, जैसे, आदमी कुछ कहना चाहता है, पर ग़लत शब्द बोल जाता है, या इसी तरह की भूल लिखने में कर जाता है, और उसपर उसका ध्यान नही जाता, या कोई आदमी किसी छपी या लिखी हुई चीज़ को गलत पढ जाता है, या आदमी से जो कुछ कहा गया है उसे वह गलत सुन लेता है, हालाकि उसकी श्रवण-इन्द्रिय में कोई रोग नही है। इसी तरह की दूसरी घटनाए वे हैं जिनमें आदमी किसी बात को कुछ समय के लिए भूल जाता है, पर सदा के लिए नही, जैसे उदाहरण के लिए, कोई आदमी कोई नाम बहुत अच्छी तरह जानता है, पर उसे सोचने पर वह याद नही आता हालाकि चीज़ देखकर वह उसे तुरन्त पहचान लेता है, या कोई आदमी कोई काम करना चाहता है पर भूल जाता है, लेकिन बाद में उसे वह याद आ जाता है, और इसलिए वह इसे कुछ ही समय के लिए भूला था। तीसरी तरह की घटनाए वे हैं, जिनमें उतनी थोडे समय की भूल नही होती, जैसे कोई चीज़ कही रख बैठना और फिर उसे ढूढ न सकना। यह भुलक्कडपन आम भुलक्कडपन से कुछ दूसरी तरह का होता है। इसका कोई कारण समझने के बजाय, आदमी इसपर चकित या परेशान होता है। इसके साथ सम्बन्ध रखनेवाली कुछ भूलें होती हैं, जिनमें फिर वही थोडे समय तक होने की बात दिखाई देती है, जैसे, एक आदमी किसी बात को कुछ समय के लिए सच मानता है, पर उसके पहले और उसके पीछे वह इसे झूठ समझता है, और इसी तरह की कई बातें दिखाई देती हैं जिनके हमने अलग-अलग नाम रख रखे हैं।

जर्मन भाषा में इस तरह की सब घटनाओ में मौजूद कुछ भीतरी सम्बन्ध 'Ver' उपसर्ग का प्रयोग करके सूचित किया जाता है। यह ऊपर की घटनाओ के

करना बडा कठिन काम है। हमेशा यह खतरा रहता है कि जो आदमी सभ्यता के निर्माण में हिस्सा ले, उसके अन्दर काम-आवेगो या यौन-प्रवृत्तियो का विद्रोह खडा हो जाए और वह ऊर्जा या कार्य-शक्ति को दूसरी ओर मोडने का विरोध करे। समाज की सस्कृति के लिए सबसे भयंकर खतरा वह होगा जो काम-आवेगो को खुली छूट मिलने से और उनके फिर अपने शुरू वाले लक्ष्य की ओर चलने से पैदा होगा। इसलिए समाज अपने परिवर्धन की इस नाजुक जगह का स्पर्श पसन्द नही करता, स्वाभाविक यौन-प्रवृत्ति की शक्ति को पहचाना जाए और मनुष्य के यौन-जीवन का महत्व सबके सामने खोलकर रख दिया जाए, यह बात इसके हितो के बहुत विरुद्ध पडती है। सयम कायम करने की दृष्टि से ही तो इसने ध्यान को इस सारे के सारे मामले से हटाकर इसे दूसरी ओर ले जाने का रास्ता अपनाया है। इसी कारण मनोविश्लेषण से खुलनेवाली बातो को यह सह नही सकता, और उन्हे देखने-सुनने में भद्दा, सौन्दर्य-भावना को चोट पहुचानेवाला, नैतिक दृष्टि से घृणित या खतरनाक बताकर इससे दूर रहना चाहता है। परन्तु इस तरह के एतराजो को उन परिणामो के खिलाफ दलील के रूप मे मजूर नही किया जा सकता, जो वैज्ञानिक जाच-पड़ताल के प्रत्यक्ष स्पष्ट परिणाम होने का दावा करते हैं। इसलिए इस विरोध को प्रकट करने से पहले बुद्धि से समझ में आनेवाले शब्दो का रूप देना होगा। मनुष्य-स्वभाव नापसन्द बात को सदा झूठी मान लेना चाहता है, और इसके बाद इसके खिलाफ दलीलें भी आसानी से तलाश कर लेता है। इस प्रकार, समाज जो बात नही मानना चाहता, उसे झूठी बताता है। वह मनोविश्लेषण के परिणामो का तर्क-सगत और ठोस दलीलो से खण्डन करता है---परन्तु ये दलीले भावना के आधार पर होती हैं---और जब उनका जवाब देने की कोशिश की जाती है तब वह पूरे हठ के साथ अपनी बात पर डटा रहता है।

इसके विपरीत, हमलोग इस आक्षेप-योग्य विचार को किसी भावना या प्रवृत्ति के वशीभूत होकर नही पेश करते। हमारा एक ही आशय रहा है---कि तथ्यो को हमने अपनी मेहनत-भरी खोजो के समय जिस रूप मे देखा है, उसी रूप मे उन्हे स्वीकार करें। और अब वैज्ञानिक खोज के क्षेत्र में हम किसी भी शर्त पर यह सवाल लाने देने को तैयार नही कि इस तरह की खोज व्यवहार की दृष्टि से उचित है या नही---ऐसा कोई सवाल तभी पैदा हो सकता है जब यह फैसला हो चुका हो कि जिस भय से व्यवहार-सम्बन्धी औचित्य का सवाल हमारे सिर पर लादा जाता है, वह भय स्वय भी उचित है या नही।

इस प्रकार मैंने आपके सामने कुछ ऐसी कठिनाइया रखी हैं, जो मनोविश्लेपण की ओर मुह करते ही आपके सामने आकर खडी हो जाएगी। शायद आरम्भिक रूप में मैंने काफी से ज्यादा कह दिया है। अगर इन कठिनाइयो से आपका हौसला पस्त न हुआ तो हम आगे बढ़ेंगे।

है कि अचेतन विचार और अचेतन इच्छाए भी होती हैं। पर इस रास्ते पर चलते हुए मनोविश्लेषण शुरू में ही गम्भीर और वैज्ञानिक ढग के लोगो की हमदर्दी खो बैठा है और उसे रहस्यमय काल्पनिक पन्थ समझा जाने लगा है। स्वय आपको भी यह समझने में कठिनाई होगी कि मैं इस तरह की दिखाई न देने वाली बात को, जैसे कि 'मानसिक चेतन होता है', पूर्वग्रह क्यो बता रहा हू। आप यह भी अनुमान नही कर सकते कि यदि अचेतन सचमुच है, तो विकास के किस क्रम के कारण उसका निषेध किया जाने लगा, और उसके निषेध से क्या लाभ हो सकता है। यह दलीलबाज़ी करना कि मानसिक जीवन को चेतना की सीमा तक रहने वाला माना जाए या उससे भी आगे तक फैला हुआ माना जाए, बेकार का शब्दो का झगडा मालूम होता है, पर मैं आपको यह विश्वास दिलाना चाहता हू कि अचेतन मानसिक प्रक्रमो को स्वीकार करना दुनिया में और विज्ञान में एक नई दिशा की ओर निश्चित कदम बढाना है।

आप यह खयाल भी नही कर सकते कि मनोविश्लेषण के इस पहले साहसभरे कदम में, और उस दूसरे कदम में, जिसकी मैं अभी चर्चा करने वाला हू, कितना नज़दीकी सम्बन्ध है। कारण यह है कि यह दूसरी बात, जिसे हम मनोविश्लेषण के एक आविष्कार के रूप में प्रस्तुत करते हैं, यह है कि स्नायु-सम्बन्धी और मानसिक गडबडें पैदा करने में उन आवेगो[1] का खास तौर से बहुत बडा हिस्सा होता है, जिन्हे काम-सम्बन्धी[2] ही कहा जा सकता है—यहा 'काम' शब्द का प्रयोग मैं इसके सकुचित और विस्तृत, दोनो अर्थों में कर रहा हू। इतना ही नही, मुझे यह भी कहना है कि इन काम-आवेगो ने मनुष्य के मन को, सस्कृति, कला और समाज के क्षेत्रो में, ऊची से ऊची उन्नति करने में कीमती मदद दी है।

मेरी राय में मनोविश्लेषण-सम्बन्धी जाच के नतीजो को नापसन्द करने के कारण ही इसका सबसे अधिक विरोध हुआ है। आप पूछेंगे कि इसके लिए हम खुद कैसे ज़िम्मेदार हैं? हम यह मानते हैं कि सभ्यता का निर्माण ज़िन्दा रहने का सघर्ष करते हुए आदिम आवेगो की तृप्ति का त्याग करके ही हुआ है, और प्रत्येक व्यक्ति मानव-समुदाय में जन्म लेकर आम जनता की भलाई के लिए अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के सुखो का त्याग करता है, और इस तरह सभ्यता का निर्माण सदा आगे बढता जाता है। इस काम में आनेवाली सबसे महत्व की वस्तु मनुष्य-स्वभाव की वे शक्तिया हैं जिन्हे हम यौन-शक्तिया या काम-आवेग कहते है। वे शक्तिया इस तरह ऊचाई की ओर उठ जाती हैं, अर्थात् उनकी कार्य-शक्ति या ऊर्जा अपने यौन-उद्देश्य से हटकर दूसरे उद्देश्यो की ओर मुड जाती है—ये उद्देश्य काम-सम्बन्धी नही होते और समाज की दृष्टि से बहुत कीमती होते हैं, और इस तरह बननेवाला ढाचा कच्चा होता है क्योकि काम-आवेगो या यौन-प्रवृत्तियो को वश में

१. Impulses, २ Sexual

करना बडा कठिन काम है। हमेशा यह खतरा रहता है कि जो आदमी सभ्यता के निर्माण में हिस्सा ले, उसके अन्दर काम-आवेगों या यौन-प्रवृत्तियो का विद्रोह खडा हो जाए और वह ऊर्जा या कार्य-शक्ति को दूसरी ओर मोडने का विरोध करे। समाज की सस्कृति के लिए सबसे भयकर खतरा वह होगा जो काम-आवेगो को खुली छूट मिलने से और उनके फिर अपने शुरू वाले लक्ष्य की ओर चलने से पैदा होगा। इसलिए समाज अपने परिवर्धन की इस नाजुक जगह का स्पर्श पसन्द नही करता, स्वाभाविक यौन-प्रवृत्ति की शक्ति को पहचाना जाए और मनुष्य के यौन-जीवन का महत्व सबके सामने खोलकर रख दिया जाए, यह बात इसके हितो के बहुत विरुद्ध पडती है। सयम कायम करने की दृष्टि से ही तो इसने ध्यान को इस सारे के सारे मामले से हटाकर इसे दूसरी ओर ले जाने का रास्ता अपनाया है। इसी कारण मनोविश्लेषण से खुलनेवाली बातो को यह सह नही सकता, और उन्हे देखने-सुनने में भद्दा, सौन्दर्य-भावना को चोट पहुचानेवाला, नैतिक दृष्टि से घृणित या खतरनाक बताकर इससे दूर रहना चाहता है। परन्तु इस तरह के एतराज़ो को उन परिणामो के खिलाफ दलील के रूप में मजूर नही किया जा सकता, जो वैज्ञानिक जाच-पडताल के प्रत्यक्ष स्पष्ट परिणाम होने का दावा करते है। इसलिए इस विरोध को प्रकट करने से पहले बुद्धि से समझ में आनेवाले शब्दो का रूप देना होगा। मनुष्य-स्वभाव नापसन्द बात को सदा झूठी मान लेना चाहता है, और इसके बाद इसके खिलाफ दलीले भी आसानी से तलाश कर लेता है। इस प्रकार, समाज जो बात नही मानना चाहता, उसे झूठी बताता है। वह मनोविश्लेषण के परिणामो का तर्क-सगत और ठोस दलीलो से खण्डन करता है—परन्तु ये दलीलें भावना के आधार पर होती हैं—और जब उनका जवाब देने की कोशिश की जाती है तब वह पूरे हठ के साथ अपनी बात पर डटा रहता है।

इसके विपरीत, हमलोग इस आक्षेप-योग्य विचार को किसी भावना या प्रवृत्ति के वशीभूत होकर नही पेश करते। हमारा एक ही आशय रहा है—कि तथ्यो को हमने अपनी मेहनत-भरी खोजो के समय जिस रूप में देखा है, उसी रूप मे उन्हे स्वीकार करें। और अब वैज्ञानिक खोज के क्षेत्र मे हम किसी भी शर्त पर यह सवाल लाने देने को तैयार नही कि इस तरह की खोज व्यवहार की दृष्टि से उचित है या नही—ऐसा कोई सवाल तभी पैदा हो सकता है जब यह फैसला हो चुका हो कि जिस भय से व्यवहार-सम्बन्धी औचित्य का सवाल हमारे सिर पर लादा जाता है, वह भय स्वय भी उचित है या नही।

इस प्रकार मैंने आपके सामने कुछ ऐसी कठिनाइया रखी हैं, जो मनोविश्लेषण की ओर मुह करते ही आपके सामने आकर खडी हो जाएगी। शायद आरम्भिक रूप में मैंने काफी से ज्यादा कह दिया है। अगर इन कठिनाइयो से आपका हौसला पस्त न हुआ तो हम आगे बढ़ेंगे।

व्याख्यान | २

ग़लतियों का मनोविज्ञान

अब हम सिद्धान्तो के बजाय एक जाच-पडताल से अपनी वातचीत शुरू करेंगे। इसके लिए हम कुछ ऐसी घटनाए देंगे जो वहुत होती है। हम रोज़ देखते हैं, और नज़रदाज़ कर देते है, और जो किसी बीमारी के कारण नही होती, क्योकि हर स्वस्थ आदमी में वे दिखाई देती हैं। मेरा मतलव उन गलतियो से है, जो हर आदमी करता है, जैसे, आदमी कुछ कहना चाहता है, पर गलत शब्द बोल जाता है, या इसी तरह की भूल लिखने में कर जाता है, और उसपर उसका ध्यान नही जाता, या कोई आदमी किसी छपी या लिखी हुई चीज़ को गलत पढ जाता है, या आदमी से जो कुछ कहा गया है उसे वह गलत सुन लेता है, हालाकि उसकी श्रवण-इन्द्रिय में कोई रोग नही है। इसी तरह की दूसरी घटनाए वे हैं जिनमें आदमी किसी बात को कुछ समय के लिए भूल जाता है, पर सदा के लिए नही, जैसे उदाहरण के लिए, कोई आदमी कोई नाम वहुत अच्छी तरह जानता है, पर उसे सोचने पर वह याद नही आता हालाकि चीज़ देखकर वह उसे तुरन्त पहचान लेता है, या कोई आदमी कोई काम करना चाहता है पर भूल जाता है, लेकिन बाद में उसे वह याद आ जाता है, और इसलिए वह इसे कुछ ही समय के लिए भूला था। तीसरी तरह की घटनाए वे है, जिनमें उतनी थोडे समय की भूल नही होती, जैसे कोई चीज कही रख बैठना और फिर उसे ढूढ न सकना। यह भुलक्कडपन आम भुलक्कडपन से कुछ दूसरी तरह का होता है। इसका कोई कारण समझने के वजाय, आदमी इसपर चकित या परेशान होता है। इसके साथ सम्वन्ध रखनेवाली कुछ भूलें होती हैं, जिनमें फिर वही थोडे समय तक होने की वात दिखाई देती है, जैसे, एक आदमी किसी वात को कुछ समय के लिए सच मानता है, पर उसके पहले और उसके पीछे वह इसे झूठ समझता है, और इसी तरह की कई वाते दिखाई देती है जिनके हमने अलग-अलग नाम रख रखे हैं।

जर्मन भाषा में इस तरह की सव घटनाओ में मौजूद कुछ भीतरी सम्वन्ध 'Ver' उपसर्ग का प्रयोग करके सूचित किया जाता है। यह ऊपर की घटनाओ के

वाचक सव शव्दो में लगाया जाता है ।[1] ये सब शव्द प्राय महत्वहीन क्रियाओ के वाचक हैं। ये क्रियाए आम तौर पर वहुत थोडी देर रहने वाली होती हैं और जिन्दगी में उनका कोई खास महत्व नही होता । ऐसा वहुत कम होता है कि इस तरह की घटना का व्यवहार मे कोई महत्व हो, जैसे कोई चीज़ खो जाने पर, इसी कारण ऐसी घटनाओ पर कोई ध्यान नही दिया जाता, और उनके विपय मे कोई विशेप भावना नही पैदा होती ।

अव मैं आपसे इन घटनाओ पर गौर करने के लिए कहना चाहता हू । पर आप वडे परेशान होगे, और यह एतराज़ उठाएगे "इस लम्वी-चौडी दुनिया मे, और आत्मा के छोटे-से दायरे में इतनी सारी और इतनी वडी-वडी पहेलिया पडी हुई हैं, मनके रोगो के क्षेत्रमे इतनी सारी गुत्थिया मौजूद ह,जिन्हे हल करना और सुलझाना है, ऐसी स्थिति में इन छोटी-छोटी वातो पर अपनी मेहनत वर्वाद करना सचमुच वेकार मालूम होता है। अगर आप हमें यह समझा सकते कि किस तरह ठीक आख और कान वाला कोई आदमी दिन में सवके सामने ऐसी चीज़े देख और सुन सकता है जो कही भी नही है, या कोई आदमी किस तरह एकाएक यह मान सकता है कि उसके इष्ट मित्र उसे सता रहे हैं, या वच्चे को भी वेहूदा लगने वाले भ्रम को कोई आदमी किस तरह वड़ी-वडी अक्लमन्दी की दलीले देकर सही ठहरा सकता है, तव तो हम मनोविश्लेपण को सचमुच कोई चीज़ मानने को तैयार हो सकते थे, परन्तु यदि मनोविश्लेपण इस तरह की छोटी-मोटी वातो से, कि कोई आदमी क्यो गलत शव्द का प्रयोग करता है या कोई गृह-लक्ष्मी क्यो अपनी चाविया रखकर भूल गई है, ज्यादा दिलचस्प कोई वात नही पेश कर सकता, तो हम अपने समय और अपनी दिलचस्पी का कोई और अधिक अच्छा उपयोग तलाश कर लेगे ।"

मेरा जवाव यह है, ज़रा धीरज रखें । आपकी आलोचना सही रास्ते पर नही चल रही । यह सच है कि मनोविश्लेपण यह हेकडी नही मारता कि इसने कभी छोटी वातो पर विचार नही किया । इसके विपरीत, इसकी जाच-परख की चीज़ें आम तौर से वे हर जगह होने वाली मामूली घटनाए ही होती हैं, जिन्हे दूसरे विज्ञानो ने निरर्थक, या यो कहे कि इस घटनामय ससार का कूडा, समझकर परे फेंक दिया है, पर आप जो आलोचना कर रहे हैं, उसमें समस्या के महत्व को और उस समस्या के दिखाई देने वाले रूप को गडवडा तो नही रहे ? क्या यह नही हो सकता कि किसी समय और कुछ अवस्थाओ में वडी महत्व की वातें वहुत हल्के सकेतो द्वारा अपनी झाकी दे जाती हो ? मैं इसके वहुत-से उदाहरण आसानी से दे सकता हू । उदाहरण के लिए, किसी तरुणी के हृदय का समर्पण आप नौजवानो को

---

१ हिन्दी में 'अप' उपसर्ग इस अर्थ का वाचक होता है। उदाहरण के लिए अप-श्रवण, अप-स्मरण, अप-भाषण आदि—अनुवादक ।

कार्य की ओर काफ़ी ध्यान नही दिया गया। उस अवस्था मे यह बहुत आसान है कि काम गडबड हो जाए और बिलकुल ठीक तरह पूरा न किया जा सके। मामूली बीमारी या स्नायु-सस्थान के केन्द्रीय अग में रक्त के सचरण में परिवर्तन का भी यही नतीजा हो सकता है, और इस तरह इन अवस्थाओ से असली बात, अर्थात् ध्यान, पर वैसा ही असर पडेगा। हर सूरत मे, यह शारीरिक या मानसिक कारणो से ध्यान गडबड होने के परिणामो का ही सवाल रहेगा।

पर इस सबमें मनोविश्लेषण-सम्बन्धी जाच के लिए कोई दिलचस्पी की बात दिखाई नही देती। हमारा मन होगा कि इस विषय को छोडकर आगे चलें। सही बात तो यह है कि तथ्यो की ओर बारीकी से जाच करने पर यह पता चलता है कि वे सबके सब इस तरह की गलतियो के 'ध्यान' वाले सिद्धान्त से मेल नही खाते, या कम से कम हर चीज़ इससे सीधे-सीधे नही निकाली जा सकती। हम देखते हैं कि ऐसी गलतिया और भुलक्कडपन तब भी होते हैं, जब लोग थके हुए या उत्तेजित नही होते, बल्कि हर तरह से अपनी सामान्य अवस्था में होते हैं—यह बात और है कि इन गलतियो के कारण ही हम बाद में यह कहने लगें कि वे उत्तेजित अवस्था में थे, जबकि वे स्वय यह बात मजूर नही करते। और न यह मामला इतना सीधा हो सकता है कि यदि ध्यान खूब केन्द्रित हो तो कार्य सफलतापूर्वक हो जाएगा या ध्यान कम हो तो उसके बिगडने का डर रहेगा। कारण यह कि बहुत सारी क्रियाए बिलकुल स्वत चालित मशीन की तरह बहुत थोडे ध्यान से की जाती हैं, पर फिर भी वे ठीक हो जाती हैं। चलते हुए आदमी को शायद यह पता भी न हो कि वह कहा जा रहा है, पर वह सही रास्ते पर जाएगा और बिना भटके अपनी मज़िल पर पहुचकर ठहर जाएगा। कम से कम आमतौर से तो यही होता है। अभ्यस्त पियानो बजानेवाला बिना सोचे ठीक स्वरो पर हाथ रखता है। हो सकता है कि वह कभी कोई भूल भी कर जाए, पर यदि आपसे आप, अर्थात् स्वत चालित, वादन से गलतियो का ख़तरा बढ जाता है, तो अभ्यस्त वादक की, जिसकी उगलिया निरतर अभ्यास से बिल्कुल स्वत चालित की भाति चलती ह, सबसे अधिक गलतिया होनी चाहिए, पर इसके विपरीत, हम देखते हैं कि बहुत-से कार्य तब बहुत सफलतापूर्वक हो जाते हैं जब उनपर ध्यान खास केन्द्रित नही किया जाता, और गलतिया ठीक उस समय हो जाती हैं जब आदमी सही काम करने के लिए बहुत उत्सुक होता है, अर्थात् जब आवश्यक ध्यान के लिए कोई भी बाधा नही होती। तब यह कहा जा सकता है कि यह 'उत्तेजना' का प्रभाव है, पर यह बात समझ में नही आती कि उत्तेजना ध्यान को उस लक्ष्य पर केंद्रित क्यो नही कर देती, जिसे प्राप्त करने की इतनी तीव्र इच्छा है। इसलिए यदि कोई महत्वपूर्ण भाषण करते हुए कोई व्यक्ति अपने अभिप्राय से उलटी बात कह देता है तो मनोकायिकीय या ध्यान के सिद्धान्त मे इसकी व्याख्या नही की जा सकती।

इन गलतियो के सिलसिले में और भी वहुत-सी छोटी-छोटी वात है, जिन्हे हम नही समझ पाए, और जो इन स्पष्टीकरणो से अधिक सुवोध नही हो जाती। उदाहरण के लिए, जव कोई आदमी कोई नाम थोडी देर के लिए भूल जाता है, तव वह परेशान होता है, उसे याद करने का पक्का इरादा करता है और इस कोशिश से वाज़ नही आ सकता। क्या कारण है कि इस तरह परेशान होने के वावजूद, वह आदमी उस शव्द को, जिसके वारे मे वह कहता है कि यह मेरी ज़वान पर चढा हुआ है, और जिसे सामने आने पर वह तुरन्त पहचान लेता है, अपना ध्यान ले जाने में प्राय सफल नही होता। या एक और उदाहरण लिया जाए, एसी अवस्थाए भी होती है जिनमें गलतियो की सख्या वढती जाती है। वे एक-दूसरे से जुड जाती है या एक-दूसरे की स्थानापन्न[1] वन जाती हैं। पहली वार आदमी अपने किसी नियत कार्य को भूल जाता है, अगली वार वह इसे न भूलने का विशेष सकल्प कर लेता है, परन्तु वह देखता है कि इस वार वह दिन या समय के वारे मे भूल कर गया। या मनुष्य किसी भूले हुए शव्द को याद करने की तरह-तरह से कोशिश करता है और इस तरह करते हुए एक ऐसा नाम भूल जाता है जिससे वह सारी कडी के उससे पहले वाले नाम को याद कर पाता। यदि तव वह दूसरे नाम को पकडकर चलता है तो तीसरे को भूल जाता है और इसी तरह आगे होता रहता है। इस वात की वडी वदनामी है कि गलत छपाई, जो असल मे कम्पोज़ीटर की गलती है, वार-वार उसी रूप में होती जाती है। कहते है कि इस तरह की एक अडियल गलती एक सोशल डिमोक्रेटिक अखवार मे निकल गई थी, जिसमे एक उत्सव का समाचार देते हुए ये शव्द छप गए थे "उपस्थित व्यक्तियो में हिज़ हाईनेस क्लाउन प्रिंस भी थे।"[2] अगले दिन भूल-सुधार की कोशिश की गई। अखवार ने माफी मागी और लिखा "यह वाक्य इस तरह होना चाहिए था 'दी क्रो प्रिंस'।"[3] इसी तरह, एक युद्ध-सवाददाता ने एक प्रसिद्ध सेनापति से, जिसकी कमज़ोरिया काफी प्रसिद्ध थी, मिलने के वाद जो वर्णन लिखा उसमें सेनापति का उल्लेख 'यह वैटल-स्केअर्ड वैटरन' (अर्थात् युद्धभीत योद्धा) छपा। अगले दिन भूल-सुधार और क्षमा-प्रार्थना में ये शव्द लिखे हुए थे "ये शव्द इस तरह होने चाहिए थे 'वौटल-स्कार्ड वैटरन" (यहाँ Scarred शव्द तो ठीक कर दिया गया किन्तु वैटल=Battle के स्थान पर वौटल=Bottle छप गया जिसका यहा कुछ भी अर्थ नही निकलता)। हम इन

---

१ Substitute, २ अंग्रेजी Clown=क्लाउन=विदूषक; असली शब्द Crown Prince=युवराज था, इसमें 'r' अक्षर के स्थान पर 'l' अक्षर कम्पोज हो गया था—अनुवादक। ३ The Crow Prince, जिसमें Crown शब्द का 'n' छूट गया है जिससे वचे हुए शब्द 'Crow' का अर्थ कौआ होता है।

—अनुवादक।

घटनाओ का कारण 'प्रेस के भूतों' अर्थात् छापनेवालो की असावधानी को बता दिया करते हैं—इससे कम से कम इतना तो ध्वनित होता है कि गलत छपाई का कारण मनोकार्यिकीय सिद्धान्त से कुछ अधिक है।

मुझे नही मालूम कि आप इस तथ्य से परिचित हैं या नही कि बोलने की गलतिया मनो-आदेश[1] द्वारा दूसरे में पैदा भी की जा सकती है। एक छोटे-से उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। एक बार एक नाटक में किसी नौसिखुए को **मेड आॅफ आॅर्लियन्स** में राजा के सामने यह एलान करने का महत्वपूर्ण काम सौंपा गया "कान्स्टेबल अपनी स्वर्ड (अर्थात् तलवार) वापस भेजता है।" मुख्य अभिनेता ने रिहर्सल में डरते हुए नौसिखुए के सामने असली शब्दो के बजाय ये शब्द कई बार मज़ाक में दोहराये "कोमफोर्टेबल (घोडा-तागा) अपना स्टीड (घोडा) वापस भेजता है।" नाटक खेले जाने के समय उस अभागे अभिनेता ने सचमुच इसी गलत एलान के साथ पदार्पण किया, हालाकि उसे बार-बार यह चेतावनी दे दी गई थी कि ऐसा न करना—शायद इस चेतावनी के कारण ही उसने ऐसा कर डाला।

गलतियो की ये सब छोटी-छोटी विशेषताए ध्यान बट जाने के सिद्धान्त से स्पष्ट नही होती, पर इसका यह मतलब भी नही कि इतने से वह सिद्धान्त गलत सिद्ध हो जाता है, सम्भव है कि बीच की कोई ऐसी कडी गायब हो जिसके होने पर यह सिद्धान्त बिल्कुल सन्तोषजनक हो जाए। पर बहुत सारी गलतियो पर एक और पहलू से विचार किया जा सकता है।

अपने प्रयोजन के लिए सबसे उपयुक्त समझकर हम बोलने की गलतियो पर विचार करेंगे। इसी तरह, लिखने या पढने की ग़लतिया भी ली जा सकती हैं। अब हमें सबसे पहले यह ध्यान में ले आना चाहिए कि अब तक हमने सिर्फ यह विचार किया है कि गलत शब्द कब और किन अवस्थाओ में मुह से निकल जाता है और हमें इसी प्रश्न का उत्तर मिला है। अब उस भूल के स्वरूप पर विचार किया जा सकता है और यह प्रश्न पैदा हो सकता है कि गलती से यह शब्द क्यो निकला, अन्य कोई क्यो नही निकला। आप देखेंगे कि जब तक इस प्रश्न का उत्तर नही मिलता और भूल के कार्य की व्याख्या नही होती, तब तक वह घटना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से निरी आकस्मिक बनी रहती है, चाहे उसकी कार्यिकीय व्याख्या हो चुकी हो। जब मैं किसी शब्द में भूल करता हू तो ज़ाहिर है कि मै यह भूल हज़ारो तरह कर सकता था। मैं सही शब्द के स्थान पर अन्य हजारो शब्दो में से कोई भी बोल सकता था या सही शब्द को हज़ारो रूपो में बिगाड सकता था, तो क्या कोई ऐसी बात है जो मुझे, इस खास उदाहरण में, यही एक भूल करने को मजबूर

---

[1] Suggestion

करती है, या यह सिर्फ आकस्मिक और अकारण है, और इसकी कोई बुद्धि-सगत व्याख्या नही हो सकती ?

दो लेखको, मेरिंगर और मेयर, ने (जिनमे से एक भाषातत्व-वेत्ता और दूसरा मनश्चिकित्सक था) १८९५ में बोलने की गलतियो की समस्या पर इस दिशा से सोच-विचार करने की सचमुच कोशिश की थी। उन्होने उदाहरण जमा किये और पहले शुद्ध वर्णात्मक दृष्टि से उनपर विचार किया। नि सन्देह सिर्फ इतनी बात से कोई व्याख्या नही हो जाती पर इससे व्याख्या का रास्ता सूझ सकता है। उन्होने अभिप्रेत पदावली मे गलती के कारण होनेवाले विकारो को इन भागो में बाटा (शब्दो,अक्षरो या वर्णों की स्थितियो में) विपर्यय[1] या अदला-बदली, पूर्वोच्चारण[2], अर्थात् बाद की बात पहले कह देना, निरर्थकावृत्ति[3] या बार-बार वही बात दोहराना, (शब्द) मिश्रण[4] और स्थानापन्नता,[5] अर्थात् एक शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द बोल देना। इन लेखको द्वारा बनाए गए मुख्य वर्गो से उदाहरण मैं आपके सामने पेश करता हूँ। शब्दो के स्थान की अदला-बदली अर्थात् विपर्यय, के उदाहरण के रूप मे, कोई आदमी 'भारत की राजधानी दिल्ली' के बजाय 'दिल्ली की राजधानी भारत' कह सकता है। प्रसिद्ध स्पूनर प्रवृत्ति या स्पूनरिज्म मे कुछ वर्णो का स्थान अदल-बदल जाता है, जैसे, एक उपदेशक ने कहा था : "हम अपने भीतर कितनी ही बार हाफ वार्म्ड फिश (हाफ-फॉर्ड विश) अनुभव करते है।" पूर्वोच्चारण का उदाहरण यह हो सकता है · "दि थॉट लाइज हैविली आव माई हार्ट" के स्थान पर कोई कहता है "दि थॉट लाइज़ हार्टिली...।" निरर्थकावृत्ति का उदाहरण उस भोज वाले वाक्य मे है, "सज्जनो, मै आपसे (औफ · जर्मन शब्द) हमारे प्रधान जी के स्वास्थ्य के लिए औफत्सुस्टोसेन (हिचकी लेने) के लिए निवेदन करता हू। (**औफ** त्सुस्टोसेन के स्थान पर वह **एनत्सुस्टोसेन** अर्थात् शराब पीने के लिए, कहना चाहता था। पर 'से' के अर्थ में जो **औफ** शब्द पहले प्रयोग किया जा चुका था, उसकी दूसरे शब्द के पूर्वार्ध में निरर्थक आवृत्ति कर बैठा जिससे **पीने** के स्थान पर **हिचकी लेने** का अर्थ हो गया)।

और जब ब्रिटिश लोकसभा के एक सदस्य ने एक दूसरे सदस्य को 'मेंबर फार सेन्ट्रल हल (एक चुनाव क्षेत्र का नाम)' के बजाय 'मेंबर फार सेन्ट्रल हेल (नरक)' कह दिया था, तब यह भी निरर्थकावृत्ति का उदाहरण था। इसी प्रकार, एक सैनिक ने अपने एक मित्र से कहा. "मैं चाहता हूँ कि इस मोर्चे पर हमारे हज़ार मैन मोर्टिफाइड (अर्थात् आदमी मर जाते)। असल में वह कहना चाहता था कि **मैन फोर्टिफाइड** (अर्थात् सैनिक दुर्गबद्ध) हो जाते। पहले उदाहरण में,'**एल**' ध्वनि

---

१ Interchange, २. Anticipation, ३ Perseveration, ४ Compounding or Contamination, ५ Substitution

जाता है। इन उदाहरणो पर ध्वनियो के सबधो या सादृश्य के कारण होनेवाली गडबडी का कोई प्रभाव नही होता, और इसलिए और कोई कारण दिखाई न देने पर आदमी का ध्यान इस बात पर जाता है कि विरोधी अर्थो मे परस्पर प्रबल अवधारणीय[1] सबध होता है, और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनका निकट सम्बन्ध होता है। इस तरह के बहुत-से प्रसिद्ध प्रसग हैं। उदाहरण के लिए, हमारी पार्लियामेंट के अध्यक्ष ने एक बार अधिवेशन का उद्घाटन,इन शब्दो में किया "सज्जनो, मैं घोषणा करता हू कि कोरम पूरा है और अब मैं अधिवेशन को **बंद** घोषित करता हूँ।"

कोई और साझा सबध भी इसी तरह कार्य कर रहा हो सकता है, जैसे एक-दूसरे की विरोधी बातो का सबध। इसीलिए इस तरह की एक घटना है कि एच० हेल्म होल्ट्ज़ की एक सन्तान का प्रसिद्ध आविष्कारक और उद्योगपति डब्ल्यू० सीमन्स की किसी सतान से विवाह हो रहा था। उत्सव के बाद प्रसिद्ध कायिकी-वेत्ता डुबौयरेमंड से भाषण करने के लिए कहा गया। उन्होने नि सन्देह बडा शानदार भाषण दिया, पर अत में मगल-कामना इन शब्दो में की "यह नई साझेदारी, सीमन्स और हाल्स्के सफल हो!"—**हाल्स्के** असल मे पुरानी फर्म का नाम था। बर्लिन में रहने वाले के मन में इन दोनो नामो का साहचर्य उसी तरह जमा हुआ होगा जैसे लन्दन निवासी के मन में 'क्रास एड ब्लैकवेल' का।

इस प्रकार, शब्दो में ध्वनि-मानो और सादृश्यो के साथ-साथ शब्द-साहचर्यो[2] का भी विचार करना होगा। परन्तु इतना भी काफी नही है। एक तरह के उदाहरण में गलती की पर्याप्त व्याख्या पर पहुच सकने से पहले हमे किसी ऐसे वाक्यांश या पदावली पर अवश्य विचार करना चाहिए जो पहले कही गई है, या शायद सिर्फ सोची गई है। यह फिर निरर्थकावृत्ति हुई, जैसा कि मेरिंगर का कहना है, पर इसका जनक कारण अधिक दूर है—मैं मानता हू कि मुझे यही मालूम हो रहा है कि हम बोलने की गलतियो का कारण समझने से अब भी पहले जितने ही दूर हैं।

पर मुझे आशा है कि मेरा यह विचार गलत नही है कि ऊपर के उदाहरणो जाच करते हुए हमारे मन में एक चित्र बन गया है जो शायद आगे हमारे लिए [illegible]ो होगा। अब तक हमने बोलने की गलतिया होने की सामान्य दशाओ पर, [illegible]ती में दिखाई देनेवाली विकृति के कारणभूत प्रभावो पर ही विचार [illegible] अब तक हमने ग़लती के परिणाम पर ज़रा भी विचार नही किया, में [illegible] है—यह प्रश्न अलग है कि उसके पैदा होने [illegible]रें तो अत में हमें साहस से कहना

में पहलेवाले पदो, मेम्बर फार सेन्ट्रल की 'ए' ध्वनि की निरर्थकावृत्ति हो गई है और दूसरे में, मैन की 'म' ध्वनि की निरर्थकावृत्ति होकर 'मोर्टिफाइड' बन गया है। ये तीन तरह की ग़लतियाँ बहुत आम नही हैं। वे गलतियाँ अधिक होती हैं जिनमें शब्द-मिश्रण या शब्दो के सिकुडकर एक बन जाने की घटना होती है, उदाहरण के लिए एक नौजवान एक महिला से कहता है कि क्या मैं रास्ते में आपको **बेग्लीट-डाइजेन** (begleit-digen—जर्मन भाषा में)=इन्सौर्ट (अग्रेजी में) कर सकता हू। यह मिश्रित रूप बेग्लीटेन (begleiten)=हिफाजत से पहुचाना और बेली-डाइजेन (beleidigen)=अपमान करना, का मिश्रण है। (अग्रेज़ी में बेग्लीटेन =एस्कोर्ट तथा बेलीडाइजेन=इन्सल्ट, और दोनो का मिश्रण=इन्सौर्ट)। (और प्रसगत, किसी महिला से इस तरह की बात कहने पर नौजवान को विशेष सफलता होने की आशा तो नही है)। स्थानापन्नता का उदाहरण यह है कि जब कोई दीन औरत कहती है कि "मुझे असाध्य **इन्फर्नल** (अग्रेजी नारकीय, वह कहना चाहती थी **इन्टर्नल**=भीतरी या गुप्त) रोग है", या जब श्रीमती मैलाप्राप कहती है, "स्त्रियो के **इनेफेक्च्युअल** (निष्फल, कहना चाहती थी इन्टेलेक्च्युअल=बौद्धिक) गुणो का मूल्य आकना बहुत थोडे लोगो को आता है।"

इन दोनो लेखको ने अपने उदाहरण-सग्रह के आधार के रूप में जो व्याख्या पेश की है, वह विशेष रूप से अपर्याप्त है। उनका कहना है कि शब्द की ध्वनियो और अक्षरो[1] का अलग-अलग मान[2] होता है, और कि अधिक मानवाली ध्वनियो का स्नायु-दीपन[3] कम मानवाली ध्वनियो का बाधक बन सकता है। स्पष्ट है कि उनके निष्कर्ष का आधार पूर्वोच्चारण और निरर्थकावृत्ति के उदाहरण है, जो बहुत कम होते है। यदि यह मान भी लें कि ध्वनियो के मान अलग-अलग होते है, तो भी बोलने की गलतियो के और रूपो में इस तरह ध्वनियो के अधिक मान वाली होने का प्रश्न पैदा ही नही होता, सबसे अधिक होनेवाली ग़लती वह है जिसमें मनुष्य किसी शब्द के स्थान पर उससे मिलता-जुलता दूसरा शब्द बोल जाता है, और दोनो के सादृश्य को इस गलती का काफी कारण मान लिया जाता है। उदाहरण के लिए, कोई प्रोफेसर अपने आरभिक व्याख्यान में कह सकता है, "मैं अपने पूर्ववर्ती प्रोफेसर के गुणो का मूल्याकन करने के लिए इच्छुक (geneigt) (उसे कहना था, योग्य=geeignet) नही हूँ।" कोई दूसरा प्रोफेसर कहता है, "स्त्री की जननेन्द्रिय के बारे में, आसक्तिजनक (Versuchungen) मेरा मतलब है, आयामजनित Versuche

परन्तु सबसे अधिक होने वाली और सबसे अधिक नज़र आने वाली बोलने की ग़लती वह है जिसमें आदमी जो कुछ कहना चाहता है, ठीक उससे उलटी बात कह

१ Syllables, २ Value, ३ Innervation

जाता है। इन उदाहरणो पर ध्वनियो के सबंधो या सादृश्य के कारण होनेवाली गडवड़ी का कोई प्रभाव नही होता, और इसलिए और कोई कारण दिखाई न देने पर आदमी का ध्यान इस वात पर जाता है कि विरोधी अर्थो मे परस्पर प्रवल अवधारणीय[१] सवध होता है, और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनका निकट सम्वन्ध होता है। इस तरह के वहुत-से प्रसिद्ध प्रसग हैं। उदाहरण के लिए, हमारी पार्लियामेंट के अध्यक्ष ने एक वार अधिवेशन का उद्घाटन,इन शब्दो में किया ."सज्जनो, मैं घोषणा करता हू कि कोरम पूरा है और अव मैं अधिवेशन को वंद घोपित करता हूँ।"

कोई और साझा सवघ भी इसी तरह कार्य कर रहा हो सकता है, जैसे एक-दूसरे की विरोधी वातो का सवघ। इसीलिए इस तरह की एक घटना है कि एच० हेल्म होल्ट्ज़ की एक सन्तान का प्रसिद्ध आविष्कारक और उद्योगपति डब्ल्यू० सीमन्स की किसी सतान से विवाह हो रहा था। उत्सव के वाद प्रसिद्ध कार्यिकीवेत्ता डुवौयरेमड से भाषण करने के लिए कहा गया। उन्होने नि सन्देह वडा शानदार भाषण दिया, पर अत मे मगल-कामना इन शब्दो में की. "यह नई साझेदारी, सीमन्स और हाल्स्के सफल हो!"—हाल्स्के असल में पुरानी फर्म का नाम था। वर्लिन में रहने वाले के मन मे इन दोनो नामो का साहचर्य उसी तरह जमा हुआ होगा जैसे लन्दन निवासी के मन में 'क्रास एड व्लैकवेल' का।

इस प्रकार, शब्दो में ध्वनि-मानो और सादृश्यो के साथ-साथ शब्द-साहचर्यो[२] का भी विचार करना होगा। परन्तु इतना भी काफी नही है। एक तरह के उदाहरण में गलती की पर्याप्त व्याख्या पर पहुच सकने से पहले हमे किसी ऐसे वाक्याश या पदावली पर अवश्य विचार करना चाहिए जो पहले कही गई है, या शायद सिर्फ सोची गई है। यह फिर निरर्थकावृत्ति हुई, जैसा कि मेरिंगर का कहना है, पर इसका जनक कारण अधिक दूर है—मै मानता हू कि मुझे यही मालूम हो रहा है कि हम वोलने की गलतियो का कारण समझने से अव भी पहले जितने ही दूर हैं।

पर मुझे आशा है कि मेरा यह विचार गलत नही है कि ऊपर के उदाहरणो की जाच करते हुए हमारे मन में एक चित्र वन गया है जो शायद आगे हमारे लिए उपयोगी होगा। अव तक हमने वोलने की गलतिया होने की सामान्य दशाओ पर, और गलती में दिखाई देनेवाली विकृति के कारणभूत प्रभावो पर ही विचार किया है, पर अव तक हमने गलती के परिणाम पर जरा भी विचार नही किया, जो अपने-आप मे दिलचस्पी का विषय है—यह प्रश्न अलग है कि उसके पैदा होने का कारण क्या है। यदि हम इसपर विचार करें तो अत में हमें साहस से कहना

---

१ Conceptual connection, २. Word-association

होगा कि कुछ उदाहरणो में गलती का भी अपना अलग अर्थ है। इस कथन का क्या मतलब हुआ कि "उसका भी अपना अलग अर्थ है।" इसका अर्थ यह है कि शायद गलती के परिणाम को अपने आप में एक मान्य मानसिक प्रक्रम कहलाने का हक है जो अपने प्रयोजन की ओर बढ रहा है, और वस्तु तथा अर्थ से युक्त कथन है। अब तक हमने सिर्फ गलतियों की चर्चा की है, पर अब ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कभी-कभी गलती सर्वथा उचित कार्य भी हो सकती है,—कि जैसे बात इतनी ही है कि यह अधिक प्रत्याशित या अभिप्रेत के स्थान पर जबर्दस्ती आ कूदी है।

कुछ उदाहरणो में गलती से निकलने वाला अर्थ समझ में आनेवाला और भ्रातिरहित प्रतीत होता है। जब अध्यक्ष पार्लियामेंट के अधिवेशन का उद्घाटन-भाषण देते हुए इसे बद घोषित करता है, तब उस गलती के होने की परिस्थितियो को जानने पर हमें उसमें एक अर्थ दिखाई देने लगता है। उसे अधिवेशन से कोई अच्छा परिणाम निकलने की आशा नही है, और यदि यह न हो तो उसे खुशी होगी, इस गलती का अर्थ या तात्पर्य निकालना कुछ कठिन नही। या जब कोई महिला किसी दूसरी महिला की तारीफ करती हुई मालूम होती है और कहती है, "निश्चय से आपने ही यह सुन्दर टोप **औफगोपात्स्ट**" (फेंका होगा),जबकि उसे **औफगेपुत्स्ट** (सिआ होगा) कहना था, तब ससार का कोई भी वैज्ञानिक सिद्धान्त हमें यह सोचने से नही रोक सकता कि उसके मन में यह विचार है कि टोप कुशल हाथों का बना हुआ नही है। या जब कोई तेज मिजाजवाली महिला यह कहती है, "मेरे पति ने डाक्टर से पूछा था कि उसे किस तरह की खुराक दी जाए। पर डाक्टर ने कहा कि उसे किसी विशेष खुराक की जरूरत नही है, वह, जो मै चाहूँ सो, खा सकता है", तब यह गलती साफतौर से एक सुसगत योजना की भ्रातिरहित अभिव्यक्ति मालूम होती है।

अब मान लो कि यह बात सिद्ध हो जाए कि बोलने की गलतियो और दूसरी सामान्य गलतियो मे से कुछ का ही नही, बल्कि उनके बहुत बडे भाग का कुछ अर्थ होता है तो गलती का अर्थ ही, जिसकी ओर अब तक हमने कोई ध्यान नही दिया, हमारे लिए सबसे बडी दिलचस्पी का विषय हो जाएगा, और यह उचित ही है कि तब और सब प्रश्न गौण हो जाएगे। तब सब कायिकीय और मनोकायिकीय दशाओ को नजरदाज किया जा सकता है, और गलतियो के **अभिप्राय**, अर्थात् अर्थ या आशय, की शुद्ध मनोवैज्ञानिक जाच-पडताल की ओर सारा ध्यान दिया जा सकता है। इसलिए इस दृष्टि से हम कुछ और उदाहरणो पर विचार करेंगे।

पर इस रास्ते पर चलना शुरू करने से पहले मै आपका ध्यान एक और बात की ओर खीचना चाहता हू। बहुत बार कोई कवि बोलने की गलती या किसी दूसरी गलती का, कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में प्रयोग करता है। इस तथ्य से

ही यह सिद्ध होता है कि वह यह समझता है कि गलती, उदाहरण के लिए बोलने की गलती, का कुछ अर्थ होता है, क्योंकि वह जान-बूझकर ऐसी रचना करता है। यह सम्भव नही, कि कवि से अचानक लिखने की गलती हो गई हो और इसे उसने बोलने की गलती के रूप मे अपनी रचना मे बना रहने दिया हो। गलती के द्वारा वह कुछ बात प्रकट करना चाहता है, और हम यह पूछ सकते है कि वह इसके द्वारा क्या बात प्रकट करना चाहता है---शायद वह यह सकेत करना चाहता है कि गलती करनेवाला व्यक्ति बहुत थका हुआ है, या उसका ध्यान बटा हुआ है, या उसे सिर-दर्द शुरू होने की सम्भावना है। पर यदि कवि लोग अपना अर्थ प्रकट करने के लिए गलतियो का उपयोग करते ही है तो भी हमें इसके महत्व को बहुत बढा-चढाकर पेश न करना चाहिए। हो सकता है कि असल में गलतिया अर्थहीन हो, वे मानसिक जगत् की आकस्मिक घटनाए हो, या उनका कभी-कभी ही अर्थ होता हो, और कवियो को तब भी यह अधिकार होगा कि वे अपने प्रयोजन के लिए उनमे कोई अभिप्राय भरकर उन्हे परिष्कृत कर ले। तो भी, यदि बोलने की गलतियो के बारे में हम भाषातत्ववेत्ताओ और मनश्चिकित्सको की अपेक्षा कवियो से कुछ अधिक सीख सके तो आश्चर्य न करना चाहिए।

इस तरह की एक गलती का उदाहरण शिलर (Schiller) के **वालेनस्टाइन** (पिक्कोलोमिनी,अक १, दृश्य ५) में आता है। पहले के दृश्य में युवा मैक्स पिक्कोलोमिनी ने ड्यूक वालेनस्टाइन के पक्ष का ज़ोर-शोर से समर्थन किया था, और वह बडे भावावेश से शाति के लाभो का वर्णन कर रहा था, जिनका उसे वालेनस्टाइन की सुन्दरी कन्या के साथ कैम्प की ओर यात्रा करने के दिनो मे ज्ञान हुआ था। उसके रगमच से जाने के बाद, उसका पिता (अक्टेवियो) और दरबारी क्वेस्टनवर्ग भय-विह्वल अवस्था में दिखाए गए है। पाचवा दृश्य आगे इस तरह जारी रहता है

क्वेस्टनवर्ग हा, यह क्या होता है ?
मित्र, क्या हम उसको चलने दे
इस भ्रम में ? जाने दें अपने हाथो से ?
न बुलाए उसको फौरन वापस, और
न खोलें उसकी आखें तुरत अभी ?

आक्टेवियो : (गहरी विचार-निद्रा से जागता हुआ)
उसीने खोली अब **मेरी,**
दिखता मुझको अनभाता भी

क्वेस्टनबर्ग वह क्या, मित्र ?

आक्टेवियो : वज्र गिरे इस यात्रा पर !

क्वेस्टनबर्ग · पर क्यो ऐसा कहते हो ? क्या बात हुई ?

आक्टेवियो आओ, आओ, मित्र, चलूँगा ही मैं,
तुरत, जहाँ अपशकुन मुझे ले जाता,
और निज नयनो से ही देखूँगा—आओ मेरे साथ अभी !

क्वेस्टनबर्ग अभी कहाँ आओ ेतुम ?

आक्टेवियो (जल्दी में) **उसी तरुणी के पास !**

क्वेस्टनवर्ग कहाँ

आक्टेवियो (अपनी गलती सुधारता हुआ) अरे ड्यूक के पास ! आओ फौरन !

आक्टेवियो कहना चाहता था "उसी ड्यूक के पास। पर उसकी जबान फिसल जाती है और वह "उसी तरुणी के पास" शब्दो से (कम से कम हमें तो) यह जतला देता है कि उसने उस प्रसिद्ध तरुण योद्धा की शातिपक्षीय प्रेरणाओ के पीछे कार्य कर रहे प्रभाव को साफ तौर से पहचान लिया है।

इससे भी अधिक प्रभावोत्पादक उदाहरण ओ० रैंक ने शेक्सपियर में से निकाला था। यह **मर्चेन्ट आफ वेनिस** में उस प्रसिद्ध दृश्य में आता है जिसमें वह सौभाग्य-शाली विवाहार्थी तीन डिब्बियो में से एक को उठाता है, और सबसे अच्छा शायद यही रहेगा कि मैं आपके सामने इसका रैंक द्वारा लिखा हुआ छोटा-सा विवरण ही पढ दू ।

"वोलने की एक गलती, जो शेक्सपियर के **मर्चेन्ट आफ वेनिस** (अक तीन, दृश्य २) में आती है, उससे प्रकट काव्यमय भावना की, और इस कौशल का प्रयोग करने के शानदार तरीके की दृष्टि से अत्यत सुन्दर वन पडी है। वालेनस्टाइन मे आई गलती की तरह, जो फ्रायड ने अपनी **साइको पैथोलोजी आफ एवरी डे लाइफ** में उद्धृत की है, इससे भी प्रकट होता है कि कवि लोग ऐसी गलतियो के तत्र और अर्थ को अच्छी तरह, समझते हैं, और यह मानकर चलते है कि दर्शक भी उनकी वात समझेंगे। पोर्शिया, जिसे अपने पिता की इच्छा के कारण लाटरी से अपने पति का चुनाव करना है, अवतक नापसद विवाहार्थियों से, उनकी वदकिस्मती के कारण वचती गई है। अत में वेसानियो के रूप में अपना मनपसद विवाहार्थी पाकर वह इस आशका से डरती है कि वह भी गलत डिविया उठाएगा। वह उसे यह वताना चाहती है कि उस अवस्था में भी तुम मेरे प्रेम के विपय में निश्चित हो सकते हो, पर अपनी शपथ के कारण वह उमसे ऐसा नही कह पाती। इस आतरिक सघर्प में कवि उससे अपने मनपसन्द विवाहार्थी को कहलवाता है

विनती करती हूँ कुछ ठहरो, सोचो कुछ दिन
और फिर पासा फेंको, क्योकि यदि गलत पडा
तो छूटेगा सग तुम्हारा, अत धरो कुछ धीरज
कोई कहता मेरे उर में (किंतु वह प्रेम नही है)
होगे दूर नही तुम मुझसे

वतला सकती थी मैं तुमको
कैसे सही चुनो वह डिबिया, किंतु शपथ है मेरे ऊपर
अत नही कह सकती कुछ, इसका वुरा न मानो,
वुरा मान कर पाप कराओगे तुम मुझसे
क्योकि शपथ है मेरे ऊपर, ज़ालिम नयन तुम्हारे !
मुझे देखकर वाट चुके है दो टुकडो में,
मेरा आधा हुआ तुम्हारा, आधा शेष तुम्हारा–
मेरा-मेरा, कहना था; पर यदि मेरा, तो भी रहा तुम्हारा,
यो सारा हुआ तुम्हारा ।

सिर्फ वह वात, जो वह उसे गूढ इशारे से वताना चाहती थी, क्योकि असल में उसे यह वात सर्वथा उससे छिपानी चाहिए थी, यानी कि 'लाटरी से पहले भी मैं तुम्हारी थी और तुमसे प्यार करती थी',—यह कवि ने मनोवैज्ञानिक अनुभूति की अत्यधिक सुन्दरता के साथ, उसकी गलती मे, उसके मुह से कहलवा दी है, और इस कलापूर्ण युक्ति द्वारा उसने प्रेमी की असह्य अनिश्चितता को भी दूर कर दिया है, और चुनाव के प्रश्न के वारे में दर्शको के अनिश्चय को भी शात कर दिया है।"

और देखिए अन्त में, पोर्शिया गलती से कही गई दोनो वातो का किस तरह मेल विठाती है, कैसे वह उनके विरोध का परिहार करती है, और अत में उस गलती को उचित भी सिद्ध करती है ·

पर यदि मेरा, तो भी रहा तुम्हारा
यो सारा हुआ तुम्हारा ।

ऐसा हुआ है कि डाक्टरी के क्षेत्र से वाहर के दूसरे विचारको ने अपने कथन द्वारा किसी गलती का अर्थ प्रकट किया है, और इस दिशा मे हमने जो कार्य किया, उसको उन्होंने हमसे पहले किया है। परिहास-व्यग्य-लेखक लिख्टनवर्ग (१७४२-१७९९) को आप सव जानते हैं, जिसके वारे में गेटे ने कहा था "जहा वह मज़ाक करता है, वहा कोई समस्या छिपी पडी होती है।" और कभी-कभी उस समस्या का हल उस मज़ाक में ही दिखाया होता है। लिख्टनवर्ग ने अपने परिहास तथा व्यंग्य से पूर्ण **नोट्स** में लिखा है, "वह 'एगेनोम्मेन' (क्रिया, जिसका अर्थ है [गलती से] सिद्ध या स्वीकृत मान लेना) के स्थान पर सदा 'एगामेम्नोन' पढा करता था, होमर का वह इतना महान् पंडित था।" इसमे पढने में होनेवाली गलतियो का वस्तुत सारा सिद्धात आ जाता है।

अगले व्याख्यान में हम देखेंगे कि कवियो का मनोवैज्ञानिक गलतियो के अर्थ के वारे मे जो विचार है, उससे हम सहमत हो सकते हैं या नही।

व्याख्यान | ३

ग़लतियों का मनोविज्ञान

पिछले व्याख्यान में हमने गलती पर विचार किया था, और यह सवाल छोड दिया था कि इसने जिस अभिप्रेत, अर्थात् मन के भीतर मौजूद, कार्य में वाधा पहुचाई है, उससे इसका क्या सम्वन्ध है, और हमने देखा था कि कुछ उदाहरणो में इसका अपना अलग अर्थ झाकता नज़र आता था। हमने अपने आप से कहा था कि यदि वडे पैमाने पर यह सिद्ध किया जा सके कि गलती का अपना अर्थ होता है तो वह अर्थ हमारे लिये उन अवस्थाओ की जाच से भी वहुत अधिक मनोरजक सिद्ध होगा, जिनमें गलतिया होती हैं।

आइए, एक वार यह और तय कर लें कि किसी मानसिक प्रक्रम के 'अर्थ' से हम क्या समझते है। इसका मतलव है वह आशय या अभिप्राय जिससे वह प्रक्रम किया जाता है और किसी मानसिक अनुक्रम या सिलसिले मे इसका स्थान। जिन उदाहरणो पर हमने विचार किया है, उनमें से अधिकतर में हम 'अर्थ' शव्द के स्थान पर 'आशय' और 'प्रवृत्ति' शव्द रख सकते हैं। तो, हम जो यह मानने लगे थे कि गलती में हमें कोई आशय दिखाई पड सकता है, वह क्या ऊपरी धोखा, या गलती की व्यर्थ प्रशसा-मात्र थी।

हम वोलने की ग़लतियो के उन्ही उदाहरणो को लेते हैं और इस तरह की वहुत सारी अभिव्यक्तियो पर विचार करते हैं। इस तरह, हम देखते हैं कि ऐसे उदाहरणो के पूरे के पूरे समुदाय वन जाते हैं जिनमें गलती का आशय, यानी अर्थ, आसानी से समझ में आ जाता है, खास तौर से उन उदाहरणो में जिनमें मन की वात से उलटी वात कह दी गई है। अध्यक्ष अपने उद्घाटन भाषण में कहता है "मैं अधिवेशन को वन्द घोषित करता हूं।" निश्चित रूप में इसका अर्थ अस्पष्ट नही। इस गलती का अर्थ यह है कि वह अधिवेशन को वन्द करना चाहता है। आप आसानी से कह सकते हैं, "उसने स्वय ऐसा कहा था," हम तो उसके अपने शव्दो को ही ले रहे हैं। कृपा करके यह एतराज़ उठाकर मुझे मत टोकिये कि यह तो असम्भव है कि हमें विलकुल अच्छी तरह पता है कि वह अधिवेशन को खोलना चाहता था,

न कि बन्द करना, और कि वह स्वय,जिसे हमने अभी अपने आशय का सबसे अच्छा जज स्वीकार किया है, इस बात पर बल देगा कि वह इसे खोलना चाहता था। ऐसा एतराज़ करते हुए आप यह भूल जाते हैं कि हमने सिर्फ गलती पर विचार करना तय किया था, जो आशय इसे पैदा कराता है, उसके और गलती के सम्बन्ध पर आगे विचार किया जाएगा। आप पर तर्क-दोष का आक्षेप आता है क्योकि आप साध्य को पहले ही सिद्ध मानकर सारे विचारणीय प्रश्न को आराम से खतम कर देना चाहते हैं।

दूसरे उदाहरणो में, जिनमें गलती का रूप आशय से ठीक उलटा नही है, विरोधी अर्थ आम तौर से प्रकट हो जाता है। "मैं अपने पूर्ववर्ती के गुणो की सराहना करने को उत्सुक (Geneigt) नही हूँ।" 'उत्सुक' 'की स्थिति में' (Geeignet) का उलटा नही है, बल्कि यह उस विचार की खुली स्वीकृति है जो वक्ता के उस स्थिति की शोभा कायम रखने के कर्तव्य से बिल्कुल उलटा है।

कुछ और उदाहरणो में गलती से आशय के साथ सिर्फ एक दूसरा अर्थ और जुड जाता है। तब वाक्य सक्षिप्त रूप, या कई वाक्यो का एक वाक्य में ठूँसा हुआ वाक्य मालूम होता है। इस प्रकार उस पक्के इरादे वाली महिला का वाक्य ऐसा ही था, जिसने कहा था, "वह जो मैं चाहूं वह खा-पी सकता है।" असल में मानो उसने कहा था, "वह जो कुछ चाहे खा-पी सकता है, पर उसके चाहने का क्या महत्व है, मेरा चाहना ही उसका चाहना है।" बोलने की गलती से प्राय यह असर पडता है कि सक्षेप हो गया है, उदाहरण के लिए जब शारीरशास्त्र का एक अध्यापक नासिका-विवरो[1] पर व्याख्यान देने के बाद अपनी कक्षा से यह पूछता है कि क्या आपने विपय को अच्छी तरह समझ लिया, तब सबके सामान्य रूप से 'हा' कहने पर वह कहता है, "मुझे इस बात पर विश्वास नही होता क्योकि नासिका-विवरो को पूरी तरह समझ सकने वाले लोग करोडो के शहर में भी **एक उंगली** पर गिने जा सकते हैं · मेरा मतलब है, एक हाथ की उँगलियो पर···।" सक्षिप्त वाक्य का अपना ही अर्थ है, इसका अर्थ यह है कि इस विषय को समझने वाला सिर्फ एक व्यक्ति है।

इस तरह की गलतियो के मुकाबिले में, जिनमें गलतियो का अर्थ बिल्कुल साफ हो जाता है, दूसरी ओर कुछ ऐसी गलतियाँ हैं, जिनमें गलती से कुछ भी समझ में नही आता, और इसलिए वे हमारी आशाओ के बिलकुल विपरीत मालूम होती हैं। व्यक्तिवाचक नामो का भूल से गलत उच्चारण, या अर्थहीन ध्वनियो का बोल जाना इस तरह की एक ऐसी आम घटना है, जो अकेली ही इस प्रश्न का उत्तर प्रतीत होती है कि सब गलतियो का कोई अर्थ होता है या नही। पर ऐसे उदाहरणो की

---

१ Nasal cavities

वारीकी से जाच करने से यह वात सामने आ जाती है कि इन विकृतियो को आसानी से समझा जा सकता है, सच तो यह है कि इन समझ में न आनेवाले उदाहरणो और पहलेवाले अधिक आसानी से समझ आनेवाले उदाहरणो में बहुत बडा अन्तर नही है।

एक घोडे के मालिक ने घोडे की अवस्था के वारे में पूछे जाने पर उत्तर दिया, "ओ, इट मे **स्टैंड**—इट मे **टेक** अनदर मथ।" यह पूछने पर कि उसका असली आशय क्या है, उसने उत्तर दिया कि मैं यह सोच रहा था कि यह एक **सैड** (बुरा) कारवार है और **स्टैंड** तथा **टेक** शब्दो के मिलने से **स्टैंड** शब्द बन गया (मैरिंगर और मायर)।

एक और आदमी कुछ आपत्तिजनक घटनाए सुना रहा था और कह रहा था, "एड देन सर्टेन फैक्ट्स वेयर रिफिल्ड।" उसने बताया कि वह यह कहना चाहता था कि यह तथ्य **फिल्दी** (भद्दे) हैं। **रिवील्ड** तथा फिल्दी के मिल जाने से रिफिल्ड वन गया (मैरिंगर और मायर)।

तुम्हें उस नौजवान का ध्यान होगा जिसने एक अपरिचित महिला को **'इन्सोर्ट'** करने का प्रस्ताव किया था। हमने इन शब्दो को **इन्सल्ट** (insult) और **एस्कोर्ट** (escort) में खण्डित कर लिया था, और हमें अपनी इस व्युत्पत्ति की सचाई का इतना निश्चय था कि इसके किसी प्रमाण की आवश्यकता नही थी। इन उदाहरणो से आप समझ सकते हैं कि कुछ धुधले दिखाई देने वाले इन उदाहरणो की भी यह कहकर व्याख्या की जा सकती है कि उनमें भाषण के दो भिन्न आशयो की एक साथ उपस्थिति है, या दो भिन्न आशय एक-दूसरे को रोकते हैं। मतभेद सिर्फ पहले प्रकार की गलतियो में पैदा होता है, जबकि एक आशय विलकुल लोप हो गया है, जैसा कि उल्टी वात कहने पर होता है, दूसरे प्रकार की गलती में एक आशय दूसरे को विकृत करने या उसमें रूपभेद करने में ही सफल होता है, जिससे निरर्थक-से दिखाई देनेवाले मिले-जुले शब्द वन जाते हैं।

मेरा ख्याल है कि अब हमने वोलने की वहुत सारी भूलो का रहस्य खोज लिया है। यदि हम अपने मन में यह वात स्पष्ट रूप से रखे तो और तरह की गलतियो को भी, जो अब तक विलकुल रहस्यमय मालूम होती है, समझ सकेंगे। उदाहरण के लिए जब कोई नाम विकृत किया जाता है, तब हम यह कल्पना नही कर सकते कि इसमें सदा दो, एक जैसे परन्तु भिन्न, नामो का सघर्ष ही हो रहा है, तो भी दूसरा आशय आसानी से पता चल जाता है। वोलने की गलतियो के अलावा भी नामो को आमतौर से विगाडा जाता है। यह विगाड नाम को किसी हीन वनानेवाली चीज के समान करने की कोशिश होती है जो गाली देने का एक आम तरीका है—शिक्षित लोग जल्दी ही इस कार्य से वचना सीख जाते हैं, पर फिर भी वे इच्छा से इसे नहीं छोडते। कभी यह किसी वहुत घटिया किस्म के मजाक के रूप में हो सकता

है। इस तरह नाम विगाडने का एक वहुत भद्दा और गवारू उदाहरण लीजिए। फ्रैंच गणराज्य के राष्ट्रपति का नाम **पोइंकारे** से विगाडकर **श्विसकारे** कर दिया गया है। यदि यह कल्पना की जाए कि वोलने की गलती से नाम विगडने के पीछे भी कोई ऐसा ही वुरा आशय होता है तो यह कोई दूर की कल्पना नही होगी। अपने विचार को आगे वढाने पर हम यह देखते हैं कि जिन गलतियो का प्रभाव हसी पैदा करनेवाला या वेहूदा होता है, उनकी भी ऐसी ही व्याख्या प्रतीत होती है। पार्लियामेन्ट के सदस्य ने जव 'सैन्ट्रल हैल' के माननीय सदस्य का ज़िक्र किया, तव सदन के गम्भीर वातावरण मे एक ऐसे शव्द के आ पडने से, जो उपहासास्पद और भद्दा प्रतिविम्व पैदा करता है, अचानक ही गडवड हो जाती है। कुछ वुरे लगनेवाले और भद्दे शव्दो के सादृश्य से हमें यह नतीजा निकालना पडता है कि यहा वीच में कोई इस आशय का मानसिक आवेग मौजूद है, "आपको धोखे में आने की ज़रूरत नही। जो कुछ मै कह रहा हूँ, उसका एक शव्द भी मैं कहना नही चाहता। यह आदमी नरक (हैल) में पडे।" यही वात वोलने की उन गलतियो पर लागू होती है जो विलकुल सीधे-सादे हानिरहित शव्दो को अश्लील और भद्दे शव्दो में वदल देती है।

हम जानते हैं कि कुछ लोगो में यह प्रवृत्ति होती है कि वे हानिरहित शव्दो को भद्दे शव्दो में वदल देते हैं और इसमें उन्हे मज़ा आता है। इसे वुद्धि की चतुराई समझा जाता है, और सच तो यह है कि जव कोई आदमी इस तरह की वात सुनता है तव वह तुरन्त यह पूछता है कि मजाक के लिए ऐसा किया गया है, या यो ही, विना चाहे, वोलने की गलती से यह शव्द मुह से निकल गया है।

इस तरह हमें ऐसा मालूम होता है कि हमने गलतियो की समस्या खास तकलीफ उठाए विना हल कर ली है। वे आकस्मिक घटनाएँ नही है, वल्कि गम्भीर मानसिक कार्य है। उनका अपना अर्थ है। वे दो भिन्न आशयो के एक साथ उपस्थित होने से, या शायद यह कहना अधिक ठीक होगा कि एक-दूसरे को रोकने के कारण पैदा होती हैं। पर अव मै खूव समझ सकता हू कि आप मुझपर सवालो और सन्देहो की झडी लगा देना चाहते हैं, हमें अपनी कोशिशो के इस पहले परिणाम पर खुश होने से पहले उनका उत्तर देना होगा, और उन्हे हल करना होगा। निश्चित ही मैं यह नही चाहता कि आपको जल्दवाज़ी मे कोई फैसले मानने को मजवूर करू। हम हर वात पर वारी-वारी शान्ति से विचार करेंगे।

आप क्या कहना चाहते है? यही तो कि क्या इस व्याख्या से वोलने की सव ग़लतियो की समस्या हल हो जाती है, या इससे कुछ थोडी-सी गलतिया ही स्पष्ट होती है? क्या यही विचार दूसरी वहुत तरह की गलतियो, जैसे गलत पढ जाना, गलत लिख जाना, भूल जाना, गलत ढग से काम करना, चीज़ रखकर भूल जाना, आदि, पर भी लागू किया जा सकता है? गलतियो के मानसिक स्वरूप में, थकावट,

है। वे बोलने की गलतियो के कारणो के लिए सुविधा पैदा कर सकते है, परन्तु उनकी असली व्याख्या नही कर सकते। एक क्षण के लिए आप यह सोचिये कि अधिकतर अवस्थाओ में मेरे भाषण में प्रयुक्त शब्द दूसरे शब्दो के साथ ध्वनि-साम्य, उलटे अर्थो के साथ निकट साहचर्य या बहुत प्रचलित पदावलियो के साथ निकट साहचर्य के कारण विकृत नही होते। तो भी दार्शनिक वून्ट के अनुसार, यह कल्पना करनी पड़ती है कि बोलने की गलती तब होती है, जब शरीर की थकावट के कारण साहचर्यो की ओर प्रवृत्ति असली आशय के ऊपर हावी हो जाती है। यह बात बिलकुल तर्कसगत होती, यदि अनुभव इस तथ्य द्वारा इसका खण्डन न करता कि कुछ उदाहरणो में शारीरिक पूर्वकारण[1] और एक और बहुत बड़े वर्ग मे साहचर्यात्मक पूर्वकारण अनुपस्थित होते है।

परन्तु आपका अगला प्रश्न मेरे लिए अधिक दिलचस्प है, अर्थात् किन साधनो से परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियो का निश्चय किया जा सकता है। सम्भवत आपको यह गुमान भी नही होगा कि यह प्रश्न कितना अशुभ है। इस बात से तो आप सहमत होगे कि इन प्रवृत्तियो में से एक प्रवृत्ति, अर्थात् वह प्रवृत्ति, जिसे रोका जाता है या बाधा पहुँचाई जाती है, निश्चित रूप से सदा मौजूद होती है। जो आदमी गलती करता है, वह इसे जानता है और स्वीकार करता है। सन्देह और दुविधा सिर्फ उस दूसरी प्रवृत्ति के विषय में पैदा होती है, जिसे हमने बाधाकारक प्रवृत्ति कहा है। अब आप सुन चुके है, और निश्चित ही भूले नही होगे कि कुछ उदाहरणो में यह दूसरी प्रवृत्ति भी इतनी ही स्पष्ट होती है। यदि हममें इतना साहस हो कि हम उस गलती को उसकी अपनी कहानी खुद कहने दे, तो उस गलती के परिणाम से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। जिस उदाहरण में अध्यक्ष ने अपने आशय का ठीक उलटा कहा था, उसमें यह स्पष्ट है कि वह अधिवेशन का उद्घाटन करना चाहता है, पर यह भी उतना ही स्पष्ट है कि वह इसे बन्द कर देना भी पसन्द करेगा। यह बात इतनी स्पष्ट है कि इसका अर्थ समझाने की आवश्यकता नही। परन्तु जिन उदाहरणो में बाधाकारक प्रवृत्ति मूल आशय को सिर्फ विकृत कर देती है, और स्वय पूरी तरह सामने नही आती, उनमें बाधाकारक प्रवृत्ति को कैसे पहचाना जा सकता है?

एक तरह के उदाहरणो में तो इसका बड़ा निरापद और सरल तरीका है। यह वही तरीका है जिसमे हमने बाधित होने वाली या रोकी जानेवाली प्रवृत्ति को सिद्ध किया था। हम वक्ता से पूछते है, और वह तुरन्त हमे बता देता है। गलती करने के बाद वह स्वय अपने मूल आशय के शब्द बोल देता है **"ओ, इट मे स्टैंड—नो, इट मे टेक अनदर मथ"** नो, इसी तरह वह बाधाकारक प्रवृत्ति का

---

[1] Pre-disposition

भी पता दे सकता है। हम कहते है "पर तुमने पहले **स्टैंड** क्यो कहा ?" वह उत्तर देता है "मै यह कहना चाहता था कि यह **सैड** (बुरा) कारबार है" और उस दूसरे उदाहरण में, जिसमें **रिफिल्ड** कहा गया था, वक्ता आपको बताता है कि पहले मै यह कहना चाहता था कि यह **फिल्दी** (रद्दी) काम है, पर मैने अपने-आपको रोका, और उसकी जगह दूसरे शब्द का प्रयोग किया। यहाँ बाधक प्रवृत्ति की जानकारी भी उतने ही निश्चित रूप से सिद्ध है, जितने निश्चित रूप से बाधित प्रवृत्ति की। मैने जान-बूझ कर ही ऐसी घटनाओ के उदाहरण चुने है, जिनके पैदा होने का या जिनकी व्याख्या का मुझसे या मेरे किसी समर्थक से कोई सम्बन्ध नही है। परन्तु इन दोनो उदाहरणो मे व्याख्या पेश कराने के लिए बीच में कुछ हस्तक्षेप आवश्यक था। वक्ता से यह पूछना था कि उसने गलती क्यो की, और वह इसकी क्या व्याख्या कर सकता है। यदि उससे न पूछते तो वह इसकी व्याख्या की कोशिश न करके इसे यो ही निकल जाने देता, पर पूछने पर उसने उत्तर में वह बात कही जो उसके मन मे सबसे पहले आई, और देखिए, कि वह थोडा-सा हस्तक्षेप और इसका परिणाम मनोविश्लेषण ही है। आगे हम जो भी मनोविश्लेपण-सम्बन्धी जाँच करेगे, वह इसी तरह की होगी।

अच्छा, यदि मै यह अन्दाजा लगाऊँ कि मनोविश्लेपण का सवाल आते ही आपके मन में तुरन्त इसका एक विरोध सिर उठाने लगता है, तो क्या यह मेरी अत्यधिक स्नेहशीलता है ? क्या आपके मन में यह आपत्ति नही उठी कि जिस आदमी ने गलती की थी, उसने-पूछने पर जो उत्तर दिया है, वह पूरी तरह भरोसे-योग्य गवाही नही है ? आप समझते है कि वह स्वभावत आपकी इस प्रार्थना को पूरा करना चाहता है कि वह अपना गलती का अर्थ बताये, और इसलिये वह अपने मन में सबसे पहले आनेवाली बात कह देता है, कि शायद इससे काम चल जाए। इस बात का कोई प्रमाण नही है कि गलती पैदा होने का सचमुच यही कारण था। सम्भव है, यही कारण हो, पर उतना ही सम्भव यह भी है कि यह कारण न हो। उसके मन मे कोई और बात भी हो सकती थी, जो इस प्रश्न का इतना ही अच्छा या इससे भी अच्छा समाधान कर देती।

इससे बडे साफ तौर से यह पता चलता है कि आपके मनमें एक मानसिक तथ्य के प्रति कितना थोडा सम्मान है। कल्पना करो कि किसी व्यक्ति ने किसी पदार्थ का रासायनिक विश्लेपण किया होता, और यह निश्चय किया होता कि इसके एक तत्व का भार इतने मिलीग्राम है। इस तरह आए हुए इस भार से कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते है। क्या आप समझते है कि कोई रसायन शास्त्री कभी यह बात सोचेगा कि ये निष्कर्ष इस आधार पर अविश्वसनीय है कि उस तत्व का कोई और भार भी हो सकता था ! हर कोई इस तथ्य को स्वीकार करता है कि इसका सचमुच यही भार था, और इस तथ्य के आधार पर

बे-फिक्री से आगे निष्कर्ष निकालता है। पर जब किसी मानसिक तथ्य का प्रश्न आता है, जब यह प्रश्न आता है कि पूछने पर उस मनुष्य के मन में यही विचार था, अन्य कोई नही था, तब आप इसे विश्वसनीय नही मानेंगे, और कहेगे कि उसके मन में कोई और विचार भी तो हो सकता था। सचाई यह है कि आपके मन में मानसिक स्वतत्रता की भ्राति है, जिसे आप छोडना नही चाहते। मुझे खेद से कहना पडता है कि इस मामले में मेरा आपके विचारो से तीव्र विरोध है।

अब आप यहाँ से हटकर एक और बात पर अपने मन में प्रतिरोध करेंगे। आप कहेंगे "हम समझते हैं कि मनोविश्लेपण का विशेष कौशल विश्लेषित व्यक्ति से अपनी समस्याओ का हल निकलवा सकता है। अब वह उदाहरण दीजिए जिसमें भोजन के बाद वक्ता अतिथियों से कहता है कि वे अपने अतिथि के स्वास्थ्य के लिए हिकफ=Hiccough (हिचकी लें)। आप कहते हैं कि इस उदाहरण में बाधक प्रवृत्ति है उपहास करना, यह सम्मान करने के आशय की विरोधी है, पर यह आप उस ग़लती को स्वतत्र रूप से देखकर अपनी ओर से उसका अर्थ ही तो लगा रहे हैं। यदि इस उदाहरण में आप गलती करने वाले से प्रश्न करे तो वह आपके इस विचार की पुष्टि नही करेगा कि उसका आशय उपहास या अपमान करना था। इसके विपरीत, वह इसका प्रबल शब्दो में निषेध करेगा। तो उसके इस स्पष्ट निषेध को देखते हुए, आप अपना ऐसा अर्थ छोड क्यो नही देते, जिसे प्रत्यक्ष सिद्ध नही किया जा सकता ?"

हाँ, इस बार आपने कुछ ज़ोरदार सवाल उठाया है। मै अपनी आखो के सामने उस अज्ञात वक्ता का चित्र रख सकता हूँ। सम्भवत वह असली अतिथि का सहायक, या शायद स्वय एक छोटा अध्यापक है, और भविष्य के सुनहले स्वप्न साकार करने की आशा रखने वाला नौजवान है। मै उससे आग्रहपूर्वक यह पूछूगा कि क्या उसे निश्चित रूप से अपने अन्दर ऐसी भावना नही दिखाई दी जो अपने उस अफसर का सम्मान करने की प्रवृत्ति के विरुद्ध हो। इस पर बडा तमाशा हो जाता है। वह धीरज खोकर मुझपर एकाएक बौखला पडता है "देखो भई, इस जिरहबाज़ी को खत्म करो, नही तो मुझसे बुरा कोई नही होगा! तुम अपने सन्देहो से मेरा भविष्य बिगाड दोगे। मैंने तो एन्स्टोसेन (Anstossen) के स्थान पर आफस्टोसन (Aufstossen) ही कहा था, क्योकि मै इससे पहले दो बार ऑफ (Auf) कह चुका। यह वही चीज़ है जिसे मैरिंगर निरर्थकावृत्ति कहता है, और इसमें कोई छिपी हुई बात नही है। समझ गये ?" हू! यह विचित्र प्रतिक्रिया है! सचमुच प्रबल खण्डन है! मै समझता हूँ कि उस नौजवान के साथ और कुछ बात नहीं की जा सकती। पर अपने मन में मै सोचता हूँ कि उसने यह जतलाने में बडी प्रबल व्यक्तिगत दिलचस्पी दिखाई है कि उसकी गलती का और कुछ अर्थ नहीं है। शायद आप भी इस बात से तो सहमत होगे कि एक निरी सैद्धान्तिक

जाच-पडताल में उसे इतना गवारपन दिखाने का कोई हक नही था। पर आप सोचेंगे कि आखिरकार उसे यह अवश्य पता होगा कि वह क्या कहना चाहता था, और क्या नही।

तो उसे यह अवश्य पता होगा ? यह शायद अब भी विवादास्पद है।

अब आप सोच रहे हैं कि आपने मुझे फास लिया। आप कह रहे हैं "आप-की यही तो रीति है। जब गलती करने वाला आदमी ऐसी व्याख्या करता है, जो आपके विचारो के अनुकूल बैठती है, तब आप उसे उस विषय पर असली फैसला करने मे समर्थ बता देते है। वह स्वय जो ऐसा कहता है। पर यदि उसकी कही हुई बात आपके विषय के अनुकूल नही मालूम होती तो आप कह देते हैं कि उसके कथन का कोई महत्व नही, और उसपर भरोसा नही किया जा सकता।"

बिलकुल यही बात है। पर इसी तरह की अजीब प्रक्रिया का एक और उदा-हरण मैं आपको दे सकता हू। जब कोई अभियुक्त अपना अपराध स्वीकार कर लेता है, तब जज उसका विश्वास कर लेता है, पर जब वह उसे अस्वीकार करता है, तब जज उसका विश्वास नही करता। यदि ऐसा न होता तो कानून चल ही नही सकता था, और आपको मानना होगा कि कभी-कभी गलत फैसले होने के बावजूद कुल मिलाकर कानून-प्रणाली अच्छी तरह कार्य कर रही है।

"पर आप क्या जज हैं, और गलती करने वाला क्या आपके सामने अभियुक्त है ? क्या बोलने में गलती कर जाना जुर्म है ?"

शायद हमें इस तुलना को भी अस्वीकार करने की आवश्यकता नही। पर अब यह देखिए कि इधर से हानिरहित दिखाई देने वाली गलतियो की समस्या की जाच-पडताल में भी हम कितने गहरे मतभेदो पर पहुच गए हैं—इस समय हम यह जरा भी नही जानते कि इन मतभेदो को कैसे सुलझाया जाए। मेरा यह सुझाव है कि हमे जज और अभियुक्त के सादृश्य के आधार पर थोडी देर के लिए एक समझौता कर लेना चाहिए। मैं समझता हू कि आप मेरी इतनी बात तो स्वीकार करेंगे कि यदि विश्लेषण के अधीन व्यक्ति किसी गलती का एक अर्थ स्वीकार करता है तो उसमे कोई शक नही किया जा सकता। इधर मैं यह स्वीकार किए लेता हू कि यदि विश्लेषण के अधीन व्यक्ति स्वय जानकारी देने से इकार कर दे तो जिस अर्थ के होने की हम आशका करते है, उसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नही मिल सकता, और यह बात नि सदेह तब भी लागू होती है जब वह व्यक्ति हमे जान-कारी देने के लिए स्वय मौजूद नही है। तब कानूनी कार्यवाही की तरह यहा भी किसी फैसले पर पहुचने के लिए हमे सकेतो का ही सहारा रह जाता है, और इनके आधार पर किए गए फैसले की सचाई कभी कम और कभी अधिक सभाव्य होती है। अदालत में, व्यावहारिक कारणो से परिस्थिति सम्बन्धी गवाही के आधार पर भी अपराध की घोषणा करनी पडती है। यहा ऐसी कोई आवश्यकता

नही है, पर यहा हमें ऐसी गवाही पर विचार न करने के लिए कोई मजबूरी भी नही है। यह मानना गलत है कि निश्चयात्मक रूप से सिद्ध की गई बातो को ही विज्ञान कहते हैं,और यह कहना भी अनुचित है कि ऐसी ही बातो को विज्ञान कहना चाहिए। यह माग वे ही लोग करते हैं जो किसी न किसी रूप में सत्ता की लालसा रखते हैं, और धार्मिक सिद्धातो के स्थान पर कोई और चीज रखने की आवश्यकता महसूस करते हैं, चाहे वे वैज्ञानिक सिद्धात ही क्यो न हो। विज्ञान के सिद्धातो में बहुत थोडे अकाट्य कथन हैं। इनमे मुख्यत ऐसे कथन ही हैं जिनके सत्य होने की सम्भावना कही कम और कही अधिक है। इन बातो से, जो निश्चिनता के निकट होती है, सन्तुष्ट हो जाने का सामर्थ्य, और अन्तिम रूप से पुष्टि न होने पर भी रचनात्मक कार्य जारी रखने की योग्यता ही असल में मन की मनोवैज्ञानिक आदत के चिह्न हैं।

पर जहा विश्लेषण के अधीन व्यक्ति गलती का अर्थ स्पष्ट करने के लिए कुछ नही कहता, वहा हमें अपना अर्थ निकालने के लिए कहा से शुरू करना होगा, और हमें अपने प्रमाण के लिए सकेत कहा मिलेंगे ? वे अनेक स्थानो से मिल जाएगे। प्रथम तो, गलती से न पैदा होने वाली ऐसी ही घटनाओ के साथ सादृश्य से, जैसे कि तब, जब हम यह कहते हैं कि गलती से नाम बिगाडने के पीछे मज़ाक उडाने का वही आशय होता है जो जान-बूझकर नाम बिगाडने में होता है, और फिर उस मानसिक स्थिति से, जिसमें वह गलती हुई, गलती करने वाले व्यक्ति के चरित्र के बारे में हमारे ज्ञान से, और गलती से पहले उसमें जो भावनाए प्रबल थी, उनकी जानकारी से, क्योकि यह गलती उनकी अनुक्रिया[1] मात्र हो सकती है। साधारणतया यही होता है कि हम सामान्य सिद्धातो के अनुसार गलती का अर्थ लगाते हैं, और शुरू में यह एक तुक्का या कल्पना मात्र होता है, यह एक प्रस्तावित समाधान होता है, जिसके लिए प्रमाण बाद में मानसिक स्थिति की जाच द्वारा खोजना है। कभी-कभी अपने अनुमान की पुष्टि प्राप्त होने से पहले हमें और घटनाओ की प्रतीक्षा करनी पडती है जो, यह कहा जा सकता है कि, इस गलती के कारण अच्छी तरह प्रकाश में न आ सकी।

मैं बोलने की गलतियो के क्षेत्र में बधा रहकर आपको आसानी से इसका प्रमाण नही दे सकता, हालाकि यहा भी कुछ अच्छे उदाहरण मेरे पास हैं। जिस नौजवान ने उस महिला को इन्सॉर्ट (insort) करने का प्रस्ताव किया था, वह असल में बहुत शर्मीला है। जिस महिला का पति वही खा-पी सकता है जो कुछ वह महिला चाहे, वह उन दृढ प्रबन्ध वाली स्त्रियो में है, जो घर की रानी के रूप में निरकुश शासन करती है, या नीचे वाला उदाहरण लीजिए एक क्लब की एक साधारण

१ Response

बैठक में एक युवक सदस्य ने एक भाषण मे ज़बरदस्त आलोचना की, जिसके बीच में उसने सोसायटी के सदस्यो को 'कमेटी के लेंडर' (अर्थात् कर्ज देनेवाले महाजन) कहा, जो शायद कमेटी के **मेम्बर** के बदले कहा गया प्रतीत होता है। हमें यह अन्दाज़ करना चाहिए कि उसकी आलोचना के पीछे कोई ऐसी बाधाकारक प्रवृत्ति प्रबल थी, जो स्वय किसी रूप में **महाजनी** अर्थात् सूदखोरी के विचार से सम्बन्ध रखती थी। सचाई तो यह है कि हमें एक व्यक्ति ने सूचित किया है कि इस आलोचक वक्ता को सदा धन की कठिनाई रहती है, और वह उस समय भी वस्तुत धन-सग्रह की कोशिश कर रहा था। इसलिए असल में तो बाधाकारक प्रवृत्ति इस विचार के रूप में वहा आ जाती है, "जोर-शोर से विरोध न करना, ये ही वे लोग हैं जिनसे तुम धन उधार लेना चाहते हो।"

यदि मैं थोडी देर के लिए दूसरी तरह की गलतियो के क्षेत्र में चल पडू, तो ऐसी परिस्थितियो सम्बन्धी गवाही के बहुत-से उदाहरण मैं आपको दे सकता हू।

यदि कोई आदमी सुपरिचित व्यक्तिवाचक नामो को भूल जाता है, और उसे कोशिश करके भी उन्हे याद रखने में कठिनाई होती है, तो यह अनुमान करना मुश्किल नही कि उसके मन मे उस नाम वाले व्यक्ति के प्रति कोई बात है, और वह उसके बारे में सोचना पसन्द नही करता। इस बात को ध्यान में रखते हुए मानसिक स्थिति सम्बन्धी निम्नलिखित मामलो पर विचार कीजिए जिनमे इस तरह की गलती की गई थी।

किन्ही **क** महोदय का किसी महिला से प्रेम हो गया, पर उसने इनके प्रति कोई प्रेम नही दिखाया, और कुछ ही समय बाद किन्ही **ख** महोदय से विवाह कर लिया। यद्यपि **क** महोदय पहले ही से **ख** महोदय को जानते थे और उनके साथ इनका कारबार भी होता था, पर अब वे बार-बार **ख** महोदय का नाम भूल जाते हैं, और जब उन्हे वह नाम लिखने की जरूरत होती है, तब वे बहुधा किसी दूसरे से पूछते हैं[1]। साफ बात है कि **क** महोदय अपने भाग्यशाली प्रतिद्वन्द्वी के विषय में अपना सारा ज्ञान नष्ट करना चाहते हैं।

एक और उदाहरण एक महिला एक डाक्टर से, अपनी और डाक्टर की परिचित एक महिला के विषय में, उसका अविवाहित अवस्था का नाम लेकर पूछती है। वह उसका विवाहित अवस्था का नाम भूल गई है। वह यह स्वीकार करती है कि मैंने उस विवाह पर बहुत ऐतराज किया था और उसका पति मुझे बेहद नापसन्द है।[2]

बाद में नामो के भूलने के विषय मे दूसरे प्रसगो में हमें बहुत कुछ कहना है। इस समय हमे मुख्यत उस 'मानसिक स्थिति' से मतलब है जिसमे स्मृति की यह

---

१ C G Jung से। २ A A Brill से।

नही है, पर यहा हमें ऐसी गवाही पर विचार न करने के लिए कोई मजबूरी भी नही है। यह मानना गलत है कि निश्चयात्मक रूप से सिद्ध की गई बातो को ही विज्ञान कहते है,और यह कहना भी अनुचित है कि ऐसी ही बातो को विज्ञान कहना चाहिए। यह माग वे ही लोग करते है जो किसी न किसी रूप में सत्ता की लालसा रखते है, और धार्मिक सिद्धातो के स्थान पर कोई और चीज रखने की आवश्यकता महसूस करते है, चाहे वे वैज्ञानिक सिद्धात ही क्यो न हो। विज्ञान के सिद्धातो में बहुत थोडे अकाट्य कथन है। इनमे मुख्यत ऐसे कथन ही है जिनके सत्य होने की सम्भावना कही कम और कही अधिक है। इन बातो से, जो निश्चितता के निकट होती है, सन्तुष्ट हो जाने का सामर्थ्य, और अन्तिम रूप से पुष्टि न होने पर भी रचनात्मक कार्य जारी रखने की योग्यता ही असल मे मन की मनोवैज्ञानिक आदत के चिह्न है।

पर जहा विश्लेषण के अधीन व्यक्ति गलती का अर्थ स्पष्ट करने के लिए कुछ नही कहता, वहा हमें अपना अर्थ निकालने के लिए कहा से शुरू करना होगा, और हमें अपने प्रमाण के लिए सकेत कहा मिलेगे? वे अनेक स्थानो से मिल जाएगे। प्रथम तो, गलती से न पैदा होने वाली ऐसी ही घटनाओ के साथ सादृश्य से, जैसे कि तब, जब हम यह कहते है कि गलती से नाम बिगाडने के पीछे मजाक उडाने का वही आशय होता है जो जान-बूझकर नाम बिगाडने मे होता है, और फिर उस मानसिक स्थिति से, जिसमे वह गलती हुई, गलती करने वाले व्यक्ति के चरित्र के बारे में हमारे ज्ञान से, और गलती से पहले उसमे जो भावनाए प्रबल थी, उनकी जानकारी से, क्योकि यह गलती उनकी अनुक्रिया[1] मात्र हो सकती है। साधारणतया यही होता है कि हम सामान्य सिद्धातो के अनुसार गलती का अर्थ लगाते है, और शुरू मे यह एक तुक्का या कल्पना मात्र होता है, यह एक प्रस्तावित समाधान होता है, जिसके लिए प्रमाण बाद मे मानसिक स्थिति की जाच द्वारा खोजना है। कभी-कभी अपने अनुमान की पुष्टि प्राप्त होने से पहले हमें और घटनाओ की प्रतीक्षा करनी पडती है जो, यह कहा जा सकता है कि, इस गलती के कारण अच्छी तरह प्रकाश में न आ सकी।

मै बोलने की गलतियो के क्षेत्र मे बधा रहकर आपको आसानी से इसका प्रमाण नही दे सकता, हालाकि यहा भी कुछ अच्छे उदाहरण मेरे पास है। जिस नौजवान ने उन महिला को इन्सॉर्ट (insort) करने का प्रस्ताव किया था, वह असल मे बहुत शर्मीला है। जिस महिला का पति वही खा-पी सकता है जो कुछ वह महिला चाहे, वह उन दृढ प्रबन्ध वाली स्त्रियो मे है, जो घर की रानी के रूप मे निरकुश शासन करती है, या नीचे वाला उदाहरण लीजिए एक क्लब की एक साधारण

---

१ Response

बैठक में एक युवक सदस्य ने एक भाषण मे ज़वरदस्त आलोचना की, जिसके वीच में उसने सोसायटी के सदस्यो को 'कमेटी के लेंडर' (अर्थात् कर्ज देनेवाले महाजन) कहा, जो शायद कमेटी के मेम्बर के बदले कहा गया प्रतीत होता है। हमें यह अन्दाज़ करना चाहिए कि उसकी आलोचना के पीछे कोई ऐसी वाधाकारक प्रवृत्ति प्रवल थी, जो स्वय किसी रूप में महाजनी अर्थात् सूदखोरी के विचार से सम्वन्ध रखती थी। सचाई तो यह है कि हमें एक व्यक्ति ने सूचित किया है कि इस आलोचक वक्ता को सदा धन की कठिनाई रहती है, और वह उस समय भी वस्तुत धन-सग्रह की कोशिश कर रहा था। इसलिए असल में तो वाधाकारक प्रवृत्ति इस विचार के रूप मे वहा आ जाती है, "जोर-शोर से विरोध न करना, ये ही वे लोग है जिनसे तुम धन उधार लेना चाहते हो।"

यदि मै थोडी देर के लिए दूसरी तरह की गलतियो के क्षेत्र मे चल पडू, तो ऐसी परिस्थितियो सम्वन्धी गवाही के वहुत-से उदाहरण मै आपको दे सकता हूं।

यदि कोई आदमी सुपरिचित व्यक्तिवाचक नामो को भूल जाता है, और उसे कोशिश करके भी उन्हे याद रखने में कठिनाई होती है, तो यह अनुमान करना मुश्किल नही कि उसके मन में उस नाम वाले व्यक्ति के प्रति कोई वात है, और वह उसके वारे मे सोचना पसन्द नही करता। इस वात को ध्यान में रखते हुए मानसिक स्थिति सम्वन्धी निम्नलिखित मामलो पर विचार कीजिए जिनमें इस तरह की गलती की गई थी।

किन्ही क महोदय का किसी महिला से प्रेम हो गया, पर उसने इनके प्रति कोई प्रेम नही दिखाया, और कुछ ही समय वाद किन्ही ख महोदय से विवाह कर लिया। यद्यपि क महोदय पहले ही से ख महोदय को जानते थे और उनके साथ इनका कारवार भी होता था, पर अव वे वार-वार ख महोदय का नाम भूल जाते है, और जव उन्हे वह नाम लिखने की ज़रूरत होती है, तव वे वहुधा किसी दूसरे से पूछते है[1]। साफ वात है कि क महोदय अपने भाग्यशाली प्रतिद्वन्द्वी के विपय मे अपना सारा ज्ञान नष्ट करना चाहते है।

एक और उदाहरण . एक महिला एक डाक्टर से, अपनी और डाक्टर की परिचित एक महिला के विपय में, उसका अविवाहित अवस्था का नाम लेकर पूछती है। वह उसका विवाहित अवस्था का नाम भूल गई है। वह यह स्वीकार करती है कि मैने उस विवाह पर वहुत ऐतराज किया था और उसका पति मुझे वेहद नापसन्द है।[2]

वाद में नामो के भूलने के विपय मे दूसरे प्रसगो में हमें वहुत कुछ कहना है। इस समय हमे मुख्यत. उस 'मानसिक स्थिति' से मतलव है जिसमे स्मृति की यह

---

१ C G Jung से। २ A A Brill से।

गलती होती है।

साधारणतया यह कहा जा सकता है कि सकल्पो या पक्के इरादो को मनुष्य इसलिए भूल जाता है कि उसके मन में उन सकल्पो को पूरा करने की विरोधी भावना की धारा वह रही होती है। किन्तु यह हमारा, मनोविश्लेषको का, ही विचार नही है। यह हर आदमी का अपने रोजाना के कारवार में होने वाला सामान्य रवैया है, जिसे वह सिद्धान्त के रूप में ही स्वीकार करता है। जब किसी आश्रित का आश्रयदाता उसकी प्रार्थना भूल जाने के कारण क्षमा मागता है, तव आश्रित व्यक्ति ऐसी क्षमा-प्रार्थना से शान्त नही होता। वह तुरन्त यह सोचता है, "ज़ाहिर है कि इस क्षमा-प्रार्थना का कोई मतलव नही। उसने वायदा किया था, पर अव वह उसे पूरा नही करना चाहता।"

इसलिए जीवन में भी कुछ प्रमगो में भूलने की जो आलोचना की जाती है, और इन ग़लतियो के वारे में आम प्रचलित विचार और मनोविश्लेपण वाले विचार का अन्तर मिट जाता है। कल्पना करो कि कोई गृहलक्ष्मी किसी अतिथि का इन शब्दो में स्वागत करती है, "ओहो, क्या आपको आज आना था? मैं तो विल्कुल भूल गई थी कि मैंने आपसे आने के लिए कहा था!" या कल्पना करें कि कोई नवयुवक अपनी प्रेयसी के सामने यह स्वीकार करता है कि हमने पिछली वार आगे मिलने के वारे में जो वात तय की थी, उसे मै विल्कुल भूल गया था। वह कभी यह बात स्वीकार नही करेगा, वल्कि वह फौरन इधर-उधर की अजीवोगरीव सम्भव-असम्भव रुकावटें घडकर वता देगा, जिनके कारण वह नही आ सका, और उसके लिए उस दिन से आजतक अपनी प्रेयसी को सूचना देना असम्भव हो गया। हम सव जानते हैं कि फौज में भूल जाने का वहाना विल्कुल वेकार समझा जाता है, और यह किसीको सजा से नही वचा सकता। यह पद्धति उचित मानी जाती है। यहा हर कोई अनायास सहमत है कि किसी विशेप गलती का कुछ अर्थ है, और वह अर्थ क्या है। वे लोग अपनी वात पर दृढ रहकर दूसरी गलतियो तक भी अपनी सूक्ष्म दृप्टि क्यो नही पहुचा लेते, और फिर इन्हे क्यो खुलेआम स्वीकार नही कर लेते? स्वभावत इसका भी एक उत्तर है।

यदि सामान्य लोगो के मन में पक्के इरादो को भूल जाने का अर्थ इतना असंदिग्ध रूप मे जमा हुआ है, तो आपको यह देखकर कुछ भी आश्चर्य न होगा कि साहित्य-लेखक ऐसी भूलों का इसी तरह के अर्थ में उपयोग करते हैं। आपमें से जिन लोगो ने शॉ का **सीजर एन्ड क्लियोपाट्रा** देखा या पढा है, उन्हे याद होगा कि अन्तिम दृश्य में जाते समय सीजर के मन में यह भावना घूम रही है कि वह कुछ और करना चाहता था जिसे इस समय वह भूल गया है। अन्त में उसे याद आ जाता है कि वह क्या वात थी वह क्लियोपाट्रा से अलविदा कहना चाहता था।

इस छोटे-से कौशल से लेखक ने सीजर मे एक वडप्पन की भावना, जो उसमें नही थी और जिसकी उसने कभी आकाक्षा भी नही की थी,दिखाने का प्रयत्न किया है। इतिहास से आप जान सकते हैं कि सीजर ने यह व्यवस्था की थी कि क्लियोपाट्रा उसके पीछे-पीछे रोम आ जाए, और कि वह सीजर की हत्या होने के समय अपने वच्चे के साथ वही रह रही थी। हत्या के वाद वह शहर से भाग गई।

पक्के इरादो को भूल जाने के उदाहरण आम तौर से इतने स्पष्ट होते हैं कि हमारे प्रयोजन के लिए वे खास उपयोगी नहीं है। हमारा प्रयोजन तो गलती के अर्थ के मानसिक स्थिति सम्वन्धी सकेत ढूढना है। इसलिए अव हम गलती के एक विशेष रूप से एक संदिग्ध और अस्पष्ट रूप पर, अर्थात् वस्तुए खो देने या गलत जगह पर रख देने पर, विचार करेंगे। यह वात तो निश्चय ही आपको अविश्वसनीय मालूम होगी कि वस्तुए खोने में, जिससे प्राय इतनी परेशानी और कष्ट उठाना पडता है, खोने वाले व्यक्ति का अपना कोई प्रयोजन हो सकता है, पर इस तरह के असख्य उदाहरण हैं . एक नौजवान ने एक पेन्सिल खो दी, जो उसे वहुत पसन्द थी। कुछ ही दिन पहले उसे अपने वहनोई का एक पत्र मिला था, जिसके अन्त में ये शव्द थे, "मेरे पास न तो समय है और न यह इच्छा ही है कि इस समय तुम्हारे निकम्मेपन और आवारागर्दी को वढावा दूं।"[1] वह पेन्सिल उसे उसके वहनोई ने भेट में दी थी। यदि यह सयोग न होता तो निश्चय ही हम यह नहीं कह सकते थे कि इस खोने का अर्थ यह है कि उसके मन में इस उपहार से छुटकारा पाने की वात थी। इसी तरह के और वहुत-से उदाहरण हैं। मनुष्य तव अपनी वस्तुए खो देता है, जव उसका वस्तु देने वाले से झगडा हो गया हो, या वह उसका नाम अपने मन मे न आने देना चाहता हो, या फिर जव वह उन वस्तुओ से ऊव गया हो, और कोई दूसरी, और इससे अच्छी, चीज़ लेने के लिए वहाना चाहता हो। वस्तुओ को गिराने, तोडने और वर्वाद करने से वस्तु के विपय में निश्चित रूप से ऐसा ही प्रयोजन सिद्ध होता है। क्या इस वात को आकस्मिक माना जा सकता है कि एक वालक अपने जन्मदिन से ठीक पहले अपनी वस्तुए, उदाहरण के लिए अपनी घडी और वस्ता, खो देता है या वर्वाद कर लेता है ?

जिस आदमी को कभी यह परेशानी अनुभव हुई है कि उसकी अपने हाथ से रखी हुई वस्तु उसके हाथ नही आई, वह निश्चित रूप से कभी यह मानने को तैयार नही होगा कि ऐसा करने में उसका कोई आशय हो सकता था, परन्तु फिर भी ऐसे उदाहरण दुर्लभ नही जिनमें कोई चीज़ कही रख देने के समय की परिस्थितियो से यह संकेत मिलता है कि वस्तु को कुछ समय, या सदा, के लिए हटा देने की प्रवृत्ति मन में मौजूद थी। शायद इसका सवसे अच्छा उदाहरण यह है ·

---

१ B Dattner से।

एक नौजवान ने मुझे यह किस्सा वताया, "कुछ वर्ष पहले मुझमें और मेरी पत्नी में मनमुटाव था, मैं उसे विलकुल प्यारहीन समझता था, और यद्यपि म उसके श्रेष्ठ गुणो को खुशी से स्वीकार करता था, पर तो भी हम बिना प्रेम के साथ रहते थे। एक दिन घूमकर लौटते हुए वह मेरे लिए एक पुस्तक लाई जो उसने मेरे लिए यह सोचकर खरीदी थी, कि मुझे वह पसन्द आएगी। उसने मेरा थोडा-सा ध्यान रखा, इसके लिए मैंने उसे धन्यवाद दिया, वह पुस्तक पढने का वचन दिया और उसे अपनी चीजो में रख दिया, और फिर वह कभी मेरे हाथ न आई। महीनो गुजर गए और कभी-कभी मैंने उस पुस्तक को पढने की वात सोची, पर उसे ढूढने की सव कोशिशें वेकार गई। छ महीने बाद मेरी प्यारी मा, जो कुछ दूरी पर रहती थी, वीमार पडी। उसकी हालत खराब हो गई, और मेरी पत्नी अपनी सास की सेवा करने के लिए चली गई। बीमारी गम्भीर होने से मेरी पत्नी को अपने श्रेष्ठ गुण दिखाने का मौका मिला। एक दिन शाम को मैं अपनी पत्नी के प्रति उत्साह और कृतज्ञता से भरा हुआ घर आया। मैं अपनी मेज़ के पास पहुचा, और मैंने बिना किसी निश्चित आशय के, वल्कि एक तरह की नीद भरी निश्चितता से उसकी एक दराज़ खोली और वहा मेरे सामने वही खोई हुई पुस्तक रखी थी जिसे मैं इतनी वार तलाश कर चुका था।"

प्रवर्त्तक अथवा प्रेरक कारण[1] के लुप्त हो जाने पर, रखकर भूली हुई पुस्तक खोजने की अयोग्यता भी लुप्त हो गई।

मैं इस तरह के सैंकडो उदाहरण दे सकता हू पर अब ये नही दूगा। मेरी **साइकोपैथोलोजी ऑफ एवरी डे लाइफ** (Psycho-pathology of Everyday Life) (जो पहले १९०१ में प्रकाशित हुई थी) में गलतियो के अध्ययन के लिए वहुत सारे उदाहरण मिलेंगे। इन सब उदाहरणो से वही वात वार-वार सामने आती है। उनसे आपको यह सम्भाव्य मालूम होने लगता है कि भूलो का कुछ अर्थ होता है, और वे आपको यह वताती हैं कि साथ की परिस्थितियो में किस तरह अर्थ का अनुमान या पुष्टि की जा सकती है। आज मैं अधिक विस्तृत वातो में नही जा रहा क्योकि यहा हमारा आशय सिर्फ इतना था कि हम मनोविश्लेपण का परिचय प्राप्त करने की दृष्टि से इन घटनाओ पर विचार करें। सिर्फ दो घटना-समूह और हैं जिनपर मुझे अभी कुछ कहना है—सचित और मिली-जुली गलतिया, और वाद की घटनाओ से हमारी व्याख्याओ की पुष्टि।

सचित और मिली-जुली गलतिया निश्चित ही सवसे वढिया किस्म की गलतिया हैं। यदि हमें सिर्फ इतना ही सिद्ध करना होता कि गलतियो का कुछ अर्थ होता है, तो हम शुरू में उतने तक ही रहते, क्योकि उनका कुछ अर्थ होने की वात वुद्धू से

---

१ Motive

बुद्धू भी समझ सकता है, और बड़े तीव्र बुद्धि आलोचक को भी उसे मानना पडता है। घटनाओं के दोहराये जाने से एक ऐसे आग्रह का पता चलता है जो कभी अकस्मात् या अचानक नही हो सकता, बल्कि जिसके पीछे कोई विचार होने की बात ही जचती है। फिर, एक तरह की भूल के स्थान पर दूसरी तरह की भूल होने से हमें यह पता चलता है कि गलती में सबसे महत्वपूर्ण और आवश्यक तत्व क्या है, और वह न तो गलती का बाह्य रूप है, और न वह साधन है जिसके द्वारा यह प्रकट होता है, बल्कि वह **प्रवृत्ति** है जो इसका उपयोग करती है, और बडे भिन्न-भिन्न तरीको से अपना लक्ष्य सिद्ध कर सकती है। इस प्रकार मैं आपको बार-बार भूलने का एक उदाहरण दूगा। अर्नेस्ट जोन्स लिखता है, "मैंने एक बार एक पत्र किसी अज्ञात कारण से कई दिन तक अपनी मेज पर पडा रहने दिया। अन्त में मैंने इसे डाक में डालने का निश्चय किया, पर यह मृत पत्र कार्यालय से लौटकर आ गया, क्योकि मैं इसपर पता लिखना भूल गया था। इसपर पता लिखने के बाद मैं इसे डाक में डालने गया, पर इस बार टिकट लगाना भूल गया। अब मुझे अपने मन में यह मानना पडा कि असल में मैं उस पत्र को बिल्कुल भेजना ही नही चाहता था।"

दूसरे उदाहरण में, भूल से कोई चीज़ उठा लेना और उसे कही रखकर भूल जाना, ये दो बातें जुड़ी हुई हैं। एक महिला अपने बहनोई के साथ, जो एक प्रसिद्ध कलाकार था, रोम गई। उसका रोम में रहने वाले जर्मनो ने बडा स्वागत किया, और उसे भेंट में, और वस्तुओ के साथ, एक पुराना सोने का तमगा भी दिया। उस महिला को इस बात से बडी परेशानी हुई कि उसके बहनोई ने उस बढिया चीज़ को बहुत ज्यादा पसन्द नही किया। अपनी बहिन के आ जाने के बाद वह स्वदेश लौट गई, और वहा अपना सामान खोलने पर उसने देखा कि वह उस तमगे को अपने साथ ले आई थी—कैसे ले आई थी, यह उसे पता नही था। उसने तुरन्त अपने बहनोई को पत्र लिखा कि अगले दिन मै वह चुराई हुई वस्तु वापस भेज दूगी। पर अगले दिन वह तमगा ऐसी चतुराई से कही रखकर भुला दिया गया कि वह हाथ ही नही आ सका, और वापस नही किया जा सका, और तब उस महिला के मन में यह बात आनी शुरू हुई कि उसकी अन्यमनस्कता, अर्थात् ध्यान कही और होने, का कुछ अर्थ था, और वह यह था कि वह उस कलाकृति को अपने ही पास रखना चाहती थी।[1]

भुलक्कडपन और गलती के मिल जाने का एक उदाहरण मैं आपको पहले दे चुका हूं, जिसमें एक आदमी किसी सभा का नियत समय भूल जाता है, और दूसरी बार, जब वह इसे न भूलने का पक्का इरादा कर लेता है, तब वह नियत समय के बाद पहुंचता है। बिलकुल इसी तरह का एक उदाहरण मुझे एक मित्र ने, जो

---

१ R Reitler से।

साहित्य और विज्ञान का विद्वान् है, अपने निजी अनुभव से बताया था। उसने कहा, "कुछ वर्ष पहले मैंने एक साहित्यिक समाज की परिषद के लिए चुना जाना स्वीकार कर लिया, क्योंकि मुझे यह आशा थी कि किसी समय मेरे लिए वह समाज इस तरह उपयोगी हो सकता है कि वह मेरा नाटक खेलने का प्रवन्ध कर दे, और बहुत ही दिलचस्पी न होते हुए भी मैं नियमित रूप से हर शुक्रवार उसकी बैठक में जाया करता था। कुछ महीने पहले मुझे यह आश्वासन मिल गया कि मेरा नाटक फ में एक थियेटर में खेला जाएगा और तब से सदा ऐसा हुआ है कि मैं उस समाज की बैठको में जाना **भूल जाता** हू। जब मैंने इस विषय में आपके लेख पढे, तब मुझे अपनी इस क्षुद्रता पर ग्लानि हुई कि अब इन लोगो को अपने लिए उपयोगी न जानकर मैंने बैठको में जाना छोड दिया है, और मैंने पक्का निश्चय कर लिया कि अगले शुक्रवार को मैं किसी भी सूरत में नही भूलूगा। मैं अपने इरादे को याद करता रहा, और अन्त में मैंने उसे पूरा किया, और मैं सभा भवन के दरवाजे पर जा पहुचा। मैंने आश्चर्य से देखा कि दरवाजा बन्द था, और बैठक पहले ही खत्म हो चुकी थी। मैंने सप्ताह के दिन के बारे में भूलकर डाली थी, और उस दिन शनिवार था।"

इस तरह के उदाहरण बहुत-से इकट्ठे किए जा सकते है, पर अब मैं आगे चलूगा और इनके बदले आपको उन उदाहरणो पर विचार करने का मौका दूगा जिनमें अर्थ की पुष्टि भविष्य मे होने की प्रतीक्षा करनी पडती है।

इन उदाहरणो में मुख्य शर्त, जैसी हमें आशा भी करनी चाहिए, यह है कि उस समय मानसिक स्थिति पता नही है, या पता नही लगाई जा सकती। इसलिए उस समय हमारा अर्थ एक कल्पना मात्र है, जिसे हम स्वय भी बहुत अधिक महत्व नही देंगे, परन्तु बाद में कोई ऐसी बात हो जाती है जिससे हमें पता चलता है कि हमने जो अर्थ पहले समझा था, वह कितना उचित था। एक बार मैं एक तरुण विवाहित दम्पति का अतिथि बना। तरुण पत्नी ने हसते हुए अपना हाल का यह अनुभव सुनाया कि सुहागरात या हनीमून से लौटने के अगले दिन मैंने अपनी बहिन को बुलाया था, और पहले की तरह उसके साथ सामान खरीदने बाजार गई थी, और मेरा पति अपने कारबार के लिए चला गया था। एकाएक मैंने सडक के दूसरी ओर एक आदमी देखा और अपनी बहिन को दिखाते हुए कहा, "देखो, वे फ महाशय जा रहे हैं।" वह यह भूल गई थी कि यह आदमी कुछ सप्ताह पहले उसका पति बन चुका था। यह किस्सा सुनकर मैं काप गया, पर मुझे भीतरी बात का अनुमान करने का साहस न हुआ। कई वर्ष बाद यह छोटी-सी घटना फिर मेरे मन में उस समय आई जब उस विवाह का बहुत दु खद अन्त हो चुका था।

मेडर ने एक ऐसी महिला की कहानी बताई जो विवाह से पहले दिन अपनी विवाह की पोशाक की ट्राई देना भूल गई थी, जिससे दर्जी बडा निराश हुआ था,

और महिला को शाम को वहुत देर से इसकी याद आई। उसने इस वात का सम्वन्ध इस तथ्य से जोडा है कि विवाह के कुछ ही समय वाद उसके पति ने उसे तलाक दे दिया। मै एक ऐसी स्त्री को जानता हू जिसका अव तो अपने पति से तलाक हो चुका है, पर जो अपने रुपये-पैसो के मामलो में वहुत वार अपने अविवाहित अवस्था वाले नाम से ही कागजात पर हस्ताक्षर किया करती थी, यद्यपि उसने इसके वहुत वर्ष वाद अपना कुमारावस्था का नाम असल में अपनाया। मैं कुछ और ऐसी स्त्रियो को भी जानता हू जिनके विवाह की अगूठिया सुहागरात के दिनो में खो गई और यह भी जानता हू कि विवाह होने तक की वातें इस घटना के पीछे थी। अव एक और विशेप उदाहरण लीजिए, जिसका अत सुखद हुआ। एक प्रसिद्ध जर्मन रसायन-शास्त्री के विपय में कहा जाता है कि उसका विवाह इस कारण कभी न हो सका क्योकि वह सस्कार का समय भूल जाता था, और चर्च पहुचने के वजाय प्रयोगशाला पहुच जाता था। वह समझदार था, इसलिए एक वार प्रयत्न करके ही उसने हाथ खीच लिया और वहुत वडी उम्र मे अविवाहित ही मरा।

शायद आपके मन में भी यह वात आई है कि इन उदाहरणो मे पुराने जमाने के शकुनो या अपशकुनो के स्थान पर भूले आ गई मालूम होती हैं, और सचमुच अपशकुनो के कुछ प्रकार गलतियो के सिवाय कुछ नही थे, जैसे उदाहरण के लिए जव कोई आदमी ठोकर खा जाता था, या गिर पडता था। यह ठीक है कि कुछ शकुन मनुष्य के आत्मनिष्ठ कार्य होने के वजाय, वस्तुनिष्ठ घटनाओ के रूप वाले होते थे, पर आप विश्वास नही करेंगे कि कभी-कभी यह फैसला करना कितना कठिन होता है कि कोई विशेप उदाहरण पहले वर्ग मे आता है या दूसरे मे। प्राय कार्य यह जानता है कि अपने आपको स्वय-भावी, या निष्क्रिय अनुभव के रूप में कैसे पेश किया जाए।

हममे से जो लोग अपने जीवन के पिछले काफी लम्बे अनुभव का विचार कर सकते हैं, उनमें से हरेक सम्भवत यही कहेगा कि यदि हमें दूसरो के साथ व्यवहार में दिखाई देने वाली छोटी-छोटी भूलो को अपशकुन समझने का, और उन्हे अदर छिपी हुई प्रवृत्तियो के चिन्ह समझने का साहस और सकल्प होता, तो हम वहुत-सी निराशाओ और कष्टदायक आश्चर्यों से वच गए होते। अधिकतर अवसरो पर मनुष्य को ऐसा करने का साहस नही होता। वह सोचता है कि मैं इस टेढे-मेढे वैज्ञानिक रास्ते से फिर अन्धविश्वासी हो जाऊगा, और फिर, सव शकुन सच्चे भी नही होते, और हमारे सिद्धान्तो से आपको पता चलेगा कि उन सवका सच्चा होना किस तरह जरूरी भी नहीं है।

व्याख्यान | ४

ग़लतियों का मनोविज्ञान

यहा तक हमने जो प्रयत्न किए हैं, उनसे यह बात तो निश्चित रूप से सिद्ध हो गई मानी जा सकती है कि ग़लतियो का अर्थ होता है, और अपनी आगे की जाच के लिए इस निष्कर्ष को हम अपना आधार बना सकते हैं। मैं एक बार इस तथ्य पर फिर बल देना चाहता हू कि हमारी यह मान्यता नही है—और अपने प्रयोजनो के लिए हमें इस मान्यता की आवश्यकता भी नही—कि जो भी भूल होती है उसका अर्थ होता है, हालाकि मैं इसे सम्भाव्य समझता हू। हमारे लिए इतना सिद्ध करना ही काफी है कि विभिन्न प्रकार की गलतियो में बहुत बार इस तरह का अर्थ होता है। इस सिलसिले में मैं यह बात भी बता दू कि विभिन्न प्रकार की गलतियो में कुछ अन्तर दिखाई देते हैं। बोलने की, लिखने की, और इसी तरह की अन्य कुछ गलतिया शुद्ध रूप से कायिकीय कारण का परिणाम हो सकती है, हालाकि मैं उन गलतियो के बारे में इस बात को सम्भव नही मान सकता जो भुलक्कडपन (नामो या आशयो का भूल जाना, चीज़ रखकर भूल जाना आदि) पर निर्भर हैं, यही अधिक सम्भाव्य है कि कुछ अवस्थाओ में सामान खो जाने को बिना आशय की घटना माना जाए, कुल मिलाकर हमारे विचार दैनिक जीवन में होने वाली भूलो पर एक निश्चित सीमा तक ही लागू हो सकते हैं। जब हम यह मानकर आगे चलते हैं कि गलतिया दो आशयो के आपसी सघर्ष से पैदा होने वाले मानसिक कार्य हैं, तब आपको इन सीमाओ का मन में ध्यान रखना चाहिए।

यह हमारे मनोविश्लेपण का पहला परिणाम है। अब तक मनोविज्ञान को ऐसे सघर्षो का, या इस सभावना का कि वे सघर्ष इस तरह के रूपो में दिखाई दे सकते हैं, कुछ पता नही था। हमने मानसिक घटनाओ के क्षेत्र को बहुत अधिक विस्तृत कर दिया है, और ऐसी घटनाओ का भी मनोवैज्ञानिक आधार सिद्ध कर दिया है जिनको पहले कभी मनोवैज्ञानिक नही माना गया।

अब जरा देर इस कथन पर विचार कीजिए कि गलतिया 'मानसिक कार्य' हैं। क्या इस बात का हमारे पहले वाले कथन मे—कि उनका कुछ अर्थ होता है—अधिक

मतलब है ? मैं ऐसा नही समझता, इसके विपरीत, यह अधिक अनिश्चित कथन है, और इसमें गलतफहमी की अधिक गुजायश है। मानसिक जीवन में दिखाई देने-वाली प्रत्येक चीज़ को किसी न किसी समय एक मानसिक घटना कहा जाएगा, परन्तु यह इस बात पर निर्भर है कि कोई विशेष मानसिक घटना सीधे रूप से शारीरिक या ऐन्द्रियक या भौतिक कारणो से पैदा होती है—इस अवस्था में इसकी जाच का काम मनोविज्ञान का नही है, अथवा यह सीधे अन्य मानसिक प्रक्रमो से पैदा हुई है, जिनके पीछे किसी जगह ऐन्द्रियक कारणो का सिलसिला शुरू होता है। जब हम किसी घटना को मानसिक प्रक्रम कहते हैं, तब हमारा आशय इस दूसरी अवस्था से ही होता है और इसलिए अपने कथन को इस रूप में पेश करना अधिक अच्छा होगा घटना का अर्थ होता है, और अर्थ से हमारा मतलब है सार्थकता, आशय, प्रवृत्ति, और मानसिक कड़ियो की शृखला में एक स्थान।

घटनाओ का एक और समूह है जिसका गलतियो से बडा नजदीकी सबध है, और जिसके लिए यह नाम उपयुक्त नही। हम उन्हे 'आकस्मिक' और लक्षण सूचक कार्य कहते हैं। वे भी बिना किसी प्रवर्त्तक या प्रेरक कारण के होने वाले, अर्थहीन, और महत्वहीन कार्य प्रतीत होते हैं, पर इसके साथ-साथ उनमें स्पष्ट रूप से 'अनावश्यक' होने की विशेषता होती है। एक ओर तो वे गलतियो से अलग पहचाने जाते हैं, क्योकि उनमें ऐसा कोई दूसरा आशय नही होता जिसका वे विरोध करते हो, या जिसे वे बाधित करते हो, दूसरी ओर, वे उन हाव-भावो और चेष्टाओ में बिना किसी निश्चित भेदक सीमा के आ जाते हैं, जिन्हे हम भावो की अभिव्यक्तिया मानते हैं। आकस्मिक घटनाओ के इस वर्ग में ऊपर से निष्प्रयोजन दीखनेवाले सब कार्य आ जाते हैं, जो हम कपडो से, शरीर के अगो से और अपनी पकड में आने वाली वस्तुओ से मानो खेल-खेल में किया करते हैं। ऐसे कार्यो का लोप भी, और वे स्वर-लहरिया भी, जो हम आप से आप गुनगुनाया करते हैं, इसीके अन्तर्गत आते हैं। मेरा यह कहना है कि ऐसे सब कार्यो का अर्थ होता है, और उनकी उसी तरह व्याख्या की जा सकती है जैसे गलतियो की, अर्थात् यह कि वे अधिक महत्वपूर्ण मानसिक कार्यो के हलके सकेत हैं, और सही रूप में मानसिक कार्य हैं। पर अब मैं मानसिक घटनाओ के क्षेत्र के और अधिक विस्तार पर अधिक समय न लगाकर फिर गलतियो पर आता हू, क्योकि उनपर विचार करने से मनोविश्लेषण विषयक जाच-पडताल की महत्वपूर्ण समस्याओ को अधिक स्पष्ट रीति से हल किया जा सकता है।

गलतियो पर विचार करते हुए हमने जो सबसे अधिक मनोरजक प्रश्न बनाए थे और जिनका अब तक उत्तर नही दिया गया वे, नि सदेह, ये हैं हमने कहा था कि गलतिया दो भिन्न आशयो के आपसी सघर्ष या बाधन[1] से पैदा होती हैं, जिनमें

---

१ Interference

से एक को बाधित आशय और दूसरे को बाधक प्रवृत्ति कहा जा सकता है। बाधित आशयो से कोई और प्रश्न नही पैदा होता, पर बाधक प्रवृत्तियों के विषय में हम प्रथम तो यह जानना चाहते है कि दूसरो के बाधक के रूप में पैदा होनेवाले ये आशय किस प्रकार के हैं, और दूसरे, बाधक प्रवृत्तियो और बाधित प्रवृत्तियो में क्या सम्बन्ध है।

मैं सब तरह की ग़लतियो के प्रतिनिधि के रूप में, फिर, बोलने की ही गलतियो को लूगा, और दूसरे प्रश्न का पहले उत्तर दूगा।

बोलने की गलती में बाधक प्रवृत्ति, अर्थ में, बाधित आशय से सम्बन्धित हो सकती है—इस अवस्था में या तो पहली प्रवृत्ति दूसरी प्रवृत्ति का खण्डन करती है, या उसे शुद्ध करती है, या उसकी पूरक है। अथवा, दूसरे अधिक अस्पष्ट और अधिक मनोरजक उदाहरणो में यह हो सकता है कि बाधक प्रवृत्ति का, अर्थ में, बाधित आशय से कुछ भी सम्बन्ध न हो।

इन सम्बन्धो में से पहले का प्रमाण अब तक बताए गए उदाहरणो, और उन जैसे दूसरे उदाहरणो, में आसानी से मिल सकता है। बोलने की गलती के प्राय सब उदाहरणो में, जिनमें असली आशय से उलटी बात कही जाती है, बाधक प्रवृत्ति बाधित आशय से उलटा अर्थ प्रकट करती है, और वह ग़लती दो असगत आवेगो के बीच सघर्ष की सूचना है। "मैं बैठक के उद्घाटन की घोषणा करता हू, पर इसे बन्द कर देना ज्यादा अच्छा समझता हू"—अध्यक्ष की गलती का यह अर्थ है। एक राजनैतिक अखबार जिसपर भ्रष्टाचार का दोष लगाया गया था, एक लेख में अपनी सफाई देता है, जिसको इन शब्दो से समाप्त किया जाना था "हमारे पाठक इस बात का सबूत हैं कि हमने सदा जन-हित के लिए अधिक से अधिक **नि.स्वार्थ** रीति से मेहनत की है।" पर जिस सम्पादक को सफाई लिखने का काम सौंपा गया था, उसने लिखा "अधिक से अधिक **स्वार्थी** रीति से।" यह कहा जा सकता है कि वह सोचता है 'मुझे यह बात लिखनी है पर मैं असलियत को अच्छी तरह जानता हू।' जनता के एक प्रतिनिधि को यह कहते हुए कि हमें कैसर से 'Ruck haltslos' (नि सकोच रूप से) सच्ची बात कह देनी चाहिए, अपने दु साहस पर भय पैदा होता है और एक आतरिक पुकार सुनाई देती है, और वह बोलने की गलतियो से Ruck haltslos को बदल कर 'Ruck gratslos' (निष्फल रूप से) बोल जाता है।

ऊपर दिए गए उदाहरणो में, जिनमें शब्द या वाक्य के सिकुड जाने और सक्षिप्त हो जाने का प्रभाव पैदा होता है, शोधन या सही करने, कुछ जोड देने या जारी रहने का प्रक्रम होता है, जिसमें दूसरी प्रवृत्ति पहली के साथ-साथ दिखाई देती है। "तब बातें **रिवील** (अर्थात् प्रकट) हुईं, परतु सीधे कहा जाए तो **फिल्दी** (अर्थात् भद्दी या गदी) थी, इसलिए बातें **रिफिल्ड** (रि[वील]+फिल[दी]+

ड) हुई ।" "जो लोग इस विपय को समझते हैं, वे एक हाथ की उगलियो पर गिने जा सकते हैं, पर नही, असल में इस विपय को समझने वाला सिर्फ एक व्यक्ति है, इसलिए ठीक ही है कि वह **एक उंगली** पर गिना जा सकता है", या "मेरा पति जो कुछ चाहे, खा-पी सकता है, पर आप जानते हैं कि मैं उसे उसकी मनचाही चीज़ नही चाहने देती, इसलिए वह वही चीजें खा-पी सकता है जो **मैं** चाहू ।" इन सव अवस्थाओ में गलती वाधित आशय की वस्तु से पैदा होती है, या उससे सीधा सबध रखती है ।

दो वाधाकारक प्रवृत्तियो में दूसरे प्रकार का सबध विचित्र मालूम होता है। यदि वाधक प्रवृत्ति का वाधित प्रवृत्ति की वस्तु से कोई सवध नही है, तो वह कहा से आती है, और यह ठीक उसी स्थान पर क्यो प्रकट होती है? प्रेक्षण[1] से ही इसका उत्तर मिल सकता है, और उससे पता चलता है कि वाधक प्रवृत्ति उस विचार-शृखला से पैदा होती है जो उस व्यक्ति के मन में कुछ देर पहले चल रही थी, और वह वाद में इस प्रकार प्रकट हो जाती है, चाहे वह पहले भापण मे प्रकट हुई हो या न हुई हो। इसलिए असल में इसे निरर्थकावृत्ति ही कहा जा सकता है, हालाकि यह आवश्यक नही कि यह वोले गए शब्दो की ही निरर्थकावृत्ति हो। यहा भी वाधक प्रवृत्ति और वाधित प्रवृत्ति मे साहचर्य जनित सवध का अभाव नही है, हालाकि यह वस्तु में नही है, वल्कि कृत्रिम रूप से स्थापित किया जाता है, और कई वार इसके लिए सबध वहुत 'खीच-तान' करके जोडा जाता है।

इसका एक सरल उदाहरण देता हू जो मैंने स्वय देखा था। एक वार सुन्दर डोलोमाइट्स मे वियेना की दो महिलाओ से मेरी भेंट हुई जो एक पैदल यात्रा पर रवाना हो रही थी। मैं कुछ दूर उनके साथ गया, और हमने इस तरह के जीवन के सुखो पर तथा कठिनाइयो पर भी वातचीत की। एक महिला ने स्वीकार किया कि इस तरह दिन विताने में वडी असुविधा मालूम होती है। "सारे दिन धूप मे चलते रहना निश्चित ही वडा कष्टकारक है जिसमें व्लाउज..... तथा वस्तुए विल्कुल भीग जाती हैं।" इस वाक्य में उसे एक स्थान पर थोडी दुविधा हुई थी। इसके वाद वह कहती गई। "पर जव आदमी **नैक होस** (nach Hose) पहुच जाता है, और कपडे वदल सकता है..."। (**होस** का अर्थ है **पेटीकोट** वह महिला **नैक होस** कहना चाहती थी जिसका अर्थ है **घर**)। हमने इस गलती का विश्लेपण नही किया पर मुझे विश्वास है कि आप इसे आसानी से समझ जाएगे। महिला अपने कपडो की पूरी सूची गिनाना चाहती थी, 'व्लाउज, शमीज, और पेटीकोट।' औचित्य की रक्षा के लिए उसने पेटीकोट (होस) का ज़िक्र छोड दिया, पर अगले वाक्य में, जिसकी अर्थवस्तु सर्वथा स्वतन्त्र है, वह छोडा गया शब्द ध्वनि में मिलते-

---

१ Observation

जुलते दूसरे शब्द **घर** (हौस) की विकृति के रूप मे जबान से निकल पडा।

अब हम मुख्य प्रश्न पर आ सकते है, जिसे हम अब तक टालते आए है, और वह यह है कि ये प्रवृत्तिया, जो इस तरह दूसरे आशयो को बाधित करके अजीब रीति से सामने आती है, किस तरह की होती है। स्पष्टत वे अनेक प्रकार की होती है, पर हमे ऐसा तत्व खोजना है जो उन सबमे रहता हो। यदि इस काम के लिए हम कुछ उदाहरणो पर विचार करे तो हमे शीघ्र ही मालूम हो जाएगा कि वे तीन समूहो मे आते है। **पहले** समूह मे वे उदाहरण आते है जिनमे **बाधाकारक** प्रवृत्ति का वक्ता को ज्ञान है, और इसके अलावा गलती करने से पहले उसने उसे अनुभव किया था। इस प्रकार 'रिफिल्ड' की गलती मे, वक्ता ने न केवल यह स्वीकार किया कि उसने प्रस्तुत घटनाओ को **'फिल्दी'** कहकर उनकी आलोचना की थी, बल्कि यह भी स्वीकार किया कि उसका आशय इस राय को शब्दो मे प्रकट करने का था, पर उसने बाद मे इस आशय को बदल लिया। **दूसरे** समूह मे वे उदाहरण आते है जिनमे बाधाकारक प्रवृत्ति को वक्ता अपनी प्रवृत्ति मानता है, पर उसे यह पता नही है कि गलती करने से पहले उसके भीतर वह प्रवृत्ति प्रबल थी। इसलिए वह हमारे बताए गए अर्थ को मान लेता है, पर कुछ देर तक इसपर आश्चर्य करता रहता है। इस तरह के प्रवृत्ति के उदाहरण बोलने की गलतियो की अपेक्षा शायद अन्य गलतियो में अधिक आसानी से मिल जाएगे। **तीसरे** समूह मे, बाधक प्रवृत्ति का वक्ता द्वारा जोर-शोर से खडन किया जाता है, वह इसका ही खडन नही करता कि गलती मे पहले यह प्रवृत्ति उसमें प्रबल थी, बल्कि वह यह भी कहता है कि यह प्रवृत्ति कभी मेरे पास तक नही फटकी। **हिकफ** वाला मामला, तथा वह निश्चित रुप से अभद्र तिरस्कार याद कीजिए जो मैने बाधक प्रवृत्ति का पता लगाकर अपने सिर लिया था। आप जानते है कि इन उदाहरणो के विषय मे आपका और मेरा कोई समझौता नही हो सका। मै भोजन के बाद वाले वक्ता के खण्डन के बारे मे अपने अर्थ पर अटल हू, जबकि आप, मेरा ख्याल है, उसकी प्रबलता से अब भी प्रभावित है, और शायद यह सोच रहे है कि क्या ऐसी गलतियो का अर्थ न लगाना और उन्हे शुद्ध रूप से कायिकीय कार्य समझकर छोड देना उचित नही होगा, जैसा कि विश्लेषण से पहले के दिनो मे किया जाता था। आप किस बात से भयभीत है, यह मै कल्पना कर सकता हू। मैने जो अर्थ लगाया है, उसमे यह कल्पना भी आ जाती है कि जिन प्रवृत्तियो के बारे मे वक्ता कुछ नही जानता, वे भी उसमे प्रकट हो सकती है, और कि मै अनेक सकेतो से उन्हे सिद्ध कर सकता हू। आपको ऐसे नए निष्कर्ष पर पहुचने में सकोच होता है, जिसके बाद मे बहुत-से परिणाम हो सकते है। मै इस बात को समझता हू और मानता हू कि कुछ दूर तक आपका सकोच उचित है परन्तु एक बात स्पष्ट हो जानी चाहिए, यदि आप गलतियो के सम्बन्ध मे इस विचार को, जिसकी इतने सारे उदाहरणो से पुष्टि हो गई है, उसके

अन्तिम तार्किक निष्कर्ष तक पहुचाना चाहते है, तो आपको यह चौकाने वाली कल्पना स्वीकार करनी होगी। यदि आप ऐसा नही कर सकते तो आपको गलतियो को समझने का काम, जो अभी आपने शुरू ही किया है, छोड देना होगा।

ज़रा उस बात पर विचार कीजिए जो तीनो समूहो को जोडती है, और बोलने की गलती के तीनो तन्त्रो में एक-सी है। सौभाग्य से यह सामान्य अश बिल्कुल स्पष्ट है। पहले दो समूहो में वक्ता बाधाकारक प्रवृत्ति का अस्तित्व मानता है, पहले समूह मे इतनी बात और भी है कि वह प्रवृत्ति गलती से ठीक पहले दिखाई दी थी, पर पिछली दोनो अवस्थाओ में **इसे पीछे धकेल दिया गया है। वक्ता ने उस विचार को न बोलने का पक्का इरादा किया हुआ था, और फिर ऐसा होता है कि वह बोलने की ग़लती कर जाता है; मतलब यह हुआ कि जिस प्रवृत्ति को बाहर आने से रोका गया है, वह उसकी इच्छा के विरुद्ध बल लगा है, और मुंह से निकलती है–या तो वह वक्ता द्वारा प्रकट किए जा रहे आशय की अभिव्यक्ति को बदलकर या उसमें मिलकर या स्वयं उसके स्थान पर आकर प्रकट होती है। यही बोलने की ग़लती का तन्त्र या प्रक्रिया है।**

जहा तक मेरा सवाल है, मैं तीसरे समूह में भी उपर्युक्त प्रतिक्रिया को बिल्कुल ठीक बिठा सकता हू। मुझे सिर्फ इतना मान लेना होगा कि इन तीनो समूहो में इतना ही अन्तर है कि किसीमें आशय को पीछे धकेलने में कम सफलता हुई है और किसीमें अधिक। पहले समूह में आशय मौजूद है, और शब्द बोले जाने से पहले सामने आ जाता है। तब तक इसे पीछे नही धकेला गया है, और धकेले जाने की भरपाई यह गलती मे कर लेता है। दूसरे समूह में आशय और भी पीछे धकेल दिया जाता है, उसका भाषण से पहले भी कही पता नही चलता। यह उल्लेखनीय बात है कि पीछे धकेले जाने से उसके गलती का सक्रिय कारण होने मे ज़रा भी रुकावट नही होती। पर यह अवस्था तीसरे समूह में इस प्रक्रम की व्याख्या को सरल बना देती है। यह कल्पना करना साहस का काम है कि कोई प्रवृत्ति तब भी ग़लती के रूप में प्रकट हो सकती है जब उसे बहुत दिनो तक, बहुत ही दिनो तक, प्रकट होने से रोके रखा गया हो, वह ज़रा भी दिखाई न दी हो, और इसलिए वक्ता सीधे तौर से उसका खण्डन कर सकता है। पर तीसरे समूह के सवाल को एक ओर छोडकर अन्य उदाहरणो से आप **इस नतीजे पर पहुंचते हैं, कि बोलने की ग़लती होने की यह अपरिहार्य शर्त है कि कोई बात कहने के आशय को पहले निगृहीत या अवरुद्ध[1] किया गया हो। (अर्थात् दबाया गया हो।)**

अब हम यह कह सकते है कि गलतियो को समझने में हम कुछ आगे बढे है। हम यह जानते हैं कि वे मानसिक घटनाए है, जिसमें अर्थ और प्रयोजन पहचाने जा

---

१. Suppression

जुलते दूसरे शब्द **घर** (हौस) की विकृति के रूप मे जबान से निकल पड़ा।

अब हम मुख्य प्रश्न पर आ सकते हैं, जिसे हम अब तक टालते आए हैं, और वह यह है कि ये प्रवृत्तिया, जो इस तरह दूसरे आशयो को बाधित करके अजीब रीति से सामने आती हैं, किस तरह की होती है। स्पष्टत वे अनेक प्रकार की होती हैं, पर हमें ऐसा तत्व खोजना है जो उन सबमें रहता हो। यदि इस काम के लिए हम कुछ उदाहरणो पर विचार करें तो हमें शीघ्र ही मालूम हो जाएगा कि वे तीन समूहों में आते हैं। **पहले** समूह में वे उदाहरण आते हैं जिनमें **बाधाकारक** प्रवृत्ति का वक्ता को ज्ञान है, और इसके अलावा गलती करने से पहले उसने उसे अनुभव किया था। इस प्रकार 'रिफिल्ड' की गलती में, वक्ता ने न केवल यह स्वीकार किया कि उसने प्रस्तुत घटनाओ को **'फिल्दी'** कहकर उनकी आलोचना की थी, बल्कि यह भी स्वीकार किया कि उसका आशय इस राय को शब्दो में प्रकट करने का था, पर उसने बाद में इस आशय को बदल लिया। **दूसरे** समूह में वे उदाहरण आते हैं जिनमें बाधाकारक प्रवृत्ति को वक्ता अपनी प्रवृत्ति मानता है, पर उसे यह पता नही है कि गलती करने से पहले उसके भीतर वह प्रवृत्ति प्रबल थी। इसलिए वह हमारे बताए गए अर्थ को मान लेता है, पर कुछ देर तक इसपर आश्चर्य करता रहता है। इस तरह के प्रवृत्ति के उदाहरण बोलने की गलतियो की अपेक्षा शायद अन्य गलतियो मे अधिक आसानी से मिल जाएगे। **तीसरे** समूह में, बाधक प्रवृत्ति का वक्ता द्वारा जोर-शोर से खडन किया जाता है, वह इसका ही खडन नही करता कि गलती से पहले यह प्रवृत्ति उसमें प्रबल थी, बल्कि वह यह भी कहता है कि यह प्रवृत्ति कभी मेरे पास तक नही फटकी। **हिकप** वाला मामला, तथा वह निश्चित रूप से अभद्र तिरस्कार याद कीजिए जो मैंने बाधक प्रवृत्ति का पता लगाकर अपने सिर लिया था। आप जानते हैं कि इन उदाहरणो के विषय में आपका और मेरा कोई समझौता नही हो सका। मैं भोजन के बाद वाले वक्ता के खण्डन के बारे में अपने अर्थ पर अटल हू, जबकि आप, मेरा ख्याल है, उसकी प्रबलता से अब भी प्रभावित हैं, और शायद यह सोच रहे हैं कि क्या ऐसी गलतियो का अर्थ न लगाना और उन्हें शुद्ध रूप से कायिकीय कार्य समझकर छोड़ देना उचित नही होगा, जैसा कि विश्लेषण से पहले के दिनो में किया जाता था। आप किस बात से भयभीत हैं, यह मैं कल्पना कर सकता हू। मैंने जो अर्थ लगाया है, उसमें यह कल्पना भी आ जाती है कि जिन प्रवृत्तियो के बारे में वक्ता कुछ नही जानता, वे भी उसमें प्रकट हो सकती हैं, और कि मैं अनेक सकेतो से उन्हें सिद्ध कर सकता हू। आपको ऐसे नए निष्कर्ष पर पहुचने में सकोच होता है, जिसके बाद में बहुत-से परिणाम हो सकते हैं। मैं इस बात को समझता हू और मानता हू कि कुछ दूर तक आपका सकोच उचित है परन्तु एक बात स्पष्ट हो जानी चाहिए, यदि आप गलतियो के सम्बन्ध में उस विचार को, जिसकी इतने सारे उदाहरणो से पुष्टि हो गई है, उसके

अन्तिम तार्किक निष्कर्ष तक पहुचाना चाहते है, तो आपको यह चौंकाने वाली कल्पना स्वीकार करनी होगी। यदि आप ऐसा नही कर सकते तो आपको गलतियो को समझने का काम, जो अभी आपने शुरू ही किया है, छोड देना होगा।

ज़रा उस वात पर विचार कीजिए जो तीनो समूहो को जोडती है, और वोलने की गलती के तीनो तन्त्रो में एक-सी है। सौभाग्य से यह सामान्य अश विल्कुल स्पष्ट है। पहले दो समूहो में वक्ता वाधाकारक प्रवृत्ति का अस्तित्व मानता है, पहले समूह में इतनी वात और भी है कि वह प्रवृत्ति गलती से ठीक पहले दिखाई दी थी, पर पिछली दोनो अवस्थाओ में **इसे पीछे धकेल दिया गया है। वक्ता ने उस विचार को न वोलने का पक्का इरादा किया हुआ था, और फिर ऐसा होता है कि वह वोलने की ग़लती कर जाता है; मतलव यह हुआ कि जिस प्रवृत्ति को वाहर आने से रोका गया है, वह उसकी इच्छा के विरुद्ध वल लगा है, और मुंह से निकलती है—या तो वह वक्ता द्वारा प्रकट किए जा रहे आशय की अभिव्यक्ति को वदलकर या उसमें मिलकर या स्वयं उसके स्थान पर आकर प्रकट होती है। यही वोलने की ग़लती का तन्त्र या प्रक्रिया है।**

जहा तक मेरा सवाल है, मैं तीसरे समूह में भी उपर्युक्त प्रतिक्रिया को विल्कुल ठीक विठा सकता हू। मुझे सिर्फ इतना मान लेना होगा कि इन तीनो समूहो में इतना ही अन्तर है कि किसीमें आशय को पीछे धकेलने में कम सफलता हुई है और किसीमें अधिक। पहले समूह में आशय मौजूद है, और शव्द वोले जाने से पहले सामने आ जाता है। तव तक इसे पीछे नही धकेला गया है, और धकेले जाने की भरपाई यह गलती में कर लेता है। दूसरे समूह में आशय और भी पीछे धकेल दिया जाता है, उसका भाषण से पहले भी कही पता नही चलता। यह उल्लेखनीय वात है कि पीछे धकेले जाने से उसके ग़लती का सक्रिय कारण होने में ज़रा भी रुकावट नही होती। पर यह अवस्था तीसरे समूह में इस प्रक्रम की व्याख्या को सरल वना देती है। यह कल्पना करना साहस का काम है कि कोई प्रवृत्ति तव भी ग़लती के रूप में प्रकट हो सकती है जव उसे वहुत दिनो तक, वहुत ही दिनो तक, प्रकट होने से रोके रखा गया हो, वह ज़रा भी दिखाई न दी हो, और इसलिए वक्ता सीधे तौर से उसका खण्डन कर सकता है। पर तीसरे समह के सवाल को एक ओर छोडकर अन्य उदाहरणो से **आप इस नतीजे पर पहुंचते हैं, कि वोलने की ग़लती होने की यह अपरिहार्य शर्त है कि कोई वात कहने के आशय को पहले निगृहीत या अवरुद्ध[1] किया गया हो। (अर्थात् दवाया गया हो।)**

अव हम यह कह सकते है कि गलतियो को समझने में हम कुछ आगे वढे है। हम यह जानते है कि वे मानसिक घटनाएं है, जिसमें अर्थ और प्रयोजन पहचाने जा

---

१. Suppression.

सकते हैं,हम यह भी जानते हैं कि वे दो भिन्न आशयो के परस्पर बाधन या सघर्ष से पैदा होती हैं, और इसके अतिरिक्त हम यह भी जानते हैं कि इनमें से कोई आशय दूसरे को बाधित करके तभी प्रकट हो सकता है, जब इसे स्वय अपनी गति में कोई बाधा या रुकावट सहनी पडी हो। दूसरो को बाधित करने से पहले यह स्वय किसी तरह बाधित किया गया होना चाहिए।स्वभावत इससे हमें उन घटनाओ की पूरी व्याख्या नही प्राप्त होती, जिन्हे हम गलतिया कहते हैं। हम देखते हैं कि तुरन्त और सवाल पैदा हो जाते है, और साधारणतया हमें यह शका होती है कि ज्यों-ज्यो हम इसे समझने की दिशा में आगे बढ़ेंगे, त्यो-त्यो नए प्रश्न पैदा होने के और अधिक मौके आएगे, उदाहरण के लिए, हम पूछ सकते हैं कि यह मामला अधिक सरल रूप में क्यो नही चलता? यदि मन में यह आशय है कि किसी प्रवृत्ति को पूरा होने देने के बजाय रोका जाए तो यह रोक सफल होनी चाहिए और उस प्रवृत्ति का कुछ भी रूप प्रकट नही होना चाहिए, अथवा वह रोक असफल होनी चाहिए और वह रोकी गई प्रवृत्ति पूरी तरह प्रकट होनी चाहिए। परन्तु गलतिया **समझौते** के रूप में होती है, वे दोनो आशयो की आशिक सफलता और आशिक विफलता को प्रकट करती है। अवाछित आशय न तो पूरी तरह रुकता है, और न सारे का सारा बाहर आ पाता है, यद्यपि कुछ उदाहरणो मे यह आ भी जाता है। हम यह कल्पना कर सकते हैं कि ऐसे बाधाजनित (या समझौते वाले) रूप पैदा होने के लिए विशेष अवस्थाए मौजूद होनी चाहिए, पर यह हम अनुमान भी नही कर सकते कि वे किस तरह की हो सकती हैं। मै यह नही समझता हू कि हम गलतियो का और गहरा अध्ययन करके इन अज्ञात परिस्थितियो का पता लगा सकते है। पहले मानसिक जीवन के कुछ और गुप्त क्षेत्रो की पूरी तरह जाच करना जरूरी होगा। उनमें मिलने वाले सादृश्य ही हमे यह हौसला दे सकते हैं कि हम वे कल्पनाए कर सकें जिनकी गलतियो के बारे मे और अधिक सूक्ष्म स्पष्टीकरण के लिए आवश्यकता है। और एक बात और। हल्के सकेतो को लेकर आगे बढना, जैसा कि हम इस क्षेत्र में सदा करते है, खतरे से खाली नही। एक मानसिक रोग कम्बीनेटरी पैरानोइआ[1] कहलाता है, जिसमें ऐसे छोटे सकेतो का उपयोग करने की आदत सीमा से बाहर हो जाती है, और स्वभावत मेरा यह दावा नही है कि इस इस तरह के आधार पर निकाले गए नतीजे सारे सही होते हैं। इस खतरे से बचने के लिए हमें अपने परीक्षणो का क्षेत्र विस्तृत रखना चाहिए और मानसिक जीवन के बड़े विविध रूपो से एक जैसे प्रभाव इकट्ठे करने चाहिए।

तो अब हम गलतियो का विश्लेषण यही छोड देते है, पर एक बात और है जो मै आपके ध्यान में जमाना चाहता हू। आप उस विधि को एक नमूने के रूप में

---

१ Combinatory Paranoia

ध्यान में रखें जिससे हमने इन घटनाओ पर विचार किया है। इन उदाहरणो से आप यह समझ सकते हैं कि हमारे मनोविज्ञान का लक्ष्य क्या है। हमारा प्रयोजन इतना ही नही है कि घटनाओ का सिर्फ वर्णन और वर्गीकरण कर दे, वल्कि हमें यह विचार भी करना है कि वे मन मे दो वलो के सघर्प से, किसी ध्येय की ओर जाने के लिए यत्नशील प्रवृत्तियो की अभिव्यक्तियो के रूप मे, जो मिलकर या एक दूसरे के विरुद्ध कार्य कर रही है, पैदा हुई हैं। हम मानसिक घटनाओ की एक **गतिकीय अवधारणा**[1] प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं। इस अवधारणा में जो प्रवृत्तिया हम सिर्फ अनुमान से जानते हैं, वे अधिक महत्वपूर्ण हैं और जो घटनाए हम प्रत्यक्ष देखते हैं, वे कम महत्व की हैं।

तो अव हम गलतियो की और जाच-पडताल नही करेगे, पर तव भी हम सारे क्षेत्र के विस्तार का विहगावलोकन कर सकते हैं, जिसमें वे चीजें भी आएगी जिन्हे हम पहले जानते हैं, और उन वातो के चिह्न भी दिखाई देंगे जो नई हैं। ऐसा करते हुए हम पहले किया गया तीन समूहो वाला विभाजन कायम रखेगे, वोलने की गलतिया और उन्ही जैसी दूसरी गलतिया, जैसे लिखने में, पढने मे, या सुनने मे होने वाली गलतिया, भूली हुई वस्तु (व्यक्तिवाचक नाम, विदेशी शव्द, सकल्प, सस्कार) के अनुसार उसके उपविभागो सहित भूल जाना और चीज कही रखकर भूल जाना, भूल से कोई और चीज उठा लेना और वस्तुए खो देना। जहा तक भूलो से हमारा सम्वन्ध है, उनमें से कुछ को भूलने के शीर्पक के नीचे, और कुछ गलत किए गए कार्यो (गलत वस्तु उठा लेने आदि) के शीर्पक के नीचे रखा जाएगा।

हम वोलने की गलतियो पर पहले वडे विस्तार से विचार कर चुके हैं। तो भी उसके विपय में कुछ और वात वाकी है। वोलने की गलतियो के साथ सम्वद्ध कुछ छोटी-छोटी भावनात्मक चेष्टाए होती हैं, जो विलकुल निरर्थक नही होती। कोई भी यह नही समझना चाहता कि उसने वोलने में गलती की है। प्राय स्वय गलती करने पर मनुष्य उसे नही सुन पाता, पर दूसरा वह गलती करे तो वह हमारे कान से नही वच सकती। एक अर्थ में, वोलने की गलतिया छूत की वीमारी हैं, उनकी चर्चा करते हुए अपने को उनसे अछूता रखना आसान काम नही। छोटी से छोटी गलती का भी प्रेरक कारण पता लगा लेना कठिन नही है, यद्यपि इनमे छिपे हुए मानसिक प्रक्रमो पर कोई विशेप रोशनी नही पडती, उदाहरण के लिए, यदि कोई आदमी किसी शव्द पर गडवड के कारण दीर्घ स्वर को ह्रस्व वोला जाता है, चाहे उसका प्रेरक कारण कैसा ही हो, तो इसके परिणामस्वरूप, वह शीघ्र ही किसी ह्रस्व स्वर को दीर्घ वोलेगा और पहली गलती से हुई कमी पूरी करने के लिए एक नई गलती करेगा। यही वात तव होती है जव कोई किसी सयुक्त स्वर

१ Dynamic Conception

जैसे 'एइ' या 'श्रोइ' को अस्पष्ट रूप से और असावधानी से 'इ' की तरह बोल जाता है, वह बाद में 'इ' आने पर उसे 'एइ' या 'ओइ' बोलकर इसे शुद्ध करना चाहता है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि उसे श्रोता का ध्यान है, और मानो वह सुननेवाले को यह नही समझने देना चाहता कि मै अपनी मातृभापा बोलने के बारे में उदासीन हू। दूसरी क्षतिपूरक विकृति से सुनने वाले का ध्यान पहली विकृति की ओर भी जाता है, और उसे यह निश्चय हो जाता है कि वक्ता का ध्यान भी उस गलती की ओर जा चुका है। सबसे अधिक होनेवाली, महत्वहीन और सरल गलतिया भापण के दिलचस्पी रहित भागो में, शब्दों के सिकुडने या सक्षिप्त होने और पूर्वोच्चारणो के रूप में होती हैं। उदाहरण के लिए, किसी लम्बे वाक्य में बोलने की गलतिया वैसी होगी जिनमें अन्तिम आशयित शब्द किसी पहले वाले शब्द की ध्वनि पर असर डालता है। इससे हमपर यह असर पडता है कि वाक्य बोलने में कुछ अधैर्य था, और साधारणतया इससे यह सकेत मिलता है कि वह वाक्य या सारी बात बोलने का कुछ प्रतिरोध हो रहा है। इससे हम ऐसे सीमावर्ती उदाहरणो पर आ जाते हैं, जिनमें बोलने की गलती के विपय में मनोविश्लेपण वाली और सामान्य कार्यिकीय अवधारण के अन्तर मिलकर एक हो जाते हैं। हम यह कल्पना करते है कि उदाहरणो में वाधक प्रवृत्ति आशयित भापण का विरोध कर रही है, पर वह अपनी उपस्थिति ही जाहिर कर सकती है, अपना निजी प्रयोजन नही। यह जो वाधा पैदा करती है, वह किसी ध्वनि-प्रभाव या साहचर्य के सम्बन्ध के बाद होती है, और इसे आशयित भापण से ध्यान वढानेवाली प्रवृत्ति माना जा सकता है, किन्तु इस घटना का सारतत्व न तो ध्यान-वटाई है और न साहचर्यात्मक प्रवृत्ति है, जो सक्रिय हो गई है। इसका सारतत्व इस घटना से मिलनेवाला यह सकेत है कि आशयित भापण को वाधा पहुचाने वाला कोई और आशय मौजूद है, जिसके स्वरूप का पता इस उदाहरण मे उसके परिणामो से नही चल सकता, जैसा कि बोलने की गलती से अधिक प्रमुख सव उदाहरणो में सम्भव होता है।

लिखने की गलतिया, जिनकी अब मै चर्चा कर रहा हू, अपने तन्त्र या प्रक्रिया की दृष्टि से बोलने की गलतियों से इतनी मिलती-जुलती होती ह कि उनसे किसी नए दृष्टिकोण की आशा नही की जा सकती। शायद इस समूह से हमारी जानकारी में थोडी वृद्धि हो जाने से हमें सन्तोप हो जाए। लिखने की उन ही आम तौर मे होनेवाली छोटी-छोटी गलतियो, शब्दो के सिकुड जाने, वाद के शब्दो के—विशेप रूप से अन्तिम शब्दो के—पहले लिखे जाने मे यह सूचित होता है कि लिखनेवाले को लिखने में दिलचस्पी नही है, और उसमें अधैर्य है। लिखने की गलतियो में बहुत मुख्य रूप से दीखनेवाली वातो मे वाधक प्रवृत्ति के स्वरूप और आशय का पता भी चल जाता है। साधारणतया, यदि हमें किसी पत्र में लिखने की कोई गलती दिखाई दे, तो हम समझ जाते हैं कि लेखक का मन उस समय बिना बाधा के

कार्य नही कर रहा था। बात क्या थी, यह हमेशा निश्चित नही हो सकता। बोलने की गलतियो की तरह, लिखने की गलतियो पर भी स्वय लिखनेवालो का ध्यान नही जाता। इस प्रसग में निम्नलिखित बात बडी महत्वपूर्ण है। निस्सदेह कुछ लोगो को सदा अपना लिखा हुआ प्रत्येक पत्र भेजने से पहले दुबारा पढने की आदत होती है। कुछ लोग ऐसा नही करते, पर यदि ये लोग कभी किसी पत्र को दुबारा पढें तो उन्हे कोई न कोई महत्वपूर्ण गलती देखने और उसे सही करने का मौका सदा मिलता है। इसकी कैसे व्याख्या की जाए। यह तो कुछ ऐसा मालूम होता है, जैसे उन्हे पता था कि उन्होने पत्र लिखने में कोई गलती की है। क्या हम सचमुच यह मान सकते हैं कि ऐसी बात थी ?

लिखने की गलतियो के व्यावहारिक महत्व के साथ एक मनोरजक समस्या जुडी हुई है। आपको उस हत्यारे ह का मामला याद होगा जिसने अपने आप को जीवाणुशास्त्री[1] बताकर वैज्ञानिक सस्थाओ से बडे भयकर रोगाणु-बीज प्राप्त कर लिए थे, पर उनका उपयोग उसने अपने से सम्बन्धित व्यक्तियो से इस बिल्कुल नए तरीके द्वारा पिण्ड छुडाने में किया। इस व्यक्ति ने एक बार एक वैज्ञानिक सस्था के अधिकारियो से शिकायत की कि मुझे भेजे गए रोगाणु-बीज प्रभावहीन थे, पर उसने लिखने में एक गलती कर दी, पत्र मे यह लिखने के बजाय कि 'Mausen und Meerchweinchen' (चूहो और गिनी-पिगो) पर किए गए मेरे परीक्षणो में, उसने लिखा कि 'Menschen' (लोगो) पर किए गए मेरे परीक्षणो मे—ये शब्द साफ पढे जाते थे। इस गलती की ओर उस सस्था के डाक्टरो का ध्यान भी गया, पर जहा तक मैं जानता हू, उन्होने इससे कोई नतीजा नही निकाला। अब आपका क्या विचार है ? क्या यह अच्छा नही होता कि डाक्टर उस गलती को उसकी अपराध-स्वीकृति मानते, और जाच शुरू कर देते, जिससे हत्यारे की हलचले समय पर रोकी जा सकती ? इस उदाहरण मे क्या यह उपेक्षा, जो असल में बडी महत्व-पूर्ण हो सकती थी, इसलिए नही की गई कि हमें गलतियो की अपनी अवधारणा के बारे में जानकारी नही थी। मैं कहता हू कि लिखने की इस तरह की गलती से मेरे मन में निश्चय ही बडा सन्देह पैदा हो गया होता, पर इसे अपराध-स्वीकृति मानने के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण आपत्ति है। यह मामला इतना सीधा नही है। लिखने की गलती निश्चित रूप से एक सकेत है, पर सिर्फ इसके आधार पर जाच करना उचित न होता। इससे यह बात सचमुच सामने आती है कि वह आदमी मनुष्यो को रोगाणुओ से प्रभावित करने की बात सोच रहा है, पर इससे यह बात निश्चित रूप से नही प्रकट होती कि यह विचार हानि पहुचाने की कोई सुनिश्चित योजना है, या एक कल्पनामात्र है, जिसका व्यवहार में कोई महत्व नही। यह भी सम्भव है

---

१ Bacteriologist

कि ऐसी गलती करनेवाला आदमी इस बात से इन्कार करे, और उसकी दृष्टि से उसका इन्कार करना ठीक ही होगा, कि उसके मन में कोई ऐसी कल्पना थी, और वह इस विचार को अपने से बिलकुल अपरिचित बतायेगा। बाद में, जब हम मानसिक यथार्थता और भौतिक यथार्थता के अन्तर पर विचार करेंगे, तब आप इन सम्भावनाओ को अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे। पर यह भी वैसा ही उदाहरण है, जिसमें बाद में गलती का ऐसा अर्थ निकल आया, जिसकी आशका नही थी।

अप-पठन या गलत पढ जाना हमें एक ऐसी मानसिक स्थिति मे पहुचाता है, जो बोलने या लिखने की गलतियो की मानसिक स्थिति से स्पष्टत भिन्न है। दो सघर्षकारी प्रवृत्तियो में से एक के स्थान पर यहा एक ऐन्द्रिय उद्दीपन[1] आ जाता है, और शायद इसलिए कम स्थायी होता है। आदमी जो कुछ पढ रहा है, वह उस तरह उसके अपने मन की उपज नही है, जैसे उसकी लिखी हुई चीज, इसलिए अधिकतर उदाहरणो में अप-पठन में पूर्ण स्थानापन्नता हो जाती है। पुस्तक के शब्द की जगह दूसरा भिन्न शब्द आ जाता है, और आवश्यक नही कि मूल शब्द और गलती के कारण आए हुए शब्द की वस्तु मे कोई सम्बन्ध हो, और आमतौर से शब्दो में सादृश्य होने से ऐसा होता है। इसका लिखटनवर्ग का उदाहरण 'एगेनाम्मेन' (Agenommen) के स्थान पर 'एगामेम्नोन' (Agamennon) इस समूह का सबसे अच्छा उदाहरण है। इस गलती की कारणभूत बाधक प्रवृत्ति का पता लगाने के लिए मूल पाठ को सर्वथा अलग रख दीजिए, विश्लेषणात्मक जाच दो प्रश्नो से शुरू हो सकती है अप-पठन के परिणाम से (स्थानापन्न अर्थात् जो शब्द पढा है उससे) मुक्त साहचर्य[2] मे रहने वाला पहला विचार कौन-सा है, और अप-पठन किन परिस्थितियो में हुआ ? कभी-कभी अप-पठन की व्यवस्था करने के लिए इस पीछेवाली बात को जानना ही काफी होता है, जैसे उदाहरण के लिए, तब जब कोई आदमी सख्त लाचारियो से परेशान होकर किसी नए नगर मे घूमता हुआ पहली मजिल पर बहुत बडे बोर्ड पर 'क्लोसेथॉस' (Closethaus) शब्द पढता है। अभी वह यह आश्चर्य ही कर रहा है कि इतनी ऊचाई पर बोर्ड लगाया गया है कि उसे पता चलता है कि असल में वह शब्द 'कोर्सेथॉस' (Corsethaus) है। दूसरे उदाहरणो में, जहा मूल और गलती की वस्तु में सम्बन्ध नही होता, बारीकी से विश्लेषण की आवश्यकता होती है, जो मनोविश्लेषण की रीति के अभ्यास और इसमें विश्वास के बिना नहीं किया जा सकता। पर, आमतौर मे, अप-पठन के उदाहरण की व्याख्या कर सकना इतना कठिन नही होता। 'एगामेम्नोन' के उदाहरण में स्थानापन्न शब्द मे बिना कठिनाई के यह पता चल जाता है कि यह गडबड किस विचार-पद्धति से

---

1 Sensory-excitation

२ Free association

पैदा हुई है। उदाहरण के लिए आजकल युद्धकाल होने से, सब जगह नगरो व सेनापतियो के नाम और सैनिक शब्द आमतौर से पढने में आते है, जो सदा आदमी के कान में पडते रहते हैं। जो कुछ अच्छा लगता है और मन में होता है, वह अपरिचित और अच्छा न लगने वाले को हटाकर आ बैठता है। मन मे मौजूद विचारो की छायाए नई प्रतीतियो को धुंधला कर देती हैं।

एक और तरह का अप-पठन भी हो सकता है, जिसमें स्वय मूल पाठ ही बाधाकारक प्रवृत्ति पैदा करता है, और जिससे यह, आमतौर से, विपरीत शब्द में बदल जाता है। किसी आदमी को कोई ऐसी चीज पढनी पडती है जिसे वह नही पढना चाहता, और विश्लेषण से उसे निश्चय हो जाता है कि जो कुछ उसने पढा है, उसे न मानने की प्रबल इच्छा के कारण ही शब्द-परिवर्तन हो गया है।

अप-पठन के जिन अधिक दिखाई देने वाले उदाहरणो का पहले उल्लेख हुआ है, उनमे वे दो बातें प्रमुखता से दिखाई नही देती, जिन्हे गलतियो का तत्र बताते हुए हमने बहुत महत्वपूर्ण बताया था, ये हैं दो प्रवृत्तियो मे सघर्ष, और उनमें से एक का पीछे धकेला जाना, जो गलती करके अपनी कमी पूरी कर लेती है। यह बात नही है कि अप-पठन में कोई इसके विरुद्ध बात होती हो, पर तो भी, इस भूल की ओर झुकने वाली विचार-शृखला की अतिशयता कही अधिक मुख्य होती है और इसे जो निरोध या रुकावट पहले सहनी पडी हो, वह उतनी प्रमुख नही होती। जिन विभिन्न स्थितियो मे भुलक्कडपन के कारण गलतिया होती हैं, उनमें यही दो बातें सबसे अधिक स्पष्ट रूप में दिखाई देती हैं।

सकल्पो को भूल जाने का निश्चित रूप से एक ही अर्थ होता है, उसके अर्थ को, जैसा कि हम सुन चुके हैं, सामान्य आदमी भी अस्वीकार नही करता, सकल्प मे बाधा डालने वाली प्रवृत्ति सदा विरोधी प्रवृत्ति होती है, एक अनिच्छा होती है, जिसके विषय मे यही पता लगाना बाकी है कि वह किसी और, तथा कम छिपे हुए रूप में प्रकट क्यो नही होती, क्योकि इस विरोधी प्रवृत्ति के अस्तित्व में कोई सदेह नही हो सकता। कभी-कभी उन प्रवर्त्तक कारणो का अनुमान भी किया जा सकता है जिनके कारण इस विरोधी भावना को छिपाना आवश्यक हो जाता है, आदमी देखता है कि यदि वह खुले आम इसका विरोध करता तो निश्चितरूप से इसकी निंदा की जाती, परन्तु चतुराई से गलती के रूप में यह सदा अपना उद्देश्य सिद्ध कर लेती है। जब सकल्प करने और उसे अमल मे लाने के बीच में, मानसिक स्थिति मे कोई परिवर्तन होता है, जिसके परिणामस्वरूप अब इसपर अमल करने की जरूरत नही रहेगी, तब यदि उसे भुला दिया जाए तो वह घटना गलतियो के अन्तर्गत नही रहेगी। इस गलती में कोई आश्चर्य करने की चीज़ नही रहेगी क्योकि वह जानता है कि उस सकल्प को याद रखने की कोई आवश्यकता नही रही थी, वह स्थायी रूप से रद्द कर दिया गया था। किसी सकल्प पर अमल करने को भूल

जाना तब ही गलती कहला सकता है, जब मन मानने के लिए कोई कारण न हों कि इस तरह सकल्प को रद्द किया गया है।

सकल्पो को अमल में लाने की बात भूल जाने के उदाहरण आमतौर से ऐसे एक समान और स्पष्ट होते हैं कि वे हमारी गवेषणाओ के लिए कोई दिलचस्पी की चीज नही ह। तो भी दो प्रश्न ऐसे है जिनपर विचार करके इस तरह की गलतियो के अध्ययन से कोई नई बात सीखी जा सकती है। हम कह चुके हैं कि किसी सकल्प को भूल जाना और उसपर अमल न करना, इस बात का सकेत है कि कोई उसकी विरोधी प्रवृत्ति के मुकाबले मे मौजूद है। यह निश्चय ही सच है, पर हमारी अपनी जाच-पडताल से यह पता चलता है कि यह 'विरोधी इच्छा' या 'विपरीत इच्छा'[१] दो प्रकार की हो सकती हैं—प्रत्यक्ष[२] या परोक्ष[३] (अथवा ससक्त और असंसक्त)। इस दूसरी इच्छा का अर्थ स्पष्ट करने के लिए हम एक-दो उदाहरण लेंगे। जब कोई कृपालु अपने कृपाकाक्षी आश्रित के लिए किसी तीसरे व्यक्ति से सिफारिश करना भूल जाता है, तब इसका यह कारण हो सकता है कि उसे उस आश्रित में, असल में, विशेष दिलचस्पी नही है, और इसलिए उसकी सिफारिश करने की कोई विशेष इच्छा नही थी। कम से कम आश्रित तो अपने आश्रयदाता की इस उपेक्षा को इसी दृष्टि से देखेगा। पर हो सकता है कि मामला इससे अधिक उलझा हुआ हो। अपने सकल्प पर अमल करने का विरोध किसी आश्रयदाता में किसी और कारण से, और किसी और लक्ष्य से भी हो सकता है। यह भी हो सकता है कि इसका आश्रित से कोई भी सम्बन्ध न हो, और शायद यह उस व्यक्ति से विरोध के कारण हो, जिससे सिफारिश करनी थी। यहा भी आप देखते हैं कि हमारे निकाले हुए अर्थ को व्यवहार में लागू करने पर क्या आपत्तिया है। गलती का ठीक-ठीक अर्थ लगा लेने के बावजूद, यह खतरा है कि आश्रित व्यक्ति बहुत अधिक सदेही बन जाएगा, और अपने आश्रयदाता के प्रति घोर अन्याय करेगा। फिर, यदि कोई आदमी कोई ऐसा नियत कार्य भूल जाता है, जिसका उसने वचन दिया था, और जिसे पूरा करने का पूरा सकल्प किया था, तो इसका सबसे अधिक सम्भावित कारण निश्चित रूप से यही है कि उसे दूसरे व्यक्ति से मिलने की स्पष्ट अनिच्छा है, पर विश्लेषण से यह बात सिद्ध हो सकती है कि बाधाकारक प्रवृत्ति का सम्बन्ध उस व्यक्ति से नही था, बल्कि मिलने के स्थान से था, जिससे सम्बन्धित कुछ कष्ट-दायक स्मृतियो के कारण वहा जाने से बचा गया, या यदि कोई आदमी पत्र डाक में डालना भूल जाता है, तो हो सकता है कि विरोधी प्रवृत्ति पत्र में लिखी हुई बातों से सम्बन्धित हो, परन्तु इससे यह सम्भावना खत्म नही हो जाती कि पत्र अपने आप में भी हानि रहित नही है, और वह विरोधी प्रवृत्ति का शिकार सिर्फ

---

१ Counter-will. २ Immediate. ३ Mediate

इस कारण हुआ है क्योकि इसमे लिखी हुई किसी चीज से लेखक को पहले लिखे गए एक और पत्र का ध्यान आ गया है, जो सचमुच विरोध का सीधा कारण था। तो, यह कहा जा सकता है कि विरोध पहले पत्र से, जहा कि यह उचित था, मौजूदा पत्र को, जहा इसका असल में कोई उद्देश्य नही है, **स्थानांतरित** हो गया है। इस प्रकार, आप देखते है कि हमारे बिलकुल मजबूत बुनियाद पर निकाले गए अर्थो को लागू करने मे सयम और सावधानी बरतनी आवश्यक है। जो बात मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तुल्य अर्थ वाली है, असल में उसके बहुत-से अर्थ हो सकते हैं।

यह बात आपको बडी अजीब लग सकती है कि ऐसी चीजें होती है। शायद आपका झुकाव यह मानने की ओर होगा कि 'परोक्ष' विपरीतेच्छा ही किसी घटना को रोगात्मक बताने के लिए काफी है, परन्तु मैं आपको यह निश्चित रूप से कह सकता हू कि यह स्वस्थ और सामान्य व्यक्तियो में भी पाई जाती है, और फिर, मेरी बात को गलत रूप मे न समझिए। मेरी बात का यह अर्थ नही है कि मैं यह मान रहा हू कि हमारे विश्लेपणात्मक अर्थो पर भरोसा नही करना चाहिए। मैं कह चुका हू कि किसी योजना पर अमल करने को भूल जाने के बहुत-से अर्थ हो सकते हैं, पर ऐसा उन्ही उदाहरणो में होता है जिनका हमने विश्लेषण नही किया है, और जिनका अर्थ हमें अपने व्यापक सिद्धान्तो के अनुसार लगाना पडता है। यदि उस उदाहरण में व्यक्ति का विश्लेपण किया जाए तो हमेशा काफी निश्चित रूप से यह सिद्ध किया जा सकता है कि विरोध प्रत्यक्ष है, अथवा इसका और कौन-सा कारण है।

अब यह दूसरी बात लीजिए · जब हम बहुत सारे उदाहरणो में यह प्रमाण पाते हैं कि किसी आशय को भूल जाने का मूल विपरीत इच्छा है तो हम यह हल दूसरे समूह के उदाहरणो पर लागू करने का साहस कर सकते हैं, जिनमे विश्लेपित व्यक्ति हमारी अनुमान की हुई विपरीत इच्छा की मौजूदगी को पुष्ट नही करता, बल्कि उसका निपेध करता है। इसके उदाहरण के रूप में ये आम घटनाएं लीजिए, जैसे मागी हुई किताब लौटाना, या कर्ज़ चुकाना भूल जाना। हम सम्बद्ध व्यक्ति से यह कहने का साहस कर सकते है कि आपके मन में पुस्तकें अपने ही पास रख लेने और ऋण न चुकाने का आशय था, जिसपर वह इस आशय का निपेध करेगा, पर अपने आचरण का कोई और स्पष्टीकरण नही दे सकेगा। तब हम यह आग्रह करते है कि उसका यह आशय अवश्य था, पर वह इसे जानता नही है। हमारे लिए इतना काफी है कि यह भूलने के प्रभाव के द्वारा अपना रूप प्रकट कर जाता है। हो सकता है कि तब वह यह बात दोहराए कि मैं इस बारे मे सिर्फ भूल गया था। आपको याद होगा कि हम वैसी ही स्थिति में आ गए हैं, जिसमें एक बार पहले आए थे। यदि हम गलतियो के उन अर्थो को, जो इतने सारे उदाहरणो में उचित सिद्ध हुए है, उनके तर्कसगत निष्कर्प तक ले जाना चाहते हैं, तो हमें मजबूरन यह धारणा

अपनानी होगी कि मनुष्यो में ऐसी प्रवृत्तियो का वास है जिनसे परिणाम तो पैदा होते है, पर मनुष्य उन्हे जानता नही, परन्तु ऐसा कहकर हम अपने आपको जीवन में, और मनोविज्ञान मे प्रचलित सब विचारो के विरोध में खडा कर लेते हैं।

व्यक्तिवाचक नामो और विदेशी नामो तथा शब्दो को भूलने का कारण भी इस तरह एक ऐसी विरोधी प्रवृत्ति में पाया जा सकता है जो प्रत्यक्ष रूप से हो या परोक्ष रूप से, पर प्रस्तुत नाम की विरोधी है। इस तरह के प्रत्यक्ष विरोध के अनेक उदाहरण मैं पहले आपको दे चुका हू। यहा परोक्ष कारण विशेप रूप से अधिक दिखाई देता है, और आम तौर से इसपर रोशनी डालने के लिए सावधानी से जाच करना आवश्यक होता है। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, इस युद्धकाल में, जिसने हमें अपने वहुत सारे पहले के सुख छोडने को मजवूर कर दिया है, व्यक्तिवाचक नामो को याद रखने की हमारी योग्यता को बडे-वडे दूर के सम्वन्धो के कारण वडी हानि पहुची है। कुछ समय पहले ऐसा हुआ कि मुझे मोराविया के सीधे-सादे नगर विसेन्ज का नाम याद न आया, और विश्लेपण से पता चला कि इस मामले में मैं प्रत्यक्ष विरोध का दोपी नही था, वल्कि इसका कारण यह था कि यह नाम ओरविएटो के प्लाजो विसेन्जी के नाम से मिलता हुआ था, जहा मैंने पहले वहुत समय सुख से विताया था। इस नाम के याद आने का विरोध करने वाली प्रवृत्ति के प्रवर्त्तक कारण के रूप में, यहा पहली वार, हमारे सामने एक सिद्धान्त आ रहा है जो वाद में स्नायु-लक्षणो के पैदा करने में वहुत महत्वपूर्ण वनकर सामने आएगा वह यह है कि स्मृति-शक्ति कष्टकारक भावनाओ से सम्वन्वित किसी वात को, जिसके याद आने से कष्ट फिर जाग उठेगा, याद नही करना चाहती। स्मरण द्वारा या अन्य मानसिक प्रक्रमो द्वारा **कष्ट से वचने** की ओर होनेवाली इस प्रवृत्ति मे, कष्टकर वातो से मन के इस पलायन में, शायद हम वह अन्तिम प्रयोजन देख सकें जो न केवल नामो को भूलने के पीछे, वल्कि और वहुत-सी गलतियो, भूलो और चूको के पीछे भी क्रियाशील है।

पर नामो को भूलने की व्याख्या मनोकायिकीय दृष्टि से विशेप आसानी से हो जाती प्रतीत होती है, और इसलिए नाम भूलने की घटना वहा भी प्राय होती है जहा अप्रियताप्रेरक का होना नही सिद्ध किया जा सकता। जव किसी आदमी में नाम भूल जाने की प्रवृत्ति होती है, तव विश्लेपण द्वारा जाच करके इस वात की पुष्टि की जा सकती है कि उसके मन मे नाम सिर्फ इसीलिए नही गायव हो जाते कि वह उन्हे पसद नही करता, या वे उसे किसी अरुचिकर वात की याद दिला देते है, वल्कि इसलिए भी गायव हो जाते हैं क्योकि वह विशेप नाम अधिक घनिष्ठ या गहरे प्रकार के साहचर्यो की किसी और शृखला से जुडा होता है। वह नाम वहा मानो दृढता से वध जाता है, और उस समय प्रवर्तित अन्य साहचर्यो में प्रवेश करने से रोक दिया जाता है। यदि आप स्मृति-प्रणालियो की युक्तियो का स्मरण

करे तो आप कुछ आश्चर्य के साथ यह महसूस करेगे कि जो साहचर्य नामो को भूले जाने से रोकने के लिए वहा कृत्रिम रूप से प्रविष्ट कराये जाते है, उन्हींके कारण वे नाम भूल जाते हैं। इसके प्रमुख उदाहरण व्यक्तियो के नाम है, जिनके मान स्वभावत व्यक्ति-व्यक्ति के अनुसार बहुत भिन्न-भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, एक पहला नाम लें, जैसे थियोडोर। आपमें से कुछ के लिए इसका कोई खास अर्थ नही होगा, कुछ के लिए यह पिता, भाई, या मित्र का, या अपना ही नाम होगा। विश्लेषण के अनुभव से पता चलेगा कि आप में से पहले वर्ग के लोगो को यह भूलने का कोई खतरा नही होगा कि यह किसी अजनबी का नाम हैं; पर शेष लोगो को यह बात लगातार चुभती-सी रहेगी कि एक ऐसा नाम, जो आपको अपने किसी निकट संबंधी के लिए ही सुरक्षित रखा हुआ मालूम होता है, किसी अजनबी का भी हो। अब यह कल्पना करें कि साहचर्यो के कारण उत्पन्न यह निरोध[1] 'कष्ट'-सिद्धान्त के क्रियाशील होने के समय ही होता है, और इसके अतिरिक्त परोक्ष प्रक्रिया से होता है, तब आपको कार्य-कारण संबंध की दृष्टि से इस तरह नाम अस्थायी रूप से भूलने की प्रक्रिया की जटिलता ठीक-ठीक समझ में आ सकेगी। परंतु पर्याप्त विश्लेषण, जिसमे तथ्यो का पूरा ध्यान रखा जाए, इन सब जटिलताओ को खोलकर स्पष्ट कर देगा।

प्रभावो और अनुभवो को भूलने से पता चलता है कि स्मृति से उन बातो को दूर करने की प्रवृत्ति क्रियाशील है जो नामो को भूलने की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रूप और सदा अप्रिय है। यह सारी की सारी बातें निस्सदेह गलतियो की श्रेणी मे नही आती, गलतियो की श्रेणी में यह वही तक आती है, जहा तक सामान्य अनुभव के पैमाने से नापने पर, यह हमें विशिष्ट और अनुचित प्रतीत होती हैं, जैसे, उदाहरण के लिए वहा, जहा हाल के या महत्वपूर्ण प्रभाव भूल जाते हैं, या जहा सारे अच्छी तरह याद सिलसिले में से एक घटना भूल जाती है। यह एक बिलकुल जुदा समस्या है कि हममे भूलने की सामान्य क्षमता कैसे और क्यो होती है और विशेषरूप से हम उन अनुभवो को कैसे भूल जाते हैं जिनकी निश्चित रूप से हम-पर बहुत गहरी छाप पडी थी जैसे कि हमारे बचपन की घटनाए, इसमें कष्टकारक साहचर्यो के विरुद्ध कही जाने वाली बातो का कुछ महत्व है, पर उससे सारी समस्या की कुछ भी व्याख्या नही होती। यह तो असदिग्ध तथ्य है कि नापसद प्रभाव आसानी से भूल जाते हैं। अनेक मनोविज्ञान-विशारदो ने इसपर विचार किया है; और महान डारविन तो इस बात से इतनी अच्छी तरह परिचित था कि उसने अपने लिए यह सुनहरा नियम बना लिया था कि जो प्रेक्षण उसे अपने सिद्धात के लिए प्रतिकूल प्रतीत होते थे, उन्हे वह बडी सावधानी से लिख लेता था, क्योकि उसे यह

---

१ Inhibition.

निश्चय हो गया था कि ये ही स्मृति से निकलकर भाग जाएगे ।

जो लोग पहली बार यह सुनते है कि अप्रिय स्मृति पैदा करने वाली बातें भूल जाती है वे यह ऐतराज जरूर उठाते है कि असल मे वात इससे उलटी है और कष्ट-कारक वातो को भूलना ही सवसे कठिन होता है, क्योकि वे बातें आदमी को दिक करने के लिए उसकी इच्छा के विरुद्ध वार-वार उसके मन में आती हैं, जैसे उदाहरण के लिए, शिकायतो या अपमानो की याद । यह तथ्य विलकुल सही है पर ऐतराज़ कुछ वज़नदार नही । यह समझने के लिए कि मन परस्पर विरोधी आवेगो के सघर्षो के लिए एक अखाडा है, एक रणक्षेत्र है, कुछ और पहले से विचार शुरू करना आवश्यक है, इस बात को निर्जीव क्रियाओ के रूपो में यो कह सकते है कि मन विरोधो, और विरोधी वस्तुओ की जोडियो का वना हुआ है। किसी एक प्रवृत्ति के दिखाई देने का यह अर्थ नही कि इसकी विरोधी प्रवृत्ति नही हो सकती, वहा उन दोनो के रहने के लिए काफी गुजाइश है। महत्वपूर्ण प्रश्न ये हैं ये विरोधी प्रवृत्ति एक दूसरे के साथ किस तरह मौजूद हैं, और उनमें से एक से क्या परिणाम पैदा होते हैं, और दूसरी से क्या परिणाम पैदा होते हैं ?

वस्तुए खो देना या कही रखकर भूल जाना विशेष दिलचस्पी की बातें है, क्यो कि इसके अनेक अर्थ हो सकते है, और ऐसी अनेक प्रवृत्तिया हो सकती है जो गलतियो द्वारा प्रकट होती हो । इन सब उदाहरणो में साझी बात 'कोई चीज खोने की इच्छा' है, सबमें भिन्नता पैदा करने वाली वात इच्छा का कारण और इसका ध्येय है। आदमी चीज खो देता है यदि वह खराव हो गई हो, या उसमें इसके स्थान पर इससे अच्छी चीज लेने का आवेग हो, या आदमी ने उसकी परवाह करनी छोड दी हो, या यदि यह किसी ऐसे व्यक्ति से मिली हो जिसके साथ अप्रियता पैदा हो गई है, या यदि वह ऐसी परिस्थितियो में प्राप्त की गई है जिन्हे आदमी अव नही याद करना चाहता। चीजें गिरने देने, विगाडने, या तोडने में भी वही प्रवृत्ति दिखाई देती है। सामाजिक जीवन में यह कहा जाता है कि अनचाहे और नाजायज वच्चे उन बच्चो से वहुत कमजोर पाए गए हैं जो अधिक सुखद परिस्थितियो में पैदा हुए है। इस परिणाम का यह अर्थ नही है कि पेशेवर शिशु-पालको के भद्दे तरीके काम लाए गए है, वच्चे की देखभाल में थोडी लापरवाही ही काफी कारण है। वस्तुओ का हिफाजत से रखना और विगाडना या खोना भी वच्चो के ढग से ही हो सकता है।

तव फिर यह भी हो सकता है कि कोई वस्तु पहले की तरह मूल्यवान रहती हुई भी अवश्य खो जानी हो, अर्थात् जव किसी आशकित वडी हानि से वचने के लिए कोई चीज भाग्य पर वलिदान करने का आवेग मन में हो । विश्लेपणो से पता चलता है कि इस तरह भाग्य को प्रसन्न करने की प्रवृत्ति भी अभी हमारे अन्दर वहुत व्यापक है, जिसका अर्थ यह है कि हमारी हानिया प्राय स्वेच्छा से चढाया हुआ वलिदान होती हैं । इसी तरह खोने मे विद्वेप के, या आत्मपीडन

अर्थात् स्वय अपने को दड देने के आवेगो का पता चलता है। सक्षेप मे, कोई चीज़ खोकर उससे पिंड छुडाने के आवेग के पीछे जो दूरवर्ती प्रेरणाए हो सकती हैं उनका आसानी से कही अत नही ढूढा जा सकता।

दूसरी गलतियो की तरह, गलत वस्तु उठा लेने या गलत रीति से कार्य करने के द्वारा भी रोकी जाने वाली इच्छा को प्राय पूरा किया जाता है, असली आशय आकस्मिक मौके के रूप में प्रकट होता है। इस प्रकार, जैसा कि एक वार एक मित्र के साथ हुआ भी था, आपको किसी उपनगर में किसी जगह जाना है, और वडी अनिच्छा से आप गाडी पकडते हैं, और फिर किसी जकशन पर गाडी वदलते समय आप, भूल से, शहर लौटने वाली गाडी में वैठ जाते है, या किसी यात्रा मे आप किसी जगह उतरने की वडी तीव्र इच्छा रखते हैं, पर और जगह पहुचने के समय दूसरो के साथ पहले ही नियत कर चुकने के कारण आप यहा नही उतर सकते, और इस-पर आप जकशन पर ग़लती से असली गाडी छोड देते हैं, या किसी ग़लत गाडी में वैठ जाते हैं, जिससे आप जो देर लगाना चाहते थे, वह मजवूरन लग जाती है। या, जैसा कि मेरे एक मरीज के साथ हुआ, जिसे मैंने अपनी प्रेमिका को टेलीफोन करने से मना कर दिया था, उसने मुझे टेलीफोन करते समय 'भूल से' और 'विना विचारे' गलत नवर वोल दिया जिससे उसका टेलीफोन एकाएक उसकी प्रेमिका के टेलीफोन से मिल गया। एक इंजीनियर द्वारा वताया गया निम्नलिखित वृत्तात इस वात का अच्छा उदाहरण है कि किन अवस्थाओ में भौतिक पदार्थो को विगाडा जाता है, इससे प्रत्यक्षत दोपपूर्ण कार्यों का व्यावहारिक महत्व भी स्पष्ट होता है।

"कुछ समय पहले मैंने एक हाई स्कूल की प्रयोगशाला में अनेक सहयोगियो के साथ प्रत्यास्थता[1] के सबध में कुछ उलझनदार परीक्षणो में हिस्सा लिया, और यह काम हमने अपनी इच्छा से अपने ऊपर लिया था, पर इसमें हमे आशा से अधिक समय लग रहा था। एक दिन जव मैं अपने मित्र फ के साथ प्रयोगशाला में गया, तव उसने कहा कि 'आज इतना समय वर्वाद करना कितनी परेशानी का काम है जव कि मुझे घर पर वहुत-सा काम करना है', मुझे उससे सहमत होना ही था, और मैंने उससे कुछ मजाक में, पिछले सप्ताह की घटना की चर्चा करते हुए कहा, 'भगवान् से मनाओ कि मशीन फिर विगड जाए, और हम काम वद करके जल्दी घर लौट सकें' काम वाटते समय ऐसा हुआ कि फ को प्रेस या दावक का वाल्व खोलने-वद करने का काम सौंपा गया, मतलव यह कि उसको सावधानी से वाल्व खोलकर, डव के दाव को सचायक या एकुमुलेटर में से, धीरे-धीरे, जल-दावक या हाइड्रॉलिक प्रेस के सिलिंडर में आने देना था। परीक्षण अध्यक्ष दाव-प्रमापी (प्रेशर गेज) पर खड़ा था और जव ठीक दाव आ गया, तव उसने जोर से पुकारा,

१ Elasticity

'ठहरो !' इस आदेश पर फ ने पूरी ताकत से वाल्व पकडकर उसे घुमा दिया—वाई ओर! (सभी वाल्व दाई ओर को वद होते है, और इसमें कोई अपवाद नही होता।) इससे सचायक का सारा दाव एकाएक दावक में आगया, पर सयोजक नलिया इतना दाव सहने के लिए नही बनी होती और उनमें से एक फट गई—यह विलकुल निरापद दुर्घटना थी, पर तब भी उसने हमें काम वद करके घर चले जाने के लिए मजबूर कर दिया। यह विलक्षण वात है कि इस घटना के कुछ ही समय वाद जब हम वातें कर रहे थे तो मेरे मित्र को मेरी बात से घटना की याद बिलकुल नही आई, पर मुझे वह अच्छी तरह याद थी।"

इस प्रकार ये बातें ध्यान में रखने पर आप यह सदेह करने लगेंगे कि घर के कामो में नौकर-चाकर जो कभी-कभी ऐसे खतरनाक दुश्मनो के-से काम कर बैठते है, उनका कारण 'अकस्मात्' ही सदा नही होता। और आप यह प्रश्न भी उठा सकते है कि जब कोई आदमी अपने-आपको घायल कर बैठता है या खतरे में डालता है, तब क्या यह सदा आकस्मिक घटना ही होती है—आप अवसर मिलने पर इन विचारो की विश्लेपण द्वारा जाच कर सकते है।

ग़लतियो के वारे में जो कुछ कहा गया है, उसके अलावा और वहुत कुछ बाकी है। अभी वहुत-सी वातें जाच और विचार के लिए शेप हैं। पर मैं इतने से ही सतुष्ट हो जाऊगा, यदि आपके पुराने विश्वास, हमारी अव तक की जाच-पडताल मे, हिल गए हो और यदि आपमें नए विश्वास अपनाने के लिए कुछ तत्परता पैदा हुई है। कुछ समस्याए मैं अभी आपके लिए उलझन में ही छोड देना चाहता हू। हम गलतियो पर विचार करके अपने सव सिद्धात सिद्ध नही कर सकते, और न यही वात है कि हम एकमात्र इसी सामग्री पर अवलवित हैं। हमारे प्रयोजन के लिए गलतियो का वडा महत्व इस वात मे है कि वे इतनी आमतौर से होनेवाली घटनाए हें, अपने में आसानी से देखी जा सकती हैं, और वीमारी पर ज़रा भी निर्भर नही हें। अपना व्याख्यान खतम करने से पहले आपके एक और प्रश्न की चर्चा करना चाहता हू, जिसका उत्तर नही दिया गया है "यदि यही वात है, जैसा हमें इतने उदाहरणो से पता चलता है, कि लोग गलतियो को इतनी दूर तक समझने हैं, और वहुत वार इस तरह चेष्टाए करते हैं जैसे कि उन्होने उनका अर्थ समझ लिया है, तो यह कैसे सभव है कि वे इतने व्यापक रूप से उन्हें आकस्मिक, भाव-हीन और अर्थहीन समझें और उनकी मनोविश्लेपणात्मक व्याख्या का इतने ज़ोर-शोर से खडन करें ?"

आप ठीक कहते हैं यह सचमुच विचित्र वात है, और इसकी व्याख्या की आवश्यकता है। पर मैं आपके सामने वह व्याख्या नही करूगा, मैं तो आपको धीरे-धीरे उन मत्रणो की ओर ले जाने वाला रास्ता दिखाऊगा, जिनसे व्याख्या, मेरी वाहरी सहायता के विना ही, बलपूर्वक आपके मन में आ पहुचेगी।

दूसरा भाग

स्वप्न

कठिनाइयां और विषय पर आरंभिक विचार

एक दिन यह खोज हुई कि कुछ स्नायु-रोगियो मे दिखाई देने वाले रोग के लक्षणो का अर्थ होता है[1]। इसी खोज पर इलाज का मनोविश्लेषण वाला तरीका आधारित किया गया। इस इलाज मे यह देखा गया कि रोगी अपने लक्षण बताते हुए अपने स्वप्नो की भी चर्चा करते है। इसपर यह संदेह पैदा हुआ कि इन स्वप्नो का भी अर्थ होता है।

पर हम इस ऐतिहासिक रास्ते पर न जाएगे, और इससे ठीक उलटी दिशा मे चलेंगे। हमारा ध्येय यह है कि स्नायु-रोगो के अध्ययन की तैयारी के सिलसिले मे स्वप्नो का अर्थ समझाया जाए। उलटी प्रक्रिया अपनाने का कारण यह है कि स्वप्नो पर विचार करने से न केवल स्नायु-रोगो पर विचार करने की सबसे अच्छी तैयारी हो सकती है, बल्कि स्वप्न अपने आप मे स्नायु-रोग का एक लक्षण है, और इसके अलावा, इसमे एक यह बडी भारी सुविधा है कि यह सब स्वस्थ मनुष्यो मे होता है। सच तो यह है कि यदि सब मनुष्य स्वस्थ होते और सिर्फ स्वप्न देखते तो हम उनके स्वप्नो से प्राय वह सारा ज्ञान इकट्ठा कर सकते थे जो हमे स्नायु-रोगो के अध्ययन से प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार स्वप्न मनोविश्लेषण सबधी गवेषणा का विषय बन जाते हैं—ये भी 'गलतियो' की तरह सामान्य और बहुत कम महत्व की घटना समझे जाते है, जिनका कोई व्यावहारिक महत्व नही दिखाई देता। और गलतियो की तरह, इनमे भी यह विशेषता है कि ये भी स्वस्थ मनुष्यो मे होते हैं, पर दूसरी दृष्टियो से अध्ययन की अवस्थाए कुछ कम अनुकूल हैं, विज्ञान ने गलतियो की सिर्फ उपेक्षा की थी, लोगो ने उनपर बहुत सिर खपाई नही की थी, पर कम से कम इतना तो था कि उनपर विचार करना कोई बुराई की बात नही थी। लोग कहते थे कि

---

१. यह खोज जोसेफ ब्रायर ने १८८०–१८८२ मे की थी। देखिए १९०९ मे संयुक्तराज्य अमेरिका में दिए हुए मेरे मनोविश्लेषण सबंधी भाषण।

और महत्वपूर्ण बातें तो हैं, पर सभव है, इसका भी कुछ नतीजा निकल सके। परतु स्वप्नो पर विचार करना न केवल अव्यावहारिक तथा अनावश्यक है, बल्कि निश्चित रूप से कलककारक है। इसके साथ अवैज्ञानिक होने का कलक लगा हुआ है, और मदेह होने लगता है कि खोज करने वाला रहस्यवाद की ओर झुकाव रखता है। कोई डाक्टरी का विद्यार्थी स्वप्नो मे सिर क्यो खपाए, जबकि स्नायु-रोग-शास्त्र और मनश्चिकित्सा मे इतनी सारी गभीर बातें मौजूद हैं—सेव जितनी वडी-वडी गाठें मन के यत्र को दबा रही हैं, रक्त-स्राव है, जीर्ण प्रदाहात्मक अवस्थाए हैं, जिनमे ऊतकों[1] मे होने वाले परिवर्तन सूक्ष्मदर्शी यत्र से दिखाए जा सकते हैं। नही, स्वप्न वैज्ञानिक गवेपणा के विपय होने की दृष्टि से बिल्कुल बेकार और तुच्छ हैं।

एक और भी बात है जिसके कारण ठीक-ठीक जाच के लिए आवश्यक परि-स्थितिया नही मिल सकती। स्वप्नो की जाच-पडताल मे गवेपणा का विवय, अर्थात् स्वय स्वप्न भी अनिश्चित है। उदाहरण के लिए, भ्रम मे स्पष्ट और निश्चित रूपरेखा होती है। आपका रोगी साफ शब्दो मे कहता है, "मैं चीन का सम्राट हू", पर स्वप्न ? इसका अधिकतर हिस्सा तो कहकर बताया ही नही जा सकता। जब कोई आदमी किसीको स्वप्न सुनाता है तब इस बात की क्या गारटी है कि उसने सही रूप मे सुनाया है और उसे सुनाते हुए कुछ बदल नही दिया है, या अपनी याददाश्त धुधली होने के कारण उसका कुछ हिस्सा अपनी कल्पना से जोडने के लिए वह मजबूर नही हुआ है ? अधिकतर स्वप्न जरा भी याद नही रहते, और उनके छोटे-मोटे हिस्से को छोडकर, बाकी सब कुछ भूल जाता है। और क्या कोई वैज्ञानिक मनोविज्ञान या रोगियो के इलाज का तरीका ऐसी सामग्री की बुनियाद पर खडा किया जा सकता है ?

किसी आलोचना मे कुछ अतिशयोक्ति देखकर हमे सदेह पैदा हो जाता है। स्वप्न को वैज्ञानिक गवेपणा का विपय बनाने के विरोध मे पेश की गई दलीलें साफ तौर से अति की सीमा तक पहुचती हैं। तुच्छ होने के ऐतराज पर हम पहले 'गलतियो' के सिलसिले मे विचार कर चुके हैं, और यह देख चुके हैं कि छोटे-छोटे मकेतो से वडी-वडी बातें प्रत्यक्ष हो सकती हैं। जहा तक स्वप्नो की अस्प-ष्टता का मबध है, यह तो उसकी अन्य विशेपताओ की तरह एक विशेपता है—हमारे आदेश से वस्तुए अपनी विशेपताए नही बदल लेंगी। इसके अलावा, ऐसे स्वप्न भी होते है जो माफ और मुनिश्चित होते हैं। फिर, मनश्चिकित्सा सबधी जाच-पडताल के बहुत-से दूमरे विपयो मे भी यह अनिश्चितता वाली बात होती है, उदाहरण के लिए, बहुत-से रोगियो के मनोग्रस्तता[2] वाले विचार, पर फिर भी

१ Tissues २ Obsessive ideas

बहुत-से प्रसिद्ध और अनुभवी मनश्चिकित्सको ने उनके अध्ययन मे समय लगाया। मैं आपके सामने इस तरह का वह 'केस' रखूगा जो डाक्टरी की दूकान करते हुए मेरे पास सबसे अत मे आया था। रोगिणी ने अपनी अवस्था इन शब्दो मे पेश की : "मुझे कुछ ऐसा महसूस होता है जैसे मैंने किसी जीवित प्राणी को, शायद किसी बच्चे को नही, नही,—शायद कुत्ते को, घायल कर दिया है, या घायल करने की इच्छा की है, जैसे शायद मैंने इसे पुल से नीचे धकेल दिया—या कुछ और किया है।" स्वप्न की अनिश्चित याद से जो असुविधा होती है, उसे यह तय करके दूर किया जा सकता है कि जो कुछ स्वप्न देखने वाला सुनाता है, ठीक वही स्वप्न माना जाए, और जो कुछ वह भूल गया है, या याद करने के बीच मे बदल गया है, उसे छोड दिया जाए। अत मे आप इतनी आसानी से यह बात नही कह सकते कि स्वप्न महत्वहीन चीज हैं। हम अपने निजी अनुभव से जानते हैं कि स्वप्न से हम जिस मानसिक अवस्था मे जागते हैं, वह सारे दिन बनी रहती है, और डाक्टरों ने ऐसे रोगी देखे हैं, जिनमे मानसिक रोग स्वप्न से शुरू हुआ—स्वप्न से उत्पन्न भ्रम जम गया। इसके अलावा, ऐतिहासिक व्यक्तियो के बारे मे कहा जाता है कि उनमे महत्वपूर्ण कार्य करने के आवेग उनके स्वप्नो से ही पैदा हुए। इसलिए हम यह पूछना चाहते हैं वैज्ञानिक क्षेत्रो मे स्वप्नो को हलकी नजर से देखने का असली कारण क्या है ? मेरी राय मे, पहले उनका जो बहुत अधिक मूल्य आका जाता था, उसकी यह प्रतिक्रिया है। यह बात सब जानते हैं कि गुजरे हुए समय की घटनाओ को फिर से जोडकर तैयार करना आसान काम नही है, पर हम यह निश्चित होकर मान सकते है (मजाक के लिए माफ करें,) कि तीन हजार वर्ष और उससे भी अधिक समय पहले हमारे पूर्वज उसी तरह स्वप्न देखते थे, जैसे हम आज देखते हैं। जहा तक हम जानते है, सब प्राचीन जातिया स्वप्नो को बहुत महत्व देती थी, और उनका व्यावहारिक मूल्य समझती थी। उन्हे उनसे भविष्य के लिए सूचनाए मिलती थीं, और शकुन दिखाई देते थे। यूनानियो और पूर्वी देशो के अन्य निवासियो मे उस जमाने मे स्वप्न का अर्थ पढने वाले के बिना कोई युद्ध करना उसी तरह असभव था, जैसे जासूसी के लिए शत्रु पक्ष मे उतरने वाले सैनिको के बिना आज यह असभव है। जब सिकदर महान् ने अपनी दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया था, तब सबसे प्रसिद्ध स्वप्न-शास्त्री उसके साथ थे। टायर नगर ने, जो उस समय द्वीप पर ही था, उसका इतना प्रबल मुकाबला किया कि वह घेरा उठा लेने का विचार करने लगा। पर उसे एक रात एक सेटायर (एक यूनानी देवता, जिसके पूछ और लबे कान होते हैं।) विजय-हर्ष से नाचता दिखाई दिया और जब उसने स्वप्न-शास्त्रियो को अपना स्वप्न सुनाया, तब उन्होंने बताया कि यह नगर पर आपकी विजय का सूचक है। उसने हमले का हुक्म दे दिया और वह तूफान की तरह टायर पर टूट पडा। ऐट्रस्कनो और रोमनो मे भविष्य की

सूचक दूसरी विधिया काम मे लाई जाती थी, पर सारे यूनानी-रोमन काल मे स्वप्नो के निर्वचन (अर्थ लगाने) का चलन रहा और इसे बडी ऊची नजर से देखा जाता था। इस विषय के साहित्य की कम से कम मुख्य पुस्तक—डैल्डिस के आर-टेमीडोरस जो सम्राट हैड्रीअन के जमाने का बताया जाता है, द्वारा लिखित—तो आज तक मिलती है। मैं यह नही बता सकता कि स्वप्न का अर्थ लगाने की कला का बाद मे कैसे ह्रास हो गया और कैसे स्वप्नो को निंदनीय समझा जाने लगा। शिक्षा की तरक्की से इसका विशेष सबध नही हो सकता, क्योकि मध्य काल के अधकारमय हालात उस समय से बहुत बुरे थे, जब स्वप्नो का अर्थ लगाने की पुरानी परिपाटी लोगो ने श्रद्धा के साथ अपनाई हुई थी। यह बात सच है कि धीरे-धीरे स्वप्न की दिलचस्पी अधविश्वास के स्तर पर आ गई, और वह अशिक्षितो मे ही कायम रही। हमारे जमाने मे भी स्वप्न का अर्थ लगाने की कला अपने सबसे घटिया रूप मे मौजूद है, जिसमे भाग्य के खेलो मे इनाम दिलाने वाली सख्याए स्वप्नो से जानने की कोशिश की जाती हैं। दूसरी ओर, आज के यथार्थ विज्ञान ने स्वप्न पर बार-बार विचार किया है, पर उसका एकमात्र उद्देश्य सदा शरीर विज्ञान सबधी[1] सिद्धात पेश करना ही रहा है। डाक्टरो ने स्वभावत स्वप्न को कभी भी मानसिक प्रक्रम नही माना। उन्होने इसे शारीरिक उद्दीपनो की मानसिक अभिव्यक्ति ही माना है। बिन्ज ने १८७६ मे कहा था "स्वप्न शारीरिक प्रक्रम है जो सदा बेकार और बहुत बार वस्तुत विकृत तथा अस्वस्थ होता है। यह एक ऐसा प्रक्रम है जिसमे और विश्व-आत्मा व अमरता की धारणा मे वही सबध है जो नीले आकाश और गहरी झाडियो से भरी रेतीली धरती मे।" मॉरी ने स्वप्नो की तुलना सट वाइटस के नाच के आवेशात्मक झटको से की है, और स्वस्थ मनुष्य की सूत्रबद्ध चेष्टाओ से इसका भेद दिखाया है। पुराने जमाने मे यह कहा जाता था कि स्वप्न की वस्तु उन ध्वनियो की तरह होगी जो "किसी सगीत न जानने वाले के अपनी दसो उगलिया बाजे पर एक साथ चलाने से पैदा होगी।"

'निर्वचन'[2] का अर्थ है छिपे हुए अर्थ का पता लगाना, पर जब तक स्वप्न के कार्य के बारे मे ऐसा विचार बना हुआ है तब तक निर्वचन की कोशिश करने का कोई सवाल नही पैदा हो सकता। वुट जॉड्ल और हाल के अन्य दार्शनिको ने स्वप्नो का जो वर्णन किया है, उसे देखिए। स्वप्नो की महत्वहीनता बताने की दृष्टि मे, वे सिर्फ यह बताकर सतुष्ट हो गए हैं कि स्वप्न-जीवन के जागृत विचार से कौन-कौन भेद दिखाई देते हैं। उन्होने साहचर्यो मे सम्बन्ध सूत्र के अभाव, आलोचना शक्ति के प्रयोग मे रुकावट, सब तरह के ज्ञान के विलोप और भीतरी

१ Physiological Theories २ Interpretation

कार्यो मे कमी के अन्य सकेतो पर वल दिया है। स्वप्नो के वारे मे हमारे यथार्थ विज्ञान ने हमारे ज्ञान को वढाने मे एक ही कीमती मदद दी है (जिसके लिए हम उसके ऋणी हैं।), और वह नीद के समय स्वप्न-वस्तु पर शारीरिक उद्दीपको के असर से सम्वन्ध रखती है। नार्वे के एक लेखक जे० मोर्ली वोल्ड ने, जिसका हाल ही मे स्वर्गवास हुआ है, स्वप्नो की परीक्षणात्मक जाच पर दो वडी पुस्तकें लिखी हैं (जर्मन भाषा में १६१० और १६१२ मे जिनके अनुवाद हुए थे) जो प्राय सारी की सारी, अगो की स्थिति मे परिवर्तन होने से उत्पन्न परिणामो से भरी पडी हैं। इन जाचो को स्वप्न के विषय मे यथार्थ गवेषणा का आदर्श वताकर हमारे आगे पेश किया जाता है। अब क्या आप यह कल्पना कर सकते हैं कि यदि यथार्थ विज्ञान को यह पता चले कि हम स्वप्नो का अर्थ जानने की कोशिश करना चाहते हैं तो उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी ? वही प्रतिक्रिया होगी जो शायद पहले प्रकट की जा चुकी है। परन्तु हम इस विचार से डरने वाले नही हैं। यदि यह सम्भव था कि गलतियो के पीछे कोई अर्थ हो, तो यह भी सम्भव है कि स्वप्नो के पीछे भी कोई अर्थ हो, और वहुत-से उदाहरणो मे गलतियो का ऐसा अर्थ होता है जो यथार्थ विज्ञान की गवेषणाओ से प्रकट नही हो सका। इसलिए हम प्राचीन लोगो और जनसाधारण की धारणा को अपना कर पुराने जमाने के स्वप्न-शास्त्रियो के पदचिन्हो पर चलेंगे।

सवसे पहले इस कोशिश को शुरू करते हुए हमे अपने आधार वना लेने चाहिए, और स्वप्नो के क्षेत्र का सर्वेक्षण करना चाहिए। यथार्थत स्वप्न क्या चीज हैं ? एक वाक्य मे इसकी परिभाषा करना कठिन है, पर हमे एक सवकी परिचित चीज की वात करनी है, इसलिए परिभाषा के चक्कर मे पडने की जरूरत नही। तो भी, हमे स्वप्नो की सारभूत विशेषताए छाटनी ही चाहिए। इन विशेषताओ का हम कैसे पता लगाए ? जिस क्षेत्र मे हम घुस रहे हैं, उसकी सीमाओ मे जिधर भी चलो, उधर भेद ही भेद हैं—हर चीज दूसरी से भिन्न है। जो चीज सव स्वप्नो मे साझी हो, सभवत वह ही सारभूत चीज है।

तो सव स्वप्नो की एक सामान्य विशेषता यह होगी कि हम स्वप्न देखते समय सोए रहते हैं। सीधी वात है कि स्वप्न नीद के समय का मस्तिष्क का जीवन है, ऐसा जीवन है जिसमे हमारे जागृत जीवन से कुछ सादृश्य होते हैं, और साथ ही, उससे वहुत अधिक भिन्नता होती है। यह अरस्तू की परिभाषा है। शायद स्वप्न और नीद का एक दूसरे से इससे भी नजदीकी सवध है। स्वप्न हमे जगा सकता है, जव हम स्वत. जाग जाते हैं, या नीद से वलात् जागते हैं, तव प्राय हम स्वप्न देख रहे होते हैं। इस प्रकार स्वप्न सोने और जागने के वीच की अवस्था प्रतीत होती है। इसलिए हमे नीद पर ही ध्यान देना होगा। तो नीद क्या है ?

यह एक कायिकीय या जैविकीय समस्या है, जिसके वारे मे अभी वडा विवाद

है। हम किसी निश्चित उत्तर पर नही पहुच सकते। पर मैं समझता हू कि हम नीद की एक मनोवैज्ञानिक विशेपता बताने की कोशिश कर सकते है। नीद एक ऐसी अवस्था है जिसमे मैं बाहर की दुनिया से कोई वास्ता नही रखता, और मैंने उससे अपनी सारी दिलचस्पी हटा ली है। मैं बाहरी दुनिया से हटकर और उससे पैदा होने वाले सब उद्दीपको से विमुख होकर सोता हू। इसी तरह, जब मैं इस दुनिया से थक जाता हू, तब सो जाता हू। जब मैं सोने लगता हू, तब इससे कहता हू "मुझे शाति से रहने दो, क्योकि मैं साना चाहता हू।" बच्चा इससे ठीक उलटी बात कहता है "मै अभी नही सोऊगा, मैं थका नही हू। मैं और खेलना चाहता हू।" इस तरह नीद का जैविकीय उद्देश्य स्वास्थ्य-लाभ या ताजगी प्रतीत होता है। और इसकी मनोवैज्ञानिक विशेपता बाहरी दुनिया मे दिलचस्पी न रखना प्रतीत होती है। मालूम होता है कि जिस दुनिया मे हम इतनी अनिच्छा से आए थे, उससे हमारा सबध तभी सहने योग्य होता है, जब बीच-बीच मे हम उससे अलग होते रहे, इसलिए हम कुछ-कुछ समय बाद उस अवस्था मे चले जाते है, जिसमे हम दुनिया मे आने से पहले थे, अर्थात् हम गर्भावस्था के जीवन मे आ जाते है। चाहे जैसे कहिए, पर हम बिल्कुल वैसी ही अवस्थाए—गर्मी, अधेरा और उद्दीपन का अभाव जो उस अवस्था की विशेपताए हैं,—लाना चाहते है। हममे से कुछ लोग सिकुटकर वैसे ही गेंद की तरह लुढकते है, जैसे गर्भावस्था मे। ऐसा मालूम होता है कि जैसे हम लोग पूरी तरह इस दुनिया के नही है, बल्कि सिर्फ दो-तिहाई अश मे इनके है। हमारा एक-तिहाई भाग अभी बिलकुल पैदा ही नही हुआ। सवेरे हर बार जागने के समय मानो हम नया जन्म लेते है। सच बात तो यह है कि हम नीद से जागने की अवस्था की चर्चा इन्ही शब्दो मे करते है। हम अनुभव करते है, "मानो हमारा नया जन्म हुआ है!" और ऐसा कहते हुए नव-जात शिशु के सामान्य सवेदनो के बारे मे हमारा विचार शायद बिलकुल गलत होता है। इसके विपरीत यह माना जा सकता है कि वह बहुत बेचैनी अनुभव करता है। फिर जन्म का उल्लेख करते हुए हम कहा करते है कि "दिन का प्रकाश देखना।"

यदि नीद का यही स्वरूप है, तब तो स्वप्न इसके अन्तर्गत जरा भी नही आते, बल्कि वे इसमे अप्रिय मेहमान-से प्रतीत होते है, और सचमुच ही हम यह मानते हैं कि बिना स्वप्नो की नीद सबसे अच्छी और एकमात्र ठीक नीद है। नीद मे कोई मानसिक कार्य नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा कोई कार्य होता रहता है तो उतनी मात्रा तक हम प्रसव से पहली वाली सच्ची शाति की अवस्था मे नही पहुच सके हैं। हम मानसिक व्यापार के कुछ अशो से पूरी तरह नही बच सके हैं, और स्वप्न की क्रिया इन अशो को ही सूचित करती है। इस अवस्था मे सचमुच यही मालूम होता है कि स्वप्नो का कोई अर्थ होना आवश्यक नही है। गलतियो

के बारे मे स्थिति कुछ और थी, क्योकि वे कम से कम जागने के जीवन मे दिखाई देने वाली क्रियाए तो थी, पर यदि मैं सो जाता हू और मैंने मानसिक व्यापार को पूरी तरह वद कर दिया है (सिवाय उन अंशो के जिन्हे मैं नही दवा सका) तो कुछ आवश्यक वात नही कि उनका कोई अर्थ हो। सच तो यह है कि ऐसे किसी अर्थ का मैं कोई उपयोग भी नही कर सकता, क्योकि मेरा बाकी मन सोया पडा है। तव यह वस्तुत सिर्फ वीच-वीच मे प्रवल हो जाने वाली प्रतिक्रियाओ का, ऐसी मानसिक घटनाओ का ही मामला रह जाता है जो शारीरिक उद्दीपन से पैदा होती हैं। इसलिए स्वप्न जागते हुए जीवन के मानसिक व्यापार के अवशेष हैं जो नीद को भंग करते हैं, और हमे इस तरह के विषय को, जो मनोविश्लेपण के काम के लिए विल्कुल वेकार है, तुरत छोड देने का पक्का इरादा कर लेना चाहिए।

परतु अनावश्यक या वेकार होते हुए भी स्वप्न होते तो हैं ही, और हम उनके अस्तित्व के कारण ढूढने की कोशिश कर सकते है। मानसिक जीवन नीद मे क्यो नही चला जाता ? शायद इस कारण कि कोई ऐसी चीज़ और मौजूद है जो मन को शाति से नही रहने देती। उद्दीपन इसपर क्रिया कर रहे हैं और इनसे वह अवश्य प्रतिक्रिया करेगा। इसलिए स्वप्न नीद मे मन पर क्रिया करने वाले उद्दीपको पर मन की प्रतिक्रिया का प्रकार है। यहा हमे स्वप्नो को समझने के मार्ग की एक सभावना दिखाई देती है। अव हम विभिन्न स्वप्नो मे यह ढूढने की कोशिश कर सकते हैं कि नीद भग करने का यत्न करने वाले उद्दीपक कौन-से हैं, जिनपर होने वाली प्रतिक्रिया स्वप्नो का रूप लेती हैं। ऐसा करने पर सव स्वप्नो की पहली सामान्य विशेपता हमारे हाथ मे आ जाएगी।

क्या उनकी कोई और सामान्य विशेपता है ? हा, एक और असदिग्ध विशेपता है, पर फिर भी उसे पकडना और उसका वर्णन करना कठिन है। नीद मे मानसिक प्रक्रमो का स्वरूप जागते समय के प्रक्रमो से विल्कुल भिन्न होता है। स्वप्नो मे हम वहुत-से अनुभवो मे से गुजरते हैं, जिनपर हम पूरा विश्वास करते हैं जबकि वास्तव मे हम शायद एक ही नीद का वाधक उद्दीपक अनुभव करते हैं। हमारे अनुभव अधिकतर नेत्रगोचर या आख से दीखने वाले प्रतिविवो के रूप मे होते हैं। उनके साथ भावना और विचार भी मिले हो सकते हैं, और अन्य ज्ञानेन्द्रिया भी अपना कार्य करती हो सकती है, किंतु स्वप्नो का अधिकाश नेत्रगोचर प्रतिविवो का ही वना होता है। कोई स्वप्न सुनाने मे कठिनाई का एक कारण यही होता है कि हमे इन प्रतिविवो को शब्दो के रूप मे वदलना होना है। स्वप्न देखने वाला हमसे वहुत वार कहता है, 'मैं उसकी तस्वीर वना सकता हू, पर उसे शब्दो मे कहना नही जानता।" यह यथार्थत मानसिक क्षमता मे कमी नही है, जैसी कि किसी दुर्वल मन वाले व्यक्ति और प्रतिभाशाली आदमी के अतर मे दिखाई देती

है—यह अतर कुछ गुणात्मक[१] अतर है, परतु ठीक-ठीक यह कहना कठिन है कि क्या अतर है। जी० टी० फेकनर ने एक वार यह सुझाव रखा था कि जिस रगमच पर (मस्तिष्क के भीतर) स्वप्न का नाटक खेला जाता है वह जागते समय के विचारो के जीवन के रगमच से भिन्न होता है। यह ऐसा कथन है जो सचमुच हमारी समझ मे नही आता, न हमे यह पता चलता है कि यह हमे क्या जतलाना चाहता है। पर इससे विचित्रता का वह प्रभाव सचमुच सूचित हो जाता है जो अधिकतर स्वप्नो से हमारे ऊपर पडता है। दूसरे, स्वप्न की क्रिया और सगीत से अनभिज्ञ व्यक्ति द्वारा वादन की तुलना यहा व्यर्थ हो जाती है क्योकि पियानो पर अकस्मात उगली लगने पर भी निश्चित रूप से वही स्वर वजेंगे, चाहे लयें वे नही होगी। स्वप्नो की इस दूसरी सामान्य विशेपता को हम सावधानी से अपने ध्यान मे रखेंगे, चाहे हम इसे समझ न सकें।

क्या कोई और भी गुण सभी स्वप्नों में सामान्य रूप से होते हैं? मेरी समझ मे, कोई नही होता। जिधर देखता हूं उधर ही मुझे उनमे अन्तर दिखाई देते हैं, और अन्तर भी हर वात मे प्रतीत होने वाली अवधि मे, सुनिश्चितता मे, भावो के कार्य में, मन मे उनके स्थायित्व मे इत्यादि। पर किसी उद्दीपक को दूर रखने के लिए किये जाने वाले वाध्यताकारक प्रयत्न मे, जो मामूली भी है और वीच-वीच मे प्रवल भी हो उठता है, हमे स्वभावत जिस चीज की आशा करनी चाहिए, यह वास्तव मे वह चीज नही है। लम्बाई की दृष्टि से कुछ स्वप्न वहुत ही छोटे होते हैं, जिनमे सिर्फ एक प्रतिविंव या वहुत थोडे या एक ही विचार, और कभी-कभी तो एक ही शब्द, होता है। कुछ स्वप्नो मे वस्तु विशेप रूप से अधिक होती है। एक पूरी की पूरी कथा उनमे प्रदर्शित होती है, और वहुत अधिक देर तक चलते रहे मालूम होती है। कुछ स्वप्न इतने स्पष्ट होते हैं जितने की वास्तविक अनुभव, यहा तक कि जागने के कुछ समय वाद तक हमे यह स्पष्ट नही होता कि वे स्वप्न ही थे, और कुछ स्वप्न वहुत ही हलके, धुधले और अस्पष्ट होते है। एक ही स्वप्न मे कुछ हिस्से वहुत अधिक सजीव होते हैं, और उनके वीच-वीच मे ऐसे अस्पष्ट अश आते जाते हैं कि वह सारा ही प्राय धोखा मालूम होता है। फिर, कुछ स्वप्न सर्वथा सुसगत या कम से कम सुसम्वद्ध या समझदारी से भरे हुए या वहुत ही अधिक सुन्दर होते हैं। कुछ स्वप्न मिले-जुले, असम्वद्ध, कमजोर दिखाई देने वाले, वेहूदे या प्राय विल्कुल पागलपन के होते हैं। कुछ स्वप्नो का हमपर कोई प्रभाव नही मालूम होता, और कुछ स्वप्नो मे प्रत्येक भाव अनुभव होता है, इतना कष्ट होता है कि आसू आ जाते हैं, इतना भय लगता है कि हम जाग जाते हैं, आश्चर्य होता है, आनन्द होता है इत्यादि। वहुत-से स्वप्न जागने के कुछ ही

१ Qualitative

समय के वाद भूल जाते है, और कुछ सारे दिन याद रहते है, और धीरे-धीरे उनकी याद हलकी और अस्पष्ट होती जाती है। कुछ स्वप्न ऐसे सजीव रहते हैं (जैसे वचपन के स्वप्न) कि तीस साल वाद भी वे हमे इतने साफ रूप मे याद रहते हैं जैसे वे हाल के ही अनुभव हैं। हो सकता है कि स्वप्न आदमियो की ही तरह, एक वार दिखाई दें और फिर कभी नही लौटें, या कोई आदमी एक ही वात स्वप्न मे उसी रूप या थोडे-वहुत भिन्न रूप मे वार-वार देखता रहे। सक्षेप मे, मानसिक व्यापार के ये अवशेप रात के समय अनन्त घटनाओ के अधीश्वर होते हैं, और ऐसी हर चीज़ पैदा कर सकते हैं जो दिन मे मन पैदा कर सकता है—वस इतना ही है कि यह कभी भी उनके समान यथार्थ नही होती।

स्वप्नो की इन विविधिताओ का कारण तलाश करने के लिए हम यह कल्पना कर सकते हैं कि वे सोने और जागने के वीच की विभिन्न अवस्थाओ, अधूरी नीद के विविध स्तरो, के सूचक हैं। ठीक है, पर तव, मन जागने की अवस्था के जितना-जितना पास पहुचता जाए, उतना-उतना ही, न केवल स्वप्न-कृति के मूल्य, वस्तु और स्पष्टता मे वृद्धि होनी चाहिए, वल्कि यह वोध भी वढते जाना चाहिए कि यह एक स्वप्न है, और ऐसा न होना चाहिए कि स्वप्न मे एक स्पष्ट और समझ मे आने वाले अश के साथ-साथ एक समझ मे न आने वाला या अस्पष्ट अश हो, और उसके वाद फिर कोई अच्छा अश आ जाए। यह निश्चित है कि मन अपनी नीद की गहराई इतनी तेजी से नही वदल सकता। इसलिए यह व्याख्या कुछ सहायक नही होती। सच वात तो यह है कि जवाव पाने का कोई छोटा रास्ता नही है।

फिलहाल हम स्वप्न के 'अर्थ' को छोड देंगे, और इसके वदले स्वप्नो के साधारण अश पर विचार करके उनके स्वरूप को अधिक अच्छी तरह समझने का मार्ग प्रशस्त करने की कोशिश करेंगे। स्वप्नो का नीद से जो सवध है, उससे हमने यह निष्कर्प निकाला है कि स्वप्न नीद खराव करने वाले उद्दीपनो की प्रतिक्रिया है। जैसा कि मैं वता चुका हू एकमात्र इसी प्रश्न पर यथार्थ प्रायोगिक मनोविज्ञान हमारी मदद कर सकता है। यह इस तथ्य का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि नीद के समय जो उद्दीपक प्रभाव डालते हैं, वे स्वप्नो मे दिखाई देते है। इस विपय मे वहुत-सी जाच-पडताल की गई है, और उसकी पराकाष्ठा मोर्ली वोल्ड की जाच-पडताल मे हुई, जिसका मैंने पहले जिक्र किया है। हम लोग अपने कभी-कभी के परीक्षणो से उनके परिणामो की पुष्टि कर सकते हैं। मैं आपको उनमे से शुरू के कुछ परीक्षण वताऊगा। मॉरी ने ये परीक्षाए स्वय अपने ऊपर की थी। स्वप्न देखते हुए उसे कुछ यू डी कोलोन सुघा दिया गया, जिसपर उसने स्वप्न मे देखा कि वह काहिरा मे जोहन मैरिया फैरिना की दूकान मे है, और इसके वाद उसने कुछ पागलपन के साहसी कार्य किए, फिर किसीने उसकी गरदन पर ज़रा-

सा कुछ चुभो दिया, और उसे पलस्तर लगाए जाने का और एक डाक्टर का स्वप्न आया, जिसने बचपन मे उसका इलाज किया था। इसके बाद, उन्होंने उसके माथे पर एक बूद पानी डाला और वह तुरत इटली पहुच गया जहा वह पसीने-पसीने हो रहा था, और ओरविएतो की सफेद शराब पी रहा था।

परीक्षण की अवस्थाओ मे पैदा किए गए इन स्वप्नो के बारे में जो खास बात है वह 'उद्दीपक'-स्वप्नो की एक और श्रेणी मे शायद और भी अधिक स्पष्ट हो जाएगी। ये तीन स्वप्न हैं जिनका एक कुशल प्रेक्षक हिल्डब्राट ने वर्णन किया है, और ये तीनो अलार्म घडी की ध्वनि के प्रतिक्रिया रूप हैं

"वसत ऋतु के एक प्रात काल मैं घूमने जा रहा हू और खेतो मे से गुजरता हू, जिनमे अभी हरियाली शुरू ही हुई है, और पास के एक गाव मे पहुचता हू, और देखता हू कि उसके बहुत सारे निवासी छुट्टी की पोशाकें पहने हुए चर्च जा रहे हैं, और उनके हाथो मे धार्मिक गीतो की पुस्तकें हैं। बेशक यह रविवार है, और सुबह की प्रार्थना शुरू होने ही वाली है। मैं इसमे शामिल होने का निश्चय करता हू पर क्योकि मैं बहुत गर्म हो गया हू, इसलिए यह सोचता हू कि मैं पहले चर्च के चारो ओर वाले आगन मे ठडा हो लू। वहा कुछ कब्र-लेखो को पढते हुए मैं घटा बजाने वाले आदमी को मीनार पर चढता सुनता हू जहा अब बहुत ऊचाई पर मुझे गाव का छोटा-सा घटा दिखलाई पडता है, जो प्रार्थना शुरू होने का सकेत करेगा। कुछ समय तक और वह मौन रहता है, फिर झूलने लगता है, और एकाएक साफ और कान बेधने वाले स्वर मे घटा बजने लगता है। उसकी ध्वनि इतनी साफ और बेधने वाली है कि मेरी नीद टूट जाती है पर घटे की ध्वनि अलार्म घडी से आ रही है।"

प्रतिबिबो का एक और मेल है "यह शिशिर ऋतु का चमकीला दिन है और सडको पर गहरी बर्फ पडी हुई है। मैंने बर्फगाडी की यात्रा मे शामिल होने का वचन दिया है। बहुत देर तक प्रतीक्षा करने के बाद मुझे बताया जाता है कि बर्फ-गाडी दरवाजे पर है। इसके बाद उसके अदर बैठने की तैयारिया होती हैं, समूर का गलीचा बिछा दिया जाता है और मोजे लाए जाते हैं और अत मे मैं अपनी जगह बैठ जाता हू, पर अब भी कुछ देर है और घोडे रवाना होने के लिए सकेत की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसके बाद लगामो को झटका दिया जाता है, और छोटी-छोटी घटिया, जो बुरी तरह हिल उठी हैं, अपना परिचित सगीत इतने ऊचे स्वर से शुरू कर देती हैं कि क्षण भर मे स्वप्न का जाल टूट जाता है। यहा भी यह अलार्म घडी की तीखी आवाज के सिवा कुछ नही है।"

अब तीसरा उदाहरण लीजिए "मैं रसोई बनाने वाली नौकरानी को देखता हूं, जिसके पास एक दूसरी के ऊपर रखी हुई दर्जनो प्लेटें हैं वह भोजन-कक्ष के रास्ते पर जा रही है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि उसके हाथो मे चीनी के

वर्तनो का जो पिरामिड है, वह धम से नीचे आने वाला है। मैं उसे चेतावनी देता हूं 'सावधान, तुम्हारी सारी प्लेटें जमीन पर गिर पडेगी।' मुझे वही सदा वाला उत्तर मिलता है : 'हमें चीनी के वर्तनो को इस तरह ले जाने की आदत पडी हुई है,' इत्यादि, उसके चेहरे पर उत्सुकता है। मैं उसके पीछे-पीछे जाता हू। मैंने पहले ही सोचा था—कि अगली वात यह होगी—वह देहली पर ठोकर खाती है, चीनी के वर्तन गिर जाते हैं, और टुकड़े-टुकडे होकर जमीन पर फैल जाते हैं, लेकिन मैं शीघ्र ही जान जाता हू कि वह खत्म न होने वाली लवी ध्वनि वास्तव मे वर्तन टूटने की ध्वनि नही है, वल्कि अलार्म घडी के नियमित वजने की आवाज़ है, जैसा कि अत मे जागने पर मैं देखता हू।"

ये स्वप्न वडे सुन्दर तथा विल्कुल अर्थयुक्त हैं और ऐसे असम्बद्ध नही है, जैसे कि स्वप्न प्राय. होते हैं। इस आधार पर हमे उनसे कोई विवाद नही है। उन सवमे सामान्य चीज़ यह है कि प्रत्येक अवस्था मे स्थिति शोर से पैदा होती है, और जागने पर स्वप्न देखने वाला पहचान लेता है कि यह अलार्म घडी की आवाज़ है। इस प्रकार हम देखते है कि स्वप्न कैसे पैदा होता है, पर यहा इससे कुछ अधिक वात दिखाई देती है। स्वप्न मे घडी नही पहचानी जाती, वह उसमे दिखाई भी नही देती,पर घड़ी के शोर के स्थान पर दूसरा शोर आ जाता है, जो उद्दीपक नीद मे गडवड डालता है, उसका कुछ रूप वन जाता है पर प्रत्येक उदाहरण मे भिन्न रूप वनता है। ऐसा क्यो होता है ? इसका कोई उत्तर नही, यह विल्कुल मनमानी वात मालूम होती है। पर स्वप्न को समझने के लिए आवश्यक है कि हम इस वात का कारण वता सकें कि अलार्म घड़ी द्वारा पेश किए गए उद्दीपन से वही शोर क्यो वना, कोई और क्यो नही वना। इसी तरह, हमे मॉरी के परीक्षणो पर यह ऐतराज उठाना है कि यद्यपि यह स्पष्ट है कि सोने वाले पर प्रयुक्त उद्दीपक स्वप्न मे अवश्य दिखाई देता है, पर उसके परीक्षणो से इस प्रश्न की व्याख्या नही होती कि वह ठीक उसी रूप मे क्यो प्रकट होता है, क्योकि नीद विगाडने वाले उद्दीपक की प्रकृति से उस रूप की व्याख्या नही होती। और फिर, मॉरी के परीक्षणो मे उद्दीपक के सीधे परिणाम के साथ और वहुतसारी स्वप्न सामग्री थी, जैसे यू डी कोलोन वाले स्वप्न मे पागलो के-से साहसिक काम, जिनका कोई कारण समझ मे नही आता।

अव आप यह समझ सकते हैं कि जो स्वप्न मनुष्य को जगा देते हैं, उनमे ही वाहरी नीद विगाडने वाले उद्दीपको के प्रभाव को जानने का सवसे अच्छा मौका है। दूसरे अधिकतर उदाहरणो मे यह काम अधिक कठिन होगा। सव स्वप्नो मे हमारी नीद नही खुलती, और यदि सवेरे हमे पिछली रात का स्वप्न याद है, तो हम यह कैसे कह सकते हैं कि शायद इसका कारण रात मे क्रिया करनेवाला नीद का विघातक उद्दीपक था ? एक वार मुझे इस तरह के ध्वनि-उद्दीपक की घटना वाद मे

स्थापित करने मे सफलता हुई थी, पर उसका कारण उसकी विशेष परिस्थितिया थी। एक बार मैं टाइरोलीज पर्वत के किसी स्थान पर सवेरे जागा तो मुझे यह ध्यान था कि मैंने स्वप्न मे पोप के मर जाने की घटना देखी है। मैं अपने स्वप्न की कुछ भी व्याख्या न कर सका पर बाद में मेरी पत्नी ने मुझसे पूछा, "क्या आपने आज बहुत सवेरे सब चर्चो और उपासना-घरो मे बजते हुए घटों का भयकर शोर सुना था ?" नही, मैंने कुछ नही सुना था। मेरी नींद बहुत गहरी होती है, पर उसके यह बताने से मैं अपना स्वप्न समझ गया। क्या यह हो सकता है कि इस तरह के उद्दीपक सोने वाले मे स्वप्न पैदा कर दें और बाद मे सोने वाले को सुनाई भी न दें ? हां, बहुत बार कर सकते हैं और बहुत बार नही भी कर सकते। यदि हमे उद्दीपक की कोई जानकारी न मिल सके तो हम इस विषय मे निश्चित नहीं हो सकते। और इसके अलावा भी, हमने नीद बिगाडने वाले बाहरी उद्दीपको का कोई मूल्याकन करना छोड दिया है, क्यो कि हम जानते हैं कि उनसे स्वप्न के एक बहुत छोटे-से हिस्से की ही व्याख्या होती है, सारी स्वप्न-प्रतिक्रिया की नही।

इस कारण हमे इस सिद्धात को पूरी तरह छोड देने की आवश्यकता नही। इसकी जाच करने का एक और भी तरीका हो सकता है। स्पष्ट है कि यह बात महत्वहीन है कि किस चीज से नीद बिगडती है और मन मे स्वप्न पैदा होता है। यदि हमेशा यह जरूरी नही कि यह कोई बाहरी चीज ही हो जो किसी ज्ञानेन्द्रिय पर उद्दीपन के रूप मे क्रिया करती है, तो यह सभव है कि इसके बदले भीतरी अगों मे से कोई उद्दीपक क्रिया करता हो, जिसे कायिक[1] उद्दीपक कहते हैं। यह कल्पना सत्य के बहुत नजदीक मालूम होती है, और साथ ही स्वप्नो के पैदा होने के बारे मे प्रचलित आम विचार से भी मेल खाती है, क्योंकि आम तौर से कहा जाता है कि स्वप्न पेट से पैदा होते हैं। बदकिस्मती से, यहा फिर हमे मानना होगा कि बहुत सारे उदाहरणो मे रात के समय क्रियाशील कायिक उद्दीपन के विषय मे जागने के बाद जानकारी नही मिल सकती, और इस कारण इसे प्रमाणित नही किया जा सकता। पर हम इस तथ्य को आख से ओझल नही करेंगे कि बहुत-से विश्वसनीय अनुभवो से इस विचार की पुष्टि होती है कि स्वप्न कायिक उद्दीपनो से उत्पन्न हो सकते हैं। कुल मिलाकर, इसमे कोई शक नही कि भीतरी अगो की अवस्था का स्वप्नो पर प्रभाव पडता है। बहुत-से स्वप्नो की वस्तु का मूत्राशय के भर जाने, या जननेन्द्रियो के उत्तेजन की अवस्था, से सबध इतना स्पष्ट है कि इसमे ग़लती की गुजायश नही हो सकती। इन स्पष्ट उदाहरणो के बाद हम दूसरे उदाहरणो पर आते हैं, जिनमे, यदि स्वप्नो की वस्तु के आधार पर फैसला किया जाए तो कम से कम हमारा यह सदेह करना उचित है कि ऐसे कुछ कायिक उद्दी-

---

१ Somatic

पन कार्य करते रहे हैं, क्योकि इस वस्तु मे कुछ ऐसी चीज है जिसे इन उद्दीपनो का स्पष्ट रूप या निरूपण या निर्वचन माना जा सकता है। शरनर ने, जिसने स्वप्नो के बारे मे खोज की थी (१८६१), इस विचार का प्रवल समर्थन किया है। वह स्वप्नो का जन्म शारीरिक उद्दीपनो से मानता आया है, और उसने इसके कुछ उत्तम उदाहरण दिए है। उदाहरण के लिए वह एक स्वप्न मे देखता है कि 'दो पक्तियो मे सुदर लडके खडे हैं, जिनके वाल सुदर हैं और चेहरे नाजुक हैं, वे एक दूसरे को ललकार रहे हैं, आपस मे लड रहे है, एक दूसरे को पकड रहे हैं, और फिर छोडकर अपने पहले वाले स्थानो मे पहुच जाते हैं, और फिर वही सारा क्रम शुरू हो जाता है।' लडको की दो कतारो का अर्थ उसने दातो की पक्तिया वताया था जो अपने आप मे तर्कसगत है, और तव इसकी पूरी तरह पुष्टि हुई मालूम होती है जव इस दृश्य के वाद स्वप्न देखने वाला 'अपने जवडे मे से एक लवा दात खीच लेता है।' इसी प्रकार 'लवे, सकरे, घुमावदार मार्गों' का यह अर्थ, कि वे आंतों मे उत्पन्न उद्दीपन से पैदा हुए हैं, ठीक मालूम होता है, और शरनर के इस कथन की पुष्टि करता है कि स्वप्न मुख्यत उस अग का रूप उस जैसे पदार्थो द्वारा प्रस्तुत करने की कोशिश करते हैं, जिससे उद्दीपन पैदा होता है।

इसलिए हमे यह मानने के लिए तैयार रहना चाहिए कि स्वप्नो मे भीतरी उद्दीपक वही कार्य कर सकते हैं जो वाहरी उद्दीपक। वदकिस्मती से इस तथ्य के महत्व पर भी वे ही ऐतराज किए जा सकते हैं। वहुत सारे उदाहरणो मे, कायिक उद्दीपनो के कारण, स्वप्न होने की वात अनिश्चित ही रहेगी या प्रमाणित नही की जा सकेगी। कुछ स्वप्नो से ही यह सदेह पैदा होता है, सवसे नही, कि भीतरी अगो से आने वाले उद्दीपनो का उन स्वप्नो के पैदा होने से कुछ सवध है, और अतिम वात यह है कि जैसे वाहरी सवेदनात्मक उद्दीपन से स्वप्न पर होने वाली उसकी सीधी प्रतिक्रिया की ही व्याख्या होती है, उसके और किसी अश की नही, वैसे ही भीतरी कायिक उद्दीपन से भी और किसी वात की व्याख्या नही होती। स्वप्न के शेष सारे हिस्से के उद्गम का कुछ भी पता नही चलता।

पर अव हमे स्वप्न-जीवन की एक ऐसी विशेषता की ओर ध्यान देना है जो इन उद्दीपनो की क्रिया पर विचार करते समय सामने आती है। स्वप्न उद्दीपन को फिर वैसे का वैसा ही पेश नही कर देता, वल्कि उसे स्पष्ट करता है, वदलता है, एक सिलसिले मे जमा देता है, या उसके स्थान पर कोई और चीज ला रखता है। स्वप्न-तत्र का यह पहलू हमे अवश्य दिलचस्प लगेगा, क्योकि सभव है कि यह हमे स्वप्न के सच्चे स्वरूप के अधिक नजदीक पहुचा दे। मनुष्य के उत्पादन का क्षेत्र जरूरी तौर से उस वातावरण तक सीमित नही होता, जिसमे वह किया जाता है। उदाहरण के लिए, शेक्सपियर का 'मैकवेथ' उस राजा के गद्दी पर वैठने पर एक सामयिक नाटक के रूप मे लिखा गया था, जिसने तीन राज्यो के राजमुकुटो

को एक साथ धारण किया था, पर क्या यह ऐतिहासिक अवसर नाटक की सारी कथावस्तु मे व्यापक है, या उसकी भव्यता और रहस्यमयता की व्याख्या करता है ? शायद इसी तरह, सोने वाले मे क्रिया कर रहे बाहरी और भीतरी उद्दीपन स्वप्न के अवसर मात्र हैं और उनसे हमे इसके सच्चे स्वरूप का दर्शन नही होता।

सब स्वप्नो मे मिलने वाली दूसरी बात, अर्थात् मानसिक जीवन मे उनकी विशेषता या विलक्षणता को, एक ओर तो, पकडना बडा कठिन है और दूसरी ओर, इससे आगे जाच-पडताल के लिए कोई रास्ता मिलता नही मालूम होता। स्वप्नो मे हमारे अधिकतर अनुभव नेत्रगोचर प्रतिबिंबो के रूप में होते हैं। क्या उद्दीपको से इनकी व्याख्या की जा सकती है ? क्या वास्तव मे हम उद्दीपको को ही अनुभव करते हैं ? यदि ऐसा है तो अनुभव नेत्रगोचर अर्थात् आख से ग्रहण किया जाने वाला, क्यो होता है ? जब कि ऐसा बहुत ही कम उदाहरणो मे हो सकता है कि हमारी आख पर किसी उद्दीपक ने क्रिया की हो ? अथवा, क्या यह सिद्ध किया जा सकता है कि जब हम बोलने का स्वप्न देखते हैं, तब कोई बातचीत या बातचीत से मिलती-जुलती ध्वनि हमारे कानो मे पडी होती है ? मैं बिना किसी दुविधा के इसे असभव कहता हू।

अब, यदि हम स्वप्नो की सामान्य विशेषताओ से विचार शुरू करके और आगे नही बढ सकते, तो आइये, अब उनकी भिन्नताओ पर विचार करने की कोशिश करे। प्राय स्वप्न अर्थहीन, मिले-जुले, खिचडी-से और बेतुके होते हे, पर फिर भी कुछ स्वप्न समझदारी वाले, मयत और तर्क-सगत होते हैं। यह देखना चाहिए कि ये समझदारी वाले स्वप्न उन स्वप्नो को स्पष्ट करने मे हमारी कुछ सहायता कर सकते हैं या नही जो अर्थहीन हैं। मैं आपको सबसे ताजा तर्क सगत स्वप्न सुनाऊगा, जो मुझे एक नौजवान ने सुनाया है "मैं कार्न्टनरस्ट्रासे मे घूमने गया और वहा क्ष महाशय से मिला। कुछ देर उसका साथ देने के बाद मैं एक चाय-घर मे गया। दो महिलाए और एक सज्जन और मेरी मेज पर बैठे गये। पहले मैं परेशान हुआ, और मैंने उनकी ओर न देखा, पर बाद मे मैंने उनकी ओर नजर डाली और देखा वे बहुत अच्छे थे।" इसपर स्वप्न देखने वाले ने यह बताया कि पिछली शाम को वह सचमुच कार्न्टनरस्ट्रासे मे, जो उसका आमतौर से जाने का रास्ता है, घूम रहा था, और वहा वह क्ष महाशय मे मिला था। स्वप्न का दूसरा हिस्सा किसी बात का सीधा स्मरण नही था, पर कुछ समय पहले की एक घटना से थोडा मिलता-जुलता था। अब एक और सादा स्वप्न देखिए, जो एक महिला का है। उसका पति उससे कहता है "क्या तुम्हारी राय मे हमे पियानो की 'ट्यूनिंग' (समस्वरण) नही करा लेना चाहिए ?" और वह उत्तर देती है "बिल्कुल बेकार है, क्योंकि चाभियो[1] पर नया चमडा लगना जरूरी है।" यह

---

१ Hammers

स्वप्न उस वातचीत की आवृत्ति है, जो उसमे और उसके पति मे स्वप्न से पहले दिन लगभग इन्ही शब्दो मे हुई थी। तो इन दो भावनाहीन स्वप्नो से हमे क्या पता चलता है ? सिर्फ इतना ही, कि उनमे दैनिक जीवन की या उससे सवधित वातो की स्मृतिया होती हैं। यदि यह वात निरपवाद रूप से सव स्वप्नो के वाद मे कही जा सकती, तो वह भी कुछ महत्व की होती, पर उसका कोई सवाल ही नही है। यह विशेषता भी वहुत ही थोडे स्वप्नो मे होती है। अधिकतर स्वप्नो मे पहले दिन की वातो से कोई सवध नही होता, और अर्थहीन तथा वेतुके स्वप्नो पर भी इससे कोई रोशनी नही पडती। हम इतना ही जानते है कि हमारे सामने एक नई समस्या आ गई है। इतना ही नही कि हम स्वप्न का अर्थ जानना चाहते हैं, वल्कि यदि वह स्पष्ट हो, जैसा कि हमारे उदाहरणो मे है, तो हम यह भी जानना चाहते हैं कि जो वात हमे मालूम है और हाल मे ही हमारे साथ हुई है, उने हम किस कारण और किस उद्देश्य से स्वप्न मे दोहराते हैं।

मैं समझता हू कि यहा तक हमने जिस तरह की कोशिशे की है, उन्हे आगे जारी रखने से जैसे मैं ऊव गया हू वैसे ही आप भी ऊव गये होगे। इससे यही प्रकट होता है कि अधिक से अधिक दिलचस्पी होने पर भी हम किसी समस्या को तव तक हल नही कर सकते, जव तक हमारे सामने समाधान पर पहुचने के लिए अपनाये जाने वाले रास्ते की भी कुछ कल्पना न हो। अव तक हमे वह रास्ता नही मिला। प्रायोगिक मनोविज्ञान ने इस दिशा मे सिर्फ इतना ही किया है कि स्वप्नो के पैदा होने मे उद्दीपनो के महत्व के विषय मे कुछ वहुत कीमती जानकारी दी। दर्शन से हम कुछ आशा नही कर सकते, वह तो वडप्पन दिखाता हुआ यही वात दोहरा सकता है कि हमारा उद्देश्य वौद्धिक दृष्टि से तिरस्कार योग्य है, और रहस्यमय विज्ञानो मे हम कोई वात लेना ही नही चाहते। इतिहास और जनता के फैसले से हमे पता चलता है कि स्वप्नो का अर्थ और महत्व होता है, और वे भविष्य के सूचक होते हैं। पर इस वात को स्वीकार करना कठिन है, और निश्चित ही, इसे प्रमाणित नही किया जा सकता। तो इस प्रकार, हमारे पहले प्रयत्न पूरी तरह विफल हो जाते है।

पर अचानक ही ऐसी दिशा से एक सकेत मिलता है जिसकी ओर हमने आज तक ध्यान नही दिया। वोलचाल की भाषा, जो निश्चित रूप से अचानक नही वन गई है, वल्कि मानो प्राचीन ज्ञान का खजाना है—पर इस वात को वहुत तूल न देना चाहिए—हमारी भाषा एक ऐसी चीज का अस्तित्व मानती है जिसे हमने 'दिवास्वप्नो' का नाम दे रखा है, यह नाम भी विचित्र ही है। दिवास्वप्न कल्पना होते है (कल्पना से उत्पन्न होते है)। वे आमतौर से होते रहते हैं और रोगियो की तरह स्वस्थ व्यक्तियो मे भी दिखाई देते हैं, और उनका अध्ययन भी माध्यम (पात्र) द्वारा स्वय आसानी से किया जा सकता है। इन कल्पना से उत्पन्न सृष्टियो के वारे मे

सबसे विचित्र बात यह है कि उन्हें 'दिवास्वप्नो' का नाम दिया गया है, क्योकि उनमे स्वप्नो की दो व्यापक विशेषताओ मे से कोई भी बात नही है। उनके नाम से ही स्पष्ट है कि नीद से उनका कोई सबध नही, और जहा तक दूसरी व्यापक विशेषता का सबध है, उनमे कोई अनुभव या मतिभ्रम[1] भी नही होता, सिर्फ इतना होता है कि हम कुछ बातो की कल्पना कर लेते हैं। हम जानते हैं कि वे कल्पना से पैदा होते हैं, कि हम देख नही रहे, बल्कि सोच रहे है। ये दिवास्वप्न वय सन्धि, अर्थात् जवानी के शुरू मे या बचपन के अत मे दिखाई देते हैं, और पक्की उम्र होने तक बने रहते हैं। पक्की उम्र मे या तो वे छूट जाते हैं या जीवन भर साथ रहते हैं। इन कल्पना सृष्टियो की वस्तु एक बहुत सूक्ष्म प्रेरक कारण से उत्पन्न होती है। ऐसे दृश्य या घटनाए इनकी प्रेरक होती हैं जो या तो आकाक्षा की अहकार-मूलक लालसाओ को, या सत्ता की लिप्सा को, अथवा पात्र की कामुक इच्छाओ को तृप्त करती हैं। नौजवानो मे आकाक्षा से पूर्ण कल्पनाए मुख्य होती है स्त्रियो मे, जिनकी आकाक्षा प्रेम सबधी सफलता पर केंद्रित होती है, कामुक कल्पनाए मुख्य होती हैं, पर पुरुपो में भी कामुक भावना प्राय छिपी हुई देखी जा सकती है। वास्तव मे, उनके सारे वीरता के कार्यो और सफलताओं का एममात्र आशय स्त्रियो का हृदय जीतना होता है। अन्य दृष्टियों से इन दिवास्वप्नो मे बडी भिन्नता होती है, और उनका अत भी भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है। या तो वे सब कुछ समय बाद छूट जाते हैं, और उनके स्थान पर कोई नया स्वप्न आ जाता है, अथवा वे बने रहते हैं, और उनके चारो ओर लम्बी-लम्बी कहानिया लिपट जाती हैं, और उन्हे जीवन की बदलती हुई परिस्थितियो के अनुकूल बना लिया जाता है। वे जमाने के साथ आगे बढते हैं, और उनपर मानो डेट-स्टाम्प या तारीख की मोहरे लगती जाती हैं, जिनसे नई-नई स्थिति के असर का पता चलता है। वे काव्य-रचना का उपादान बन जाते हैं, क्योकि लेखक अपने दिवास्वप्नो का रूप बदलकर या उन्हे छोटा-बडा करके उनमे से ही वे स्थितिया पैदा करता हैं, जो वह अपनी कहानियो, उपन्यासो और नाटको के रूप मे पेश करता है, पर दिवास्वप्न का नायक सदा माध्यम (पात्र) स्वय होता है—वह या तो प्रत्यक्ष रूप मे कल्पित होना है, और या किसी और के साथ प्राय एकरूप हो जाता है।

शायद दिवास्वप्नो का यह नाम पडने का कारण उनका यथार्थता से स्वप्न जैसा सबध होता है। इससे यह बात सूचित होती है कि उनकी वस्तु को उसी तरह यथार्थ नही माना जा सकता, जिस तरह स्वप्न की वस्तु को, पर यह भी सभव है कि उन्हे स्वप्न की किसी ऐसी मानसिक विशेपता के कारण 'स्वप्न' शब्द

---

१ Hallucination

से पुकारा गया हो जिसे हम श्रभी नही जानते, पर जिसे खोजने की हम कोशिश कर रहे हैं। दूसरी श्रोर, यह भी हो सकता है कि नाम के सादृश्य को हमारा महत्वपूर्ण समझना विलकुल गलत हो। इस प्रश्न का उत्तर वाद मे ही दिया जा सकता है।

व्याख्यान | ६

आरम्भिक परिकल्पनाएं* और निर्वचन की विधि

इस प्रकार हमने समझ लिया कि यदि हमे स्वप्नो के बारे मे अपनी गवेषणाओ को आगे बढाना है तो हमे एक नए रास्ते, और एक सुनिश्चित विधि से चलना होगा। अब मैं एक सरल-सा सुझाव पेश करूगा। हमे आगे की सारी जाच इस परिकल्पना के आधार पर करनी चाहिए कि स्वप्न कायिक घटना नही है, बल्कि मानसिक घटना है। आप इसका अर्थ जानते हैं, पर ऐसी कल्पना करने का औचित्य क्या है ? हमारे पास कोई औचित्य नही, पर दूसरी ओर हमे इससे रोका भी तो नही जा सकता। स्थिति यह है, यदि स्वप्न कायिक घटना है तो इसका हममे कुछ वास्ता नही। इस परिकल्पना के आधार पर ही हमे इसमें दिलचस्पी हो सकती है कि यह एक मानसिक घटना है। इसलिए यह देखने के लिए कि इस परिकल्पना को सत्य मान लिया जाए तो क्या होता है, हम इसे सत्य मान लेंगे। हमारे कार्य के परिणामो से यह तय होगा कि हम इस परिकल्पना पर कायम रह सकते हैं और इसे उचित रीति से निकाले गए अनुमान के रूप मे सिद्ध कर सकते हैं या नही। पर हमारी इस जाच-पडताल का उद्देश्य ठीक-ठीक क्या है, या हमारे प्रयत्नो का लक्ष्य क्या है ? हमारा उद्देश्य वही है जो सभी वैज्ञानिक प्रयासो का होता है अर्थात् घटनाओ को समझना, उनमे परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना और अन्त मे जहा कही सम्भव हो उनपर अपना अधिकार बढाना।

इस प्रकार हम यह मानकर आगे बढते हैं कि स्वप्न एक मानसिक घटना है। उस हालत मे वे स्वप्न देखने वाले की कृति और वचन हैं, पर उस प्रकार की कृति और वचन हैं, जिससे हमे कुछ अर्थ पता नही चलता और जिसे हम समझते नही। अब मान लीजिए कि मैं कोई ऐसी बात कहता हू जो आपकी समझ मे नही आती, तो आप क्या करते हैं ? आप मुझसे स्पष्टीकरण करने को कहते हैं, है न ? तो फिर यही बात क्यो न की जाए—स्वप्न देखने वाले से ही उसके स्वप्न का

*Hypotheses

अर्थ क्यों न पूछा जाए ?

आपको याद होगा कि हम पहले भी ऐसी स्थिति मे आ चुके हैं। इस समय हम कुछ गलतियो के वारे मे जाच-पडताल कर रहे थे, और हमने वोलने की गलती का उदाहरण लिया था। किसीने कहा था . "तव कुछ वस्तुए रिफिल्ड (Re-filled) थी" और इसपर हमने पूछा था, नही, नही, खुशकिस्मती से, पूछने वाले हम नही थे, वल्कि दूसरे लोग थे जिनका मनोविश्लेपण से कोई वास्ता नही था, तो, उन्होंने पूछा था कि आपके इस अजीव शव्द-प्रयोग का क्या अर्थ है ? उसने तुरन्त उत्तर दिया कि मैं यह कहना चाहता था "वह एक फिल्दी (filthy) कारवार है," पर उसने अपने आप को रोका, और उन शव्दो की जगह कुछ नए शव्द प्रयुक्त किए "चीज वहा 'रिवील्ड' (Revealed) थी।" मैंने तव आपको वताया था कि यह पूछ-ताछ मनोविश्लेपण सम्वन्धी प्रत्येक जाच-पडताल का आदर्श या नमूना है, और अव आप जानते है कि मनोविश्लेपण की विधि यह यत्न करती है कि जहा तक हो सके, वहा तक उन व्यक्तियो को अपनी समस्याओ का स्वय उत्तर देने का मौका दिया जाये, जिनका विश्लेषण किया जा रहा है। अत स्वप्न देखने वाले को स्वय अपने स्वप्न का निर्वचन हमारे सामने पेश करना चाहिए।

परतु, जैसा कि हम जानते है, स्वप्नो के मामले मे यह काम इतना सीधा नही है। गलतियो के सिलसिले मे यह विधि वहुत-से उदाहरणो मे सभव सिद्ध हुई। जहा पूछने पर व्यक्ति ने कुछ भी वताने से इकार कर दिया और अपने सामने पेश किए गए उत्तर का गुस्से से खडन भी किया, वहा दूसरी विधिया थी। स्वप्नो मे पहले प्रकार के उदाहरणो का विलकुल अभाव है। स्वप्न देखने वाला सदा यह कहता है कि मैं उसके वारे मे कुछ नही जानता। वह हमारे निर्वचन का खडन भी नही कर सकता, क्योकि हमारे पास उसके सामने पेश करने के लिए कोई निर्वचन ही नही है। तो क्या हम अपनी कोशिश छोड देंगे, क्योकि वह कुछ नही जानता और हम कुछ नही जानते और तीसरा व्यक्ति तो निश्चित ही कुछ नही जान सकता, इसलिए उत्तर मिलने की कोई सभावना हो ही नही सकती ? इसलिए यदि आप चाहे तो कोशिश छोड़ दीजिए, पर यदि आपका ऐसा विचार नही है तो आप मेरे साथ आगे चल सकते हैं, क्योकि मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि न केवल यह विलकुल सभव है, वल्कि वहुत अधिक सभाव्य भी है कि स्वप्न देखने वाला वास्तव मे अपने स्वप्न का अर्थ जरूर जानता है, **हां, वह यह नहीं जानता कि वह जानता है, और इसलिए सोचता है कि वह नहीं जानता।**

यहा पहुंचने पर शायद आप मेरा ध्यान इस वात की ओर खींचेंगे कि मैं फिर एक कल्पना को वीच मे ला रहा हू, जो इस छोटे-से प्रकरण मे दूसरी कल्पना है, और ऐसा करके मैं अपने इस दावे को वहुत कमजोर कर रहा हू कि हमारे पास

आगे बढने की एक विश्वसनीय विधि है। पहले यह परिकल्पना मान लें कि स्वप्न मानसिक घटनाए हैं, और फिर यह परिकल्पना मान लें कि मनुष्यो के मन मे कुछ ऐसी बातें होती हैं, जिन्हे वे जानते हैं, पर यह नही जानते कि वे इन्हे जानते हैं— और इसी तरह परिकल्पनाए करते जाइए। आपको इन दोनो परिकल्पनाओ की अपनी भीतरी असंभाव्यता का ध्यान रहेगा और आप इनसे निकाले जाने वाले निष्कर्षो मे सारी दिलचस्पी छोड बैठेंगे।

बात यह है कि मैं आपको किसी भ्रम में डालने के लिए या कोई बात आपसे छिपाने के लिए यहा नही लाया हू। सच है कि मैंने यह कहा था कि मैं 'मनोविश्लेषण पर परिचयात्मक व्याख्यान' शीर्षक से कुछ व्याख्यान दूगा, पर मेरा यह प्रयोजन नही था कि मैं आपके सामने चमत्कार भरी बातें पेश करू, और यह जाहिर करू कि तथ्य कितनी आसानी से एक दूसरे के पीछे जुडे हुए हैं, और सभी तरह की कठिनाइयो को सावधानी के साथ आपसे छिपाता चलू, बीच की खाली जगहो को भरता चलू और संदिग्ध प्रश्नो पर बढा-चढाकर बाते करता चलू, ताकि आप सहूलियत से इस विश्वास का आनद ले सकें कि आपने कोई नई चीज सीख ली है। असल मे इस तथ्य के कारण ही, कि आप लोग इस विषय मे नए हैं, मुझे यह चिंता है कि मैं अपने विज्ञान का वही रूप आपके सामने रखू जो असल मे है, जिसमे इसकी सब अडचनें और विषमताए भी आपके सामने आए और आपको यह भी पता चले कि यह कौन-कौन-से दावे करता है, और इसकी क्या-क्या आलोचना की जा सकती है। मैं नि सदेह जानता हूं कि प्रत्येक विज्ञान मे यही बात होती है, और विशेष रूप से शुरू मे, इसके अलावा और कुछ बात हो भी नही सकती। मैं यह भी जानता हू कि दूसरे विज्ञान पढाते हुए नये सीखने वाले से शुरू मे इन कठिनाइयो और कमजोरियो को छिपाने की कोशिश की जाती है, पर मनोविश्लेषण मे ऐसा नही किया जा सकता। इसलिए मैंने वास्तव मे दो परिकल्पनाए रखी हैं जिनमे से एक दूसरी के भीतर है, और जिन्हें यह सब काम बहुत मेहनत का या बहुत अनिश्चित मालूम होता है, या जिन्हें अधिक निश्चितता की या अधिक साफ निष्कर्षो की आदत पडी हुई है, उन्हे मेरे साथ आगे चलने की जरूरत नही है। उन्हे मैं यही सलाह दूगा कि वे मनोवैज्ञानिक समस्याओ को बिल्कुल हाथ न लगाए, क्योकि यह ऐसा क्षेत्र है जिसमे उन्हें उतने यथार्थ और निश्चित मार्गो पर चलने का मौका नही मिलेगा, जिन पर चलने को वे तैयार हैं। और फिर किसी भी ऐसे विज्ञान के लिए, जो ज्ञान मे कोई वास्तविक अभिवृद्धि कर सकता है, अपने अनुयायी हासिल करने की कोशिश करना और अपना प्रचार करने की कोशिश करना बिलकुल गैर जरूरी है। इसका स्वागत इसके परिणामो के आधार पर होना चाहिए, और जब तक दुनिया इसके परिणामो की ओर ध्यान देने को मजबूर नही होती, तब तक यह तसल्ली से प्रतीक्षा कर सकता है।

पर आप मे से जो लोग इस तरह रुकने वाले नही हैं, उन्हे मैं यह चेतावनी पहले ही दे देना चाहता हू कि मेरी दोनो परिकल्पनाओ का बराबर महत्व नही है। पहली परिकल्पना, कि स्वप्न मानसिक घटनाए हैं, को हम अपनी गवेषणा के परिणामो से सिद्ध कर देने की आशा करते हैं। दूसरी परिकल्पना एक और क्षेत्र मे पहले ही सिद्ध की जा चुकी है, और मैंने इतना ही किया है कि उसे अपनी समस्याओ पर लागू कर लिया है।

यह परिकल्पना कि मनुष्य मे ऐसा ज्ञान हो सकता है, जिसके बारे मे वह यह न जानता हो कि उसमे है कहा और किस प्रसग मे सिद्ध की गई है? निश्चित रूप से यह एक बडा विलक्षण और आश्चर्यजनक तथ्य होगा जो मानसिक जीवन की हमारी अवधारणा को बदल देगा, और जिसके कारण छिपाने की कोई आवश्यकता नही रहेगी। प्रसगत यह कहा जा सकता है कि यह ऐसा तथ्य होगा जो अपने निरूपण मे ही असत्य है पर फिर भी अक्षरश सत्य होना चाहता है। यह एक विरोधाभास है, पर छिपाने की यहा कोई कोशिश नही है। लोग इसे नही जानते या इसमे दिलचस्पी नही रखते तो इसमे इस तथ्य का उतना ही दोष है जितना कि हमारा, क्योकि इन मनोवैज्ञानिक समस्याओ पर ऐसे लोगो ने फैसले दे रखे है जिन्होने कभी एक भी प्रेक्षण या परीक्षण नही किया जबकि प्रेक्षण और परीक्षण ही वास्तव मे किसी निश्चित परिणाम पर पहुचा सकते हैं।

जिस प्रमाण की मैं चर्चा कर रहा हू, वह समोहन सबधी या हिप्नोटिक घटनाओ के क्षेत्र मे प्राप्त हुआ था। १८८९ मे नान्सी मे लीबोल्ट और बर्नहीम द्वारा किये गए विशेष रूप से प्रभावोत्पादक प्रदर्शनो मे मैं उपस्थित था, और वहा मैंने निम्नलिखित परीक्षण देखा। एक आदमी को निद्रावस्था[1] मे लाया गया और इसके बाद उसे सब तरह के मतिभ्रमो के अनुभवो मे से ले जाया गया। जगाये जाने पर पहले तो ऐसा मालूम हुआ कि समोहन की नीद मे जो कुछ हुआ था, उसका उसे कुछ पता ही नही था। तब बर्नहीम ने उससे सीधे शब्दो मे कहा कि तुम्हारे समोहित अवस्था मे होने पर जो कुछ हुआ था, वह बताओ। उस आदमी ने कहा कि मुझे कुछ याद नही आता। परंतु बर्नहीम ने इस बात पर जोर दिया, उससे आग्रह किया और उसे विश्वास दिलाया कि वह अवश्य जानता है, और उसे अवश्य याद होगा, और तमाशा देखिए कि वह आदमी सकुचाया, सोचने लगा, और फिर जो घटनाए उसके मन मे आदेशित[2] की गई थीं, उनमे से पहली धुधले रूप मे उसे याद आ गई। उसके बाद कई और बात याद आई, और धीरे-धीरे उसकी स्मृति अधिकाधिक स्पष्ट और पूर्ण होती गई और अत मे उसने सारी बातें बता दी—एक भी बात नही छोडी। बीच मे उसे कही से कुछ पता नही चला था, लेकिन आखिरकार

१. Somnambulism २ Suggested

आगे बढने की एक विश्वसनीय विधि है। पहले यह परिकल्पना मान लें कि स्वप्न मानसिक घटनाए हैं, और फिर यह परिकल्पना मान लें कि मनुष्यो के मन मे कुछ ऐसी बातें होती हैं, जिन्हे वे जानते हैं, पर यह नही जानते कि वे इन्हे जानते हैं—और इसी तरह परिकल्पनाए करते जाइए। आपको इन दोनो परिकल्पनाओ की अपनी भीतरी असभाव्यता का ध्यान रहेगा और आप इनसे निकाले जाने वाले निष्कर्षो मे सारी दिलचस्पी छोड बैठेंगे।

बात यह है कि मैं आपको किसी भ्रम मे डालने के लिए या कोई बात आपसे छिपाने के लिए यहा नही लाया हू। सच है कि मैंने यह कहा था कि मैं 'मनोविश्लेषण पर परिचयात्मक व्याख्यान' शीर्षक से कुछ व्याख्यान दूगा, पर मेरा यह प्रयोजन नही था कि मैं आपके सामने चमत्कार भरी बातें पेश करू, और यह जाहिर करू कि तथ्य कितनी आसानी से एक दूसरे के पीछे जुडे हुए हैं, और सभी तरह की कठिनाइयो को सावधानी के साथ आपसे छिपाता चलू, बीच की खाली जगहो को भरता चलू और सदिग्ध प्रश्नो पर बढा-चढाकर बातें करता चलू, ताकि आप सहूलियत से इस विश्वास का आनद ले सकें कि आपने कोई नई चीज सीख ली है। असल मे इस तथ्य के कारण ही, कि आप लोग इस विषय मे नए हैं, मुझे यह चिंता है कि मैं अपने विज्ञान का वही रूप आपके सामने रखू जो असल मे है, जिसमे इसकी सब अडचनें और विषमताए भी आपके सामने आए और आपको यह भी पता चले कि यह कौन-कौन-से दावे करता है, और इसकी क्या-क्या आलोचना की जा सकती है। मैं नि सदेह जानता हूं कि प्रत्येक विज्ञान मे यही बात होती है, और विशेष रूप से शुरू मे, इसके अलावा और कुछ बात हो भी नही सकती। मैं यह भी जानता हू कि दूसरे विज्ञान पढाते हुए नये सीखने वाले से शुरू मे इन कठिनाइयो और कमजोरियो को छिपाने की कोशिश की जाती है, पर मनोविश्लेषण मे ऐसा नही किया जा सकता। इसलिए मैंने वास्तव मे दो परिकल्पनाए रखी हैं जिनमे से एक दूसरी के भीतर है, और जिन्हे यह सब काम बहुत मेहनत का या बहुत अनिश्चित मालूम होता है, या जिन्हे अधिक निश्चितता की या अधिक साफ निष्कर्षो की आदत पडी हुई है, उन्हे मेरे साथ आगे चलने की जरूरत नही है। उन्हे मैं यही सलाह दूगा कि वे मनोवैज्ञानिक समस्याओ को बिलकुल हाथ न लगाए, क्योंकि यह ऐसा क्षेत्र है जिसमे उन्हे उतने यथार्थ और निश्चित मार्गो पर चलने का मौका नही मिलेगा, जिन पर चलने को वे तैयार हैं। और फिर किसी भी ऐसे विज्ञान के लिए, जो ज्ञान मे कोई वास्तविक अभिवृद्धि कर सकता है, अपने अनुयायी हासिल करने की कोशिश करना और अपना प्रचार करने की कोशिश करना बिलकुल गैर जरूरी है। इसका स्वागत इसके परिणामो के आधार पर होना चाहिए, और जब तक दुनिया इसके परिणामो की ओर ध्यान देने को मजबूर नही होती, तब तक यह तसल्ली से प्रतीक्षा कर सकता है।

पर आप मे से जो लोग इस तरह रुकने वाले नही है, उन्हे मैं यह चेतावनी पहले ही दे देना चाहता हू कि मेरी दोनो परिकल्पनाओ का बराबर महत्व नही है। पहली परिकल्पना, कि स्वप्न मानसिक घटनाए है, को हम अपनी गवेषणा के परिणामो से सिद्ध कर देने की आशा करते हैं। दूसरी परिकल्पना एक और क्षेत्र मे पहले ही सिद्ध की जा चुकी है, और मैंने इतना ही किया है कि उसे अपनी समस्याओ पर लागू कर लिया है।

यह परिकल्पना कि मनुष्य मे ऐसा ज्ञान हो सकता है, जिसके बारे मे वह यह न जानता हो कि उसमे है कहा और किस प्रसग मे सिद्ध की गई है? निश्चित रूप से यह एक बडा विलक्षण और आश्चर्यजनक तथ्य होगा जो मानसिक जीवन की हमारी अवधारणा को बदल देगा, और जिसके कारण छिपाने की कोई आवश्यकता नही रहेगी। प्रसगत यह कहा जा सकता है कि यह ऐसा तथ्य होगा जो अपने निरूपण मे ही असत्य है पर फिर भी अक्षरश सत्य होना चाहता है। यह एक विरोधाभास है, पर छिपाने की यहा कोई कोशिश नही है। लोग इसे नही जानते या इसमे दिलचस्पी नही रखते तो इसमे इस तथ्य का उतना ही दोष है जितना कि हमारा, क्योकि इन मनोवैज्ञानिक समस्याओ पर ऐसे लोगो ने फैसले दे रखे है जिन्होने कभी एक भी प्रेक्षण या परीक्षण नही किया जबकि प्रेक्षण और परीक्षण ही वास्तव मे किसी निश्चित परिणाम पर पहुचा सकते हैं।

जिस प्रमाण की मैं चर्चा कर रहा हू, वह समोहन सबधी या हिप्नोटिक घटनाओ के क्षेत्र मे प्राप्त हुआ था। १८८९ मे नान्सी मे लीबोल्ट और बर्नहीम द्वारा किये गए विशेष रूप से प्रभावोत्पादक प्रदर्शनो मे मैं उपस्थित था, और वहा मैंने निम्नलिखित परीक्षण देखा। एक आदमी को निद्रावस्था[1] मे लाया गया और इसके बाद उसे सब तरह के मतिभ्रमो के अनुभवो मे से ले जाया गया। जगाये जाने पर पहले तो ऐसा मालूम हुआ कि समोहन की नीद मे जो कुछ हुआ था, उसका उसे कुछ पता ही नही था। तब बर्नहीम ने उससे सीधे शब्दो मे कहा कि तुम्हारे समोहित अवस्था मे होने पर जो कुछ हुआ था, वह बताओ। उस आदमी ने कहा कि मुझे कुछ याद नही आता। परतु बर्नहीम ने इस बात पर जोर दिया, उससे आग्रह किया और उसे विश्वास दिलाया कि वह अवश्य जानता है, और उसे अवश्य याद होगा, और तमाशा देखिए कि वह आदमी सकुचाया, सोचने लगा, और फिर जो घटनाए उसके मन मे आदेशित[2] की गई थी, उनमे से पहली धुधले रूप मे उसे याद आ गई। उसके बाद कई और बात याद आई, और धीरे-धीरे उसकी स्मृति अधिकाधिक स्पष्ट और पूर्ण होती गई और अत मे उसने सारी बातें बता दी—एक भी बात नही छोडी। बीच मे उसे कही से कुछ पता नही चला था, लेकिन आखिरकार

१ Somnambulism २ Suggested

उसे सब कुछ अपने आप ही याद आ गया था; इसीलिए हमारा यह निष्कर्ष निकालना उचित ही है कि ये याद की हुई बातें शुरू से उसके मन मे थी, सिर्फ इतना था कि वह उनके पास पहुच नही सकता था, वह नही जानता था कि वह उन्हे जानता है और मानता था कि वह नही जानता। सच तो यह है कि उसकी अवस्था ठीक वैसी ही थी जैसी कि हम स्वप्न देखने वाले व्यक्ति की मानते हैं।

मैं समझता हू कि आपको इस बात पर आश्चर्य होगा कि यह तथ्य पहले ही सिद्ध हो चुका है, और आप मुझसे पूछेंगे "आपने इस प्रमाण की चर्चा पहले ही क्यो नही की जब हम ग़लतियो पर विचार कर रहे थे, और बोलने की ग़लती करने वाले एक आदमी के बोलने के पीछे ऐसे आशय बता रहे थे जिनके बारे मे वह कुछ नही जानता था। और उनका वह निषेध करता था? यदि कोई आदमी यह मान सकता है कि उसे ऐसे अनुभवो का कोई ज्ञान नही है जिनका स्मरण उसमे अवश्य है तो यह बात अब असभाव्य नही लगती कि उसके अदर ऐसे और भी मानसिक प्रक्रम चल रहे हो जिनके बारे मे वह कुछ नही जानता। इस दलील से निश्चित ही हमपर प्रभाव पडता, और हम गलतियो को अधिक अच्छी तरह समझ पाते।" सच है कि मैं इस प्रमाण को तब पेश कर सकता था, पर मैंने इसे बाद के ऐसे मौके के लिए रख छोडा था जब इसकी ज्यादा जरूरत होगी। कुछ गलतियों ने स्वय, अपनी व्याख्या कर दी और कुछ ने हमे यह सुझाया कि इन घटनाओं के सबध को समझने के लिए यह अच्छा होगा कि ऐसे मानसिक प्रक्रमो का अस्तित्व स्वीकार कर लिया जाए, जिनसे वह व्यक्ति बिलकुल अपरिचित है। स्वप्नो की व्याख्या हमे दूसरी जगह ढूढनी पडती है। इसके अलावा, मुझे भरोसा है कि इस प्रसग मे आप समोहन के क्षेत्र के प्रमाण को अधिक आसानी से स्वीकार कर लेंगे। हम जिन अवस्थाओ मे ये गलतिया करते हैं, वे आपको सामान्य प्रतीत होगी, और इसलिए उनका समोहन की अवस्था से कोई सादृश्य नही प्रतीत होगा। दूसरी ओर, समोहन की अवस्था और नीद में स्पष्ट सबध है, और नीद स्वप्न देखने के लिए बिलकुल जरूरी अवस्था है। समोहन को तो 'कृत्रिम नीद' ही कहा जाता है। जिन लोगो को हम समोहित करते हैं उनसे कहते हैं "सो जाओ", और उन्हे जो आदेश दिए जाते हैं, उनकी तुलना स्वाभाविक नीद के स्वप्नो से की जा सकती है। दोनो अवस्थाओ में मानसिक स्थिति वास्तव मे एक जैसी होती है—स्वाभाविक नीद मे हम सारी बाहरी दुनिया से अपनी दिलचस्पी हटा लेते हैं, यही बात समोहन निद्रा मे होती है पर इसमे हमारा उस व्यक्ति से मेल या आनुरूप्य[1] बना रहता है, जिसने हमे समोहित किया है। फिर, तथाकथित 'नर्स की नीद', जिसमे नर्स का बालक से मेल या आनुरूप्य बना रहता है, और वह ही उसे जगा

१ Rapport

सकता है, समोहन निद्रा का एक सामान्य समरूप है। इसलिए समोहन की एक अवस्था को स्वाभाविक नीद पर लागू कर लेना कोई वडी अनोखी वात नही लगती। यह परिकल्पना कि स्वप्न देखने वाले को अपने स्वप्न के बारे मे ज्ञान होता है, परतु वह उस ज्ञान तक पहुच नही पाता, और इसलिए वह स्वय यह विश्वास नही करता कि उसे वह ज्ञान है, कोई निराधार कपोल-कल्पना नही हैं। इस सिलसिले मे हम यह भी देखते है कि इस तरह हमारे लिए स्वप्नो पर विचार करने का तीसरा रास्ता खुल जाता है। हम उसपर नीद के विघातक उद्दीपको के रास्ते से, दिवास्वप्नो के रास्ते से, और अव समोहन मे आदेशित स्वप्नो के रास्ते से विचार कर सकते हैं।

शायद अव हम अधिक विश्वास के साथ अपने विषय पर आगे विचार कर सकते हैं। हम देखते हैं कि यह वहुत सभाव्य है कि स्वप्न देखने वाला अपने स्वप्न के वारे मे कुछ जानता है। समस्या यह है कि उसे वह ज्ञान कैसे याद कराया जाए, और उसे कैसे वह ज्ञान हमे देने के लिए समर्थ किया जाए। हम यह आशा नही करते कि वह तुरत अपने स्वप्न का आशय वता देगा, पर हम यह अवश्य समझते है कि वह खोज सकेगा कि उसका स्रोत क्या है, विचारो और दिलचस्पियो के किस दायरे से वह आया है? गलतियो के प्रसग मे, आपको याद होगा कि उस आदमी से पूछा गया कि उससे वोलने में 'रिफिल्डि' गलती कैसे हुई, और उसकी पहली ही वात से इसकी व्याख्या हो गई। स्वप्नो मे हम जो विधि अपनाते हैं, वह वहुत सरल है, और इसी उदाहरण के नमूने पर हैं। यहा भी हम स्वप्न देखने वाले से पूछेंगे कि उसे यह स्वप्न कैसे आया, और उसके अगले शब्दो को, इस अवस्था मे भी, असली कारण वताने वाला मानना चाहिए। इसलिए इससे कोई फर्क नही पडता कि वह यह समझता है कि इस वारे मे वह कुछ जानता है या नही जानता, और हम दोनो अवस्थाओ पर एक ही तरह विचार करते हैं।

यह विधि निश्चित रूप से वडी सीधी है। तो भी मुझे डर है कि यह आपके अदर वडा जवरदस्त विरोध पैदा करेगी। आप कहेगे "एक और-तीसरी-परिकल्पना! उसपर सबसे अधिक असंभाव्य! जव मैं स्वप्न देखने वाले से यह पूछता हू कि स्वप्न के वारे मे आपके मन मे क्या विचार आते है, तव क्या आप यह कहना चाहते हैं कि उसके सबसे पहले साहचर्य, अर्थात् मन की वात,से ही अभीष्ट व्याख्या हो जाएगी? पर यह भी तो हो सकता है कि उसके मन मे कोई साहचर्य ही न हो। यह ईश्वर ही जानता है कि वह साहचर्य क्या हो सकता है। हम यह नही समझ सकते कि ऐसी आशा किस आधार पर की जाती है। असल मे, इससे भाग्य मे वहुत अधिक विश्वास ध्वनित होता है और वह भी ऐसी जगह, जहा आलोचना की क्षमता का अधिक प्रयोग करने से मामला अधिक अच्छी तरह सुलझाया जा सकता है। इसके अलावा, स्वप्न किसी अकेली जीभ की गलती जैसी

चीज़ नही है, वह बहुत-से अवयवो का बना हुआ होता है। ऐसी अवस्था मे हम किस साहचर्य पर भरोसा करें ?"

सारे अनावश्यक अशो मे आपकी बात सही है। यह सच है कि बोलने की गलती और स्वप्न मे कई भेद हैं, जिनमे से एक यह है कि स्वप्न बहुत-से अवयवो से बना हुआ होता है। हमे अपनी विधि मे उसका ध्यान रखना होगा। इसलिए मैं यह सुझाव रखता हू कि हम स्वप्न को उसके अनेक अवयवो मे बाट दें, और प्रत्येक अवयव पर अलग-अलग विचार करें। तब इसका और बोलने की ग़लती का फिर सादृश्य स्थापित हो जाएगा। आपका यह कहना भी सही है कि स्वप्न के एक-एक अवयव के बारे मे पूछने पर स्वप्न देखने वाला यह जबाब दे सकता है कि उसे उनके बारे मे कुछ ध्यान नही है। कुछ उदाहरणो मे हम यह उत्तर स्वीकार कर लेते हैं, और मैं आगे चलकर आपको यह बताऊगा कि वे कौन-से उदाहरण हैं। विचित्र बात यह है कि ये उदाहरण वे हैं जिनके बारे मे हमारे अपने शायद कुछ सुनिश्चित विचार हैं, परतु साधारणतया जब स्वप्न देखने वाला यह कहता है कि उसका कोई विचार नही है, तब हम उसकी बात का विरोध करेंगे, जवाब देने के लिए उसपर जोर डालेंगे, उसे यह विश्वास दिलाएगे कि उसके मन में अवश्य कुछ विचार हैं और हम देखेंगे कि हम सही कहते थे—वह कोई न कोई साहचर्य पेश करेगा। वह क्या है, इससे हमे विशेप मतलब नही है। विशेप रूप से वह हमे ऐसी जानकारी देगा जिसे हम ऐतिहासिक कह सकते हैं। वह कहेगा "यह कुछ वैसी बात है जैसी कल हुई थी।" (जैसा कि ऊपर बताये गए दो 'भाव-हीन' स्वप्नो के उदाहरण मे था), या "इससे मुझे किसी ऐसी चीज़ का ध्यान आता है जो हाल मे ही हुई थी", और इस तरह हम यह देखेंगे कि अधिकतर स्वप्नो का सबब उन प्रभावो से है जो एक दिन पहले के हैं। अत मे स्वप्न से शुरू करके वह उन घटनाओ को दोहराएगा जो कुछ और पहले हुई थी, और अत मे ऐसी घटनाए भी बताएगा जो बहुत पहले की हैं।

परतु मुख्य प्रश्न के बारे मे आपका विचार गलत है। जब आप यह समझते हैं कि यह मनमानी कल्पना है कि स्वप्न देखने वाले का पहला साहचर्य हमे वही बात प्रकट कर देगा जिसकी हम तलाश मे हैं, या कम से कम, हमे उसकी ओर ले जाएगा, साथ ही यह कल्पना भी, कि अधिक सभवत साहचर्य बिल्कुल मनमाना होगा, और उसका उस चीज़ से कोई सबध नही होगा जिसकी हम तलाश कर रहे हैं, और यदि मैं किसी और बात की आशा करता हू तो इससे भाग्य मे मेरा अध-विश्वास ही अधिक होता है—तो आप बहुत भारी गलती करते हैं। मैं पहले ही यह सकेत कर चुका हू कि मन की स्वतत्रता और चुनाव-क्षमता का गहरा जमा हुआ विश्वास आपके मन मे मौजूद है, मैं यह भी कह चुका हू कि यह विश्वास

बिलकुल अवैज्ञानिक है, और इसे नियतिवाद[1] के, जो मानसिक जीवन को भी शासित करता है, दावो के सामने मैदान छोडना ही पडेगा। मैं आपसे कहता हू कि इस तथ्य की कुछ तो इज्जत कीजिए कि जब स्वप्न देखने वाले से पूछा जाता है, तब उसके मन मे एक वही साहचर्य आता है, और कोई नही आता। मैं एक विश्वास के विरोध मे दूसरे विश्वास की स्थापना भी नही कर रहा हू। यह प्रमाणित किया जा सकता है कि इस प्रकार बताया गया साहचर्य उसकी मर्जी का मामला नही है, वह अनियत नही है और वह उससे असबधित भी नही है जिसे हम खोज रहे हैं। असल मे, मुझे हाल मे ही पता चला है—पर इसका यह अर्थ नही कि मैं इसे कोई खास महत्व देता हू—कि स्वय प्रायोगिक मनोविज्ञान ने भी ऐसे ही प्रमाण पेश किए है।

यह मामला महत्वपूर्ण होने के कारण मैं आपसे इसपर विशेष ध्यान देने के लिए कहता हू। जब मैं किसी आदमी से यह पूछता हू कि स्वप्न के अमुक अवयव के बारे मे उसके मन मे क्या बात आती है तब मैं यह आशा करता हू कि वह **मुक्त साहचर्य** के प्रक्रम मे अपने आपको शिथिल छोड दे, और **यह तब होता है जब वह मूल आरंभिक विचार अपने मन मे रखता है**। इसके लिए एक विशेष प्रकार से ध्यान देने की ज़रूरत होती है। यह चीज़ अनुचिंतन या निदिध्यासन[2] से बिलकुल भिन्न है, बल्कि वह तो इसमे हो ही नही सकता। कुछ लोग बिना किसी मुश्किल के ऐसी अवस्था बना लेते हैं, पर कुछ लोग जब ऐसा करने की कोशिश करते हैं, तब उनमे एक अविश्वसनीय अरुचि दिखाई देती है। जो साहचर्य उस समय दिखाई देता है जब मैं किसी खास उद्दीपन-बिंब[3] या उद्दीपन-विचार के बिना काम चलाता हू, और अपने अभीष्ट साहचर्य के आकार-प्रकार का शायद वर्णन मात्र कर देता हू, तब साहचर्य मे और भी अधिक स्वतत्रता होती है, उदाहरण के लिए, किसी आदमी से कहो कि वह कोई व्यक्ति वाचक नाम या कोई सख्या सोचे। आप कहेगे कि इस तरह का साहचर्य, हमारी विधि मे प्रयुक्त साहचर्य की अपेक्षा, अपनी पसदगी के और भी अधिक अनुकूल होगा और इसका कोई कारण नही बताया जा सकेगा। तो भी यह सिद्ध किया जा सकता है कि यह मन की महत्वपूर्ण भीतरी अभिवृत्तियो[4] के ही ठीक-ठीक अनुसार होगा—ये अभिवृत्तिया क्रियाशील होने के समय हमारे लिए उतनी ही अज्ञात है, जितनी अज्ञात गलतिया पैदा करने वाली विघातक प्रवृत्तिया और वे प्रवृत्तिया वही हैं जो 'सयोगवश उत्पन्न' कहलाने वाली क्रियाए पैदा करती हैं।

मैंने, और मेरे बाद अनेक व्यक्तियो ने बिना किसी विचार के पुकारे गए

---

१ Determinism, २ Reflection ३ Stimulus-idea
४. Attitudes.

नामो और सख्याओ की परीक्षा की है। इनमे से कुछ परीक्षण प्रकाशित हुए हैं। इसकी विधि यह है जो नाम आया है, उससे साहचर्यो या सबधो की एक श्रृ खला उद्बुद्ध हो जाती है, और अब ये साहचर्य, जैसा कि आप देखते हैं, सर्वथा मुक्त या स्वतत्र नही होते, बल्कि ठीक उतनी दूर तक जुडे रहते हैं जितनी दूर तक साहचर्य स्वप्न के विभिन्न अवयवो से जुडे रहते हैं, अब यह साहचर्य-श्रृ खला तब तक कायम रखी जाती है जब तक आवेग से उत्पन्न विचार समाप्त न हो जाए। पर तब तक आप किसी नाम के साथ होने वाले मुक्त साहचर्य के प्रेरक कारण और सार्थकता को स्पष्ट कर चुके होंगे। इन परीक्षणो से बार-बार वही परिणाम आता है, वे जो सूचना देते हैं, उसमे प्राय बहुत सारी सामग्री होती है, और इनमे इसके विभिन्न रूपो पर विचार के लिए दूर-दूर तक जाना पडता है। सख्याओ के स्वत पैदा होने वाले साहचर्य शायद सबसे अधिक स्पष्ट प्रदर्शित होते हैं, वे एक दूसरे के बाद इतनी तेजी से आते हैं, और एक छिपे हुए ध्येय की ओर इतनी आश्चर्यजनक निश्चितता से चलते हैं कि आदमी सचमुच हक्का-बक्का रह जाता है। मैं आपको इस तरह के नाम-विश्लेषण का सिर्फ एक उदाहरण दूगा, क्योंकि यह ऐसा उदाहरण है जिसमे बहुत सारी सामग्री के झगडे मे नही पडना पडता।

एक बार मैं एक नौजवान का इलाज कर रहा था। तब मैंने इस विषय पर बलपूर्वक यह कहा कि यद्यपि ऐसे मामलो मे हमे पसदगी या चुनाव की स्वतत्रता दिखाई देती है, तो भी तथ्यत हम कोई ऐसा नाम नही सोच सकते जिसके बारे में यह सिद्ध न किया जा सकता हो कि वह परीक्षण के पात्र व्यक्ति की तात्कालिक परिस्थितियो, उसकी विलक्षणताओ, और उसकी उस क्षण की स्थिति से प्राय निर्धारित है—उन मानसिक और बाहरी परिस्थितियो मे यही नाम आना निश्चित है। उसे इस बात मे सदेह था, इसलिए मैंने कहा कि तुम अभी स्वय यह परीक्षण करो। मैं जानता था कि स्त्रियो और लडकियो के साथ वह अनेक प्रकार से सबध रखता था, इसलिए मैंने उससे कहा कि मेरे ख्याल मे, यदि आप अपने मन मे किसी स्त्री का नाम सोचेंगे तो आपको चुनाव करने के लिए बहुत सारे नाम मिल सकेंगे। उसने स्वीकार किया। मुझे और शायद स्वय उसे भी आश्चर्य हुआ कि उसने स्त्रियो के नामो की झडी नही लगाई, बल्कि कुछ देर चुप रहा, और इसके बाद उसने स्वीकार किया कि उसके मन मे एक ही नाम आया है—'अलबाइन'। "कैसी अजीब बात है! इस नाम से आप किस तरह सबद्ध हैं? आप कितनी 'अलबाइनो' को जानते हैं?" विचित्र बात थी कि वह अलबाइन नाम वाले किसी व्यक्ति को भी नही जानता था, और उस नाम से उसे कोई साहचर्य या सम्बन्ध नही ज्ञात होता था। आप यह परिणाम निकालेंगे कि विश्लेषण विफल रहा, पर नही, यह पहले ही पूरा हो चुका है, और किसी अन्य साहचर्य की आवश्यकता नही रह गई है। वह आदमी असाधारण रूप से गोरा

और सुन्दर था, और विश्लेपरण मे उससे वातचीत करते हुए मैंने हसी मे उसे **अलविनो** (महाश्वेत) कहा था, इसके अलावा हम उसके स्वभाव मे **स्त्रैण** तत्व खोजने मे लगे हुए थे। इस प्रकार, यह स्त्री अलविनो वह स्वय ही था—उस समय यही 'स्त्री' उसकी सबसे अधिक दिलचस्पी का विपय थी।

इसी प्रकार किसी आदमी के मन मे एकाएक जो गाने की तर्जे आजाती हैं उनके विपय मे यह सिद्ध किया जा सकता है कि किसी विचार-शृखला के कारण, जो किसी अज्ञात कारण से उस समय उसके मन मे विना उसके जानते हुए चल रही होती है, व ही तर्जे आनी अनिवार्य थी। यह प्रदर्शित करना आसान है कि तर्ज़ के साथ सम्वन्ध या तो गीत के शव्दो के कारण होता है, और या उसे पैदा करने वाले स्रोत के कारण पर इतनी वात और कहना चाहता हू कि यह वात उन वस्तुत सगीत प्रेमी लोगो के वारे मे मैं ठीक नही मानता जिनके वारे मे मुझे कोई विशेष अनुभव नही है, उनकी चेतना मे धुनो के एकाएक आने का कारण उनका सगीतात्मक महत्व हो सकता है। निश्चित रूप से पहली अवस्था अधिक आम होती है। मैं एक ऐसे नौजवान को जानता हू जिसके मन मे कुछ समय से **हेलेन आफ ट्राय** के पेरिस के गीत की धुन (मानता हू कि वह मोहक थी) ही घूम रही थी, अत मे विश्लेपरण मे उसका ध्यान इस तथ्य की ओर खीचा गया कि उस समय उसकी दिलचस्पी मे कोई 'ईडा' और कोई 'हैलन' प्रतिद्वन्द्विता कर रही थी।

तो, यदि विलकुल मुक्त या स्वतन्त्र रूप से पैदा होने वाले साहचर्य भी इस प्रकार नियत या निर्धारित होते है और किसी सुनिश्चित सिलसिले मे वधे होते है, तो हमारा यह नतीजा निकालना निश्चित रूप से उचित है कि एक ही उद्दीपन-विंव से जुडे हुए साहचर्य भी इतने ही निश्चित रूप से नियत होगे। जाच से यह तथ्य पता चलता है कि वे केवल उस उद्दीपन-विंव से ही जुडे हुए नही हैं जो हमने उनके सामने रखा है, वल्कि वे प्रवल भावना युक्त विचारो और अभिरुचियो के दायरो पर निर्भर भी हैं (इन दायरो को हम ग्रथिया[1] कहते हैं) और इस समय इन दायरो, अर्थात् अचेतन व्यापारो, के वारे मे कुछ भी ज्ञात नही है।

इस प्रकार जुडे हुए साहचर्यो पर वड़े शिक्षाप्रद परीक्षरण किये गए हैं जिन्होंने मनोविश्लेपरण के इतिहास पर वडा उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। वुन्ट के विचार-सम्प्रदाय वालो ने तथा कथित 'साहचर्य-परीक्षरण' को जन्म दिया, जिसमे परीक्षरण के आश्रयभूत व्यक्ति से यह कहा जाता है कि वह दिये हुऐ 'उद्दीपन-शव्द' का, जल्दी से जल्दी जो भी 'प्रतिक्रिया-शव्द' उसके मन मे आए उससे, उत्तर दे। तव निम्नलिखित वाते नोट करनी चाहिए उद्दीपन-शव्द के कथन और प्रतिक्रिया-शव्द के कथन के वीच कितना समय वीता, प्रतिक्रिया-शव्द की प्रकृति, और यही

---

१ Complexes.

परीक्षण बाद मे दोहराने पर उसमे दिखलाई पडी कोई भूल इत्यादि। ब्लूलर और युग के नेतृत्व मे जूरिच-सम्प्रदाय साहचर्य-परीक्षण की प्रतिक्रियाओ की व्याख्या पर पहुचने के लिए परीक्षण के अधीन व्यक्ति से यह कहता था कि जो साहचर्य उसे जरा भी विशेषतायुक्त मालूम हो उनपर वह रोशनी डाले, अर्थात् यह बाद के साहचर्यो से प्रतिक्रियाओ की व्याख्या पर पहुचता था। इस प्रकार, यह स्पष्ट हो गया कि ये असामान्य प्रतिक्रियाए पूरी तरह उस व्यक्ति की ग्रन्थियो अर्थात् भावना-ग्रन्थियो के अनुसार ही होती थी। इस खोज द्वारा ब्लूलर और युग ने प्रायोगिक मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के बीच पहला सम्बन्ध स्थापित किया।

यह सुन लेने के बाद आप कह सकते हैं "हम मानते हैं कि मुक्त या स्वतत्र साहचर्य नियत होते हैं, और वे पसदगी या चुनाव का विषय नही हैं, जैसा कि हमने पहले समझा था, और हम यह बात स्वप्न-अवयवो के साहचर्यो के बारे मे भी स्वीकार करते हैं, पर हम इस चीज के बारे में परेशान नही हैं। आप कहते हैं कि स्वप्न के प्रत्येक अवयव का साहचर्य इस विशेष अवयव की किसी मानसिक पृष्ठभूमि द्वारा नियत किया हुआ है, और उस पृष्ठभूमि के बारे मे हम कुछ नही जानते। हमे इसका कोई प्रमाण नही मिल सकता। स्वभावत हम यह आशा करते हैं कि यह सिद्ध किया जा सकेगा कि स्वप्न-अवयव का साहचर्य स्वप्न देखने वाले की किसी भाव-ग्रन्थि के अनुसार नियत है, पर उससे हमे क्या लाभ ? उससे हमे स्वप्न को समझने मे कोई मदद नही मिलती—इससे हमे इन तथाकथित भाव-ग्रन्थियो की अवश्य कुछ जानकारी हो जाती है, जैसे साहचर्य परीक्षण से हुई, पर इनका स्वप्न से क्या वास्ता है ?"

आपका कहना सही है, पर आप एक महत्वपूर्ण बात पर नजर नही डाल रहे हैं। यह वही बात है जिसके कारण मैंने इस बातचीत को साहचर्य परीक्षण से शु नही किया। इस परीक्षण मे उद्दीपन-शब्द जो प्रतिक्रिया को नियत करने वाली एक मात्र बात है, हम अपनी मर्जी से चुनते हैं, और प्रतिक्रिया इस उद्दीपन-शब्द तथा परीक्षित व्यक्ति मे उद्बोधित भाव-ग्रन्थि के बीच मे रहती है। स्वप्न मे, उद्दीपन-शब्द के स्थान पर, स्वप्न देखने वाले के मानसिक जीवन से, अज्ञात स्रोतो से उत्पन्न हुई वस्तु आ जाती है, और इसलिए बहुत सम्भव है कि वह अपने आप मे किसी भाव-ग्रन्थि से उत्पन्न वस्तु हो। इसलिए यह कल्पना करना बिलकुल निराधार नहीं है कि स्वप्न के अवयवो से सम्बन्धित अन्य साहचर्य उन भाव-ग्रन्थि के अलावा और किसी द्वारा नियत नही किये जाते जिससे वह विशेष अवयव स्वय पैदा हुआ है, और उन अवयवो से उस भाव-ग्रन्थि की खोज की जा सकती है।

एक और उदाहरण लीजिए, जिससे यह सिद्ध हो सकता है कि स्वनो के उदा-

हरणो मे तथ्यो से हमारी आशाओ की पुष्टि होती है। स्वप्न-विश्लेपण मे जो कुछ होता है, उसका सचमुच वडा उत्तम प्रतिरूप है व्यक्तिवाचक नामो को भूलना—अन्तर इतना है कि व्यक्तिवाचक नामो को भूलने मे सिर्फ एक ही व्यक्ति से सम्बन्ध होता है, जवकि स्वप्नो का अर्थ लगाने मे दो व्यक्ति होते हैं। जब मैं कुछ समय के लिए कोई नाम भूल जाता हू, तब भी मुझे यह निश्चय होता है कि मैं इसे जानता हू। वर्नहीम के परीक्षण के वाद, अब हम स्वप्न देखने वाले के मामले मे भी इतने ही निश्चित हो सकते हैं। जो नाम मैं भूल गया हू, पर असल मे जानता हू, वह मेरी पकड में नही आता। अनुभव से मुझे जल्दी ही पता चल जाता है कि मैं इसके वारे मे कितना ही और कितने ही प्रयत्न से सोचू, पर कोई लाभ नही। परन्तु मैं भूले हुए नाम के स्थान पर कोई और या अनेक अन्य नाम सदा सोच सकता हू। जब कोई ऐसा स्थानापन्न नाम आपसे आप मेरे मन मे आता है, तभी इस स्थिति और स्वप्न-विश्लेपण की स्थिति के बीच समानता स्पष्ट होती है। जो चीज़ मैं वास्तव मे तलाश कर रहा हू, वह स्वप्न-अवयव भी नही है, वह किसी और चीज़ की, उस यथार्थ चीज़ की, जिसे मैं नही जानता और जिसे मैं स्वप्न-विश्लेपण द्वारा खोजने की कोशिश कर रहा हूं, स्थानापन्न मात्र है। फिर, यह अन्तर है कि जव मैं कोई नाम भूल जाता हू, तव विलकुल अच्छी तरह यह जानता हू कि स्थानापन्न नाम सही नाम नही है, जवकि स्वप्न-अवयव के इस रूप पर पहुचने मे हमे लम्बी जाच-पडताल करनी पडी। तो, ऐसा भी एक तरीका है जिससे कोई नाम भूल जाने पर हम उसके स्थानापन्न से शुरू करके उस पदार्थ वस्तु पर पहुच सकते है जो उस समय हमारी चेतना की पकड में नही आ रही थी, अर्थात् हम भूले हुए नाम का पता लगा सकते हैं। यदि मैं इन स्थानापन्न नामो की ओर ध्यान दू और साहचर्य अपने मन मे आने दू तो थोडी या अधिक देर मे मैं भूले हुए नाम पर पहुच जाता हू, और ऐसा करते हुए मैं देखता हू कि मैंने जो स्थानापन्न आपसे आप पेश किए हैं, उनका भूले हुए नाम से सुनिश्चित सम्बन्ध था, और उस भूले हुए नाम ने ही ये स्थानापन्न नियत या निश्चित किये थे।

मैं आपको इस तरह के विश्लेपण का एक उदाहरण दूगा एक दिन मैंने यह देखा कि मुझे रिविएरा पर वसे हुए उस छोटे-से देश का नाम याद नही आ रहा था जिसकी राजधानी मोन्ट कार्लो है। मैं वडा परेशान हुआ, पर उपाय क्या था? मैंने उस देश के विपय मे अपनी सारी जानकारी मे गोता लगाया। मैंने लुसिगनान घराने के प्रिंस एल्बर्ट की, उसके विवाहो की, और गहरे समुद्र की खोज मे उसकी विशेप दिलचस्पी की, यहा तक कि जो कुछ मेरे दिमाग मे आ सका उस सवकी, वात सोची, पर सब वेकार रहा। अब मैंने सोचने की कोशिश करना छोड दिया और जो नाम मैं सोच रहा था, उसके वजाय मैंने स्थानापन्न

नाम अपने मन में आने दिए। वे जल्दी-जल्दी आते गए। स्वय मोन्ट कार्लो, फिर पीडमौन्ट, अलबानिया, मोन्टीवीडियो, कोलिको। सबसे पहले अलबानिया की ओर मेरा ध्यान गया, फिर तुरन्त इसके स्थान पर मोन्टीनीग्रो आ गया। सम्भवत इसका कारण काले और सफेद का वैषम्य था। तब मैंने देखा कि स्थानापन्न नामो मे से चार मे एक ही अक्षर 'मौन' है और मुझे तुरन्त भूला हुआ नाम याद आ गया और मैं चिल्ला पडा, "मोनाको!" आप देख रहे हैं कि स्थानापन्नों का जन्म वास्तव में उस भूले नाम से ही हुआ था—पहले चार शब्द उसके पहले अक्षर से बने थे, और अन्तिम शब्द मे अक्षरो का क्रम था और पूरा का पूरा अन्तिम अक्षर। प्रसगत, यह भी बता दू कि मुझे बडी आसानी से यह समझ मे आ गया कि मैं वह नाम क्यो भूला था। मोनाको म्युनिख का इटालियन नाम है, और इस नगर के साथ सम्बन्धित कुछ विचारो ने ही निरोधक का कार्य किया था।

यह बडा सुन्दर उदाहरण है, और बहुत सादा व सरल है। और उदाहरणो मे आपको स्थानापन्न नाम के साहचर्यों की अधिक लम्बी श्रेणी लेनी पड सकती है, और तब स्वप्न-विश्लेषण से इसका सादृश्य स्पष्ट हो जाएगा। मुझे इस तरह के भी कुछ अनुभव हो चुके हैं। एक बार एक अपरिचित व्यक्ति ने मुझे अपने साथ इटालियन शराब पीने के लिए कहा और शराब-घर मे पहुचने पर उसने देखा कि वह जिस शराब की बडी सुखद स्मृतियों के कारण उसका आर्डर देना चाहता था, उसका नाम वह भूल गया है। उसके मन मे कुछ असदृश स्थानापन्न नाम आए, और इनसे मैं यह अनुमान लगा सका कि हेडविग नामक किसी व्यक्ति के विचार ने उसे शराब का नाम भुला दिया है। अब उसने मुझे न केवल यह ही बताया कि जब उसने पहली बार वह शराब चखी थी, तब हेडविग नाम का व्यक्ति उसके साथ था, बल्कि इस ज्ञान ने उसे अपना अभीष्ट नाम भी फिर याद दिला दिया। अब वह विवाह करके सुख से रह रहा था। हेडविग उसके पुराने दिनो से सम्बन्ध रखता था, जिन्हे अब वह याद नही करना चाहता।

जो बात भूले हुए नामो के बारे मे सम्भव है, वह स्वप्नो के अर्थ लगाने मे भी सम्भव होनी चाहिए। स्थानापन्न से शुरू करके हमे साहचर्यों की शृखला द्वारा अपनी खोज के पदार्थ उद्देश्य पर भी पहुच सकना चाहिए। और भूले हुए नामो मे जो कुछ हुआ उसीको युक्ति बनाकर आगे बढे तो हम यह मान सकते हैं कि स्वप्न-अवयवो के साहचर्य सिर्फ उस अवयव द्वारा ही नियत नही होते, बल्कि उस यथार्थ विचार द्वारा भी नियत होते हैं जो चेतना मे नही है। यदि हम यह कर सकते तो अपनी विधि का औचित्य सिद्ध करने की दिशा में कुछ आगे बढ गए होते।

व्यक्त वस्तु और गुप्त विचार

आप देखते हैं कि हमारा गलतियो का अध्ययन निष्फल नही हुआ है। उस अध्ययन से हमे, उन परिकल्पनाओ के आधार पर जो आप जानते है, दो परिणाम प्राप्त हुए हैं स्वप्न-अवयव की प्रकृति की एक अवधारणा और स्वप्न-निर्वचन की एक विधि। स्वप्न-अवयव की अवधारणा यह है यह अपने आप मे कोई मूल और सारभूत चीज़ नही है, यह 'स्वय विचार' नही है बल्कि किसी और चीज की, जो सम्बन्धित व्यक्ति को, गलती के पीछे छिपे हुए आशय की तरह, अज्ञात है, स्थानापन्न है—यह एक ऐसी चीज का स्थानापन्न है जिसका ज्ञान स्वप्न देखने वाले के अन्दर निश्चित रूप से मौजूद है पर वह उस ज्ञान तक पहुच नही पाता। हम यही अवधारणा सारे के सारे स्वप्न पर, जिसमे ऐसे कई अवयव होते हैं, ले आने की आशा रखते हैं। हमारी विधि यह है कि दूसरे स्थानापन्न मनोबिंबो[1] को, जिनसे हम छिपी हुई बात को जान सकते हैं, उपर्युक्त अवयवो के साथ मुक्त साहचर्य के द्वारा चेतना मे आने दे।

अब मैं यह कहना चाहता हू कि हम अपनी शब्दावली को अधिक लचकदार बनाने के लिए अपने शब्द-प्रयोग मे कुछ हेर-फेर कर लें। 'छिपा हुआ' 'पहुच से बाहर' या 'स्वय विचार' शब्दो के स्थान पर हमे अधिक यथातथ्य[2] वर्णन करना चाहिए और कहना चाहिए कि 'स्वप्न देखने वाले की चेतना की पहुच के बाहर', या 'अचेतन'[3]। इससे हमारा आशय उससे कुछ अधिक नही है जो भूले हुए शब्द या गलतियो के पीछे मौजूद आशय के मामले मे था, अर्थात् उस समय अचेतन मे। इससे यह बात निकलती है कि इसके मुकाबले मे खास स्वप्न-अवयवो

---

१. Substitute-Idea २ Precise ३ Unconscious। यहा अचेतन शब्द का अर्थ है अज्ञात, अर्थात् जो स्वय को, या अपने बारे मे नहीं जानता और जिसका अस्तित्व आश्रयभूत व्यक्ति को भी अज्ञात है।

बजाय इसके कि हम अपनी आज्ञा न मानने के कारण स्वप्न-द्रष्टा से परेशान हो, हम इस अनुभव को कोई नई चीज़ सीखने का साधन बना सकते हैं और उस चीज़ की हमे जितनी कम सम्भावना थी, वह उतनी ही अधिक महत्वपूर्ण है। हम जानते हैं कि स्वप्न का अर्थ लगाने का काम असल में ऐसे प्रतिरोध को पराजित करना ही है जो इस तरह के आलोचना भरे आक्षेपो के रूप में प्रकट होता है। यह **प्रतिरोध** स्वप्न-द्रष्टा के सैद्धान्तिक विश्वास से बिलकुल स्वतन्त्र होता है। हमे इससे भी कुछ अधिक बात समझ में आती है। अनुभव से प्रकट होता है कि इस तरह का आलोचनापूर्ण आक्षेप कभी भी उचित नही होता। इसके विपरीत, लोग इस तरह जिन साहचर्यो को दबाना चाहते है, वे **बिना अपवाद** के, सबसे अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होते है। वे अचेतन विचार की खोज में निर्णायक होते हैं। जब किसी साहचर्य पर इस तरह का आक्षेप किया जाए, तब निश्चित रूप से इसपर विशेष ध्यान देना चाहिए।

यह प्रतिरोध एक बिलकुल नई चीज़है। यह एक ऐसी घटना है, जिसका हमे अपनी परिकल्पनाओ पर चलने से पता चला है, यद्यपि यह उनमे शामिल नही है। हम इस नए कारक से ज़रा भी प्रसन्न नही हैं क्योकि हमे पहले ही सन्देह है कि इससे हमारे काम मे कोई आसानी नही होगी। यह हमे स्वप्नो के विषय मे सारी कोशिश छोडने के लिए भी आकृष्ट कर सकता है। ऐसे तुच्छ विषय को उठाना और उसपर इतनी उलझन मे पडना उससे तो यही अच्छा है कि हमारी विधि से आराम से आगे बढते जाइये। पर इसके विपरीत, हमे ये कठिनाइया आकर्षक लगेंगी, और यह सन्देह होने लगेगा कि इस कार्य के लिए इतनी परेशानी उठाना उचित है। जब कभी हम स्वप्न-अवयव द्वारा लाए गए स्थानापन्न से छिपे हुए अचेतन विचार मे घुसने की कोशिश करते है, तब ये प्रतिरोध सदा सामने आकर खडे हो जाते हैं। इसलिए हम कल्पना कर सकते हैं कि स्थानापन्न के पीछे अवश्य कोई बडी अर्थपूर्ण बात छिपी होगी, क्योकि यदि ऐसा नही है तो हमे ऐसी कठिनाइयो का क्यो सामना करना पडे जिनका प्रयोजन बातो को छिपाए रखना है। जब कोई बच्चा अपनी मुट्ठी खोलकर यह दिखाने को तैयार नही होता कि उसमे क्या है, तब हम निश्चित रूप से यह समझ सकते हैं कि उसके हाथ मे कोई ऐसी चीज़ है जो नही होनी चाहिए थी।

ज्यो ही हम प्रतिरोध की गतिकीय[1] अवधारणा को अपने विषय के अन्तर्गत लाते हैं त्यो ही हमे यह ध्यान कर लेना चाहिए कि यह कारक मात्रा की दृष्टि से परिवर्ती होता है। प्रतिरोध बडा भी होता है और छोटा भी, और अपने काम के बीच मे हमे यह अन्तर दिखाई देने की सम्भावना है। शायद हम इसके साथ

---

१ Dynamic

एक और भी अनुभव जोड़ सकते हैं, जो स्वप्न-निर्वचन के सिलसिले मे आया है। मेरा आशय यह है कि कभी-कभी वहुत थोडे-से साहचर्य—शायद सिर्फ एक ही—हमे स्वप्न-अवयव से उसके पीछे मौजूद अचेतन विचार पर पहुचाने के लिए काफी होता है, और कभी-कभी साहचर्यो की लम्वी शृंखला की जरूरत होती है और वहुत-से गम्भीर आक्षेपो को शात करना पडता है। हम सम्भवत' सोचेंगे कि प्रतिरोधो की शक्ति मे हेर-फेर के साथ अपेक्षित साहचर्यो की सख्या में भी हेर-फेर हो जाता है और वहुत सम्भव है हमारा विचार सही होता है। यदि सिर्फ हलका-सा प्रतिरोध है तो स्थानापन्न विंव अचेतन विचार से वहुत परे नही है। दूसरी ओर प्रवल प्रतिरोध अचेतन विचार का रूप वहुत विगाड़ देता है और इस तरह स्थानापन्न से अचेतन विचार तक वहुत लम्वी यात्रा करनी पडती है।

शायद अव यह उचित होगा कि हम एक स्वप्न लेकर इसपर अपनी विधि की परीक्षा करें और देखें कि हमने जो आशाए की है वे पूरी उतरती हैं या नही। वहुत ठीक है। पर हम कौन-सा स्वप्न चुनेंगे ? आप नही जानते कि मेरे लिए यह निश्चय करना कितना कठिन है, और न मैं आपको अभी यह स्पष्ट कर सकता हू कि इसमे क्या कठिनाइया हैं। स्पष्टत कुछ स्वप्न अवश्य ऐसे होंगे जिनमे कुल मिलाकर वहुत ही थोडा विपर्यास होगा और आप सोचेंगे कि इन्हीसे शुरू करना सवसे अच्छा रहेगा ? परन्तु सवसे कम विपर्यस्त स्वप्न कौन-से है ? क्या वे हैं जिनसे ठीक अर्थ निकलता है, और जो वहुत-सी वातो की अस्पष्ट खिचडी नही हैं, और जिनके दो उदाहरण मैं पहले आपको दे चुका हू ? यह मानकर हम वडी भूल करेंगे, क्योकि परीक्षण से पता चलता है कि इन स्वप्नो मे इतना अधिक विपर्यास हुआ है जितना और स्वप्नो में नही होता। अव यदि मैं कोई विशेष शर्त न रखकर कोई भी स्वप्न ले लू तो शायद आपको वडी निराशा होगी। हमे शायद एक ही स्वप्न-अवयव के इतने अधिक साहचर्य देखने और दर्ज करने पडे कि सारे काम की एक स्पष्ट रूपरेखा प्राप्त करना विलकुल असम्भव हो जाए। यदि हम स्वप्न को लिख डालें और इससे पैदा होने वाले सव साहचर्यो की इससे तुलना करें तो हम यह देखेंगे कि स्वप्न का कथानक कई गुना लम्वा हो गया है। इसलिए सवसे अधिक व्यावहारिक तरीका यही हो सकता है कि विश्लेपण के लिए कई छोटे-छोटे स्वप्न छांट लिए जाए जिनमे से प्रत्येक से हमे कोई न कोई विचार मिले, या किसी कल्पना की पुष्टि हो। यदि अनुभव से हमे यह सकेत न मिले कि हमे कम विपर्यस्त स्वप्नो की खोज असल मे कहा करनी चाहिए तो हम इसी मार्ग पर चलने का फैसला करेंगे।

पर मैं मामले को आसान वनाने का एक और तरीका सुझा सकता हू, जो विलकुल हमारे सामने मौजूद है। वजाय इसके कि पूरे स्वप्न का अर्थ लगाने की

कोशिश की जाए,हम सिर्फ एक स्वप्न-अवयव पर विचार करें और कई उदाहरण लेकर यह पता लगाए कि हमारी विधि के प्रयोग से उनकी व्याख्या कैसे होती है।

(क) एक महिला ने बताया कि बचपन मे उसे यह स्वप्न बहुत बार आता था कि **ईश्वर अपने सिर पर कागज की नोकदार टोपी पहने हुए है।** आप इसे स्वप्न दखने वाले की मदद के विना कैसे समझ सकेंगे ? यह विलकुल अर्थहीन बात मालूम होती है। पर वह महिला यह वताती है कि वचपन मे भोजन के समय मैं अपने सिर पर वैसी ही टोपी रखा करतो थी क्योकि मेरी यह आदत नही छूटती थी कि मैं अपने भाइयो और वहनो की थालियो मे यह देखने के लिए ताकती रहू कि उनमे से किसीको मुझसे अधिक तो नही मिला। स्पष्ट है कि उस टोपी का प्रयोजन आखें बन्द करना था। यह ऐतिहासिक जानकारी विना किसी कठिनाई के हासिल हो गई है। इस अवयव का और इसके साथ सारे छोटे-से स्वप्न का अर्थ स्वप्न-द्रष्टा के एक और साहचर्य की मदद से विलकुल आसान हो जाता है "मुझे वताया गया था कि ईश्वर सब कुछ जानता है और सब कुछ देखता है, इसलिए स्वप्न का यही अर्थ हो सकता था कि उनके रोकने की कोशिश के वावजूद मैं भी ईश्वर की तरह सव कुछ जानती और देखती हू।" शायद यह उदाहरण वहुत सरल है।

(ख) एक सन्देही रोगिणी को एक लम्बा स्वप्न आया जिसमे कुछ लोग उसे मेरी **बुद्धि या सूझ** (Wit) सम्बन्धी पुस्तक के वारे मे वता रहे थे और उसकी वडी प्रशसा कर रहे थे। इसके वाद कोई और चीज नहर के वारे मे आई। **शायद यह कोई और पुस्तक हो जिसमे नहर शब्द आया हो, या कोई और चीज हो जिसका नहर से सम्बन्ध हो—उसे मालूम नहीं था—यह बिलकुल अस्पष्ट था।**

अब आप निश्चित रूप से यह कल्पना करने लगेंगे कि स्वप्न मे दिखाई देने वाली नहर का अस्पष्टता के कारण अर्थ लगाना वडा कठिन है। इसके कठिन होने के वारे मे तो आपका विचार ठीक है, पर कठिनाई अस्पष्टता के कारण नही पैदा हुई है, इसके विपरीत, अर्थ लगाने की कठिनाई किसी और कारण से है—यह उसी चीज के कारण है जो उस अवयव को अस्पष्ट वना रही है। स्वप्न देखने वाले के पास नहर शब्द का कोई साहचर्य नही था। स्वभावत मैं भी नही जानता था कि क्या कहू। कुछ समय वाद, ठीक-ठीक कहा जाए तो अगले दिन उसने मुझे वताया कि मेरे मन मे एक साहचर्य आया है जो शायद इससे कुछ सवध रखता हो। असल मे यह एक चमत्कारिक उक्ति थी जो किसीने उससे कही थी। डोवर और कैले के वीच मे एक प्रसिद्ध लेखक किसी अग्रेज से वात कर रहा था जिसने किसी प्रसग मे ये शब्द उद्धृत किए "दु सब्लाइम ओं रिदिकुले इल न' ई अ क्वु' अन पा।" (Du Sublime au ridicule il n'y a qu'un pas) लेखक ने उत्तर दिया "क्वि, ल पा-द-कैले" (Qui, le Pas-de-Calais) जिसका

अर्थ यह है कि मैं फ्रास को भव्य और इगलैंड को हास्यास्पद समझता हूं। नि सदेह 'पा द कैले' एक नहर है, अर्थात् कनाल ला माच (Canal la Manache) अर्थात् इगलिश चैनल। अब आप पूछेंगे कि क्या मेरे ख्याल मे इस साहचर्य का स्वप्न से कोई सम्बन्ध है? निश्चित रूप से मेरा यही ख्याल है। इससे उस स्वप्न-अवयव की पहेली का सच्चा अर्थ पता चल जाता है। या आप इस बात पर सन्देह करते है कि वह मजाक स्वप्न से पहले मौजूद था और यही नहर-अवयव के पीछे मौजूद अचेतन विचार था, और यह मानते है कि यह बाद मे गढा गया? यह साहचर्य अतिरजित प्रशसा के पीछे छिपी हुई सदेहवृत्ति को प्रकट करता है, और नि सन्देह प्रतिरोध के कारण ही से यह साहचर्य इतनी देर बाद ध्यान आया, तथा सम्बन्धित स्वप्न-अवयव अस्पष्ट दिखाई दिया। यहा स्वप्न-अवयव और उसके पीछे मौजूद अचेतन विचार के सम्बन्ध को देखिए—यह मानो उस विचार एक टुकडा ही है, उसका ही निर्देश है। उस तरह बिलकुल अलग हो जाने पर यह बिलकुल समझ मे आने लायक नही रहा था।

(ग) एक मरीज को काफी लम्बा स्वप्न आया जिसका कुछ हिस्सा इस तरह था **उसके परिवार के कई लोग एक खास शक्ल की मेज पर बैठे थे** . इत्यादि। इस मेज ने स्वप्न देखने वाले को उसी तरह की एक मेज की याद दिलाई जो उसने किसी दूसरे परिवार मे देखी थी। उससे उसके विचार इस तरह दौडने लगे उसके परिवार मे पिता और पुत्र का सम्बन्ध एक विशेष प्रकार का था और रोगी ने तभी यह भी कहा कि अपने पिता के साथ मेरे सम्बन्ध भी उसी तरह के थे। इस प्रकार स्वप्न मे मेज यह सादृश्य दिखाने के लिए आई थी।

बात यह थी कि इस स्वप्न-द्रष्टा को स्वप्न-निर्वचन की अपेक्षाओ का बहुत समय से परिचय था, अन्यथा वह मेज की शक्ल जैसी तुच्छ बात पूछे जाने पर ऐतराज करने लगता। हम इस बात से पूरी तरह इन्कार करते हैं कि स्वप्न मे कोई चीज अचानक या बेमतलब होती है, और ऐसी तुच्छ और (ऊपर से देखने मे) कारणहीन बारीकियो की पूछताछ करके ही हम अपने नतीजे पर पहुचने की आशा करते हैं। आप शायद अब भी आश्चर्य करेंगे कि स्वप्न ने यह विचार प्रकट करने के लिए कि "हमारा सम्बन्ध ठीक उनके सम्बन्ध जैसा है" मेज को चुना। इसकी भी तब व्याख्या हो सकती है जब आपको यह पता चले कि इस परिवार का नाम 'टिशलर' था (टिश=मेज, शाब्दिक रूपान्तर 'मेज़िए' अर्थात् मेज़ वाले हो सकता है।) अपने रिश्तेदारो को मेज पर बिठाने मे स्वप्न-द्रष्टा का आशय यह था कि वे भी टिशलर या मेज़िए थे। एक बात और देखिए कि इस तरह के स्वप्न-निर्वचन सुनाने मे आदमी को विवेक छोडना पडता है। यह उसी तरह की कठिनाई है जिसका मैंने उदाहरण छाटने के मामले मे जिक्र किया था। मैं आपको इनकी जगह कोई और उदाहरण आसानी से दे

सकता था। पर शायद इस अविवेक से बचकर इसके स्थान पर मैं दूसरा अविवेक कर रहा होता।

यहा मैं दो नये शब्द आपको बताना चाहता हू जिनका प्रयोग हमने सम्भवत पहले भी किया है। स्वप्न जिस रूप मे सुनाया गया है, उसे हम **व्यक्त स्वप्न-वस्तु** कहेंगे, और उसके छिपे हुए अर्थ को, जो हमे साहचर्यो का अनुसरण करने से पता चलेगा, हम **गुप्त स्वप्न-विचार** कहेगे। तब हमें व्यक्त वस्तु और गुप्त विचारो के सम्बन्ध पर, जैसे कि वह ऊपर के उदाहरणो मे दिखाया गया है, विचार करना होगा। इन सम्बन्धो की बहुत-सी किस्मे हैं। उदाहरण (क) और (ख) मे व्यक्त स्वप्न-अवयव भी गुप्त विचारो का एक अखण्ड भाग है, परन्तु वह उनका सिर्फ एक छोटा-सा अश है। अचेतन स्वप्न-विचारो के एक बडे, मिश्रित, मानसिक ढाचे का एक छोटा-सा टुकडा—एक अश के रूप मे या दूसरे उदाहरणो मे, एक अवातर निर्देश के रूप मे—जैसे कि तार-सकेतो मे कोई बधे-बधाए शब्द या सक्षेप होते हैं वैसे, व्यक्त स्वप्न मे भी घुस आया है। निर्वचन को उस समष्टि को पूरा करना है। जिसका एक भाग यह अश या भ्रम[1] है, जैसे कि उदाहरण (ख) में इसने बहुत सफलता से किया था। इसलिए स्वप्न-तन्त्र का विपर्यस्त करने का एक तरीका तो यह है कि वह किसी चीज़ के स्थान पर उसका कोई अश या भ्रम ला देता है। उदाहरण (ग) में हम व्यक्त वस्तु और गुप्त विचार मे एक और सम्भव सम्बन्ध देखते हैं। यह सम्बन्ध निम्नलिखित उदाहरणो मे और भी स्पष्ट रूप से प्रकट होता है

(घ) **स्वप्न देखने वाला व्यक्ति अपनी परिचित एक महिला को खाई मे से ऊपर खींच रहा था।** उसने अपने पहले साहचर्य के द्वारा अपने स्वप्न-अवयव का अर्थ स्वय मालूम किया। इसका अर्थ था उसने 'उसे खीच लिया' अर्थात् उसे पसन्द किया।

(ङ) एक और आदमी ने स्वप्न देखा कि **उसका भाई अपने सारे बाग मे निलाई कर रहा है।** पहला साहचर्य यह था कि पौधो की अनावश्यक घास हटा रहा था। दूसरे ने अर्थ सूचित किया भाई अपने खर्चो को कम कर रहा है।

(च) **स्वप्न देखने वाला एक पर्वत पर चढ रहा था जिससे उसे बड़ा विस्तृत दृश्य दिखाई देता था।** यह बिलकुल तर्कसगत मालूम होता है। शायद इसका कोई अर्थ लगाने की आवश्यकता ही नही है, और हमे सिर्फ यह देखना है कि स्वप्न मे उसे कौन-सी बात स्मरण आ रही है। नही, आप भूल कर रहे हैं। इसका यह अर्थ है कि इस स्वप्न का उसी तरह अर्थ लगाने की आवश्यकता है जैसे किसी दूसरे अधिक उलझे हुए स्वप्न का, क्योकि स्वप्न देखने वाले को स्वय पहाड

---

१ Illusion

पर चढने के बारे मे कुछ याद नही है। इसके बजाय, उसके मन मे यह आता है कि उसका कोई परिचित व्यक्ति धरती के सबसे अधिक दूर वाले हिस्सो से हमारे सम्बन्धो के विषय मे एक समीक्षा (Rundschau) प्रकाशित कर रहा है। इसलिए गुप्त विचार वह है जिसमे स्वप्न देखने वाला स्वयं **'समीक्षक'** (शब्दार्थ · अच्छी तरह देखने वाला) बन जाता है।

यहा आपको स्वप्न के व्यक्त और गुप्त अवयव के बीच एक नये प्रकार के सम्बन्ध का पता चलता है। व्यक्त अवयव गुप्त अवयव का विपर्यास नही है, बल्कि उसका निरूपण है—यह कल्पना का एक वैसा ही ठोस चित्र है जैसा किसी शब्द की ध्वनि से पैदा होता है। यह सच है कि यह फलत विपर्यास ही है, क्योकि हम बहुत पहले यह भूल चुके हैं कि वह शब्द किस मूर्त प्रतिबिम्ब से पैदा हुआ, और इसलिए जब इसके स्थान पर वह प्रतिबिम्ब आ जाता है, तब हम इसे पहचान नही पाते। जब आप यह विचार करते हैं कि अधिकतर उदाहरण मे व्यक्त स्वप्न मे दृष्टिगम्य प्रतिबिम्ब ही होते हैं, और विचार तथा शब्द बहुत कम होते हैं, तब आप आसानी से यह समझ जाएगे कि स्वप्न के ढाचे मे व्यक्त और गुप्त के इस तरह के सम्बन्ध का कुछ विशेष अर्थ है। आप यह भी देखते हैं कि इस तरह बहुत-से अमूर्त विचारो की लम्बी श्रेणी के लिए व्यक्त स्वप्न मे स्थानापन्न बिम्ब पैदा करना सम्भव हो जाता है जो सचमुच छिपाने का प्रयोजन पूरा करते हैं। हमारी चित्र-पहेलिया इसी तरह की होती हैं। इस तरह के निरूपण मे जो सूझ या बुद्धि जैसी चीज दिखाई देती है, वह कहा से पैदा होती है, यह एक विशेष प्रश्न है, जिसपर हमे यहा विचार करने की ज़रूरत नही।

व्यक्त और गुप्त अवयवो के बीच एक चौथा सम्बन्ध भी है, जिसके बारे मे मैं हमारी विधि के वर्णन मे उसके उपयुक्त समय आने तक कुछ नही कहूगा। फिर भी इन सम्भव सम्बन्धो की पूरी सूची आपके सामने नही आई है, पर हमारे प्रयोजन के लिए काफी चीज़ आ चुकी है।

क्या अब आप एक पूरे स्वप्न का अर्थ लगाने की हिम्मत कर सकते हैं? पहले यह देखना चाहिए कि हमारे पास इसके लिए पर्याप्त तैयारी या साधन हो गए या नही। यद्यपि मैं सबसे अधिक स्पष्ट स्वप्न नही चुनूगा, तो भी ऐसा स्वप्न चुनूगा जो साफ तौर से स्वप्न की मुख्य विशेषताओ को प्रकट करे।

एक नौजवान स्त्री को, जिसका कई वर्ष पूर्व विवाह हो चुका था, यह स्वप्न आया . **वह अपने पति के साथ थियेटर गई। वहां एक तरफ़ की कुर्सियां बिलकुल खाली थीं। उसके पति ने उसे बताया कि एलिस एल० और उसका भावी पति (जिससे उसकी सगाई हुई है।) भी आना चाहते थे, पर उन्हें डेढ़ फ्लोरिन मे तीन वाली रद्दी कुर्सियां ही मिल सकीं, और निश्चित ही वे कुर्सियां नहीं ले सकते थे। उसने उत्तर दिया कि मेरी राय में इससे उन्हें विशेष नुकसान नहीं हुआ।**

स्वप्न देखने वाले ने जो पहली बात बताई, वह यह है कि स्वप्न पैदा होने के अवसर का व्यक्त वस्तु मे निर्देश है उसके पति ने उसे सचमुच बताया था कि उसकी एक परिचित लडकी एलिस एल० की, जो लगभग उसकी ही आयु की थी, सगाई हो गई थी और यह स्वप्न उसी समाचार की प्रतिक्रिया है। हम पहले ही जानते हैं कि वहुत-से स्वप्नो मे पिछले दिन हुए किसी ऐसे अवसर का सकेत करना आसान होता है, और स्वप्न देखने वाला विना कठिनाई के उसपर पहुच जाता है। यह स्वप्न देखने वाला हमे व्यक्त स्वप्न के अन्य अवयवो के वारे मे उसी तरह की और जानकारी देता है। एक तरफ की कुर्सिया खाली थी। इससे वह किस वात पर पहुची ? यह पिछले सप्ताह की एक वास्तविक घटना का निर्देश था, जव उसने एक नाटक देखने का विचार किया था और इसलिए इतनी जल्दी सीटें वुक करा ली थी कि उसे टिकटो के लिए अतिरिक्त पैसे देने पडे थे। थियेटर मे घुसने पर यह स्पष्ट था कि उसकी चिन्ता बिलकुल अनावश्यक थी, क्योकि एक तरफ की कुर्सिया प्राय खाली थी। यदि वह नाटक के दिन ही टिकट खरीदती तो भी काफी समय होता और उसका पति उसे यह कोचने से न चूका कि तुमने वहुत जल्दीवाजी की। इसके वाद डेढ फ्लोरिन का क्या अर्थ हुआ ? इसका सम्बन्ध एक बिलकुल दूसरे प्रसग से था, जिसका पहले प्रसग से कुछ मेल नही था। पर यह भी पिछले दिन मिले किसी समाचार के वारे मे था। उसकी ननद के पास अपने पति से डेढ सौ फ्लोरिन आए थे और वह मूर्ख की तरह जल्दी से एक गहने वाले की दुकान पर पहुची और एक गहने पर उसने वह सब खर्च कर दिया। तीन सख्या का क्या अर्थ था ? उसे इसके वारे मे कुछ मालूम नही था पर शायद आप इस विचार को साहचर्य मान सकें कि सगाई वाली लडकी एलिस एल० इससे सिर्फ तीन महीने छोटी थी जवकि इसकी शादी हुए दस वर्ष हो चुके थे। और दो आदमियो के लिए तीन टिकट लेने की वेतुकी वात का क्या मतलव था ? उसने इस वारे मे कुछ नही कहा और कोई अन्य साहचर्य या जानकारी वताने से इन्कार कर दिया।

तो भी उसके थोडे-से साहचर्यो ने हमे इतनी सामग्री दे दी है कि उससे गुप्त स्वप्न-विचार का पता लगाया जा सकता है। यह तथ्य विशेष रूप से हमारे सामने आता है कि उसके वयानो मे समय का उल्लेख कई जगह दिखाई देता है और यह इस सामग्री के भिन्न-भिन्न भागो का सामान्य आधार वना हुआ है। उसने थियेटर के टिकट वहुत जल्दी खरीद लिए थे उन्हे वहुत जल्दी-जल्दी मे लिया था, जिसके कारण उसे अतिरिक्त पैसे देने पडे थे, इसी तरह, उसकी ननद वहुत जल्दी मे सर्राफ की दुकान पर जेवर खरीदने चली गई थी, मानो उसकी कोई चीज खो जाएगी। यदि उन वातो को, जिनपर खास वल दिया गया—'वहुत जल्दी' 'वहुत जल्दी मे'—स्वप्न के मौके (अर्थात् यह खवर कि उसकी उससे

सिर्फ तीन महीने छोटी सहेली को अब आखीर मे एक अच्छा पति मिल गया है।) से, और उस आलोचना से, जो उसने अपनी ननद के बारे मे रूखेपन से की थी, कि 'इतनी जल्दबाजी करना बेवकूफी है', जोड दिया जाए तो प्राय अपने आप ही गुप्त स्वप्न-विचारो की निम्नलिखित अन्विति या तात्पर्य आता है जिसका बहुत अधिक विपर्यस्त स्थानापन्न वह स्वप्न है:

"मेरा विवाह के लिए इतनी जल्दी करना सचमुच बेवकूफी थी। एलिस के उदाहरण से मुझे पता चलता है कि मुझे भी बाद मे पति मिल सकता था" (यहा बहुत जल्दबाजी उसके अपने टिकट खरीदने के काम मे, और उसकी ननद के जेवर खरीदने के रूप मे प्रकट हुई, विवाहित होने के स्थान पर थियेटर जाना आ गया।)। प्रधान विचार यह होगा, शायद हम आगे भी बढ सकते है परतु उतने निश्चिय से नही, क्योकि इन वाक्यो मे प्रस्तुत विश्लेषण स्वप्न-द्रष्टा के बयानो से अवश्य समर्थित ही होना चाहिए "और मैं उतने ही रुपयो मे सौ गुना अच्छा पा सकती थी।" (डेढसौ फ्लोरिन डेढ फ्लोरिन का सौ गुना है।) यदि हम धन के स्थान पर दहेज रख दे तो इसका अर्थ यह होगा कि पति दहेज से खरीदा जाता है: जेवर और खराब सीटे, ये दोनो चीजें पति की निरूपक होगी। यदि हम 'तीन टिकट' और एक पतिवाले अवयव मे भी कोई सम्बन्ध-सूत्र देख सकें तो और भी अच्छा होगा, पर अब तक का हमारा ज्ञान इतनी दूर तक नही पहुचता। हम इतना ही पता लगा सकते हैं कि यह स्वप्न यह प्रकट करता है कि वह अपने पति को हीन समझती है और इतनी जल्दी विवाह कर लेने पर उसे खेद है।

मेरी राय मे स्वप्न का अर्थ लगाने की हमारी इस पहली कोशिश का जो परिणाम हुआ है, उससे हम सन्तुष्ट कम और चकित तथा विभ्रान्त अधिक होगे। हमारे मन मे चारो ओर से एक साथ इतने सारे विचार आ रहे हैं कि हम उन्हे नियन्त्रित ही नही कर पा रहे हैं। हम पहले ही देख रहे हैं कि इस स्वप्न के निर्वचन से हम जो कुछ जान पाएगे, उससे किसी उद्देश्य पर नही पहुचेगे। उन बातो को फौरन अलग-अलग कर लिया जाए जिनमे हमे निश्चित रूप से कोई नया ज्ञान दिखाई देता है।

पहली बात हम देखते हैं कि गुप्त विचारो मे मुख्य बल जल्दी के अवयव पर हैं, व्यक्त स्वप्न मे यह एक ऐसी चीज है जिसके बारे मे हमे कुछ नही मिलता। विश्लेषण के बिना हमे यह सन्देह भी न होता कि यह विचार मन मे कभी आया था। इसलिए यह सम्भव मालूम होता है कि वह मुख्य बात, जो अचेतन विचारो का केन्द्र है, व्यक्त स्वप्न मे बिलकुल दिखाई ही नही दी। इस तथ्य से वह सारा प्रभाव ऊपर से नीचे तक बदल जाता है, जो इस सारे स्वप्न से हमारे ऊपर पडा था। दूसरी बात . स्वप्न मे विचारो का अर्थहीन संयोग है (डेढ फ्लोरिन मे तीन); स्वप्न-विचारो मे हमे यह राय दिखाई देती है '(इतनी जल्दी विवाह) यह बेव-

कूफी थी।' क्या हम इस निष्कर्ष को अस्वीकार कर सकते हैं कि यह विचार 'यह बेवकूफी थी' व्यक्त स्वप्न मे एक बेतुका अवयव लाकर प्रकट हुआ है ? तीसरी बात तुलना से पता चलता है कि व्यक्त और गुप्त अवयवो का सम्बन्ध सरल और सीधा नही होता। निश्चित ही वह इस तरह का नही होता कि एक गुप्त अवयव के स्थान पर सदा एक व्यक्त अवयव आ जाता हो। इन दोनो का सम्बन्ध दो विभिन्न समूहो मे होने वाले सम्बन्ध जैसा है, अर्थात् एक व्यक्त अवयव कई गुप्त विचारो को निरूपित कर सकता है, या एक गुप्त विचार के स्थान पर कई अवयव आ सकते हैं।

अब स्वप्न के अर्थ का, और इसके प्रति स्वप्न देखने वाले के रवैये का प्रश्न रह जाता है इसमे भी हमे बहुत-सी आश्चर्यजनक बातें दिखाई दे सकती हैं। उस महिला ने इस अर्थ को स्वीकार तो अवश्य किया, पर उसे इसपर आश्चर्य था। उसे इस बात का ध्यान नही था कि वह अपने पति के बारे मे ऐसे हीन विचार रखती है। उसे यह भी मालूम नही था कि वह उसे इस तरह हीन क्यो समझे। इस प्रकार, इसके बारे मे अब भी बहुत-सी बातें समझ मे नही आती। असल मे, मैं यह सोच रहा हू कि अभी स्वप्न का अर्थ लगाने के लिए हमारी उचित तैयारी नही हुई, और हमे पहले और अधिक शिक्षा तथा तैयारी की आवश्यकता है।

व्याख्यान | ८

बच्चों के स्वप्न

हमे यह महसूस हुआ था कि हम वहुत तेज चल आए हैं, इसलिए आइए थोडा-सा पीछे लौटा जाए। अपना पिछला परीक्षण करने से पहले, जिसमे हम अपनी विधि द्वारा स्वप्न-विपर्यास की कठिनाई से वचने की कोशिश की थी, हमने यह कहा था कि यदि कोई ऐसे स्वप्न हों जिनमें विपर्यास विलकुल नही होता या वहुत थोडा होता है तो उन्ही तक अपना ध्यान सीमित रखकर विपर्यास के प्रश्न को छोड जाना सवसे अच्छा रहेगा। ऐसा करते हुए भी हम अपने ज्ञान के परिवर्धन का असली मार्ग छोड़ रहे हैं, क्योंकि वास्तव मे जिन स्वप्नो मे विपर्यास होता है, उनमे अर्थ लगाने की अपनी विधि का लगातार प्रयोग करने के वाद और उनका पूरा विश्लेपण करने के वाद हमे उन स्वप्नो के अस्तित्व का पता चला था, जिनमे विपर्यास नही होता।

जिन स्वप्नो को हम खोज रहे हैं वे वच्चो मे मिलते हैं। वे छोटे, स्पष्ट, सुसम्बद्ध और समझने मे आसान तथा असदिग्ध होते हैं, फिर भी निश्चित रूप से होते स्वप्न ही हैं। पर आप यह न समझिए कि वच्चो के सव स्वप्न इस तरह के होते हैं। वचपन मे वहुत जल्दी स्वप्नो मे विपर्यास दीखने लगता है। और हमारे रिकार्ड मे पांच और चार वर्ष के वीच के वच्चो के ऐसे स्वप्न हैं, जिनमे वाद के जीवन के सव स्वप्नो की विशेपताएं दिखाई देती हैं। पर यदि आप उन स्वप्नो पर ही विचार करें जो पहचान योग्य मानसिक क्रिया आरम्भ होने के और चौथे या पाचवें वर्ष के वीच मे होते हैं तो आपको एक ऐसी श्रेणी दिखाई देगी जिसे हम शैशवीय, अर्थात् शैशव मे होने वाली स्वप्न-श्रेणी कह सकते हैं, और वचपन के वाद के वर्षों मे आपको उसी तरह के अकेले स्वप्न मिल सकते है। सच तो यह है कि वड़े आदमियो मे भी कुछ अवस्थाओं मे ऐसे स्वप्न दिखाई देते हैं जो शैशवीय स्वप्नो से भिन्न नही होते।

वच्चो के इन स्वप्नो से स्वप्नो की असली प्रकृति के वारे मे, विना कठिनाई के, भरोसे की जानकारी मिल सकती है, और हमे आशा है कि यह जानकारी

निर्णायक और सर्वमान्य सिद्ध होगी।

१ इन स्वप्नों को समझाने के लिए न किसी विश्लेषण की आवश्यकता है और न कोई विधि प्रयोग मे लाने की। जो बच्चा स्वप्न बतलाता है, उससे सवाल पूछने की भी आवश्यकता नही, पर हमे उसके जीवन के बारे मे कुछ पता होना चाहिए, प्रत्येक उदाहरण मे पिछले दिन का कोई ऐसा अनुभव होता है जो स्वप्न की व्याख्या करता है। स्वप्न पिछले दिन के अनुभव पर, नीद में, मन की प्रतिक्रिया है। अब हम कुछ उदाहरण लेंगे जिनके आधार पर हम आगे निष्कर्ष निकाल सकेंगे

(क) एक वर्ष दस महीने आयु के किसी लडके को, किसीको जन्म-दिवस के उपहार के रूप में एक टोकरी जामुन देने थे। उसने स्पष्टत बडी अनिच्छा से यह उपहार दिया, यद्यपि उसे भी उनमे से कुछ देने का वायदा किया गया था। सवेरे उसने अपना स्वप्न बताया "हरमैन ने सारे के सारे जामुन खा लिए।"

(ख) सवा तीन साल की एक लडकी पहली बार एक झील पर सैर करने गई। जब वे जमीन के पास पहुचे तब वह नाव से उतरना ही नही चाहती थी, और जोर से रोने लगी। स्पष्ट है कि झील पर उसका समय बहुत तेजी से गुजरा था। सवेरे उसने कहा : "रात मैं झील पर सैर कर रही थी।" हम सम्भवतः यह अनुमान कर सकते हैं कि यह सैर ज्यादा देर रही होगी।

(ग) सवा पाच साल के एक लडके को हालस्टाट के पास ऐसकर्न्टल घुमाने ले जाया गया। उसने सुना था कि हालस्टाट डाकस्टीन की तलहटी मे है और उस पर्वत मे उसने बडी दिलचस्पी दिखाई थी। औसी मे बने हुए मकान से डाकस्टीन का दृश्य बडा सुन्दर दिखाई देता था, और दूरबीन से उसकी चोटी पर बनी हुई साइमनी हट या कुटिया देखी जा सकती थी। बच्चे ने बार-बार दूरबीन से कुटिया देखने की कोशिश की थी, पर किसीको मालूम नही कि उसे सफलता मिली या नही। यह यात्रा हर्षपूर्ण आशाए लेकर शुरू हुई थी। जब कोई नया पहाड दिखाई देता था, तभी वह बच्चा पूछता था "क्या वह डाकस्टीन है?" हर बार उसके प्रश्न का उत्तर नकारात्मक होता था। हौसला छोडकर वह बिलकुल चुप हो गया और उसने औरो के साथ चलकर जलप्रपात तक पहुचने से भी इन्कार कर दिया। लोगो ने समझा कि वह बहुत थक गया है, पर अगले दिन सवेरे उसने बडी खुशी से कहा " रात हमने यह स्वप्न देखा कि हम साइमनी हट मे हैं—"तो उसने इस आशय से यात्रा मे हिस्सा लिया था। वह एक ही ब्योरा पता लगा सका जो उसने पहले सुना था "छ घन्टे तक सीढिया चढनी पडती हैं।"

इस प्रश्न पर हमे जितनी जानकारी चाहिए उसके लिए ये तीन स्वप्न काफी हैं।

२ हम देखते है कि बचपन के ये स्वप्न अर्थहीन नही होते। वे पूर्ण और समझ मे आने योग्य मानसिक कार्य होते है। स्वप्नो के बारे मे डाक्टरी विज्ञान की जो राय मैंने आपको बताई थी, वह याद करिए, और पियानो की कुजियो पर चलने वाली अकुशल उंगलियो की तुलना भी याद रखिए। आपको अवश्य दिखाई देगा कि बच्चो के जो स्वप्न मैंने आपको बताए हैं उनसे इस धारणा का कितना प्रबल खण्डन हो जाता है, पर यह बात बडी असामान्य होगी कि कोई बच्चा नीद मे पूर्णमानसिक कार्य कर सके और बडा आदमी उस स्थिति मे सिर्फ बीच-बीच मे प्रबल होने वाली प्रतिक्रियाए ही कर सके। इसके अतिरिक्त, हमे यह बात युक्तियुक्त मालूम होती है कि बच्चे की नीद अधिक अच्छी और अधिक गहरी होती है।

३ इन स्वप्नो मे कोई विपर्यास नही है, और इसलिए इनका अर्थ लगाने की कोई आवश्यकता नही है। यहा व्यक्त और गुप्त वस्तु मे भिन्नता नही है। इससे हम यह नतीजा निकालते हैं **कि विपर्यास स्वप्न की प्रकृति का सर्वथा आवश्यक हिस्सा नही है।** मुझे आशा है कि यह बात सुनकर आपके दिमाग से एक बोझ हट जाएगा। तो भी बारीकी से विचार करने पर हमे यह मानना पडता है कि इन स्वप्नो मे भी विपर्यास यद्यपि बहुत ही कम मात्रा मे होता है, और व्यक्त वस्तु और गुप्त स्वप्न-विचार मे थोडा अन्तर होता है।

४ बच्चे का स्वप्न पिछले दिन के अनुभव की एक प्रतिक्रिया है। वह अनुभव कोई अफसोस, कोई चाह, या कोई अधूरी इच्छा पीछे छोड गया है। **स्वप्न मे हम इस इच्छा की सीधी और प्रत्यक्ष रूप से पूर्ति करते हैं।** अब उन बातो पर विचार कीजिए जो हमने पहले पेश की थी, और जिनमे यह बताया था कि बाहरी या भीतरी कायिक उद्दीपन नीद के विघातक और स्वप्न के जनक के रूप मे क्या कार्य करते है। इस प्रश्न पर हमने कुछ निश्चित तथ्य प्राप्त किए थे, पर यह व्याख्या सिर्फ थोडे-से स्वप्नो के बारे मे सही उतरती थी। बच्चो के इन स्वप्नो मे ऐसे कायिक उद्दीपनो के प्रभाव का कोई सकेत नही मिलता, इस विषय में हमारी कोई भूल नही हो सकती, क्योकि ये स्वप्न पूरी तरह समझ मे आ जाने वाले हैं और प्रत्येक स्वप्न, पूरे का पूरा आसानी से समझा जा सकता है। पर इस कारण हमें यह विचार नही छोड देना चाहिए कि वह उद्दीपन स्वप्न पैदा करता है। हम सिर्फ यह पूछ सकते हैं कि शुरू से ही हम यह क्यो भूल जाते हैं कि शरीरिक नीद-विघातक उद्दीपनो के अलावा **मानसिक नीद-विघातक** उद्दीपन भी होते हैं। निश्चय ही हम जानते हैं कि वयस्को की नीद में मुख्यत इन्हीके कारण बाधा होती है। ये नीद के लिए आवश्यक मानसिक अवस्था अर्थात् बाहरी दुनिया से दिलचस्पी के खिचाव को रोकते है। आदमी चाहता है कि मेरे जीवन में कोई व्याघात न आए, वह जो कुछ कर रहा है, वही

करते रहना चाहता है, और उसके न सोने का यही कारण है। इसलिए, बच्चे के लिए नीद खराब करने वाला मानसिक उद्दीपन उसकी अधूरी इच्छा है, और इसपर बच्चे की प्रतिक्रिया ही स्वप्न है।

५. इससे जरा-सा आगे बढते ही हम स्वप्नो के कार्य के बारे में एक नतीजे पर आ जाते हैं। यदि स्वप्न एक मानसिक उद्दीपन की प्रतिक्रिया हैं, तो उनका महत्व इस बात मे होना चाहिए कि वे उत्तेजन का आवेश (चार्ज) खतम कर दें, जिससे उद्दीपन हट जाए, और नीद जारी रह सके। हम अभी यह नहीं जानते कि स्वप्न के द्वारा यह निरावेश या विसर्जन (डिसचार्ज) गतिकीय दृष्टि से कैसे होता है, पर यह हम पहले ही देख चुके हैं कि स्वप्न नीद के विघातक नहीं हैं (जैसा कि उन्हें आमतौर से कहा जाता है), बल्कि विघातक प्रभावो से इसकी रक्षा करने वाले हैं। यह सच है कि हम यह सोचते हैं कि स्वप्न न आए होते तो हम अच्छी नीद सोए होते, पर हमारा ख्याल गलत है। सचाई यह है कि स्वप्न की सहायता के बिना हम जरा भी न सो पाते, और हम स्वप्न के कारण ही ज्यादा से ज्यादा अच्छी तरह सो सके। यह, थोडी-बहुत हमारी नीद बिगाडते जरूर हैं, पर यह तो ठीक वैसे ही है जैसे पुलिस वाला शान्ति भग करने वालो को भागते हुए प्राय शोर करके हमे जगा दिया करता है।

६ स्वप्न किसी इच्छा के कारण पैदा होते हैं और स्वप्न की वस्तु उस इच्छा को प्रकट करती है—यह स्वप्नों की मुख्य विशेषता है। दूसरी इतनी ही स्थिर विशेषता यह है कि स्वप्न विचार को केवल व्यक्त ही नही करता, बल्कि इस इच्छा को एक मतिभ्रात्मक अनुभव के रूप मे पूर्ण हुआ दिखाता है। 'मैं झील पर सैर करना चाहता हू', इस इच्छा से एक स्वप्न पैदा होता है जिसकी वस्तु यह है 'मैं झील पर सैर कर रहा हू।' इस प्रकार बचपन के इन सरल स्वप्नो मे भी गुप्त और व्यक्त स्वप्नो का अन्तर है और गुप्त स्वप्न-विचार मे यह विपर्यास भी है कि **विचार अनुभव के रूप मे आ गया है,** किसी स्वप्न का अर्थ लगाने मे सबसे पहले हमे इस परिवर्तन के प्रक्रम को हटाना होगा। यदि इसे सब स्वप्नो की सबसे व्यापक विशेषताओ मे से एक मान लिया जाए तो हमे पता चलता है कि ऊपर बताए गए स्वप्न-अवयव को कैसे अनुवादित या रूपान्तरित किया जा सकता है 'मैं अपने भाई को निलाई करते देखता हू' का यह अर्थ नहीं कि 'मेरा भाई घास हटा रहा है' बल्कि मैं चाहता हू कि मेरे भाई खर्च कम करे, बल्कि उसे खर्च कम करना ही पड़ेगा। हमने जो दो व्यापक विशेषताए बताई हैं, उनमे से पहली की अपेक्षा दूसरी को स्पष्टत बिना विरोध स्वीकार कर लिए जाने की अधिक सम्भावना है।

विस्तृत जाच-पडताल से ही हम यह निश्चय कर सकते हैं कि स्वप्न पैदा करने वाला कारण सदा कोई इच्छा ही होती है, और वह कभी भी कोई आवश्यक

कार्य या प्रयोजन या कोई डाट-फटकार नही हो सकती; परन्तु दूसरी विशेषता जैसी की तैसी रहती है, अर्थात् यह कि स्वप्न इस उद्दीपन को सिर्फ पुन. प्रस्तुत ही नही करता, वल्कि एक तरह से 'इसको जीकर' इसे हटा देता है, दूर कर देता है, शात कर देता है।

७. स्वप्नो की इन विशेषताओ के प्रसंग मे हम अपनी स्वप्नो और गलतियो की तुलना पर फिर विचार कर सकते है। गलतियो पर विचार करते हुए हमने वाधक प्रवृत्ति और वाधित प्रवृत्ति मे भेद दिखाया था, जिन दोनो के समझौते के रूप मे गलती पैदा हुई। स्वप्न भी उसी श्रेणी मे आते हैं, वाधित प्रवृत्ति सोने की ही प्रवृत्ति हो सकती है और वाधक प्रवृत्ति मानसिक उद्दीपन के रूप मे आ जाती है, जिसे हम 'इच्छा' कह सकते हैं (जो पूर्ति या तृप्ति के लिए शोर मचा रही है), क्योकि इस समय हम नीद के वाधक और किसी मानसिक उद्दीपन को नही जानते। यहा भी स्वप्न एक समझौते का परिणाम है, हम सोते हैं, पर फिर भी एक इच्छा की तृप्ति अनुभव करते हैं, एक इच्छा की तृप्ति करते हैं और साथ ही सोते भी रहते हैं। प्रत्येक को आशिक सफलता और आशिक विफलता मिलती है।

८. आपको याद होगा कि एक स्थान पर हमने यह आशा की थी कि स्वप्नो की समस्या को समझने का रास्ता इस तथ्य से निकल आएगा कि कुछ वडे स्पष्ट कल्पना-जाल 'दिवा-स्वप्न' कहलाते हैं। ये दिवा-स्वप्न तो सचमुच इच्छाओ की पूर्ति ही है। ये आकाक्षा पूर्ति या कामुक इच्छाओ की पूर्ति है, जिन्हे हम इस रूप मे पहचानते है, पर वे विचार मे पहुच जाती हैं और उनकी चाहे कितनी ही सजीव कल्पना की जाए, पर वे कभी भी मतिभ्रमात्मक अनुभवो का रूप नही लेती। इसलिए यहा स्वप्न की दो मुख्य विशेषताओ मे से कम निश्चित विशेषता कायम रहती है, और दूसरी विशेषता जिसके लिए नीद की अवस्था आवश्यक है, और जो जागृत जीवन मे नही अनुभव की जा सकती, सर्वथा अनुपस्थित है। इसलिए भाषा मे हमे यह सकेत मिलता है कि इच्छा-पूर्ति स्वप्नो की मुख्य विशेषता है, और फिर यदि स्वप्नो मे होने वाला अनुभव कल्पनात्मक निरूपण का ही दूसरा रूप है (यह रूप नीद की विशेष अवस्थाओ मे सम्भव हो जाता है और इसे हम 'रात का दिवा-स्वप्न' कह सकते हैं।) तो हम तुरन्त समझ जाते हैं कि स्वप्न-निर्माण का प्रक्रम किस तरह रात मे क्रियाशील उद्दीपन को प्रभावहीन कर सकता है, और तृप्ति करा सकता है. कारण यह है कि दिवा-स्वप्न भी तृप्ति से घनिष्ठ रूप से जुडी हुई क्रिया-व्यापार की एक रीति ही है, और असल मे, तृप्ति के लिए ही हम लोग इसे प्रयोग मे लाते है।

भाषा मे इसके अलावा कई और भी रूढ प्रयोग हैं जिनसे यही ध्वनि निकलती है। हम इस कहावत से परिचित है 'सुअर को स्वप्न मे भी आम की गुठली

दीखती है और मुर्गी को अनाज के दाने'। आप देखते हैं कि यह कहावत और भी नीचे, बच्चो से भी परे, पशु-पक्षियों पर पहुचती है, और यही कहती है कि स्वप्नो की वस्तु किसी अभाव की पूर्ति है। हम कहा करते हैं 'मैंने सपने मे भी नही सोचा', 'स्वप्न के समान सुन्दर', 'वह धन के स्वप्न देखता रहता है', 'सारे स्वप्न धूल मे मिल गए,' 'स्वप्न साकार हो गए'। यहा बोल-चाल की भाषा मे स्पष्टत प्रभाव की पूर्ति के लिए स्वप्न का प्रयोग किया जाता है। यह ठीक है कि चिन्ताओ और कष्टों के भी स्वप्न आते है, पर 'स्वप्न' शब्द का सामान्य प्रयोग हमेशा किसी बढिया इच्छा-पूर्ति के लिए होता है, और ऐसी कोई कहावत नही है जो यह कहती हो कि सुअर और मुर्गिया जिबह किए जाने का स्वप्न देखती हैं।

निस्सन्देह यह बात समझ मे आने वाली नही है कि स्वप्नो का इच्छा-पूर्ति का यह गुण इस विषय पर पहले के लेखको की नजर से बच गया हो। सच तो यह है।क उन्होने इसका बहुत बार उल्लेख किया है, पर उनमे से किसीके मन मे यह बात नहीं आई कि इस विशेपता को व्यापक विशेपता के रूप मे पहचान लें और इसे स्वप्नो की व्याख्या की कुञ्जी समझें। इसमे उन्हे जो रुकावट पडी होगी, उसकी हम आसानी से कल्पना कर सकते हैं। हम बाद मे इस प्रश्न पर विचार करेंगे।

अब जरा यह सोचिए कि हमे बच्चो के स्वप्नो पर विचार करने से कितनी सारी जानकारी प्राप्त हो गई, और वह भी बिना किसी विशेप परेशानी के। हमने जाना कि स्वप्नो का कार्य नीद की रक्षा करना है, कि वे दो विरोधी प्रवृत्तियो के परिणामस्वरूप पैदा होते हैं, जिनमे से एक, अर्थात् नीद की अभिलापा अपरिवर्तित रहती है, और दूसरी किसी मानसिक उद्दीपन को तृप्त करने की कोशिश करती है, कि स्वप्न मानसिक व्यापार सिद्ध हुए हैं जो अर्थपूर्ण होते हैं, कि उनकी दो मुख्य विशेपताए है, अर्थात् वे इच्छा-पूर्ति हैं और मतिभ्रमात्मक अनुभव हैं, और इस बीच हम यह प्राय भूल ही गए हैं कि हम मनोविश्लेपण का अध्ययन कर रहे थे। स्वप्नो और गलतियो मे सम्बन्ध-सूत्र बाधने के अलावा हमारे काम का और कोई विशेप नतीजा नही हुआ। मनोविश्लेपण की मान्यताओ से बिलकुल अपरिचित भी कोई मनोवैज्ञानिक यह व्याख्या कर सकता था। फिर किसीने ऐसा क्यो नही किया?

यदि सब स्वप्न शैशवीय प्ररूप के भी होते तो समस्या सुलझ गई होती और हमारा उद्देश्य पूरा हो गया होता और वह भी स्वप्न देखने वाले से बिना कुछ पूछे, अचेतन मे बिना कुछ कहे, या मुक्त साहचर्य के प्रक्रम का बिना उपयोग किए ही हो गया होता। स्पष्ट है कि हमे इसी दिशा मे अपना काम जारी रखना होगा। हम पहले बार बार देख चुके हैं कि सर्वत्र मान्य बताई जाने वाली विशेपताए बाद मे

सिर्फ एक तरह के और थोडे-से स्वप्नो के लिए ही ठीक सिद्ध हुई। इस प्रकार, हमे अब जो प्रश्न तय करना है वह यह है कि क्या बच्चो के स्वप्नो से प्रकट हुई सामान्य विशेषताए इनसे अधिक स्थायी होती हैं, और क्या वे उन स्वप्नो के लिए भी ठीक उतरती है जिनका अर्थ सीधा नही है और जिनकी व्यक्त वस्तु मे हमे पिछले दिन की बची हुई इच्छा का कोई निर्देश नही मिलता। हमारा ख्याल यह है कि इन दूसरे स्वप्नो में बहुत अधिक विपर्यास हो गया और इसलिए हमें फौरन कोई फैसला नही करना चाहिए। हमे यह भी सन्देह है कि इस विपर्यास को हटाने के लिए हमें मनोविश्लेषण की विधि की आवश्यकता होगी, जिसे हम अभी, इस विषय को सीखते समय, अलग रख देना चाहते है, और जैसे हमने अभी बच्चो के स्वप्नो का अर्थ लगाते हुए किया है वैसे ही, उसके बिना काम चलाना चाहते हैं।

कम से कम एक और तरह के स्वप्न भी ऐसे होते है जिनमें कोई विपर्यास नही होता, और जिन्हे बच्चो के स्वप्नो की तरह हम आसानी से पहचान सकते हैं कि वे इच्छा-पूर्ति है। ये स्वप्न वे है जो भूख, प्यास और कामुक इच्छा—इन अनिवार्य शारीरिक आवश्यकताओ के कारण जीवन भर आते रहते है और इस अर्थ मे वे इच्छा-पूर्ति हैं कि वे भीतरी कायिक उद्दीपनो की प्रतिक्रिया हैं। इस प्रकार मेरे रिकार्ड मे एक साल सात महीने की एक छोटी लडकी का स्वप्न है जिसमे भोजन की वस्तुए तथा उसका नाम दिखा था (अन्ना एफ० स्ट्रावेरी बिलवेरी, अडा, फल) यह स्वप्न एक दिन के उपवास की प्रतिक्रिया स्वरूप आया था, और स्वप्न में दो बार वही फल दिखलाई पडे जिन्हे खाने से उसे अपच की शिकायत हो गई थी और जिसके कारण उसे उपवास करना पडा था। साथ ही उसकी दादी को—उन दोनो की आयुओ का जोड ७० वर्ष था—गुर्दे मे तकलीफ के कारण एक दिन उपवास करना पडा और उसे रात को यह स्वप्न आया कि वह कही दावत मे गई हुई है और उसके आगे बडी स्वादिष्ट रसीली वस्तुए रखी गई हैं। जिन कैदियो को भूखा छोड दिया जाता है और जिन लोगो को सफर मे या साहसिक यात्राओ मे भूखे रहना पडता है, उनपर की गई जाच से पता चलता है कि इन परिस्थितियो मे उन्हे नियमित रूप से अपने अभावो की पूर्ति का स्वप्न आता है। ओटो नोर्डेन्सकोल्ड ने दक्षिणी ध्रुव सम्बन्धी अपनी पुस्तक (१९०४)मे उस टोली की चर्चा इस प्रकार की है, जिसके साथ उसने जाडा गुजारा था (जिल्द १, पृष्ठ ३३६) "हमारे स्वप्नो से हमारे विचारो के चलने की दिशा का बहुत स्पष्ट रूप से पता चलता था। जितने अधिक और जितने सजीव स्वप्न हमे उस समय आए उतने कभी नही आए थे। हमारे जिन साथियो को आमतौर से बहुत ही कम स्वप्न आते थे, वे भी सवेरे इस कल्पना-लोक के ताजे अनुभवो पर होने वाली गोष्ठी मे अब लम्बे-लम्बे किस्से सुनाते थे। सब स्वप्न उस बाहरी दुनिया के बारे मे होते थे जो हमसे दूर छूट गई थी, पर प्राय. उनमे हमारी उस

समय की अवस्था का निर्देश भी होता था ' 'खाने और पीने को केन्द्र बनाकर ही हमारे स्वप्न अधिकतर चलते थे। हममे से एक आदमी, जो नीद मे बडी-बडी दावतो में जाया करता था, सवेरे हमें यह बताकर बडा प्रसन्न होता था कि स्वप्न में उसने तीन 'कोर्स' वाला शानदार भोजन किया। एक और को तम्बाकू का स्वप्न आया करता था, तम्बाकू के पहाड के पहाड दिखाई पडते थे उसे, तीसरे को एक जहाज दीखता जो पानी पर पूरी तरह तैरता हुआ आ रहा था, और पानी से बर्फ साफ हो गया था। एक और स्वप्न उल्लेख योग्य है डाकिया चिट्ठिया लेकर आया और उसने उनके देर से आने की बडी लम्बी सफाई पेश की। उसने कहा कि मैंने वे एक गलत जगह पहुचा दी थी जिन्हें वापस लेने मे मुझे बडी परेशानी हुई। इससे भी असम्भव बातें नीद मे हमारे मनो मे घूमती रही। पर जो स्वप्न मैंने देखे या दूसरो से सुने, उनमे एक बात विशेष रूप से महसूस हुई, कि प्राय सब स्वप्नो मे कल्पना का अभाव था। यदि हम इन सब स्वप्नो का लेखा रख पाते तो निश्चय ही वह बडी मनोवैज्ञानिक दिलचस्पी की चीज़ होती। आप कल्पना कर सकते हैं कि हम नीद के लिए कितने उत्सुक रहते होंगे जो हममे से हरएक को वह चीज देती थी जिसके लिए वह सबसे अधिक उत्सुक था।" एक और उदाहरण लीजिए जो डू प्रेल का है "मगोपार्क को अफ्रीका मे यात्रा करते हुए प्यास के मारे मरा हुआ-सा हो जाने पर लगातार अपने देश के जलमय पहाडो और घाटियो के स्वप्न आते रहे। इसी तरह ट्रैंक जब मैगडेबुर्ग के गढ मे भूख की यन्त्रणा से परेशान था, तब उसने स्वप्न मे अपने को बढिया भोजनो से घिरा हुआ देखा, और जार्ज बैक, जिसने फ्रैंकलिन की पहली यात्रा मे हिस्सा लिया था, जब अपने भयकर अभावो के कारण भूख के मारे मरणासन्न था, तब उसे नियमित रूप से प्रचुर भोजन का स्वप्न आता था।"

यदि कोई आदमी शाम को बहुत अधिक तली हुई चीजें खाकर प्यास अनुभव करने लगे तो उसे पीने का स्वप्न आने की सम्भावना है, पर तीव्र भूख या प्यास को दूर नही किया जा सकता। उस अवस्था मे हम प्यासे जाग उठते हैं, और हमे असली पानी पीना पडता है। यहा स्वप्न का कार्य व्यावहारिक महत्व का नही है, पर तो भी इतना स्पष्ट है कि यह हमारी नीद को उस उद्दीपन से बचाने के लिए आया था जो हमे जागने और कार्य करने के लिए प्रेरणा दे रहा था। जहा इच्छा की तीव्रता कम होती है वहा 'सन्तुष्टि'-स्वप्न से प्राय प्रयोजन सिद्ध हो जाता है।

इसी प्रकार जब उद्दीपन कामुक इच्छा का होता है, तब स्वप्न उसकी सतुष्टि करता है, पर इस सन्तुष्टि मे कुछ उल्लेखनीय विशेषताए दिखाई देती हैं। क्योकि काम आवेग की यह विशेषता होती है कि वह अपने आलवन पर भूख और प्यास की अपेक्षा कुछ कम निर्भर होता है, इसलिए स्वप्न-दोष मे सन्तुष्टि वास्तविक हो सकती है, और आलवन की दृष्टि मे कुछ कठिनाइया होने के कारण (जिनपर

वाद मे विचार किया जाएगा) प्राय. ऐसा होता है कि वास्तविक सन्तुष्टि तव भी एक धुधली या विपर्यस्त स्वप्न-वस्तु से जुडी रहती है। स्वप्न दोषो की इस विशेषता के कारण वे, जैसा कि श्रो० रैन्क ने कहा है, स्वप्न-विपर्यास के अध्ययन के लिए उपयुक्त वस्तु है। इसके अलावा वयस्को मे इच्छा के स्वप्नो मे सन्तुष्टि के अलावा प्राय कुछ और चीजें भी होती हैं जो शुद्ध रूप से मानसिक स्रोत से पैदा होती हैं, और इन्हे समझने के लिए इनके निर्वचन की आवश्यकता होगी।

प्रशगवश मैं यह कह दू कि हमारी यह मान्यता नही है कि शैशवीय प्रकार के इच्छा-पूर्ति-स्वप्न वयस्को मे ऊपर वताई गई अनिवार्य इच्छाओ की प्रतिक्रियाओ के रूप मे ही होते हैं। हम इस तरह के छोटे स्पष्ट स्वप्नो से भी उतने ही परिचित हैं—ये स्वप्न कुछ अभिभूत करने वाली स्थितियो के कारण आते है, और निश्चित रूप से मानसिक उद्दीपनो से पैदा होते है। उदाहरण के लिए, कुछ 'अधैर्य-स्वप्न' होते हैं, जिनमे कोई आदमी किसी यात्रा की तैयारी कर रहा है, या किसी नाटक मे जाने की तैयारी कर रहा है, जिसमे उसकी वडी दिलचस्पी है, या किसी व्याख्यान मे या किसीसे मिलने जाने की तैयारी कर रहा है। उसकी आशाए स्वप्न मे समय से पहले ही पूरी हो जाती हैं और वह असली यात्रा से पहली रात को ही अपनी यात्रा खतम कर लेता है, या थियेटर पहुच जाता है या उस मित्र से वात कर लेता है जिससे मिलने वह जाने वाला है। फिर 'आराम स्वप्न' हैं जिनका यह नाम ठीक ही है, जिनमें कोई आदमी, जो सोता रहना चाहता है, यह स्वप्न देखता है कि मैं उठ गया हू, नहाकर स्कूल पहुच गया हू, जव कि असल मे वह सारे समय सो रहा है, जिसका अर्थ यह है कि वह सचमुच उठने के वजाय उठने का स्वप्न ही देखना पसन्द करेगा। इन स्वप्नो में नीद की इच्छा, जिसे हमने स्वप्न-निर्माण में नियमित रूप से हिस्सा लेने वाली मान लिया है, साफ रूप मे अपने आपको प्रकट करती है, और उनके असली उत्पादक के रूप में सामने आती है। नीद की आवश्यकता दूसरी वडी शारीरिक आवश्यकताओ के वरावर महत्व की है, और यह उचित ही है।

यहा मैं आपसे म्युनिख की शैक गैलरी में श्विड द्वारा वनाए गए एक चित्र की प्रतिलिपि की चर्चा करना चाहता हू। आप ध्यान से देखिए कि दिमाग पर छाई हुई परिस्थितियो के कारण जन्म लेते स्वप्नो का अनुभव कलाकार ने कितने सही रूप में किया है। चित्र का शीर्षक है कैदी का स्वप्न और स्वप्न का विषय निश्चित रूप से उसका कैद से भाग निकलना होगा। यह वडा सुखदायी विचार है कि कैदी को खिडकी के रास्ते भागना है क्योकि खिडकी मे होकर ही प्रकाश की किरण अन्दर आई है और उसने उसे नीद से जगाया है। एक दूसरे के ऊपर जो वौने खडे हैं, वे उन उत्तरोत्तर स्थितियो को सूचित करते हैं जिनपर उसे खिडकी पर चढने के लिए पहुचना होगा, और यदि मैं गलती नही करता और कलाकार

के आशय को समझने मे भ्रांति नही कर रहा तो सबसे ऊपर वाले बौने का रूप, जो जालियो को बीच से पकड रहा है (कैदी भी स्वय यही कार्य करना चाहेगा), मनुष्य के रूप के समान ही है।

मैं कह चुका हू कि बच्चो के स्वप्नो तथा शैशवीय स्वप्नो के अनुरूप स्वप्नो को छोडकर और सब स्वप्नो मे विपर्यास की बाधा पार करनी पडती है। हम तुरन्त यह नही कह सकते कि वे भी इच्छा-पूर्तिया ही हैं, जैसा कि हम उन्हे मानना चाहते हैं, या कुछ और, तथा उनकी व्यक्त वस्तु से हम यह अन्दाजा भी नही कर सकते कि वे किस मानसिक उद्दीपन से पैदा होते हैं, अथवा यह भी सिद्ध नही कर सकते कि वे दूसरे स्वप्नो की तरह उद्दीपन को दूर करने या शान्त करने का प्रयत्न करते हैं। सचाई यह है कि उनका निर्वचन करना होगा, अर्थात् उन्हे अनुवादित या रूपान्तरित करना होगा, विपर्यास के प्रक्रम को उलटना होगा, और व्यक्त वस्तु के स्थान पर गुप्त को लाना होगा। इसके बाद ही हम इसके बारे मे कोई सुनिश्चित घोषणा कर सकते हैं कि बच्चो के स्वप्नो के बारे मे हमने जो बात पता लगाई है, वह सब स्वप्नो पर एक जैसी सही बैठ सकती है या नही।

व्याख्यान | ९

स्वप्न-सेन्सर

बच्चो के स्वप्नो पर विचार करने से हमें यह पता चल गया कि वे कैसे पैदा होते है, उनका सारभूत रूप क्या है और वे क्या काम करते हैं। स्वप्न नीद मे बाधा डालने वाले मानसिक उद्दीपनो को मतिभ्रमात्मक सन्तुष्टि द्वारा हटाने के साधन है। यह ठीक है कि वयस्को के स्वप्नो के बारे में हम सिर्फ एक समूह की व्याख्या कर सके है, जिन्हे हमने शैशवीय प्रकार से स्वप्न कहा था। अभी हमें यह मालूम नही है कि दूसरे स्वप्नो मे यह बात ठीक होगी या नही, और उन्हे हम समझते भी नही। परन्तु जिस परिणाम पर हम पहुंच चुके है, उसके महत्व को कम न समझना चाहिए। जब कभी हम किसी स्वप्न को पूरी तरह समझते हैं, तब वह एक इच्छा-पूर्ति सिद्ध होता है, और सदा ऐसा होना आकस्मिक या महत्वहीन नही हो सकता।

दूसरे प्रकार के स्वप्नो को हमने एक अज्ञात वस्तु के विपर्यस्त स्थानापन्न माना है, इनकी अज्ञात वस्तु का ही सबसे पहले पता लगाना है। इस मान्यता के लिए हमारे पास बहुत-से आधार है जिनमें से एक हमारी गलतियो की अवधारणा से इसका सादृश्य है। हमारा अगला काम इस स्वप्न-विपर्यास की जाच-परख करना और उसे समझना है।

स्वप्न-विपर्यास के कारण ही स्वप्न विचित्र लगते है, और समझ मे नही आते। इनके बारे में हम कई बातें जानना चाहते है पहली बात, यह कहा से आता है (इसकी गतिकी); दूसरी, यह क्या करता है, और अन्त में, यह वह काम कैसे करता है ? आगे हम कह सकते हैं कि विपर्यास स्वप्न-तन्त्र[1] से पैदा होता है। अब हम स्वप्न-तन्त्र का वर्णन करेंगे और इसके अन्दर मौजूद बलो की खोज करेंगे।

अब मै आपको एक ऐसा स्वप्न बताता हू जो मनोविश्लेषण के क्षेत्र में प्रसिद्ध एक महिला ने दर्ज किया था। उसने यह भी बताया था कि यह स्वप्न देखनेवाली

---

१ Dream-work

एक बुजुर्ग, बहुत सुसस्कृत और बडी सम्मानित स्त्री थी। इस स्वप्न का विश्लेषण नही किया गया था, और दर्ज करने वाली महिला ने यह कहा था कि मनोविश्लेषको को इसका अर्थ लगाने की कोई आवश्यकता नही। स्वप्न देखने वाली ने स्वय भी इसका अर्थ नही लगाया, पर उसने इसकी आलोचना की, और इसकी इस तरह निन्दा की, मानो उसे मालूम हो कि इसका क्या अर्थ है। उसने कहा "अजीब बात है कि एक पचास वर्ष की औरत, जिसके मन में दिन-रात अपने बच्चे की ही चिन्ता रहती है, ऐसी घृणित बेहूदी बात का स्वप्न देखती है।"

अब मै आपको वह स्वप्न बताऊगा जो युद्ध-काल में 'प्रेम-सेवा' (अर्थात् सैनिको की काम-सतुष्टि का कार्य) के बारे में है। वह पहले सैनिक अस्पताल गई और दरवाजे के सन्तरी से उसने कहा कि वह मुख्य डाक्टर (उसने एक नाम बोला जो उसे याद नही था) से बातचीत करना चाहती है क्योकि वह अस्पताल में काम करने के लिए अपनी सेवाए पेश करना चाहती है। ऐसा कहते हुए उसने सेवा शब्द पर इस तरह जोर दिया कि सारजेण्ट ने तुरन्त समझ लिया कि वह 'प्रेम-सेवा' के बारे में कह रही है। क्योकि वह वृद्ध महिला थी, इसलिए कुछ दुविधा के बाद उसने उसे जाने दिया, पर मुख्य डाक्टर को ढूढने के बजाय वह एक बडे अन्धेरे कमरे में पहुची जहा कई अफसर, और सेना के डाक्टर एक लम्बी मेज के चारो ओर खडे या बैठे थे। वह एक डाक्टर की ओर मुडी और उसे उसने अपना प्रस्ताव बताया। वह जल्दी ही उसका मतलब समझ गया। उसने स्वप्न मे ये शब्द कहे थे "मै और वियेना की असख्य दूसरी स्त्रिया और लडकिया योद्धाओ के लिए, चाहे वे अफसर हो या साधारण सैनिक, को तैयार है" यह कथन अन्त में अस्पष्ट बुदबुदाहट में समाप्त हो गया। पर उसने अफसरो के कुछ परेशान और कुछ दुर्भावनापूर्ण भावो से यह समझ लिया कि उन्होने उसका मतलब समझ लिया है। महिला ने आगे कहा "मै जानती हू कि हमारा फैसला अजीब मालूम होता है, पर हमारा विचार पक्का है। रणक्षेत्र में सैनिक से यह नही पूछा जाता कि वह मरना चाहता है या नही।" इसके बाद एक मिनट तक कष्टकारी चुप्पी रही। तब स्टाफ डाक्टर ने अपनी बाह उसकी कमर में डाल दी और कहा "श्रीमती जी, मान लो कि सचमुच यहा तक नौबत आ जाए कि (अस्पष्ट ध्वनि)।" उसने अपने को उसकी बाह से छुडा लिया और सोचा "वे सब एक-से होते है", और उत्तर दिया "हे भगवान, मै तो बुढिया औरत हू और शायद मेरे साथ यह नही होगा, और एक शर्त अवश्य माननी होगी उमर का अवश्य ध्यान रखना होगा। जिससे कोई बुढिया स्त्री और जवान लडका नही (अस्पष्ट ध्वनि), यह बडी भयकर बात होगी।" स्टाफ डाक्टर ने कहा "मै बिलकुल समझता हू।" पर कुछ अफसर, जिनमें एक वह भी था जिसने अपनी जवानी में उससे प्रेम किया था, जोर से हसे और महिला ने कहा कि मुझे मुख्य डाक्टर के पास ले चलो जिसे वह जानती

थी ताकि सारी वात सीधी पेश की जा सके। तव उसे यह ध्यान आया और इससे उसे वडी चिन्ता हुई, कि उसे उसका नाम मालूम नही था, पर स्टाफ डाक्टर ने वहुत आदर और विनय के साथ एक सकरी, घुमावदार लोहे की सीढी से, जो उस कमरे से, जिसमें वे थे, सीधी ऊपर की मजिलो को जाती थी, उसे तीसरी मजिल का रास्ता दिखाया। जव वह ऊपर पहुची तव उसने एक अफसर को यह कहते सुना "वह जवान हो या वूढी, पर यह एक महान निश्चय है, वह सम्मान का पात्र है!" इस भावना के साथ कि वह तो सिर्फ अपना कर्तव्य कर रही है, वह अन्तहीन सीढी पर चढती गई।

यह स्वप्न कुछ ही सप्ताहो के भीतर दो वार आया, इसमे कही-कही मामूली हेर-फेर थे, पर वे, जैसा कि महिला ने कहा, विलकुल महत्वहीन और निरर्थक थे।

यह स्वप्न दिवा-स्वप्न की तरह ही आगे वढता है, सिर्फ कुछ स्थानो पर रुकावट आ जाती है और इसकी वस्तु मे मौजूद वहुत-से व्यक्तिगत प्रश्न पूछताछ से हल हो जाते। परन्तु, जैसा कि आप जानते हैं, यह पूछताछ नही की गई। पर इसमें सवसे अधिक ध्यान खीचने वाली और हमारे लिए सवसे दिलचस्प चीज यह है कि वस्तु में न कि स्मरण में, वहुत-से खाली स्थान आते हैं। तीन स्थानो पर वस्तु मानो काट दी गई है। जहा ये खाली स्थान आते हैं, वहा भापणो के वीच में अस्पष्ट वुद-वुदाहट आ जाती है।

हमने इस स्वप्न का विश्लेपण नही किया, इसलिए यदि ठीक-ठीक देखा जाए तो हमें इसके अर्थ के वारे में कुछ कहने का अधिकार नही है, परन्तु कुछ ऐसे सकेत हैं जिनसे हम निष्कर्प निकाल सकते हैं, उदाहरण के लिए, 'प्रेम-सेवा' शव्द, और सवसे वढकर वात यह है कि अस्पष्ट ध्वनि से पहले टूटे हुए भापणो को पूरा करने के लिए जिस तरह की चीज चाहिए, उसका एक ही तात्पर्य हो सकता है। यदि हम उन्हे वैसे पूरा कर दे तो एक ऐसी कल्पना वन जाती है जिसमें वस्तु यह है कि स्वप्न देखने वाला अपना कर्तव्य समझकर छोटे-वडे सब तरह के सैनिको की यौन आवश्यकताओ की सतुष्टि के लिए तैयार है। यह निश्चित रूप से वड़ी आश्चर्य-जनक वात है, वेशर्मीभरी कामुकतापूर्ण कल्पना है, पर स्वप्न इसके वारे में कुछ नही कहता। जहा प्रसग से यह स्वीकृार होनी चाहिए थी ठीक वही व्यक्त स्वप्न में अस्पष्ट ध्वनि है, कोई चीज छोड दी गई है या दवा दी गई है।

मुझे आशा है कि आप यह अनुभव करेंगे कि यह अनुमान कितना स्वाभाविक है कि ये वाक्य चोट पहुचाने वाले होने के कारण ही दवाए गए हैं। अव वताइए कि इस तरह की चीज और कहा होती है। आजकल के जमाने में इसे खोजने आप-को दूर नही जाना होगा। कोई भी राजनीतिक अखवार को ले लीजिए और आप देखेंगे कि जगह-जगह कोई चीज़ गायव है, और इसके स्थान पर सफेद खाली कागज दिखाई दे रहा है। आप जानते हैं कि यह प्रेस-सेन्सर का काम है। जहा-जहा जगह

खाली है वहा-वहा शुरू में जो चीज लिखी हुई थी, उसे सेन्सरशिप अधिकारियो ने नापसद किया और इस कारण उसे हटा दिया गया। आप शायद इसे बडे अफसोस की बात समझेंगे, क्योंकि वही समाचार का सबसे महत्वपूर्ण या सारभूत भाग होता है।

कुछ जगह सेंसरशिप ने पूरे वाक्य को नही छुआ है क्योकि लेखक ने पहले ही यह अनुमान करके कि सेंसर को किन वाक्यो पर आपत्ति हो सकती है, उन्हे हलका करके थोडा-सा बदलकर या जो कुछ वह वास्तव में लिखना चाहता है, उसके सकेतो से ही सन्तुष्ट होकर सेंसर की पेशबन्दी कर दी है। इस अवस्था में कोई जगह खाली नही है, पर बात कहने के घुमावदार और स्पष्ट तरीके से आपको इस तथ्य का पता चल सकता है कि लिखने के समय लेखक को सेसरशिप का ध्यान था।

अब इस सादृश्य के अनुसार चलते हुए हम कहते है कि स्वप्न में जो बातें छोड दी गई है या बुदबुदाहट के रूप में आई है वे भी किसी सेंसरशिप की काट-छाट का नतीजा है। हम सचमुच 'स्वप्न-सेंसरशिप' या 'स्वप्नगत काट-छाट' शब्दो का प्रयोग करते है और स्वप्न के विपर्यास का आशिक कारण इसीको समझते है। व्यक्त स्वप्न में जहा कही खाली स्थान है, वहा हम जानते है कि यह सेंसरशिप के कारण है, और इससे भी आगे बढकर हमें यह समझ लेना चाहिए कि दूसरे अधिक प्रमुख रूप से निर्दिष्ट अवयव में जहा कही कोई ऐसा अवयव है जिसकी याद धुधली, अनिश्चित या सदिग्ध है, वहा वह सेसरशिप के काम का ही सबूत है, पर सेसरशिप इतना छिपा हुआ या चतुराईभरा रूप बहुत कम ग्रहण करती है जितना इसने 'प्रेम-सेवा' वाले स्वप्न में ग्रहण किया। प्राय सेंसरशिप ऊपर बताये गए दूसरे तरीके से अपने होने का आभास देती है अर्थात् सच्चे अर्थ के स्थान पर उसके रूप-भेद, सकेत और अस्पष्ट निर्देश पेश करती है।

स्वप्न-सेन्सरशिप के कार्य करने का एक तीसरा तरीका भी है, जो प्रेस-सेंसरशिप के नियमो से नही मिलता, पर बात यह है कि मै आपको स्वप्न-सेसरशिप के कार्य करने की यह विशेष रीति उस स्वप्न मे ही दिखा सकता हू जिसका अब तक हमने विश्लेषण किया है। आपको 'डेढ फ्लोरिन के तीन खराब थियेटर-टिकटो' वाला स्वप्न याद होगा। इस स्वप्न के पीछे मौजूद गुप्त विचारो में, 'बहुत जल्दबाजी' का तथ्य मुख्य था। उसका अर्थ यह था 'इतनी जल्दी विवाह करना बेवकूफी थी, इतनी जल्दी टिकट लेना भी बेवकूफी थी, ननद का इतनी जल्दबाजी में एक जेवर पर अपने रुपए खर्च कर डालना हास्यास्पद था'। स्वप्न-विचारो के इस केन्द्रीय तत्व की कोई भी चीज व्यक्त वस्तु में नही दिखाई दी। उसमें हर चीज़ का केन्द्र थियेटर जाना और टिकट लेना ही था, बल्कि स्थान-परिवर्तन और स्वप्न-अवयवो की नई जोड-तोड मे व्यक्त वस्तु गुप्त विचारो से इतनी भिन्न हो गई कि कोई भी उसके पीछे इसके होने का सन्देह नही करेगा। यह बलाघात का विस्था-

पन या परिवर्तन विपर्यास में काम आने वाला एक प्रधान साधन है और इसीके कारण स्वप्न में ऐसी विचित्रता आ जाती है जो स्वप्न देखने वाले को यह मानने से रोकती है कि यह स्वप्न उसके अपने मन से पैदा हुआ है।

तो, विलोपन या किसी चीज़ का छूट जाना, रूप-भेद, और सामग्री की नई जोड-तोड—इन तीन प्रकार से स्वप्न-सेन्सरशिप का कार्य होता है और विपर्यास मे प्रयुक्त साधन यही है। सेन्सरशिप स्वय विपर्यास की, जो इस समय हमारी खोज का विषय है, जन्मदाता या जन्मदाताओ में से एक है। रूप-भेद और विन्यास की अदल-वदल को आमतौर से **'विस्थापन'**[1] शब्द के अन्तर्गत शामिल किया जाता है।

स्वप्न-सेन्सरशिप के कार्यो पर इतना विचार करने के बाद अब हमे इसकी गतिकी पर ध्यान देना चाहिए। मुझे आशा है कि आप सेन्सरशिप शब्द का अर्थ विलकुल मनुष्य के रूप मे नही ले रहे। आप यह मत समझिए कि सेन्सर कोई छोटा-सा मनुष्य या आत्मिक सत्ता है जो मस्तिष्क की छोटी-सी कोठरी में रहती है और वहा से अपने कर्तव्य पूरे करती है, और न आप इसे किसी छोटे-से स्थान में सीमित करके यह कल्पना कर सकते है कि यह कोई ऐसा 'मस्तिष्क-केन्द्र' है जहा से सेन्सर-कारी असर किया करता है और उस केन्द्र को चोट पहुचाने, या उसके निकल जाने से सेन्सर का प्रभाव खतम हो जाएगा। फिलहाल हम इसे गतिकीय सम्बन्ध का प्रकट करने वाला एक उपयोगी शब्दमात्र मान सकते है। इसके कारण हमें यह पूछने में कोई वाधा नही होनी चाहिए कि किस प्रकार की प्रवृत्तिया यह प्रभाव पैदा करती है और किस प्रकार की प्रवृत्तियो पर इसका प्रभाव पडता है, और फिर हमें यह जानने पर आश्चर्य न होना चाहिए कि हम शायद सेन्सरशिप को विना पहचाने उससे मिल चुके है।

असल में ऐसा सचमुच हुआ है। जब हमने अपनी मुक्त साहचर्य की विधि लागू करनी शुरू की थी, उस समय के आश्चर्यजनक अनुभव को याद कीजिए। हमने देखा था कि जब हमने स्वप्न-अवयव से अचेतन विचार में, जो उसका स्थानापन्न है, जाने की कोशिश की थी, तब हमें कुछ **प्रतिरोध** का सामना करना पडा था। हमने कहा था कि उस प्रतिरोध की शक्ति बदलती रहती है। कभी बहुत अधिक होती है, और कभी बहुत हल्की। जब वह हल्की होती है, तब हमें निर्वचन के काम के लिए बहुत थोडी सयोजक कडियो की जरूरत पडती है, पर जहां प्रतिरोध अधिक होता है, वहा हमे साहचर्यो की लम्बी श्रृंखलाओ मे से गुजरना पडता है, जो हमें शुरू के विचार से बहुत दूर ले जाती हैं, और रास्ते में हमें, साहचर्यो पर होने वाले और ऊपर से गम्भीर दीखने वाले आक्षेपो की सब कठिनाइयो को पार करना पडता है। हमने **निर्वचन** के काम में, जिसे प्रतिरोध के रूप मे देखा था,

---

१ Displacement

उससे अब स्वप्न-तत्र में सेसरशिप के रूप में फिर भेंट होती है। प्रतिरोध वस्तुरूप में सेंसरशिप का ही नाम है। इससे यह बात प्रमाणित हो जाती है कि सेंसरशिप की शक्ति विपर्यास पैदा करके ही समाप्त नही हो जाती, वल्कि वह सेसरशिप की स्थायी सस्था के रूप में रहती है, जिसका उद्देश्य उस विपर्यास को कायम रखना है जो इनने एक वार पैदा किया है। इसके अलावा, जैसे निर्वचन में प्रत्येक अवयव के साथ आने वाले प्रतिरोध की शक्ति भिन्न-भिन्न होती है, ठीक उसी तरह किसी पूरे स्वप्न के प्रत्येक अवयव के लिए सेंसरशिप द्वारा किए गए विपर्यास की मात्रा भी भिन्न-भिन्न होती है। व्यक्त और गुप्त स्वप्न की तुलना करने से पता चलता है कि कुछ गुप्त अवयव पूरी तरह लुप्त हो जाते है, कुछ अवयव थोडा-वहुत रूप वदल लेते है, और कुछ अवयव व्यक्त स्वप्न-वस्तु में परिवर्तित हो जाते है या शायद तीव्रतर रूप में दिखाई देते है।

परन्तु हमारा प्रयोजन तो यह जानना था कि सेंसरशिप कौन-सी प्रवृत्तिया करती है और कौन-सी प्रवृत्तियो पर यह की जाती है। स्वप्नो और शायद सारे मानव जीवन को समझने के लिए आधारभूत इस प्रश्न का उत्तर उन स्वप्नो पर फिर से नजर डालकर, जिनका अर्थ लगाने में हमें सफलता मिली है, आसानी से दिया जा सकता है। सेंसरशिप करने वाली प्रवृत्तिया वे है जिन्हे स्वप्न देखने वाले या जाग्रत अवस्था का विवेक स्वीकार करता है और जिनके साथ वह अपनी एकात्मता अनुभव करता है। निश्चित समझिए कि जव आप अपने किसी स्वप्न के सही निकाले हुए अर्थ को अस्वीकार करते है, तव आप भी उन्ही प्रेरक कारणो से ऐसा करते है जिनसे सेसरशिप की जाती है, और विपर्यास पैदा किया जाता है। और निर्वचन या अर्थ लगाना जरूरी हो जाता है। हमारी पचास वर्षीय महिला के स्वप्न पर विचार करिए। उसका स्वप्न उसे चोट पहुचाने वाला लगा, यद्यपि उसका निर्वचन नही किया गया था और यदि डाक्टर वॉन हग-हैलमथ ने उसे इसका कुछ असन्दिग्ध अर्थ वता दिया होता तो वह और भी पीडित हुई होती। वुरा समझने या निन्दा करने के उस रवैए के कारण ही स्वप्न में वुरे लगने वाले वाक्यो के स्थान पर अस्पष्ट ध्वनि आ गई।

जिन प्रवृत्तियो के विरुद्ध स्वप्न-सेसरशिप कार्य कर रही है, अव उनका इस भीतरी आलोचनात्मक मानदड की दृष्टि से वर्णन करना होगा। जव हम ऐसा करते है, तव इतना ही कह सकते है कि वे सदा आचार, सौंदर्य या समाज के दृष्टिकोण से आपत्ति योग्य और भद्दे होते है। वे ऐसी वस्तुए होती है, जिनके वारे में हम जरा सोचने का भी हौसला नही कर सकते या फिर उन्हे घृणा से ही सोचते है। सवसे वडी वात यह है कि ये सेंसर की हुई अर्थात् कटी-छटी इच्छाए, जो स्वप्नो में विपर्यस्त रूप मे प्रकट होती है, सीमाहीन और निष्ठुर अहकार की अभिव्यक्ति होती है, क्योकि प्रत्येक स्वप्न मे स्वप्न देखने वाले का अपना अहकार ही

प्रकट होता, और मुख्य कार्य करता है, यद्यपि वह यह जानता है कि व्यक्त वस्तु में वह अपने आपको कैसे पूरी तरह छिपा सकता है। स्वप्नो का यह पवित्र अहंकार[1] निश्चित रूप से नीद के लिए आवश्यक मानसिक रवैए से असम्बद्ध नही होता—नीद के लिए आवश्यक बात है सारी बाहरी दुनिया से दिलचस्पी हटा लेना।

जिस अहम् (ईगो) ने सब नैतिक बन्धनो को दूर कर दिया, वह यौन आवेग की सब आवश्यकताओ से अपनी एकात्मता अनुभव करता है—यौन आवेग की ये आवश्यकताए ऐसी है जिन्हे हमारा सौंदर्य विषयक अभ्यास बहुत समय से बुरा समझता रहा है, और जो नैतिकता द्वारा लगाए गए सब सयमो के विपरीत है। आनन्द प्राप्ति का प्रयत्न—जिसे हम लिबिडो या राग कहते है—किसी भी निरोध[2] के काबू में न रहता हुआ, बल्कि निषेधात्मक वस्तुओ को ही पसन्द करता हुआ, अपनी तृप्ति के आलम्बन चुन लेता है। वह न केवल दूसरे आदमी की पत्नी को चुन लेता है, बल्कि सबसे बढकर बात यह है कि वह ऐसे निषिद्ध सम्भोग[3] के आलबन चुन लेता है जिन्हे मानव जाति ने एकमत से पूज्य माना है—पुरुषो के लिए माता और बहन, स्त्रियो के लिए पिता और भाई। (हमारी पचास वर्षीय महिला का स्वप्न भी निषिद्ध सभोग वाला है, उसमें लिबिडो या राग निश्चित रूप से पुत्र के प्रति प्रवृत्त है) जिन इच्छाओ को हम मनुष्य स्वभाव के लिए अपरिचित मानते हैं, वे इतनी शक्तिशाली होती है कि स्वप्नो को जन्म देती है। घृणा भी बडे प्रबल रूप में प्रवर्तित होती है; जो लोग जीवन मे अपने बहुत निकट के और प्रिय है, जैसे माता, पिता, भाई, बहन, पति या पत्नी, और स्वप्न देखने वाले के अपने बच्चे, इनके विरुद्ध बदले की इच्छा और इनकी मौत की अभिलाषा भी बहुत असामान्य चीज नही है। ये सेंसर या काट-छाट की हुई इच्छाए बिलकुल नरक से उठी मालूम होती है, जब हम उनका अर्थ जानते है तब अपने जागृत क्षणो मे हमें यह मालूम होता है कि उनकी काट-छाट सख्ती से नही हुई, पर इस दूषित वस्तु का दोष स्वय स्वप्नो पर नही है, निश्चय ही आप यह भूले नही होगे कि उनका न केवल हानि-रहित बल्कि उपयोगी काम नीद को भग होने से बचाना है। पतित या नीतिभ्रष्ट होना स्वप्नो का स्वभाव नही है। सच तो यह है, जैसा कि आप जानते है, कि ऐसे स्वप्न भी होते है जो उचित इच्छाओ को और तात्कालिक शारीरिक जरूरतो को पूरा करते है। यह सच है कि इन स्वप्नो में विपर्यास नही होता, पर इनमें उसकी आवश्यकता भी नही होती। वे ईगो या अहम् की नैतिक और सौंदर्य सबधी प्रवृत्तियो को बिना चोट पहुचाए अपना कार्य पूरा कर सकते है। यह भी याद रखिए कि विपर्यास की मात्रा दो बातो की समानुपाती होती है, एक तो जिस इच्छा को सेंसर करना है वह जितनी अधिक आघातकारक या चौंकाने वाली

---

१ Sacroegoismo २. Inhibition, ३. Incestuous objects

होगी, उतना ही अधिक विपर्यास होगा, पर यदि सेन्सरशिप अर्थात् काट-छाट कराने वाली प्रवृत्ति सख्त है तो भी विपर्यास अधिक होगा। इसलिए किसी बहुत सयम के वातावरण में पाली गई और अति लज्जाशील नौजवान लडकी में कठोर सेंसरशिप स्वप्न-उत्तेजनो को ऐसे रूप में विपर्यस्त कर देगी, जिन्हें हम डाक्टर लोग हानिरहित कामुक इच्छाए मानते हैं, और जिन्हे स्वप्न-द्रष्टा भी दस वर्ष बाद इसी रूप में मानेगी।

इसके अतिरिक्त, हम अभी इतना अधिक आगे नही बढे है कि अपने अर्थ लगाने के काम के परिणामो पर परेशानी अनुभव करने लगें। मेरा ख्याल है कि अब भी हम इसे ठीक तरह नही समझते। पर सबसे पहले हमारा कर्तव्य यह है कि हम इस पर हो मकने वाली आलोचनाओ से इसको सुरक्षित कर दें। कमजोर पहलू ढूढ लेना कुछ भी कठिन नही है। हमारे निर्वचन उन परिकल्पनाओ के आधार पर थे, जो हमने पहले मान ली थी, कि स्वप्नो का सचमुच कुछ अर्थ होता है। यह विचार कि मानसिक प्रक्रम कुछ समय के लिए अचेतन होते हैं, जो पहले सम्मोहन-निद्रा के द्वारा पता चला था, सामान्य नीद पर भी लागू किया जा सकता है, और सब साहचर्य नियति के अधीन, अर्थात् कार्य-कारण सम्बन्ध से अनिवार्यत बधे होते हैं। अब यदि इन परिकल्पनाओ से आगे तर्क करते हुए हमे अपने स्वप्न-निर्वचन में तर्कसगत दीखने वाले परिणाम प्राप्त हो जाते तो हम यह नतीजा निकालकर उचित ही करते कि ये परिकल्पनाए सही हैं। पर यदि ये खोजे वैसी हो जैसी मैंने बताई हैं, तो तब क्या स्थिति होगी ? उस अवस्था में निश्चित रूप से यही कहना स्वाभाविक लगता है "ये परिणाम अशक्य, बेहूदे, और बहुत अधिक असम्भाव्य हैं। इसलिए परिकल्पनाओ में कुछ न कुछ गलती रही होगी। या तो स्वप्न मानसिक घटना नही है, और या वे ऐसी कोई चीज़ नही है जो हमारी सामान्य अवस्था मे अचेतन हो, अथवा हमारी विधि में कही कमजोरी है। क्या ये सब घृणायोग्य निष्कर्ष मान लेने की अपेक्षा, जिन्हे हम अपनी परिकल्पनाओ से निकाला गया बताते हैं, यह मान लेना अधिक सीधा और सन्तोषजनन नही होगा ?"

निस्सदेह यह अधिक आसान भी होगा और अधिक सन्तोषजनक भी, पर इसी कारण यह आवश्यक नही कि यह अधिक सही भी होगा। थोडी देर इन्तजार कीजिए। अभी यह मामला फैसला करने लायक हालत में नही पहुचा। अव्वल तो हम अपने निर्वचनो के विरुद्ध पक्ष को अधिक प्रबल बना सकते हैं। शायद इस तथ्य का हमारे लिए बहुत महत्व न हो कि हमारे परिणाम इतने अप्रिय और घृणा पैदा करने वाले हैं। इससे भी जबर्दस्त दलील यह है कि जब हम इन स्वप्नो का निर्वचन करने के बाद स्वप्न देखने वालो पर कुछ इच्छा-प्रवृत्तिया लादने की कोशिश करते हैं, तब वे उनको बलपूर्वक और अच्छे आधार पेश करके अस्वीकार करते हैं। "नो", एक आदमी कहता है, "आप मेरे स्वप्न से मेरे आगे यह सिद्ध करना चाहते हैं

कि मैंने अपनी वहन के दहेज पर और अपने भाई की शिक्षा पर जो पैसा खर्च किया है, उसपर मेरे मन मे असन्तोप है, पर यह विलकुल वेकार वात है, मैं अपना सारा समय अपने भाई और वहनो के लिए काम करता हुआ विता देता हू और सबसे वडा होने के कारण जीवन में मेरी एक यही दिलचस्पी है कि मैं उनके प्रति अपने कर्तव्य का पालन करू, जैसा करने की मैंने अपनी स्वर्गीय माता से प्रतिज्ञा की थी।" या कोई औरत कहती है "लोग कहते हैं कि मैं अपने पति की मौत चाहती हू। असल में यह तो वडी कष्टकारक बेहूदगी है। इतना ही नही कि हमारा वैवाहिक जीवन सुखी है, यद्यपि शायद आप इसपर विश्वास नही करेंगे, वल्कि यह वात भी है कि यदि वह मर जाए तो मेरे पास दुनिया में जो कुछ है वह सब चला जाएगा।" या कोई और यह उत्तर देगा "क्या आप यह कहना चाहते हैं कि मैं अपनी वहन के प्रति कामुकता की इच्छाए रखता हू? यह वात उपहासयोग्य है। वह मेरे लिए कुछ भी नही। हमारे आपस में अच्छे सम्वन्ध नही हैं और वर्षो से मैं उससे एक शब्द भी नही वोला।" यदि ये स्वप्न देखने वाले उन प्रवृत्तियो को स्वीकार भी न करें और अस्वीकार भी न करें, जो हमने उनके अन्दर मौजूद वताई हैं, तो भी हम पर विशेप असर नही पडेगा। हम यह कह सकते हैं कि ये वही चीजें हैं जिनका उन्हें विलकुल ज्ञान नही है, पर जव वे अपने मन में उससे विलकुल उलटी इच्छा देखते हैं जो उनके मन में वताई गई है, और जव वे जीवन के अपने सारे आचरण द्वारा हमारे सामने यह सिद्ध कर सकते हैं कि वह विपरीत इच्छा ही प्रधान रही है, तव निश्चित रूप से हमें अवाक् रह जाना पडता है। क्या यहा पहुचकर हमें स्वप्न-निर्वचन के सारे कार्य को ही नही छोड देना चाहिए, क्योकि इससे हम वडी वेहूदी हालत में पहुच गए हैं?

नही, अव भी नही। इस जोरदार दलील को आलोचना की दृष्टि से देखने पर यह भी टुकडे-टुकडे हो जाती है। यह मान लेने पर कि मानसिक जीवन मे अचेतन प्रवृत्तिया रहती हैं, यह तथ्य कुछ भी सिद्ध नही करता कि चेतन जीवन मे विरोधी प्रवृत्तिया प्रधान होती हैं। शायद मन मे विरोधी प्रवृत्तियो, परस्परविरुद्ध वातो, के एक साथ रहने की गुजाइश होती है। असल में, सम्भवत एक प्रवृत्ति की प्रधानता ही उसकी विरोधी प्रवृत्ति के अचेतन होने का कारण है। इस तरह पहले उठाई गई आपत्तियो का मतलव इतना ही हुआ कि स्वप्न-निर्वचन के परिणाम सरल नही होते, और वहुत अरुचिकर होते हैं। पहले आरोप के उत्तर मे हमें यह कहना है कि आप सरलता के चाहे जितने प्रेमी हो, पर उससे आप स्वप्नो की एक भी समस्या हल नही कर सकते। शुरू मे ही आपको अपना मन ऐसा वनाना पडेगा कि उलझे हुए सम्वन्धो की वात को स्वीकार करे। दूसरी वात के वारे में मैं यह कहना चाहता हू कि आपका इस तथ्य को वैज्ञानिक निर्णय के लिए प्रेरक कारण मानना कि कोई चीज आपको अच्छी लगती है या वुरी लगती है, साफ तौर से गलत है। क्या हुआ

वाली बोलने की गलती का निर्वचन करते समय पहले दिखाई दी थी। भोजन के बाद बोलने वाले वक्ता ने रोष के साथ हमें यह विश्वास दिलाया था कि उसे अपने प्रधान के प्रति अनादर भावना का न तो उस समय कोई ज्ञान था और न पहले कभी रहा था। हमने तब भी उसके इस कथन की सचाई पर सन्देह किया था और इसके बदले यह माना था कि वक्ता अपने भीतर इस भावना के अस्तित्व से स्थाई रूप से अपरिचित है। जिन स्वप्नो में बहुत अधिक विपर्यास होता है उन सबके निर्वचन के समय यही स्थिति पैदा होती है और इससे हमारे विचार का महत्व बढ जाता है। अब हम यह मानने के लिए तैयार हैं कि मानसिक जीवन में ऐसे प्रक्रम और प्रवृत्तिया होती हैं जिनके बारे में हम कुछ नही जानते, कुछ नही जानते रहे, बहुत लम्बे समय से या शायद कभी भी इनके बारे में कुछ भी नही जानते थे। इससे **अचेतन** शब्द का एक नया अर्थ हमारे सामने आ जाता है 'उस समय' या 'अस्थायी' विशेषण कोई आवश्यक गुण नही रहता, और इस शब्द का अर्थ न केवल 'उस समय गुप्त' बल्कि **स्थाई रूप से अचेतन** भी हो सकता है। इस प्रश्न पर हम बाद में और आगे विचार करेंगे।

व्याख्यान | १०

स्वप्नों में प्रतीकात्मकता*

हमने देखा था कि स्वप्नो मे विपर्यास, जो हमे उन्हे समझने से रोकता है, सेन्सरशिप या काट-छाट की प्रवृत्ति की क्रिया के कारण होता है—यह क्रिया अस्वीकार्य अचेतन इच्छा-आवेगो के विरुद्ध चलती है। पर हमने यह नही कहा है कि विपर्यास का एकमात्र कारण सेन्सरशिप या काट-छाट ही है, और सच तो यह है कि स्वप्नो का और आगे अध्ययन करने से यह पता चलता है कि इस परिणाम में सहायता देने वाले कुछ और भी कारण है। कहने का आशय यह हुआ कि यदि सेन्सरशिप न रहे तो भी हम स्वप्नो को समझने में असमर्थ रहेगे, तथा व्यक्त स्वप्न और गुप्त स्वप्न-विचार अभिन्न नही होगे।

स्वप्नो की अस्पष्टता का यह दूसरा कारण, विपर्यास का यह एक और सहायक, तब हमारे सामने आता है जब हमें अपनी विधि मे एक कमी या खाली जगह का पता चलता है। मै आपसे पहले ही यह कह चुका हू कि कई बार विश्लेषण के अधीन व्यक्तियो का अपने स्वप्नो के एक-एक पृथक अवयव से सचमुच कोई साहचर्य नही होता, पर यह बात जितनी बार वे कहते है उतनी बार सच नही होती। बहुत-से उदाहरणो में धीरज और परिश्रम से वह साहचर्य प्रेरित करके निकाला जा सकता है, पर फिर भी कुछ उदाहरण ऐसे रह जाते है जिनमें साहचर्य बिलकुल नही मिलता, अथवा यदि अन्त में कोई चीज़ जबर्दस्ती करने पर निकल भी आई तो यह वह नही होती जिसकी हमें आवश्यकता है। यदि यह बात मनोविश्लेषण द्वारा किए जा रहे इलाज मे होती है तो इसका एक विशेष अर्थ होता है जिसका यहा कोई सम्बन्ध नही है, पर यह सामान्य लोगो के स्वप्नो के निर्वचन में, या तब भी होती है जब हम स्वय अपने स्वप्नो का निर्वचन करते है। इन परिस्थितियो में जब हमें यह निश्चय हो जाए कि कितना भी जोर डालने से कोई लाभ नही, तब अन्त में हमे यह पता चलता है कि जहा विशेष स्वप्न-अवयवो का सवाल होता है वहा यह अप्रिय स्थिति नियमित रूप से सामने आती है, और अब हम किसी नए सिद्धात को कार्य करता हुआ देखने लगते है, जब कि पहले हमने सोचा था कि यह

* Symbolism

सिर्फ एक अपवाद है जिसमें हमारी विधि विफल हो गई है।

इस तरह हम इन 'न बोलने वाले' अवयवो का अर्थ लगाने की कोशिश करते हैं और अपने साधनो का उपयोग करके उन्हे अनुवादित करने का यत्न करते हैं। यह बात हमें महसूस हुए बिना नही रह सकती कि जिस किसी उदाहरण मे हम हिम्मत करके यह स्थानापन्नता कर देते है, उसमें ही हम सन्तोषजनक अर्थ पर पहुच जाते हैं, परन्तु जब तक हम इस विधि का प्रयोग नही करते तब तक स्वप्न अर्थहीन और टूटा-फूटा बना रहता है। तब बहुत-से बिलकुल एक-से उदाहरण इकट्ठे हो जाने पर हमें अपने परिणाम के बारे में आवश्यक निश्चय हो जाता है जबकि शुरू में हमने बडे अविश्वास के साथ अपने परीक्षण किए थे।

यह सब बात मै रूपरेखा के रूप में बता रहा हू पर शिक्षा कार्य के लिए निश्चित रूप से ऐसा करना उचित है, और ऐसा करने से यह गलत भी नही हो जाती बल्कि सिर्फ सरल रूप में आ जाती है।

इस प्रकार हम स्वप्न-अवयवो की एक श्रेणी का नियत अनुवाद करते हैं, जैसे कि स्वप्न सम्बन्धी लोकोपयोगी पुस्तको में स्वप्न में होने वाली प्रत्येक बात के ऐसे अनुवाद दिए होते हैं। आप भूले नही होगे कि जब हम मुक्त साहचर्य की विधि का प्रयोग करते हैं तब स्वप्न-अवयवो की नियत स्थानापन्नताए कभी नही दिखाई देती।

अब आप तुरन्त कहेंगे कि निर्वचन की यह रीति आपको पहली मुक्त साहचर्य की रीति की अपेक्षा भी अधिक अनिश्चित और आक्षेप योग्य मालूम होती है। पर कुछ बात अभी बाकी है। जब हमने वास्तविक अनुभव से ऐसे नियत अनुवादो की श्रेणी जमा कर ली हो, तब हम अन्त में यह अनुभव करते हैं कि निर्वचन के इन अशो में हम अपने निजी ज्ञान से खाली स्थानो को भर सकते थे, और वे स्वप्न-द्रष्टा के साहचर्यो का उपयोग किए बिना ही सचमुच समझे जा सकते थे। यह कैसे होता है कि हमें उनका अर्थ अवश्य पता होता है?—इस प्रश्न पर हम अपनी बातचीत के पिछले आधे हिस्से में विचार करेंगे।

किसी स्वप्न-अवयव और उसके अनुवाद में जो नियत, अर्थात् न बदलने वाला सम्बन्ध होता है, उसे हम प्रतीकात्मक सम्बन्ध कहते हैं और स्वय स्वप्न-अवयव को अचेतन स्वप्न-विचार का प्रतीक या सकेत कहते हैं। आपको याद होगा कि कुछ समय पहले, जब हम स्वप्न-अवयवो और उनके पीछे मौजूद विचारो के विभिन्न सम्बन्धो पर विचार कर रहे थे, तब मैंने तीन सम्बन्ध बताए थे—सारे के स्थान पर एक भाग का आ जाना, अस्पष्ट निर्देश[1] और कल्पनाचित्र[2]। तब मैंने आपसे कहा था कि एक चौथा सम्बन्ध भी हो सकता है, पर यह नही बताया था

---

१ Allusion २ Imagery

कि वह क्या हो सकता है। यह चौथा सम्वन्ध साकेतिक या प्रतीकात्मक है जो मै अब वता रहा हू। इसके साथ कुछ मनोरजक विचारणीय प्रश्न जुडे हुए है जिनपर विचार करने के वाद हम इस विपय पर अपने विशेप विचार पेश करेंगे। प्रतीकात्मकता हमारे स्वप्न-सिद्धान्त का शायद सवसे अधिक विशिष्ट भाग है।

पहली बात किसी प्रतीक और उससे निर्दिष्ट मनोविंव का सम्वन्ध नियत, अर्थात् न वदलने वाला, होता है—मनोविंव प्रतीक का मानो अनुवाद ही होता है, इसलिए प्रतीकवाद कुछ मात्रा में प्राचीन और प्रचलित दोनो प्रकार के स्वप्न-निर्वचन के आदर्श को मूर्त कर देता है जिससे अपनी विधि में हम वहुत दूर हट आए है। प्रतीको के द्वारा हम कुछ परिस्थितियो मे स्वप्न-द्रष्टा से विना प्रश्न किए स्वप्न का निर्वचन कर सकते है पर स्वप्न-द्रष्टा प्रतीको के वारे मे हमे कुछ नही वता सकता। यदि स्वप्नो मे आम तौर से दिखाई देने वाले प्रतीक ज्ञात हो और स्वप्न देखने वाले के व्यक्तित्व का, उसके रहन-सहन की अवस्थाओ का और उसे स्वप्न आने से पहले उसके मन पर पडे हुए प्रभावो का हमें पता हो तो प्राय हम सीधे ही उसका अर्थ लगा सकते है, मानो उसे देखते ही उसका भापान्तर या अनुवाद कर सकते है। इस तरह के कौशल से निर्वचनकर्ता के अहकार की सतुष्टि होती है और स्वप्न-द्रष्टा प्रभावित हो जाता है। यह स्वप्न-द्रष्टा से प्रश्न पूछने की श्रमपूर्ण रीति से विलकुल उलटी, और इसीलिए अच्छी लगने वाली विधि है, पर इसे अपनाकर भटक न जाइए। हमारा काम ऐसे कौशल दिखाना नही है, और प्रतीकात्मकता के ज्ञान के आधार पर अर्थ लगाने की विधि मुक्त साहचर्य की विधि का स्थान नही ले सकती, और न ही उसके वरावर हो सकती है। यह मुक्त साहचर्य की विधि की पूरक है, और इससे प्राप्त परिणाम तभी उपयोगी होते है जव उन्हे मुक्त साहचर्य की विधि के साथ काम में लाया जाए। इसके अलावा जहा तक स्वप्न-द्रष्टा की मानसिक स्थिति के वारे में हमारी जानकारी का प्रश्न है, आपको सोचना चाहिए कि आपको उन्ही व्यक्तियो के स्वप्नो का अर्थ नही लगाना है जिन्हे आप अच्छी तरह जानते है, कि सामान्यत आपको पिछले दिन की उन घटनाओ का कुछ भी पता नही, जिन्होने वह स्वप्न उद्दीपित किया, और विश्लेपण के अधीन व्यक्ति के साहचर्यो से ही हमें उस चीज का ज्ञान होता है जिसे हम मानसिक स्थिति कहते है।

दूसरे, यह वात विशेप रूप से उल्लेखनीय है, खास तौर से कुछ ऐसी वातो को देखते हुए जिनकी हम वाद में चर्चा करेंगे, कि सवसे अधिक जवर्दस्त विरोध स्वप्न और अचेतन में प्रतीकात्मक सम्वन्ध होने के प्रश्न पर सामने आया है। वडे विवेक-वुद्धि वाले और प्रसिद्ध व्यक्तियो ने भी, जो और दृष्टियो से मनोविश्लेपण को काफी दूर तक स्वीकार करते रहे है, इस प्रश्न पर आकर इसे मानने से इन्कार कर दिया है। यह व्यवहार तव और भी उल्लेखनीय हो जाता है जव हम दो वातें

याद करते हैं एक तो यह कि प्रतीकात्मकता स्वप्नो में नही होती, और न उनकी अनन्य विशेपता है, और दूसरी यह कि स्वप्नो में प्रतीकात्मकता का प्रयोग मनोविश्लेषण का आविष्कार नही है, यद्यपि इस विज्ञान ने और बहुत-से आश्चर्य में डालने वाले आविष्कार किये हैं। यदि आधुनिक काल में इस क्षेत्र में सबसे पहले आविष्कारक को ढूढ़ना हो तो दार्शनिक के० ए० शर्नर (१८६१) को इसका आविष्कारक मानना चाहिए। मनोविश्लेपण ने उसके आविष्कार की पुष्टि की है, यद्यपि कुछ महत्वपूर्ण दृष्टियो से इसमें सशोधन भी किए हैं।

अब आप स्वप्न-प्रतीकात्मकता की प्रकृति के बारे में कुछ सुनना, और उसके कुछ उदाहरणो पर विचार करना चाहेगे। मैं जो कुछ जानता हू, वह खुशी से आपको बताऊगा, पर इस विषय में हमारी जानकारी बहुत अधिक नही है।

प्रतीकात्मक सम्बन्ध सारभूत रूप में तुलना का सम्बन्ध है, पर वह किसी भी प्रकार की तुलना नही है। हमारा ख्याल है कि यह तुलना कुछ विशेष अवस्थाओ में ही हो सकती होगी, यद्यपि हम नही बता सकते कि वे अवस्थाए कौन-सी हैं। किसी वस्तु या घटना की जिस-जिस चीज से तुलना की जा सकती है, वह प्रत्येक चीज स्वप्नो में उसका प्रतीक बनकर नही आती, और दूसरी ओर, स्वप्न प्रत्येक चीज के लिए प्रतीकात्मकता का प्रयोग न करके गुप्त स्वप्न-विचारो के खास अवयवो के लिए ही इसका प्रयोग करते हैं। इस प्रकार दोनो दिशाओ में कुछ सीमाए हैं। हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि अभी हम बिलकुल निश्चित रूप से यह नही बता सकते कि हमारी प्रतीक की अवधारणा की सीमा कहा तक है क्योंकि यह स्थानापन्नता, निरूपण आदि में विलीन होने लगता है और अस्पष्ट निर्देश के निकट तक भी जा पहुचता है। प्रतीको के एक समुदाय में तुलना आसानी से दिखाई देनेवाली हो सकती है, पर कुछ प्रतीको में सामान्य अश खोजना पडता है। हो सकता है, अधिक विचार करने से हमें यह पता चल जाए, पर यह भी हो सकता है कि यह हमसे सदा छिपा ही रहे। फिर, यदि प्रतीक वस्तुत तुलना ही है तो यह बात उल्लेखनीय है कि यह तुलना मुक्त साहचर्य के क्रम से सामने नही आती, और स्वप्न-द्रष्टा को भी इसके विपय में कुछ पता नही होता, पर वह बिना जाने इसका प्रयोग करता है। इतना ही नही, वह तो उसके सामने पेश किए जाने पर इसे पहचानने को भी तैयार नही। इस प्रकार आप देखते हैं कि प्रतीकात्मक सम्बन्ध एक बिलकुल अनोखे किस्म की तुलना है, जिसकी प्रकृति अभी तक हम पूर्णतया नही जानते। शायद बाद में कोई ऐसा सकेत मिल जाए जो इस अज्ञात राशि पर कुछ प्रकाश डाले।

स्वप्नो में जो वस्तुए प्रतीको के रूप में दिखाई देती हैं, उनकी सख्या अधिक नही है मनुष्य का सारा शरीर, माता-पिता, बच्चे, भाई और बहनें, जन्म, मृत्यु, नगापन तथा एक चीज और। मनुष्य का रूप नियमित रूप से मकान द्वारा

दिखाई देता है जैसा कि शर्नर ने पहचाना था, और वह तो इस प्रतीक को इतना अधिक सार्थक बताता था जितना यह वास्तव में नही है । लोगो को किसी मकान के सामने के हिस्से पर कभी आनन्द की भावना से और कभी भय की भावना से चढने के स्वप्न आते हैं । जब दीवारें बिलकुल चिकनी होती है, तब मकान का अर्थ है पुरुष, जब उसमे छज्जे और जालिया हो जिन्हे पकडा जा सकता है, तब अर्थ है स्त्री । स्वप्नों में माता-पिता **सम्राट् और सम्राज्ञी, राजा और रानी** या अन्य ऊचे व्यक्तियो के रूप में दिखाई देते हैं । इस मामले में स्वप्न का ढग बडा पितृभक्ति से पूर्ण है । बच्चो और भाइयो तथा बहनो के साथ कुछ सख्ती बरती गई है, उनके प्रतीक है छोटे **पशु** या **कीड़े** । जन्म प्राय सदा **पानी** के रूप मे होता है या तो हम पानी मे गिर रहे है या इसमे से निकल रहे हैं, या इसमे से किसीको बचा रहे हैं, या कोई हम बचा रहा है अर्थात् माता और बच्चे का सम्बन्ध प्रतीक रूप में होता है । मरने के लिए हम किसी **यात्रा** पर गाडी से **सफर** पर रवाना हुए है और मृत्यु की अवस्था बहुत-से धुधले और मानो डरते हुए अस्पष्ट सकेतो से सूचित होती है । **कपड़े** या **वर्दियां** नगेपन को सूचित करती हैं । आप देखते है कि यहा प्रतीकात्मक और अस्पष्ट निर्देशात्मक निरूपणो की विभाजक रेखा मिटने लगती है।

इन थोडी-सी चीजो की तुलना में यह बात हमें विशेष रूप से प्रभावित किए बिना नही रह सकती कि एक और क्षेत्र से सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुए और मामले बहुत सारे प्रतीको से सूचित होते हैं । मेरा मतलब यौन जीवन के क्षेत्र से है, अर्थात् जननेंद्रिया, लैंगिक कार्य और सभोग । स्वप्नो में अधिकतर प्रतीक लैंगिक या यौन प्रतीक होते हैं । इस प्रकार यह स्थिति होती है कि बहुत-सी कम काम में आनेवाली बातो के लिए बहुत-से प्रतीक होते हैं, और इनमे से प्रत्येक चीज प्राय समानार्थक बहुत-से प्रतीको से प्रकट की जा सकती हैं। इसलिए जब उनका अर्थ लगाया जाता है, तब इस विचित्रता के कारण वह सबको बुरा लगता है क्योकि स्वप्नो मे तो यह अनेक रूपो मे दिखाई देता है । पर प्रतीको का निर्वाचन बडा नीरस काम है, जिसे इसका पता चलता है उसे ही यह बुरा लगता है, पर हम कर ही क्या सकते हैं ?

इन व्याख्यानो में यह पहला ही मौका है कि मैंने लैंगिक जीवन या यौन जीवन का उल्लेख किया है । इसलिए मै यह स्पष्ट कर देना चाहता हू कि इस विषय को मै किस तरह पेश करूगा । मनोविश्लेषण छिपाने या परोक्ष निर्देश करने की कोई जरूरत नही समझता और ऐसी महत्वपूर्ण सामग्री से अपने सम्बन्ध पर शर्म महसूस करना आवश्यक नही समझता। इसकी सम्मति में प्रत्येक वस्तु को इसके ठीक नाम से ही पुकारना उचित है, और इस तरह वह विक्षोभजनक साकेतिक शब्दो से आसानी से बच जाने की आशा रखता है । इसमें इस बात से कोई फर्क नही पड सकता कि मेरे श्रोताओ में लडके और लड़किया दोनों है । कोई भी विज्ञान इस

तरह नही पढाया जा सकता कि वह छोटी लडकियो के लिए उचित मालूम हो। जो स्त्रिया यहा उपस्थित हैं उन्होने व्याख्यान के कमरे में हाजिर होकर विना मुख से कहे यह ज़ाहिर कर दिया है कि वे पुरुषो की वरावरी में ही रहना चाहती हैं।

स्वप्नो में पुरुष की जननेंद्रिय अनेक प्रकार के प्रतीको के रूप में दिखाई देती है, जिनमें से अधिकतर में तुलना का आधारभूत सामान्य विचार आसानी से स्पष्ट हो जाता है। प्रथम तो पवित्र सख्या **तीन** सारी पुरुष-जननेंद्रिय की प्रतीक है। इसका अधिक स्पष्ट दीखने वाले और दोनो लिंगो के व्यक्तियो के लिए अधिक दिलचस्पी वाले हिस्से—शिश्न की मुख्य प्रतीक वही वस्तुए हैं जो आकृति में इससे मिलती-जुलती हैं, अर्थात् लम्बी और सीधी खडी होनेवाली होती हैं, जैसे—**लाठी, छतरी, खम्भा, पेड़** और ऐसी ही अन्य वस्तुए, इसकी प्रतीक वे वस्तुए भी होती हैं जिनमें शरीर के अन्दर घुसने और परिणामत उसे घायल करने का गुण होता है, अर्थात् सव तरह के नोकदार शस्त्र **चाकू, छुरे, खंजर, तलवार**, आग फेंकनेवाले हथियार भी इसी तरह प्रयोग में आते हैं **बन्दूक, पिस्तौल** और **रिवाल्वर** जिनमें से अन्तिम दो अपने रूप के कारण वहुत उपयुक्त प्रतीक होते हैं। युवा लडकियो के चिन्ता-स्वप्नो में चाकू या राइफल धारण करने वाला मनुष्य पीछा करता हुआ वहुत दिखाई देता है। शायद यह सवसे अधिक दीखनेवाला स्वप्न-प्रतीक है। अव आप अपने लिए आसानी से इसका भाषान्तर कर सकते हैं। पुरुष की जननेंद्रिय के स्थान पर ऐसी वस्तुओ का आना भी आसानी से समझ में आता है जिनसे पानी वहता है **टोंटी, पानी का कनस्तर** या **झरना**, और वे वस्तुए भी इसकी प्रतीक होती हैं जो लम्बी हो सकती हैं जैसे **पुलीलैंप, पेंसिलें, जो ढाचे के अन्दर आ-जा सकती हैं** इत्यादि। **पेंसिलें, होल्डर, नेलफाइल, हथौडे** और अन्य **उपकरण** असदिग्ध रूप मे पुरुष-लिंग के प्रतीक हैं, जो पुरुषेन्द्रिय के उस विचार पर आधारित हैं जिसका इतनी आसानी से वोध हो जाता है।

इस अग के गुरुत्व के नियम के विरोध में अपने को सीधा खडा कर सकने का जो विशेष गुण है, उसके कारण **वैलून, विमान** और अभी कुछ समय से **जैपलिन** उसके प्रतीक वन जाते हैं। पर स्वप्नो में दृढीकरण[1] के प्रतीक पेश करने का एक और अधिक प्रभावोत्पादक तरीका भी होता है। वे लिंग को सारे शरीर का आवश्यक भाग वना देती हैं जिसके परिणामस्वरूप **स्वप्न देखने वाला स्वय उडता है**। यह सुनकर परेशान होने की जरूरत नही कि उडने के स्वप्नो का, जिनमे हम सव परिचित है, और जो प्राय इतने सुन्दर होते हैं, सामान्य कामुक उत्तेजना या दृढीकरण स्वप्नो के रूप में अर्थ लगाना चाहिए। एक मनोविश्लेषक पी० फेडर्न ने असदिग्ध रूप से इस निर्वचन की सत्यता सिद्ध कर दी है, पर इसके अलावा, मोर्ली वोल्ड,

---

१ Erection

जो गम्भीर निर्णय-बुद्धि के लिए वहुत प्रसिद्ध है और जिसने वाहो और टागो की कृत्रिम स्थितियो से परीक्षण किए थे और जिसके सिद्धात असल मे मनोविश्लेषण से वहुत दूर थे (हो सकता है कि उसे इसके वारे में विलकुल भी पता न हो), अपनी खोजो से इसी नतीजे पर पहुचा था। इसपर आपको इस आधार पर आक्षेप नही करना चाहिए कि स्त्रियो को भी उडने के स्वप्न आ सकते हैं, वल्कि आपको यह याद करना चाहिए कि स्वप्नो का प्रयोजन इच्छा-पूर्ति है, और स्त्रियो में पुरुप वनने की इच्छा वहुत वार होती है, चाहे उन्हे इसका ज्ञान हो या न हो। इसके अलावा, शरीर से परिचित कोई भी आदमी इस भ्रम में नही पडेगा कि स्त्रियो के लिए पुरुप के जैसे सवेदनो द्वारा इस इच्छा को पूरा करना असम्भव है, क्योकि स्त्री के यौन अगो मे शिश्न से मिलता-जुलता एक छोटा अग भी होता है और यह छोटा अग **भगनासा**[1] वचपन में लैंगिक सभोग से पहले के वर्षो में सचमुच वही कार्य करता है जो पुरुप का वडा लिंग करता है।

पुरुप-लिंग के कम आसानी से समझ मे आने वाले प्रतीक कुछ **रेंगने वाले कीड़े और मछलियां** है, सवसे विचित्र प्रसिद्ध प्रतीक है **सांप**। **टोप और चोगा** इस तरह क्यो प्रयोग में आते है, यह समझ में आना निश्चय ही कठिन है, पर उनका प्रतीकात्मक अर्थ विलकुल असदिग्ध है। अत में यह पूछा जा सकता है कि क्या पुरुप लिंग का किसी अन्य अग, जैसे **हाथ** या **पैर**, द्वारा निरूपण प्रतीकात्मक कहा जा सकता है? मैं समझता हू कि जिस प्रसग में यह हुआ करता है, और साथ ही स्त्री के जो अग दिखाई देते हैं, उनसे हम मजबूरन इसी नतीजे पर पहुचते हैं।

स्त्री-जननेन्द्रियो का प्रतीकात्मक निरूपण ऐसी सव वस्तुओ से होता है जिनमें उनकी ही तरह स्थान को चारो ओर से घेरने का गुण होता है, या जो पात्र के रूप में प्रयोग मे आ सकते हैं. जैसे **गढ़े, खोखली जगह** और **गुफा** तथा **मर्तवान** और **वोतलें**, और सव तरह की और आकारो की **पेटियां, तिजोरियां, जेव** इत्यादि। **जहाज़** भी इसी वर्ग में आते हैं। वहुत-से प्रतीक दूसरी जननेन्द्रियो के वजाय गर्भाशय का सकेत करते है। इस प्रकार **अल्मारियां, स्टोव** और इन सवसे वढकर, **कमरे**। कमरे की प्रतीकात्मकता यहा मकान के प्रतीक से जुड जाती है और **दरवाजे** तथा **किवाड़** जननेन्द्रिय के द्वार के प्रतीक हैं। इसके अलावा, विभिन्न तरह की सामग्री स्त्री की प्रतीक है, जैसे **लकड़ी, कागज** और इनसे वनी हुई वस्तुए, जैसे **मेज** और **पुस्तकें**। अल्प प्राणियो में से **घोंघे** और **सीपी** असदिग्ध रूप से स्त्री के प्रतीक हैं। शरीर के अगो में से **मुख** योनि-द्वार का प्रतीक है, और मकानो में **चर्च** तथा **चेपल** (उपासना घर) स्त्री के प्रतीक है। स्पष्ट है कि ये सव प्रतीक उतनी ही आसानी से समझ में नही आते जितनी आसानी से पुरुप-जननेन्द्रिय के प्रतीक आ जाते है।

---

१. Clitoris

छातियो को भी यौन अंगो में शामिल करना चाहिए। ये तथा स्त्री के शरीर के नितवो के प्रतीक **सेव, आड़ू** और सामान्य **फल** होते हैं। दोनो लिंगो के व्यक्तियो में जननेन्द्रियो के बाल स्वप्नो में **जंगलों और झाडियों** से सूचित होते हैं। स्त्री की जननेन्द्रियो का स्थान जटिल होने के कारण **प्राकृतिक दृश्य** उनके प्रतीक होते हैं, जिनमें शिलाए, जगल और पानी दिखाई देते है। उधर पुरुष-जननेन्द्रिय की शानदार कार्य-प्रणाली का निरूपण सब तरह की जटिल और अवर्णनीय **मशीनरी** द्वारा होता है।

स्त्री-जननेन्द्रिय का एक और उल्लेखनीय प्रतीक **जेवर का डिब्बा** होता है, पर जेवर और सोना-चादी स्वप्न में प्रिय व्यक्ति के सूचक भी होते हैं, और **मिठाइया** प्राय कामुक आनन्द की प्रतीक होती हैं। किसी व्यक्ति को अपनी जननेन्द्रियो से प्राप्त सन्तुष्टि किसी भी तरह के **खेल** से सूचित होती है, जिसमें पियानो वजाना भी शामिल है। स्वयरति[1] के प्रतीक **सरकना** या **चलना** और कोई **टहनी तोड़ना** भी होते हैं। एक विशेष उल्लेखनीय स्वप्न-प्रतीक **दांतो का गिरना या निकालना** है। इसका मुख्य अर्थ निश्चित रूप से स्वयरति का दण्ड देने के लिए वधिया करना है। मैथुन या सभोग का विशेष निरूपण स्वप्नो में उतना नही होता, जितना इन सब वातो के वाद हमें आशा करनी चाहिए, पर इस सिलसिले में हम **नाचना, सवारी करना और (ऊंचाई पर) चढ़ना** जैसी तालवद्ध क्रियाओं का और **किसी प्रकार की चोट अनुभव करने का**, उदाहरण के लिए, कुचले जाने का, उल्लेख कर सकते हैं। इनके अलावा, कुछ हाथ के धन्धे, और हथियारो से घायल किए जाने का भय भी इसके प्रतीक होते हैं।

आप यह मत समझिए कि इन प्रतीकों का उपयोग या अनुवाद अर्थात् भाषान्तर विलकुल सीधे तौर से हो जाता है। चारो ओर ऐसी चीजें होती हैं, जिनकी हम आशा नही करते। उदाहरण के लिए, यह वात विश्वसनीय नही जचती कि इन प्रतीकात्मक निरूपणो में प्राय स्त्री-पुरुष के लिंगो का अन्तर नही होता। वहुत-से प्रतीक सामान्यत जननेन्द्रियो के सूचक होते हैं चाहे वे पुरुष की हो या स्त्री की। उदाहरण के लिए, **छोटा** वालक या **छोटा** पुत्र या पुत्री कभी-कभी, सामान्यत पुंल्लिग का प्रतीक, स्त्री-जननेन्द्रिय को निर्दिष्ट करता है और इसी तरह इसका उल्टा भी होता है। यह वात तव तक पूरी तरह समझ में नही आ सकती जव तक हम मनुष्यो में मैथुन या कामुकता सम्वन्धी विचारो के परिवर्धन की कुछ जानकारी प्राप्त न कर लें। वहुत-से उदाहरणो में प्रतीको की यह अस्पष्टता ऊपरी होती है, वास्तविक नही और उनमें से सबसे विशेष प्रतीक, जैसे हथियार, जेव और तिजोरी, इन दोनो लिंगो के लिए कभी प्रयोग में नही आते।

---

१ Onanism

अब मैं प्रतीको से सूचित वस्तुओ के बजाय स्वय प्रतीको से शुरू करके सक्षेप में यह बताऊगा कि मैथुन सम्बन्धी प्रतीक अधिकतर किन क्षेत्रो से आए है, और विशेष रूप से उनपर थोडो-सी टिप्पणी करूगा जिनमे प्रतीक से सूचित वस्तु का गुण प्रतीक में खोज पाना कठिन है। इस तरह के अस्पष्ट प्रतीक का एक उदाहरण **टोप** या शायद सिर ढकने की सभी चीजें हैं, टोप आम तौर से पुल्लिग का सूचक है पर कभी-कभी स्त्रीलिंग को भी सूचित करता है। इसी प्रकार **चोगा** पुरुष को सूचित करता है, पर शायद कभी-कभी उसका जननेन्द्रियो की ओर विशेष निर्देश नही होता। आप पूछेंगे कि ऐसा क्यो होता है। **टाई** जो नीचे लटकने वाली वस्तु है और जिसे स्त्रिया नही धारण करती, स्पष्टत पुल्लिग प्रतीक है, और **अन्डरलिनन** या सामान्य रूप मे **लिनन,** अर्थात् रेशमी वस्त्र, स्त्री लिंग का प्रतीक होता है। **कपड़े** और **वर्दियां,** जैसा कि हम देख चुके हैं, नगेपन या मनुष्य की आकृति की प्रतीक होती है, **जूते** और **स्लीपर** स्त्री-जननेन्द्रियो के प्रतीक होते हैं। हम कह चुके है कि मेज और लकडी कुछ उलझनदार चीजें हैं, पर फिर भी वे निश्चित रूप में स्त्रीलिग की प्रतीक है, नसैनियो, सीधे खडे स्थानो और सिढियो पर **चढ़ने का कार्य** असदिग्ध रूप से मैथुन का प्रतीक है। वारीकी से विचार करने पर हमे यह पता चलता है कि इस चढने की तालवद्धता अर्थात् नियमित उतार-चढाव का गुण और शायद इसके साथ होने वाली उत्तेजना-वृद्धि—चढते-चढते चढने वाले का साम जल्दी-जल्दी लेने लगना, दोनो मे सामान्य विशेषता है।

हम पहले यह देख चुके है कि **प्राकृतिक दृश्य** स्त्री-जननेन्द्रियो के सूचक हैं, **पर्वत** और **चट्टानें** पुरुषेन्द्रिय की प्रतीक हैं, **बाग** स्त्री-जननेन्द्रिय का बहुत बार दीखने वाला प्रतीक है, **फल** स्तनो का प्रतीक है, बच्चे का नही। **जंगली पशु** मनुष्य की उत्तेजित अवस्था, और इसीलिए दुष्ट आवेगो या प्रवल वासना के आवेशो के प्रतीक है। **कलियां** और **फूल** स्त्री-जननेन्द्रियो के प्रतीक हैं, विशेष रूप से कुमारावस्था में। इस सिलसिले में आपको स्मरण होगा कि कलिया वास्तव मे वनस्पतियो की जननेन्द्रिया ही हैं।

हम यह देख चुके है कि कमरो का प्रतीको के रूप में कैसे उपयोग होता है। इन प्रतीको का क्षेत्र विस्तृत हो सकता है, जिसमें **खिड़कियां** और **दरवाजे** (कमरो मे घुसने और उनसे निकलने के रास्ते) शरीर के द्वारो को सूचित करते हैं, कमरो के **खुला** या **बन्द** होने का तथ्य भी इस प्रतीक से मेल खाता हैं चावी, जिससे वे खोले जाते हैं, निश्चित ही पुल्लिग प्रतीक है।

इस थोडी-सी सामग्री से स्वप्न-प्रतीकात्मकता का कुछ अध्ययन किया जा सकता है। पर यह सामग्री इतनी ही नही है, तथा इसे विस्तृत भी किया जा सकता है, और गहरा भी, पर मैं समझता हू कि यह आपको काफी से ज्यादा मालूम होगी। शायद आप इसे नापसन्द करें। आप पूछेंगे . "तो क्या मैं सचमुच मैथुन सम्बन्धी प्रतीको

के बीच में ही रहता हू ? क्या मेरे चारो ओर की सब वस्तुए, मेरे पहनने के कपडे, मेरे पकडने की सब चीजें, सदा मैथुन सम्बन्धी प्रतीक ही हैं, और कुछ भी नही ?" सचमुच ये आश्चर्यमय प्रश्न करना युक्ति सगत है और इनमें से पहला प्रश्न यह होगा इन स्वप्न-प्रतीको के अर्थ पर पहुंचने का दावा हम कैसे करते हैं जवकि स्वप्न देखने वाला स्वय हमे इस बारे में कुछ भी जानकारी नही दे सकता।

मेरा उत्तर यह है कि हम भिन्न-भिन्न स्रोतो से यह ज्ञान प्राप्त करते हैं। परियो की कहानियो और पुराण-कथाओ से, मज़ाको और विनोद के चुटकुलो से, लोककथाओ से, अर्थात् ऐसी हर चीज़ से, जिससे हमें विभिन्न जातियो के रीति-रिवाजो, कहावतो और गीतो का पता चलता है, और भापा के काव्यमय तथा ग्राम्य बोल-चाल के प्रयोगो से हम यह ज्ञान प्राप्त करते हैं। इन विभिन्न क्षेत्रो में सब जगह एक ही प्रतीकात्मकता मिलती है, और उनमें से वहुतो में इसके वारे में विना कुछ सिखाए हम इसे समझ सकते हैं। यदि इन विभिन्न क्षेत्रो पर हम अलग-अलग विचार करें तो हमें स्वप्न-प्रतीकात्मकता के इतने सारे मिलते-जुलते रूप दिखाई दें कि हमको इन निर्वचनो के सही होने का विश्वास करना ही पडेगा।

हमने वताया है कि शर्नर के अनुसार मनुष्य का शरीर स्वप्न में बहुत वार मकान से सूचित होता है। इस प्रतीकात्मकता को और वढाने पर खिडकिया, दर-वाजे और किवाड शरीर के द्वारो में प्रवेश-स्थान को सूचित करते है और मकान का सामना या तो चिकना होता है और या उसपर पकडने के लिए छज्जे, और झझरिया होती हैं। यही प्रतीकात्मकता वोलचाल के प्रयोगो में मिलती है। उदा-हरण के लिए, हम कहते हैं वालों का 'छप्पर' या 'टाइलहैट' या किसी के वारे में हम कहते हैं कि उसकी 'ऊपर की मजिल'[१] ठीक नही। शरीर में भी हम शरीर के छिद्रो को इसके 'पोर्टल'[२] या द्वार कहते हैं।

शुरू में हमें यह वात आश्चर्यजनक लगेगी कि स्वप्नो में हमें अपने माता-पिता राजा-रानियो के रूप में दिखाई देते हैं, पर इसी तरह की चीज परियो की कहा-नियों में होती हैं। क्या हमें यह नही लगने लगता कि बहुत-सी परियो की कहा-नियों का, जो 'एक था राजा, एक थी रानी' से शुरू होती है, अर्थ सिर्फ यह होता

---

१ जर्मन भाषा में पुराने परिचित को प्राय: 'पुराना मकान' (Altes Haus) कहकर पुकारा जाता है; 'उसे छत पर एक दे दो' (Einem eins aufs Dachl geben) का अर्थ है 'उसके सिर पर मारो।'

२ पोर्टल शिरा आंतों से पोषण, जिगर के रास्ते, शरीर को पहुचाती है। पाईलोख (जो πνλη (पाइल) द्वार से वना है) छोटी आंत का प्रवेश द्वार होता है। जर्मन भाषा में शरीर के छिद्र Leibespforten (शरीर के द्वार) कहलाते हैं।

है कि एक वार एक पिता था और एक माता थी। परिवार मे वच्चो को हसी में कभी-कभी राजा वेटा कहा जाता है, और सवसे वडे पुत्र को युवराज कहा जाता है। स्वय राजा जनता का पिता कहलाता है[1]। फिर कुछ स्थानो मे छोटे वच्चे प्राय खेल में छोटे जानवर कहलाते हैं। उदाहरण के लिए, कार्नवाल में 'छोटा मेंढक', या जर्मनी में 'छोटा कीडा', और वच्चे से सहानुभूति दिखाते हुए कहते हैं, 'विचारा छोटा कीडा।' (हिन्दी-भाषी प्रदेश मे वच्चे को 'वदर', वच्ची को 'चिडिया' और सामान्यता वच्चे को 'चूहा या चुहिया' कहते हैं।)

अव फिर मकान के प्रतीक पर विचार करेंगे। जव हम अपने स्वप्नो मे मकानो के छज्जो को पकडते हैं, तव क्या हमारे मन में विशेष रूप से उभरी हुई छातियो वाली स्त्री के सम्वन्ध में जर्मन भाषा की यह प्रसिद्ध और प्रचलित कहावत नही आती। 'उसके पास किसीके पकड रखने योग्य चीज है।' (Die hat etwas zum Anhalten)। इसी तरह का एक और वोलचाल का प्रयोग है। 'उसके मकान के सामने वहुत-सी लकडी है।' (Die hat viel Holz vor dem Hause) मानो इस तरह जव हम यह कहते हैं कि लकडी स्त्री का मातृरूप प्रतीक है, तव इससे हमारे निर्वचन की पुष्टि हो जाती है।

लकडी के विषय पर अभी कुछ और कहना पडेगा। आसानी से समझ में नही आता कि लकडी स्त्री और माता का प्रतीक क्यो हो पर इसमें विभिन्न भाषाओ की तुलना हमारे लिए उपयोगी हो सकती है। जर्मन शव्द Holz (लकडी) उसी धातु से निकला हुआ वताया जाता है जिससे ग्रीक Uλn, जिसका अर्थ है सामग्री या कच्चा सामान। यह उस प्रकार का उदाहरण है जिसमें एक सामान्य नाम अत में एक विशेष वस्तु का वाचक हो जाता है, और यह प्रक्रम वहुत जगह दिखाई देता है। एटलाटिक महासागर मे मैंडीरा नामक एक द्वीप है, और यह नाम इसे तव दिया गया था जव पुर्तगालियो ने इसे ढूढा था, क्योकि उस समय इसमे घने जगल थे और पुर्तगाली भाषा में जगल या लकडी के लिए 'मैंडीरा' शव्द है। पर आप देखेंगे कि यह मैंडीरा शव्द लैटिन के 'मैटीरिया' शव्द का ही रूपान्तर है, और 'मैटीरिया' शव्द सामान्य रूप से वस्तु का वाचक है पर मैटीरिया शव्द 'मैटर' (माता) शव्द से निकला है, और जिस सामान में से कोई चीज़ वनती है उसे उस चीज का जन्मदाता माना जा सकता है। इस प्रकार स्त्री या माता के प्रतीक के रूप मे लकडी या जगल का प्रयोग इस पुराने विचार का अवशेष भी है।

जन्म सदा पानी से कुछ सम्वन्ध रखता हुआ दिखाई देता है। या तो हम पानी में गोता लगा रहे हैं, या उससे निकल रहे हैं, अर्थात् हम जन्म लेते हैं, या पैदा होते

---

१. रूसी भाषा में 'छोटा पिता'। (देखिए कालिदास—स पिता पितरस्तासां केवलं जन्म हेतवः—अनुवादक)

है। यह नही भूलना चाहिए कि विकास[1] के वास्तविक तथ्यो की ओर यह प्रतीक दो निर्देश करता है। धरती पर रहने वाले सब स्तन्यपायी[2] जिनसे मनुष्य वश पैदा हुआ है, उन प्राणियो के वशज हैं जो पानी में रहते थे—यह दोनो में से दूर वाला सकेत है—पर प्रत्येक स्तन्यपायी व्यक्ति अर्थात् प्रत्येक मनुष्य भी पानी मे रहने की पहली अवस्था में से गुजरा है, अर्थात् वह भ्रूण[3] के रूप में माता के गर्भ के एमनियोटिक तरल में रहा है और इस प्रकार जन्म के समय पानी से निकला है। मैं यह नही कहता कि स्वप्न-द्रष्टा यह बात जानता है, इसके विपरीत, मेरा यह कहना है कि उसे यह जानने की कोई आवश्यकता ही नही। शायद वह बचपन से सुनता हुआ कुछ और बात जानता है, पर मैं यह कहता हू कि इससे भी प्रतीक बनने पर कोई प्रभाव नही पडा। बच्चे को छुटपन में कहा जाता है सारस पक्षी बच्चे दे जाते हैं। पर फिर उन्हे बच्चे मिलते कहा से हैं ? किसी तालाब या कुए में से, अर्थात् पानी से। मेरा एक रोगी, जिसे बचपन में जब वह बहुत छोटा ही था यह बात बताई गई थी, एक दिन तीसरे पहर कही गायब हो गया और अन्त में एक झील के किनारे लेटा हुआ मिला। उसने अपना छोटा-सा मुह निर्मल जल की ओर कर रखा था और वह उत्सुकतापूर्वक ताक रहा था कि क्या झील के तले मे वह बच्चो को देख सकेगा।

वीर पुरुषो के जन्मो की पौराणिक कहानियो में, जिनका प्रो० रैन्क ने तुलनात्मक अध्ययन किया है—इनमें सबसे प्राचीन, लगभग अट्ठाईस सौ ईस्वी पूर्व का अक्कड् का राजा सारगोन है—पानी में पडे होने और उसमें से बचाए जाने का उल्लेख प्रमुख होता है। रैन्क ने देखा कि यह उसी प्रकार जन्म का प्रतीक है जैसे स्वप्नो में होता है। स्वप्न में कोई आदमी किसीको पानी में से बचाता है। तब वह उस व्यक्ति को अपनी माता बना लेता है या कम से कम **एक** माता तो बना ही लेता है, और पुराण-कथाओ में जो कोई किसी बच्चे को पानी में से बचाती है, वह स्वय को उसकी सगी माता बताती है। एक प्रसिद्ध मज़ाक है जिसमें एक तीव्र-बुद्धि यहूदी लडका, यह पूछने पर कि मूसा की माता कौन थी, तुरन्त उत्तर देता है "राजकुमारी।" हम उससे कहते हैं "नही, उसने तो उसे सिर्फ पानी मे से निकाला था।" "यह तो वह कहती थी," वह उत्तर देता है, और इस तरह प्रकट करता है कि उसने पौराणिक कथा का सही अर्थ समझ लिया है।

यात्रा पर जाना स्वप्नो में मरने का प्रतीक होता है, इसी प्रकार जब कोई बालक किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में पूछता है जो मर गया है और जिसका अभाव उसे अनुभव हो रहा है, तब उससे कह दिया जाता है कि 'वह परदेस गया है।' यहा

---

१ Evolution २ Mammal ३ Embryo

भी मैं इस विचार को नापसन्द करता हू कि इस स्वप्न-प्रतीक का मूल बच्चे को दिए गए टालू जवाब में है। कवि जब परलोक के लिए यह कहता है कि 'वह अज्ञात देश जहा से कोई पथिक वापस नही लौटता' तब वह इसी प्रतीक का प्रयोग करता है। इसी तरह रोज की बातचीत में हम 'अन्तिम यात्रा' (महाप्रयाण या गंगा यात्रा) शब्दो का प्रयोग करते हैं, और प्राचीन कर्मकाण्ड से परिचित लोग अच्छी तरह जानते हैं कि मृतो के देश में यात्रा का विचार, उदाहरण के लिए, प्राचीन मिस्र-वासियो मे कितनी गम्भीरता से माना जाता था। बहुत जगह 'मृत का लेखा' (Book of the Dead) देने की पद्धति अब भी कायम है—यह लेखा ममी अर्थात् सरक्षित शव को अपनी अन्तिम यात्रा पर ले जाने के लिए दे दिया जाता था। कब्रिस्तान बस्ती से दूर होते हैं इसलिए मृत व्यक्ति की अन्तिम यात्रा एक वास्तविकता बन गई है।

यौन प्रतीक सिर्फ स्वप्नो से ही सम्बन्ध नही रखते। 'सामान' शब्द से आप सब परिचित होगे, जो स्त्री का तिरस्कार के साथ उल्लेख करने मे प्रयुक्त होता है। पर शायद लोगो को पता नही है कि वे जननेन्द्रिय के एक प्रतीक का प्रयोग कर रहे हैं। नए अहदनामे (New Testament) में लिखा है . "औरत कमजोर जहाज है।" यहूदियो के धर्मलेखो में जिनकी शैली कविता से बहुत मिलती-जुलती है, यौन प्रतीको वाली बहुत-सी पदावलिया हैं, जिनका बहुत बार ठीक-ठीक अर्थ नही लगाया गया है और जिनके भाष्य से, उदाहरण के लिए, सांग ऑफ सोलोमन में बडी गलतफहमी पैदा हुई है।[1] बाद के हिब्रू साहित्य मे स्त्री को बहुत बार मकान द्वारा निरूपित किया गया है, जिसमें दरवाजा योनि-द्वार का प्रतीक है। इस प्रकार, जब पुरुप यह देखता है कि कोई स्त्री अब कुमारी या अक्षतयोनि नही है, तब वह कहता है कि 'मैंने दरवाजा खुला पाया है।' इस साहित्य में स्त्री के लिए 'मेज' का प्रतीक भी आता है, स्त्री अपने पति के विपय में कहती है . "मैंने उसके लिए मेज लगाई, पर उसने इसे उल्टा कर दिया।" लगडे बच्चो की दुर्बलता का कारण इस तथ्य को बताया जाता है . "पुरुप ने मेज को उल्टा कर दिया।" यहा मैं एल० लेवी के एक ग्रन्थ से एक उदाहरण देता हू। वह ग्रन्थ है **'सेक्सुअल सिम्बोलिज्म इन द बाईबल एण्ड द तालमद'** (अर्थात् बाईबल और तालमद में मैथुन विषयक प्रतीक)।

स्वप्नो मे जहाज स्त्री का वाचक होता है, जिसका समर्थन व्युत्पत्ति-शास्त्री भी करते हैं। उनका कहना है कि जहाज (Schiff) शब्द पहले मिट्टी के बर्तन का नाम था, और यह शब्द Schaff (टब या कठोता) ही है। चूल्हा स्त्री या माता के

---

१. "मैं एक दीवार हूं और मेरे स्तन बुर्जों के समान हैं : तब मैं उसकी नजरो को बांध सकी थी।"—Cant viii. 10

गर्भ का प्रतीक है––इस बात की पुष्टि कोरिन्थ के पेरिएन्डर और उसकी पत्नी मैलिसा की यूनानी कहानी से भी होता है। हैरोडोटस के लेख के अनुसार, उस ज़ालिम ने अपनी पत्नी को, जिसे वह बहुत प्रेम करता था, ईर्ष्या के कारण मार दिया था, अब इसने उसकी छाया (अथवा प्रेत) से सौगन्ध देकर उसके बारे में बताने को कुछ कहा। इस पर मृत स्त्री ने अपना परिचय स्पष्ट करने के लिए उसे यह स्मरण कराया कि 'तूने (अर्थात् पेरिएन्डर ने) अपनी रोटी एक ठडे चूल्हे मे रख दी थी', और इस प्रकार छिपे रूप में एक ऐसी परस्थिति जाहिर की जिससे और कोई परिचित नही था। एफ० एस० क्राउस द्वारा सम्पादित **एन्थ्रोपोफाइटिया** नामक ग्रन्थ में, जो विभिन्न जातियो के यौन जीवन सम्बन्धी प्रत्येक बात के विषय में एक अपरिहार्य पुस्तक है, लिखा है कि जर्मनी के एक हिस्से में लोग प्रसूता स्त्री के बारे में कहते हैं कि 'उसका चूल्हा गिर कर टुकडे-टुकडे हो गया है।' आग जलाना और इससे जुडी हुई हर बात मैथुन सम्बन्धी प्रतीको की सूचक है। ज्वाला सदा पुरुषेन्द्रिय की प्रतीक होती है और अगीठी स्त्री के गर्भ की।

अगर आपको इस बात पर आश्चर्य हुआ हो कि स्वप्न में स्त्री के लिंगो के प्रतीक के रूप में धरती के दृश्य क्यो इतनी अधिक बार दिखाई देते हैं तो इसका उत्तर आपको पुराण विद्या के विद्वानो से मिल सकता है। वे आपको बताएगे कि पुराने जमाने के विचारो और पन्थो में 'धरती माता' का कितना महत्वपूर्ण कार्य रहा है, और जिस तरह खेती का सारा अवधारण इस प्रतीक के अनुसार ही निश्चित है। स्वप्न में कमरा स्त्री का प्रतीक होता है। इस तथ्य का मूल जर्मन बोलचाल के फ्राउएनजिमर = Frauenzimmer (शब्दार्थ 'स्त्री का कमरा') शब्द में फ्राउ = Frau (स्त्री) के लिए प्रयोग में आता है, अर्थात् स्त्री को उसके रहने के कमरे से निरूपित किया जाता है। इसी प्रकार सुलतान और उसकी सरकार के अर्थ में हम दरबार का प्रयोग करते हैं, और पुराने मिस्र के राजा के नाम 'फेराओ' शब्द का अर्थ सिर्फ 'बडा दरबार' है (पुराने जमाने में पूर्वी देशो में नगर के दोहरे द्वारो के बीच के आगनो में दरबार होते थे, जैसे बाद में बाज़ार होने लगे), पर मैं समझता हू कि यह व्युत्पत्ति बिलकुल ऊपरी है, और मुझे यह ज्यादा सम्भाव्य लगता है कि कमरा स्त्री का प्रतीक इस कारण हुआ कि वह पुरुष को अपने अन्दर बन्द कर सकती है। इस अर्थ में हम मकान को पहले देख चुके हैं, पुराण-कथाओ और काव्य मे हमें पता चलता है कि नगर, किले, गढ और दुर्ग भी स्त्री के प्रतीक होते हैं। यह बात उन लोगो के स्वप्नो से आसानी से निश्चित की जा सकती है जो न जर्मन बोलते है, और न जर्मन समझते हैं। कुछ वर्षो से मैंने मुख्यत विदेशी रोगियो का इलाज किया है, पर मुझे याद है कि उनके स्वप्नो में कमरा उसी तरह स्त्री का प्रतीक होता है जैसे हमारे यहा, हालाकि उनकी भाषा में फ्राउएनजिमर = Frauenzimmer जैसा कोई शब्द नही। इस बात के और भी सकेत मिलते हैं कि

ये प्रतीक भाषा की सीमाओं में बंधे हुए नहीं होते—इस तथ्य की पहले ही, स्वप्नों की बहुत समय से जांच करने वाले विद्वान शूबर्ट ने १८६२ में स्थापना की थी। पर मेरा कोई भी रोगी जर्मन भाषा से पूरी तरह अपरिचित नहीं था, इसलिए यह प्रश्न मैं उन विश्लेषकों पर फैसले के लिए छोड़ता हूं जो दूसरे देशों में ऐसे व्यक्तियों से उदाहरण इकट्ठे कर सकते हैं जो केवल एक भाषा बोलते हैं।[1]

पुरुष के लिंग के प्रतीकों में शायद ही कोई ऐसा हो जो मज़ाक में, गंवारू प्रयोगों में या काव्य के शब्दों में, विशेष रूप से पुराने क्लासिकल कवियों में प्रयुक्त न हुआ हो। यहां भी हमें न केवल वे प्रतीक मिलते हैं जो स्वप्न में आते हैं, बल्कि नए प्रतीक भी मिलते हैं। उदाहरण के लिए, विभिन्न प्रकार की दस्तकारियों में काम आने वाले उपकरण, जिनमें सबसे मुख्य है हल। इसके अलावा, जब हम पुल्लिंग प्रतीकों पर आते हैं, तब बड़े विस्तृत और विवादास्पद क्षेत्र में पहुंच जाते हैं, और समय बचाने की दृष्टि से मैं उसका विवेचन नहीं करना चाहता। मैं सिर्फ एक प्रतीक के बारे में दो-एक बातें कहना चाहता हूं जो अद्वितीय हैं। मेरा मतलब तीन संख्या से है। इस संख्या को बहुत सम्भवतः इसके प्रतीकात्मक अर्थ के कारण पवित्र नहीं माना जाता, इस प्रश्न को मैं बिना तय किए छोड़ देना चाहता हूं, पर यह बात निश्चित मालूम होती है कि बहुत-से तीन भागों वाले प्राकृतिक पदार्थ, उदाहरण के लिए, क्लोवर के पत्ते (एक तरह का पशुओं का चारा) कोट ऑफ आर्म्स (कवच के ऊपर अंकित कुल-मर्यादा सूचक चित्र) और चिह्न के रूप में अपनी प्रतीकात्मकता के कारण प्रयोग में लाए जाते हैं। तथा कथित 'फ्रेंच' लिली, जिसमें तीन भाग होते हैं और 'तिपाई' (Trisceles)—वह विचित्र कवच-चिह्न जिसमें दो एक दूसरे से काफी दूर पर स्थित द्वीप, जैसे सिसली और आइल ऑफ मैन होते हैं। (इस आकृति में एक केन्द्रीय बिन्दु से तीन मुड़ी हुई टांगें आगे को निकली हुई होती हैं) पुरुष-लिंग के छिपे हुए रूप ही माने जाते हैं, जिनके प्रतिबिंबों को पुराने ज़माने में भूत, प्रेत आदि को भगाने का सबसे उत्तम साधन माना जाता था, इसके साथ एक वह तथ्य है कि हमारे ज़माने के सौभाग्यप्रेरक कवच को भी आसानी से जननेन्द्रिय या मैथुन सम्बन्धी प्रतीक के रूप में पहचाना जा सकता है। छोटे-छोटे चांदी के तावीज़ों के रूप में लटकने वाले ऐसे बहुत-से कवचों को देखिए: कोई चार पत्तियों वाला क्लोवर है, कोई सुअर है, कोई कुकुरमुत्ता है, कोई घोड़े की नाल है, कोई नसैनी है, और कोई चिमनी साफ करने वाली झाड़ू है। चार पत्तों वाला क्लोवर तीन पत्तों वाले के स्थान पर आ गया है, पर असल में तीन पत्तों वाला प्रतीक के प्रयोजन के लिए अधिक ठीक था, सुअर सफलता का प्राचीन

---

१. अंग्रेजी-भाषी रोगियों में निश्चित रूप से यह बात होती है।—अंग्रेजी अनुवादक।

प्रतीक है, कुकुरमुत्ता नि सन्देह शिश्न का प्रतीक है, कुछ कुकुरमुत्तो का नाम इस अग से उनकी स्पष्ट समानता से ही रखा गया है (फैलस इम्पुडिकस), नाल स्त्री-योनि की रूप-रेखा प्रस्तुत करती है, और चिमनी साफ करने वाली झाड़ू तथा उसकी नसैनी इस समुदाय में इसलिए आती है क्योकि उसके पेशे की तुलना गवारू भाषा में मैथुन से की जाती है।[1] हम उसकी नसैनी को स्वप्न में दीखने वाला यौन प्रतीक बता चुके है। भाषा के प्रयोगो से पता चलता है कि Steigen, अर्थात् चढना शब्द पूरी तरह मैथुन सम्बन्धी अर्थ प्रकट करता है जैसे इन वाक्याशो में Den Frauen nachsteigen (स्त्रियो के पीछे दौडना) और ein alter Steiger (एक पुराना बदमाश या व्यभिचारी)। इस प्रकार फ्रेंच में, जिसमें 'कदम' के लिए **ला मर्श** (La marche) है, हमे पुराने बदमाश के लिए बिलकुल इसी तरह का शब्द-प्रयोग मिलता है **आ व्यू मार्शोर** (Un vieux marcheur)। विचारो के इस साहचर्य से सम्भवत इस तथ्य का कुछ सम्बन्ध है कि बहुत-से बडे पशुओ में मैथुन के लिए मादा या स्त्री पशु पर 'चढने' की आवश्यकता होती है।

स्वय रति को निरूपित करने वाला प्रतीक टहनी तोडना न केवल इस कार्य के गवारू वर्णन से मेल खाता है, बल्कि पुराण-कथाओ में भी इसके बडी दूर तक सादृश्य मिलते है पर विशेष रूप से उल्लेखनीय बात यह है कि स्वय रति का या स्वय रति की सजा के रूप में बधिया करने का प्रतीक दातो का गिरना या निकालना है, क्योकि लोककथाओ में इस जैसी एक चीज मिलती है जो बहुत ही थोडे स्वप्न देखने वालो को पता हो सकती है। मै समझता हू कि इसमें कोई सन्देह नही हो सकता कि खतना, जो इतनी सारी जातियो में प्रचलित है, बधिया करने के समान और उसके स्थान पर आया हुआ है, और हाल में ही हमें पता चला है कि आस्ट्रेलिया की कुछ आदिम जातियो में तरुणावस्था प्राप्त करने के अवसर पर (लडके के बालिग होने के समारोह पर) धार्मिक कृत्य के रूप में खतना किया जाता है और उनके बिलकुल पास रहने वाली दूसरी जातियो में इस प्रथा के स्थान पर एक दात तोड देने की प्रथा है।

मै अपना कथन इन उदाहरणो से खत्म करूगा। वे सिर्फ उदाहरण है। हम इस विषय के बारे में और अधिक जानते है और आप समझ सकते है कि यदि हमारे जैसे अनाडियो के बजाय पुराण विद्या, नृतत्व विज्ञान, भाषा-तत्व, और लोककथाओ के सच्चे विशेषज्ञो द्वारा इस तरह की सामग्री का सग्रह किया जाए तो वह कितना अधिक विस्तृत और मनोरजक होगा। हमें मजबूरन कुछ निष्कर्षो पर आना पडता है जो इस तरह सारे के सारे हमारे सामने नही आ सकते, पर फिर भी जो हमें सोचने के लिए बहुत कुछ मसाला दे जाएगे।

---

१ देखिए, एन्थ्रोपोफाइटिया।

प्रथम तो हमारे सामने यह तथ्य आता है कि स्वप्न-द्रष्टा के पास अपने मन की बात कहने की प्रतीकात्मक रीति है जिसके बारे में वह जागृत जीवन में कुछ नही जानता और जिसे वह पहचानता भी नही। इससे उतना ही आश्चर्य होता है जितना आपको यह पता लगने पर होगा कि आपकी नौकरानी सस्कृत भापा जानती है, यद्यपि आपको यह मालूम है कि वह वोहेमिया के एक गाव में पैदा हुई थी और उसने वह भापा कभी नही सीखी। इस तथ्य का हमारे मनोविज्ञान विपयक विचारो से मेल विठाना आसान काम नही। हम इतना ही कह सकते है कि स्वप्न-द्रष्टा का प्रतीकात्मकता का ज्ञान अचेतन है और उसके अचेतन मानसिक जीवन में रहता है, पर यह धारणा भी हमारे लिए अधिक उपयोगी नही होती। अव तक हमें सिर्फ यह कल्पना करनी पडी थी कि अचेतन प्रवृत्तियो का अस्तित्व है, जो हमारे स्थायी या अस्थायी रूप से अज्ञात होती है, पर अव कुछ वडा सवाल है और हमें एसी चीजो में सचमुच विश्वास करना है, जैसे अचेतन ज्ञान, विचार-सम्वन्ध और विभिन्न वस्तुओ मे साम्य, जिनके द्वारा एक मनोविव के स्थान पर दूसरा मनोविव नियत रूप में स्थापित किया जा सकता है। ये साम्य हर वार नए सिरे से नही शुरु होते, वल्कि हमेशा के लिए तैयार की हुई हमारी सूची मे होते है। वह हम विभिन्न व्यक्तियो में सम्भवत भाषा सम्वन्धी भेदो के होते हुए भी, उनके अभिन्न होने का अनुमान करते है।

इसी प्रतीकात्मकता का ज्ञान हमें कहा से होता है ? भापा में प्रयुक्त शव्दो में वहुत थोडे प्रतीक आते है और दूसरे क्षेत्रो से वहुत सारे सादृश्य स्वप्न-द्रष्टा को अधिकतर अज्ञात होते है। सवसे पहले हमे स्वय उन्हे मेहनत से क्रमवद्ध करना होगा।

दूसरी वात यह कि ये प्रतीकात्मक सम्वन्ध स्वप्न-द्रष्टा के लिए अलग नही होते, या उसी स्वप्न-रचना के लिए अलग नही होते जिसमें ये प्रकट होते है, क्योंकि हमने देखा है कि वही प्रतीक पुराण-कथाओ में और परियो की कहानियो में, आम लोगो की भापा मे और गीतो में, वोलचाल की भापा और काव्य की कल्पना मे प्रयोग मे आते है। प्रतीकात्मकता का क्षेत्र सामान्य रूप से विस्तृत है, स्वप्न-प्रतीकात्मकता उसका एक छोटा-सा अंशमात्र है। सारी समस्या पर स्वप्नो के पहलू से विचार करना उचित भी नही होगा। और जगह आमतौर से काम आनेवाले वहुत-से प्रतीक या तो स्वप्नो मे विलकुल ही नही आते और या वहुत कम आते है, दूसरी ओर, वहुत-से स्वप्न-प्रतीक दूसरे हर क्षेत्र में नही मिलते, वल्कि जैसा कि आप देख चुके है, सिर्फ कही-कही मिलते है। हमपर यह असर पडता है कि यह कोई प्राचीन, और अव अप्रचलित भाव-प्रकाशन की रीति होगी, जिसके विभिन्न टुकडे विभिन्न क्षेत्रो में, कोई कही और कोई कही, मामूली हेर-फेर के साथ वचे हुए है। यहा मुझे एक वड़े मनोरजक पागल रोगी की कल्पना की याद आती है

प्रतीक है, कुकुरमुत्ता नि सन्देह शिश्न का प्रतीक है, कुछ कुकुरमुत्तो का नाम इस अग से उनकी स्पष्ट समानता से ही रखा गया है (फैलस इम्पुडिकस), नाल स्त्री-योनि की रूप-रेखा प्रस्तुत करती है, और चिमनी साफ करने वाली झाड़ तथा उसकी नसैनी इस समुदाय में इसलिए आती है क्योकि उसके पेशे की तुलना गवारू भापा में मैथुन से की जाती है।[1] हम उसकी नसैनी को स्वप्न में दीखने वाला यौन प्रतीक वता चुके है। भाषा के प्रयोगो से पता चलता है कि Steigen, अर्थात् चढना शब्द पूरी तरह मैथुन सम्बन्धी अर्थ प्रकट करता है जैसे इन वाक्याशो में Den Frauen nachsteigen (स्त्रियो के पीछे दौडना) और ein alter Steiger (एक पुराना वदमाश या व्यभिचारी)। इस प्रकार फ्रेंच में, जिसमें 'कदम' के लिए **ला मर्श** (La marche) है, हमें पुराने वदमाश के लिए विलकुल इसी तरह का शब्द-प्रयोग मिलता है **आ व्यू मार्शोर** (Un vieux marcheur)। विचारो के इस साहचर्य से सम्भवत इस तथ्य का कुछ सम्बन्ध है कि बहुत-से वडे पशुओ में मैथुन के लिए मादा या स्त्री पशु पर 'चढने' की आवश्यकता होती है।

स्वय रति को निरूपित करने वाला प्रतीक टहनी तोडना न केवल इस कार्य के गवारू वर्णन से मेल खाता है, वल्कि पुराण-कथाओ में भी इसके बडी दूर तक सादृश्य मिलते है पर विशेष रूप से उल्लेखनीय बात यह है कि स्वय रति का या स्वय रति की सजा के रूप में बधिया करने का प्रतीक दातो का गिरना या निकालना है, क्योकि लोककथाओ में इस जैसी एक चीज मिलती है जो वहुत ही थोडे स्वप्न देखने वालो को पता हो सकती है। मै समझता हू कि इसमें कोई सन्देह नही हो सकता कि खतना, जो इतनी सारी जातियो में प्रचलित है, बधिया करने के समान और उसके स्थान पर आया हुआ है, और हाल में ही हमे पता चला हे कि आस्ट्रेलिया की कुछ आदिम जातियो में तरुणावस्था प्राप्त करने के अवसर पर (लडके के वालिग होने के समारोह पर) धार्मिक कृत्य के रूप में खतना किया जाता है और उनके विलकुल पास रहने वाली दूसरी जातियो में इस प्रथा के स्थान पर एक दात तोड देने की प्रथा है।

मै अपना कथन इन उदाहरणो से खत्म करूगा। वे सिर्फ उदाहरण हैं। हम इस विपय के वारे में और अधिक जानते है और आप समझ सकते हैं कि यदि हमारे जैसे अनाडियो के वजाय पुराण विद्या, नृतत्व विज्ञान, भापा-तत्व, और लोककथाओ के सच्चे विशेषज्ञो द्वारा इस तरह की सामग्री का सग्रह किया जाए तो वह कितना अधिक विस्तृत और मनोरजक होगा। हमें मजवूरन कुछ निष्कर्पो पर आना पडता है जो इस तरह सारे के सारे हमारे सामने नही आ सकते, पर फिर भी जो हमें सोचने के लिए वहुत कुछ मसाला दे जाएगे।

---

१ देखिए, एन्थ्रोपोफाइटिया।

है। तब प्रतीकात्मक सम्बन्ध इसी बात के अवशेष होगे कि पहले दोनो के लिए एक शब्द-प्रयोग होता था। जिन वस्तुओ का वाचक पहले जननेन्द्रिय वाचक शब्द था वे अब स्वप्न में जननेन्द्रिय की प्रतीक बन सकती हैं।

इसके अतिरिक्त, स्वप्न-प्रतीकात्मकता से आपको यह समझने मे मदद मिल सकती है कि मनोविश्लेषण क्यो इतना आम दिलचस्पी का विषय बन जाता है, जितना मनोविज्ञान और मनश्चिकित्सा नही बन सकते। मनोविश्लेपण कार्य विज्ञान की और बहुत-सी शाखाओ के साथ अच्छी तरह गुथा हुआ है, और इन शाखाओ की जाच-पडताल करने से बहुत कीमती नतीजे निकल सकते हैं, जैसे पुराणविद्या, भाषा-तत्व और भाषा-विज्ञान, लोककथाए, लोकमनोविज्ञान और धर्मशास्त्र। आपको यह जानकर आश्चर्य नही होना चाहिए कि मनोविश्लेषण के आधार पर एक ऐसी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ है जिसका एकमात्र उद्देश्य इन सम्बन्धो को बढाना है। मेरा सकेत **ईमेगो** की ओर है जो सबसे पहले १९१२ में प्रकाशित हुई थी और जिसके सम्पादक हैन्स सैक्स और ओटो रैन्क थे। इन दूसरे विषयो के साथ सम्बन्ध रखते हुए मनोविश्लेषण ने इनसे जितना पाया है उससे अधिक इन्हे दिया है। यह सच है कि मनोविश्लेषण अपने ही परिणामो की पुष्टि इन दूसरे क्षेत्रो मे करता है, जो बडी विचित्र बात मालूम होती है, पर कुल मिलाकर मनोविश्लेपण द्वारा दी हुई तकनीकी विधियो और दृष्टिकोणो का प्रयोग ही दूसरे क्षेत्रो में सफल सिद्ध होता है। मनुष्य का मानसिक जीवन मनोविश्लेपण की जाच-पडताल के द्वारा ऐसी व्याख्याए पेश करता है जो मनुष्य जाति के जीवन की बहुत-सी पहेलियो को हल कर देती हैं, या कम से कम उन्हे ठीक रूप में सामने ले आती है।

अब तक मैंने उन परिस्थितियो के बारे में आपको कुछ नही बताया जिनमें हम उस परिकल्पित 'आद्य भाषा' की गहराई मे पहुच सकते हैं, या उस क्षेत्र मे पहुच सकते हैं जिसमे यह आद्य भाषा अधिकतर जैसी की तैसी मौजूद होती है। जब तक आपको यह पता न चले तब तक आप सारे विषय का वास्तविक महत्व नही समझ सकते। मेरा आशय स्नायु-रोगो के क्षेत्र से है। इसकी सामग्री स्नायु-रोगियो के लक्षणो और अभिव्यक्ति की दूसरी रीतियो मे मिलती है—इन स्नायु-रोगियो के लक्षणो की व्याख्या और इलाज के लिए ही असल में मनोविश्लेपण की रीति निकाली गई थी।

मेरा चौथा दृष्टिकोण हमे वापस वहीं ले जाता है जहा से हम चले थे बल्कि हमें उस मार्ग पर चलाता है जो हमने पहले ही देख लिया है। हमने कहा था कि यदि स्वप्न की काट-छाट न हो, तो भी स्वप्नो का अर्थ लगाना हमारे लिए कठिन होगा क्योंकि तब हमारे सामने यह सवाल होगा कि स्वप्नो की प्रतीकात्मक भाषा का जागृत जीवन की भाषा में अनुवाद किया जाए। इस प्रकार प्रतीकात्मकता स्वप्न-विपर्यास में दूसरा और स्वतन्त्र कारण है, जो सेन्सरशिप या काट-छाट के

जो कहता था कि एक 'आद्य भाषा' रही होगी जिसके अवशेष ये सब प्रतीक हैं।

तीसरी वात यह है कि आपको यह महसूस होगा कि ऊपर बताए गए अन्य क्षेत्रो में होने वाली प्रतीकात्मकता यौन विषयो तक ही सीमित नही है। पर स्वप्नो में इन प्रतीको का प्रयोग सिर्फ यौन वस्तुओ और सम्बन्धो को सूचित करने के लिए होता है। इसका कारण वताना भी कठिन है। क्या यह माना जाए कि पहले यौन या मैथुन सम्वन्धी अर्थ रखने वाले प्रतीक बाद में विभिन्न रूपो में प्रयुक्त हुए और शायद इसी कारण प्रतीकात्मक निरूपण का ह्रास हो गया और निरूपण की दूसरी रीतिया अपना ली गई ? सिर्फ स्वप्न-प्रतीकात्मकता पर विचार करके इन प्रश्नो का उत्तर देना स्पष्टत असम्भव है, हम इतना ही कर सकते हैं कि इस कल्पना को दृढता से माने रहे कि सच्चे प्रतीको और मैथुन में विशेप रूप से नजदीकी सम्वन्ध है।

इस सिलसिले में हमें हाल में ही एक महत्वपूर्ण सकेत एक भाषा तत्वज्ञ (अपस्ला के एच० स्पर्वर, जो मनोविश्लेषण से बिलकुल अलग कार्य करते हैं।) के इस विचार से मिला है कि भाषा की उत्पत्ति और परिवर्द्धन में मैथुन सम्वन्धी आवश्यकताओ का सवसे वडा प्रभाव पडा है। आपने लिखा है कि जो सवसे पहली ध्वनि मनुष्य के मुख से निकली, वह अपनी बात कहने का साधन और मैथुन के साथी को वुलाने का साधन थी और वाद में भाषण के अवयवो का प्रयोग आदिम काल के मनुष्य द्वारा किए जाने वाले विभिन्न कार्यो के साथ होने लगा। यह कार्य तालवद्ध रीति से दोहराए गए वचनो की ध्वनि के साथ किया जाता था और इसका असर यह होता था कि मैथुन सम्वन्वी दिलचस्पी कार्य में बदल जाती थी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आदिम काल के मनुष्य ने अपने कार्य को मैथुन सम्वन्धी कार्यो के समान और उनका स्थानापन्न मानकर सुखदायक वनाया। इसलिए सामाजिक कार्य में प्रयुक्त शव्द के दो अर्थ होते थे--एक तो मैथुन सम्वन्धी कार्य को सूचित करता था और दूसरा उस परिश्रम को सूचित करता था जिसके तुल्य इसे मान लिया गया। धीरे-धीरे उस शव्द का मैथुन सम्वन्धी अर्थ खत्म हो गया और उसका प्रयोग सिर्फ कार्य के लिए होने लगा। अनेक पीढियो बाद यही वात नए शव्द के वारे में हुई--वह भी पहले मैथुन सम्वन्वी अर्थ का वाचक वना और फिर किसी नए तरह के कार्य के लिए प्रयोग में आने लगा। इस प्रकार अनेक मूल शव्द वन गए जो सव मैथुन सम्वन्धी प्रसग से पैदा हुए थे पर बाद मे अपना मैथुन सम्वन्धी अर्थ खो वैठे। यदि उपर्युक्त कथन सही है तो स्वप्न-प्रतीको को समझने की एक सम्भावना हमें दिखाई देने लगती है। हमको समझना चाहिए कि स्वप्नो में, जिनमें उन आदिम अवस्थाओ का कुछ अश वाकी है इतने अधिक मैथुन सम्वन्धी प्रतीक क्यो होते हैं, और आम तौर से हथियार और औजार पुरुप के तथा जिन वस्तुओ और सामान को वनाया-सवारा जाता है, वे स्त्री के प्रतीक क्यो होते

है। तब प्रतीकात्मक सम्बन्ध इसी बात के अवशेष होगे कि पहले दोनो के लिए एक शब्द-प्रयोग होता था। जिन वस्तुओ का वाचक पहले जननेन्द्रिय वाचक शब्द था वे अब स्वप्न मे जननेन्द्रिय की प्रतीक बन सकती है।

इसके अतिरिक्त, स्वप्न-प्रतीकात्मकता से आपको यह समझने मे मदद मिल सकती है कि मनोविश्लेपण क्यो इतना आम दिलचस्पी का विषय बन जाता है, जितना मनोविज्ञान और मनश्चिकित्सा नही बन सकते। मनोविश्लेपण कार्य विज्ञान की और बहुत-सी शाखाओ के साथ अच्छी तरह गुथा हुआ है, और इन शाखाओ की जाच-पडताल करने से बहुत कीमती नतीजे निकल सकते है, जैसे पुराणविद्या, भाषा-तत्व और भाषा-विज्ञान, लोककथाए, लोकमनोविज्ञान और धर्मशास्त्र। आपको यह जानकर आश्चर्य नही होना चाहिए कि मनोविश्लेपण के आधार पर एक ऐसी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ है जिसका एकमात्र उद्देश्य इन सम्बन्धो को बढाना है। मेरा सकेत **ईमेगो** की ओर है जो सबसे पहले १९१२ में प्रकाशित हुई थी और जिसके सम्पादक हैन्स सैक्स और ओटो रैन्क थे। इन दूसरे विषयो के साथ सम्बन्ध रखते हुए मनोविश्लेपण ने इनसे जितना पाया है उससे अधिक इन्हे दिया है। यह सच है कि मनोविश्लेपण अपने ही परिणामो की पुष्टि इन दूसरे क्षेत्रो मे करता है, जो बडी विचित्र बात मालूम होती है, पर कुल मिलाकर मनोविश्लेपण द्वारा दी हुई तकनीकी विधियो और दृष्टिकोणो का प्रयोग ही दूसरे क्षेत्रो में सफल सिद्ध होता है। मनुष्य का मानसिक जीवन मनोविश्लेपण की जाच-पडताल के द्वारा ऐसी व्याख्याए पेश करता है जो मनुष्य जाति के जीवन की बहुत-सी पहेलियो को हल कर देती है, या कम से कम उन्हे ठीक रूप में सामने ले आती है।

अब तक मैंने उन परिस्थितियो के बारे में आपको कुछ नही बताया जिनमें हम उस परिकल्पित 'आद्य भाषा' की गहराई में पहुच सकते है, या उस क्षेत्र में पहुच सकते है जिसमें यह आद्य भाषा अधिकतर जैसी की तैसी मौजूद होती है। जब तक आपको यह पता न चले तब तक आप सारे विषय का वास्तविक महत्व नही समझ सकते। मेरा आशय स्नायु-रोगो के क्षेत्र से है। इसकी सामग्री स्नायु-रोगियो के लक्षणो और अभिव्यक्ति की दूसरी रीतियो में मिलती है—इन स्नायु-रोगियो के लक्षणो की व्याख्या और इलाज के लिए ही असल में मनोविश्लेपण की रीति निकाली गई थी।

मेरा चौथा दृष्टिकोण हमे वापस नही ले जाता है जहा से हम चले थे बल्कि हमें उस मार्ग पर चलाता है जो हमने पहले ही देख लिया है। हमने कहा था कि यदि स्वप्न की काट-छाट न हो, तो भी स्वप्नो का अर्थ लगाना हमारे लिए कठिन होगा क्योंकि तब हमारे सामने यह सवाल होगा कि स्वप्नो की प्रतीकात्मक भाषा का जागृत जीवन की भाषा में अनुवाद किया जाए। इस प्रकार प्रतीकात्मकता स्वप्न-विपर्यास मे दूसरा और स्वतन्त्र कारण है, जो सेन्सरशिप या काट-छाट के

साथ-साथ होता है, पर यह नतीजा तो सीधा ही है कि सेन्सरशिप को प्रतीकात्मकता का उपयोग करने में सहूलियत होती है, क्योंकि दोनों का एक ही प्रयोजन होता है कि स्वप्न को विचित्र और दुर्बोध बना दिया जाए।

स्वप्न के और आगे अध्ययन से हमें विपर्यास के किसी और कारण का पता चलेगा या नहीं यह अभी हम देखेंगे। पर स्वप्न-प्रतीकात्मकता के विषय को छोड़ने से पहले मैं इस अजीब तथ्य का उल्लेख एक बार और कर देना चाहता हूं कि इसका शिक्षित व्यक्तियों में बड़ा प्रबल विरोध हुआ है, यद्यपि पुराण-कथाओं, धर्म, कला और भाषा में असंदिग्ध रूप से प्रतीकात्मकता मौजूद है। क्या यहां भी यही सम्भव नहीं है कि मैथुन से इसका सम्बन्ध ही इसका कारण हो?

स्वप्न-तंत्र*

स्वप्न-सेन्सरशिप और प्रतीकात्मक निरूपण को पूरी तरह समझ लेने के बाद भी आप स्वप्न-विपर्यास का रहस्य पूरी तरह नही समझ सके। फिर भी अब आप अधिकतर स्वप्नो को समझ सकने की स्थिति में हो गए है। स्वप्नो को समझने के लिए आप दो परस्पर सहायक विधियो का प्रयोग करेंगे आप स्वप्न-द्रष्टा के साहचर्यो का पता लगाते-लगाते स्थानापन्न से उस असली विचार पर पहुचेगे जिसका वह सूचक है, और प्रतीको का अर्थ आप इस विषय की जानकारी से प्राप्त करेंगे। इस प्रक्रम मे पैदा होने वाले कुछ सदिग्ध प्रश्नो की चर्चा हम बाद में करेंगे।

अब हम फिर उसी विषय पर आते है जिसे हमने स्वप्न-अवयवो और उनके आधारभूत असली विचारो के सम्बन्धो का अध्ययन करते हुए अधूरे साधनो के कारण छोड दिया था। तब हमने चार मुख्य सम्बन्ध बताए थे—सम्पूर्ण की जगह एक अश का आ जाना, सकेत या अस्पष्ट निर्देश, प्रतीकात्मक सम्बन्ध, और सुघट्य[1] शब्द-निरूपण (प्रतिबिंब)। अब हम सारी **व्यक्त** स्वप्न-वस्तु की तुलना अपने निर्वचन से प्रस्तुत हुए **गुप्त** स्वप्न से करेंगे और इस प्रकार इस विषय पर जरा बडे पैमाने पर विचार करेंगे।

मुझे आशा है कि अब आपको इन दोनो वस्तुओ के पृथक् स्वरूपो के बारे मे कोई भ्रम न होगा। यदि आप उन दोनो में भेद कर सकते हो तो स्वप्न को समझने की दिशा में आप सम्भवत उन सब लोगो से आगे बढ गए है जिन्होने मेरी पुस्तक **इन्टरप्रिटेशन आफ ड्रीम्स** (स्वप्नो का निर्वचन) पढी है। मै आपको यह फिर याद दिला देना चाहता हू कि **जिस प्रक्रम से गुप्त स्वप्न को व्यक्त स्वप्न में बदला जाता है उसे स्वप्न-तन्त्र कहते है**; और इससे उलटे प्रक्रम को, जो व्यक्त स्वप्न से गुप्त विचार की ओर बढता है, निर्वचन या अर्थ लगाना कहते है। इसलिए निर्वचन का उद्देश्य स्वप्न-तन्त्र को खतम करना है। शैशवीय ढग के

---

* Dream-work १ Plastic

स्वप्नो में, जिनमें स्पष्ट इच्छा-पूर्तिया आसानी से पहचानी जाती हैं, फिर भी स्वप्न-तन्त्र का प्रक्रम कुछ दूर तक कार्य करता रहा है, क्योकि इच्छा एक यथार्थता में रूपान्तरित हुई है, और आम तौर से विचार भी दृष्टिगम्य प्रतिबिबो के रूप में परिवर्तित हुए हैं। यहा निर्वचन की कोई आवश्यकता नही। इन दोनो रूपान्तरो को पूर्व रूप में ले आना ही हमारा काम है। स्वप्न-तत्र के और कार्य, जो दूसरी तरह के स्वप्नो में दिखाई देते हैं, **स्वप्न-विपर्यास** कहलाते हैं और इनमें मूल मनोबिब या विचार हमारे निर्वचन-कार्य द्वारा ही सामने लाए जाते हैं।

मुझे बहुत-से स्वप्न-निर्वचनो की तुलना करने का मौका मिला है। इसलिए मैं आपको विस्तार से यह बता सकता हू कि स्वप्न-तन्त्र गुप्त स्वप्न-विचारो की सामग्री पर किस तरह असर डालता है, पर कृपा करके बहुत कुछ समझ में आ जाने की आशा मत करिए। वर्णन के इस अश को शाति से और ध्यान से सुनना चाहिए।

स्वप्न-तत्र का पहला काम है **सघनन**[1], इस शब्द से हम यह बात बताना चाहते है कि व्यक्त स्वप्न की वस्तु गुप्त विचारो की अपेक्षा कम सम्पन्न या भरी-पूरी होती है, यह मानो गुप्त विचारो का एक तरह का सक्षिप्त अनुवाद होती है। कभी-कभी सघनन नही भी होगा, पर आम तौर से यह होता है, और प्राय बहुत दूर तक होता है। यह उलटी दिशा में कभी नही चलता, अर्थात् ऐसा कभी नही होता कि व्यक्त स्वप्न गुप्त स्वप्न की अपेक्षा अधिक सम्पन्न वस्तु वाला या अधिक विस्तृत क्षेत्र वाला हो। सघनन निम्नलिखित रीतियो से होता है (१) कुछ गुप्त अवयव बिलकुल गायब होते हैं, (२) गुप्त स्वप्न की बहुत-सी ग्रन्थियो में से सिर्फ एक खण्ड व्यक्त वस्तु में आता है, (३) किसी सामान्य विशेषता वाले गुप्त अवयव व्यक्त स्वप्न में मिलकर एक हो जाते हैं।

यदि आप चाहें तो सघनन शब्द इस अन्तिम प्रक्रम के लिए सुरक्षित रख सकते है जिसके प्रभावो को विशेष आसानी से दिखाया जा सकता है। अपने स्वप्नो पर विचार करते हुए आप बडी आसानी से ऐसे उदाहरण याद कर सकेंगे, जिनमें विभिन्न व्यक्ति मिलकर एक व्यक्ति बन गए हो। ऐसी मिली-जुली आकृति शकल में **क** से मिलती है, पर कपडो में **ख** से मिलती है, पेशे से **ग** की याद दिलाती है और फिर भी आप सारे समय यह समझते हैं कि यह **घ** है। मिली-जुली तस्वीर चारो व्यक्तियो की किसी सामान्य विशेषता पर विशेष बल देती है, और यह भी हो सकता है कि मिली-जुली तस्वीर व्यक्तियो की तरह वस्तुओ या स्थानो से बनी हो, शर्त यही है कि अलग-अलग वस्तुओ या स्थानो में कोई ऐसा सामान्य गुण हो जिसपर गुप्त स्वप्न बल देता हो। यह ऐसी अवस्था है जिसमें मानो कोई नया और उड जाने वाला अवधारण बन गया हो जो उस सामान्य गुण के सूत्र में बन्धा

---

१ Condensation

हो । अलग-अलग भागो के एक दूसरे के ऊपर आ जाने से प्राय एक धुधला और अस्पष्ट चित्र बनता है, जैसे एक ही प्लेट पर कई फोटो ले लिए गए हो ।

ऐसी मिली-जुली आकृतियो का बनना स्वप्न-तत्र में बडे महत्व का है, क्योकि हम यह सिद्ध कर सकते है कि उनके बनने के लिए आवश्यक सामान्य गुण जान-बूझकर बनाए गए है, जबकि ऊपर से देखने पर वे गुण उनमें दिखाई नही देते, जैसे, किसी विचार के लिए कोई विशेष पदावली छाटकर । इस तरह के सघनन और मिले-जुले शब्दो के उदाहरण हम पहले देख चुके है । उनका बोलने की बहुत-सी गलतिया पैदा करने मे महत्वपूर्ण हिस्सा होता है । आपको उस नौजवान की बात याद होगी जो एक महिला को 'इन्सौर्ट' (बेग्लीटडाइजेन) करना चाहता था (बेलीडाइजेन = इनसल्ट = अपमान करना, बेग्लीटन = एसकोर्ट = हिफाजत से पहुचाना, मिला-जुला शब्द 'बेग्लीटडाइजेन') । इसके अलावा, अनेक मजाको में इस तरह की सघनन की विधि दिखाई देती है, परन्तु इसके बाद भी हम यह कह सकते है कि यह प्रक्रम बिलकुल अजीब और अप्रचलित-सा है। यह सच है कि बहुत-से कल्पना-जालो की सृष्टि मे हमें अपने स्वप्नो के मिले-जुले व्यक्तियो का निर्माण करने वाले अवयव मिल जाते है—ये घटक अवयव यथार्थत एक दूसरे से सम्बन्धित नही होते, बल्कि कल्पना-सृष्टि के द्वारा मिलकर एक पूर्ण चित्र बनाते है, जैसे सैंटौर, अर्थात् आधा मनुष्य की और आधा घोडे की आकृति वाला कल्पित राक्षस और प्राचीन पौराणिक कथाओ में आने वाले या बोकलिन की तस्वीरो में दिखाई देने वाले कल्पित पशु । असल में 'सृजनात्मक' कल्पना कोई नई चीज नही बना सकती, यह विभिन्न वस्तुओ के अवयव जोड सकती है, पर स्वप्न-तत्र की प्रक्रिया के बारे मे विशेष बात यह है कि इसकी सामग्री विचार होते है, जिनमें से कुछ आपत्ति योग्य और अप्रिय हो सकते है, पर फिर भी वे सही रूप में बनते और प्रकट होते है । स्वप्न-तत्र इन विचारो को दूसरे रूप में बदल देता है और यह बात विचित्र है और समझ में नही आती कि इस अनुवाद के प्रक्रम में—मानो उन्हे दूसरी लिपि या भाषा में परिवर्तित करने मे—मिलाकर जोड देने के साधन भी काम लाए जाते है । दूसरी अवस्थाओ में अनुवादक का निश्चित रूप से यह प्रक्रम होना चाहिए कि वह मूल मे दिखाए गए भेदो को माने और विशेष रूप से उन वस्तुओ में भेद स्पष्ट करे जो समरूप है, पर अभिन्न नही है, या एक जैसी है पर एक नही है, इसके विपरीत, स्वप्न-तत्र चुटकुले के ढग से ऐसा सदिग्ध अर्थ छाटकर, जिससे दोनो विभिन्न विचार ध्वनित हो सकते है, दोनो को सघनित करने की कोशिश करता है। हमें इस विशेषता को सीधे ही समझ लेने की आशा न करनी चाहिए, पर हमारी स्वप्न-तत्र की अवधारणा के लिए इसका बडा महत्व हो सकता है ।

यद्यपि सघनन स्वप्न को अस्पष्ट कर देता है, तो भी यह स्वप्न सेन्सरशिप का

परिणाम नही लगता। इसका कारण यान्त्रिक या मितव्ययिता सम्बन्धी प्रतीत होता है, तो भी इससे सेन्सरशिप की हितसिद्धि होती है।

कभी-कभी सघनन से बडा असाधारण काम हो जाता है। इसके द्वारा कभी-कभी दो सर्वथा भिन्न गुप्त विचार-शृखलाए मिलकर एक व्यक्त स्वप्न का रूप ग्रहण कर लेती है, जिससे हमें ऊपर से देखने पर स्वप्न का पर्याप्त निर्वचन मिल जाता है, और फिर भी, उसका जो दूसरा अर्थ हो सकता है उसे हम नजरन्दाज कर देते है।

इसके अलावा, व्यक्त और गुप्त स्वप्न के सम्बन्ध पर सघनन का एक प्रभाव यह होता है कि दोनो के अवयवो में कही भी सीधा सिलसिला नही रहता क्योकि कभी तो एक व्यक्त अवयव एक साथ कई गुप्त विचारो को निरूपित करता है और कभी एक गुप्त विचार कई व्यक्त अवयवो में मौजूद होता है। फिर, जब हम स्वप्नो का निर्वचन करने लगते हैं, तब देखते है कि आम तौर से एक व्यक्त अवयव के साहचर्य किसी नियमित क्रम से सामने नही आते, हमें प्राय सारे स्वप्न की निर्वचन होने तक प्रतीक्षा करनी पडती है।

इस प्रकार स्वप्न-तत्र स्वप्न-विचारो को अनुवादित या रूपान्तरित करने के लिए एक बडी अजीब रीति अपनाता है, यह प्रत्येक शब्द का दूसरे शब्द से या प्रत्येक चिह्न का दूसरे चिह्न से अनुवाद नही होता, यह किसी निश्चित नियम के अनुसार छाटने का प्रक्रम भी नहीं होता, उदाहरण के लिए, शब्दो के सिर्फ व्यजन आते हो और स्वर लुप्त हो जाते हो, न ऐसा ही होता है कि एक अवयव छाटकर उससे कई अन्य अवयवो को निरूपित कर दिया जाए, जिसे हम निरूपण का प्रक्रम कह सकते है। यह बिलकुल दूसरी और उलझनदार विधि से क्रिया करता है।

स्वप्न-तत्र का दूसरा काम है **विस्थापन**[1]। खुश किस्मती से यह कोई बिलकुल नई चीज नही है। हम जानते हैं कि यह पूरी तरह स्वप्न-सेन्सरशिप का कार्य है। विस्थापन दो रूपो में होता है प्रथम, किसी गुप्त अवयव के स्थान पर कोई और दूर की चीज, जैसे कोई अस्पष्ट निर्देश, **प्रतिस्थापित**[2] हो जाता है—उसका ही कोई भाग प्रतिस्थापित नही होता, और दूसरे, **बलाघात** किसी महत्वपूर्ण अवयव से हटकर किसी महत्वहीन अवयव पर पहुच जाता है, जिससे मानो स्वप्न का केन्द्र हट जाता है और इस तरह स्वप्न अपरिचित दीखने लगता है।

अस्पष्ट निर्देश से स्थानापन्नता, अर्थात् एक अवयव के स्थान पर दूसरे का आ जाना, जागते समय के विचारो में भी होता रहता है, पर दोनो में एक अन्तर है जागते समय के विचारो में यह आवश्यक है कि अस्पष्ट निर्देश आसानी से समझ में आने वाला हो और कि स्थानापन्न वस्तु का असली विचार की वस्तु से

---

१ Displacement २ Replaced.

साहचर्य हो। अस्पष्ट निर्देश का प्रयोग वाणी के चमत्कारो में भी बहुत किया जाता है, जिनमे वस्तु में साहचर्य की शर्त नही रहती और उसके स्थान पर अपरिचित बाहरी साहचर्य, जैसे ध्वनि की समानता, अर्थ की स्पष्टता, आदि आ जाते हैं, पर सुबोधता की शर्त रहती है। यदि हम मजाक में बिना मेहनत के यह न समझ सके कि जिस वस्तु का निर्देश किया जा रहा है वह क्या है, तो मजाक का सारा मजा ही किरकिरा हो जाएगा, पर स्वप्नो मे विस्थापन द्वारा निर्देश पर दोनो में से एक भी बन्धन नही होता। यह जिस अवयव का सूचक है, उससे बहुत अस्पष्ट रूप से और हल्का-सा जुडा रहता है, और इस कारण आसानी से समझ में नही आता, और जब सम्बन्ध-सूत्र ढूढा जाता है, तब निर्वचन से वह असर पडता है जो किसी असफल मजाक का या 'जबरदस्ती की' या खीचातानी से की गई व्याख्या का। स्वप्न-सेन्सरशिप का उद्देश्य उसी समय पूरा हो जाता है जब वह अस्पष्ट निर्देश से असली विचार का सम्बन्ध जोडने को असम्भव बनाने मे सफल हो जाए।

यदि हमारा उद्देश्य विचार को प्रकट करना है तो बलाघात का विस्थापन, अर्थात् स्थान-परिवर्तन, उसका उचित उपाय नही है, यद्यपि हम हसी पैदा करने वाला असर लाने के लिए जागृत जीवन में कभी-कभी इसे स्वीकार करते हैं। इससे कितनी गडबड पैदा होती है, यह मैं उदाहरण से स्पष्ट करूगा। किसी गाव मे एक बढई रहता था, जिसने हत्या का अपराध किया था। अदालत ने फैसला किया कि बढई सचमुच अपराधी है, परन्तु क्योकि वह गाव मे अकेला बढई था, और इसलिए उसके बिना काम नही चल सकता, जबकि वहा दर्जी तीन रहते थे, इसलिए उसकी जगह उन तीन में से एक को फासी पर लटका दिया गया।

स्वप्न-तत्र का तीसरा कार्य मनोवैज्ञानिक दृष्टि मे सबसे अधिक मनोरजक है। इसमे **विचार-दृष्टि गम्यप्रतिबिम्ब**[1] मे रूपान्तरित हो जाते हैं। यह बात अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि स्वप्न-विचारो की हर चीज इस तरह रूपान्तरित नही होती, बहुत-सी चीज अपने मूल रूप मे कायम रहती है और व्यक्त स्वप्न में भी स्वप्न-द्रष्टा के विचार या ज्ञान के रूप में दिखाई देती है, दूसरी बात यह है, कि विचारो का रूपान्तर सिर्फ इसी रूप में नही होता कि वे दृष्टिगम्य प्रतिबिम्बो का रूप ग्रहण कर लें, पर फिर भी स्वप्नो के निर्माण में यह अनिवार्य विशेषता है, और जैसा कि हम जानते हैं, स्वप्न-तन्त्र का यह भाग सिर्फ एक और अवस्था को छोडकर, सबसे कम बदलता है। इनके अतिरिक्त, अलग-अलग स्वप्न-अवयवो के लिए **सुघट्य शब्द-निरूपण** के प्रक्रम से हम पहले ही परिचित हैं।

स्पष्ट है कि यह कार्य आसान नही, इसकी कठिनाई का कुछ अन्दाजा लगाने के लिए यह कल्पना कीजिए कि आपको किसी समाचारपत्र के राजनीतिक अग्र-

---

१ Visual image.

लेख के स्थान पर कुछ चित्र बनाने है। अब आपको चित्रलिपि ग्रहण करनी होगी और वर्णमाला वाली लिपि छोडनी होगी। लेख में उल्लिखित व्यक्तियो और ठोस वस्तुओ का निरूपण चित्र के रूप में, आसानी से, और शायद अधिक अच्छे तरीके से, किया जा सकता है, पर अमूर्त शब्दों तथा सबधवाचक शब्दो जैसे विभक्तिया, सयोजक शब्द आदि को चित्रित करने में कठिनाई होगी। अमूर्त शब्दो को चित्रित करने में आप सब तरह की युक्तिया काम में लाएगे, उदाहरण के लिए लेख के मूल पाठ को आप ऐसे शब्दो में बदलने की कोशिश करेंगे जो शायद परिचित तो कम होगे पर अधिक मूर्त, और इसलिए आसानी से निरूपण योग्य होगे। इससे आपको इस तथ्य का ध्यान आएगा कि अधिकतर अमूर्त शब्द शुरू में मूर्त थे और उनका मूल अर्थ जाता रहा है, और इसलिए जहा कही सम्भव होगा, आप इन शब्दो के शुरू के मूर्त अर्थ को पकडेंगे। इस प्रकार आपको यह सोचकर प्रसन्नता होगी कि किसी वस्तु के 'धारण' (अर्थात् स्वामित्व) को आप उसके शब्दार्थ के अनुसार धारण करने के रूप में निरूपित कर सकते है। स्वप्न-तन्त्र भी ठीक इसी तरह चलता है। ऐसी परिस्थितियो में आप चित्रण की बहुत यथार्थता की आशा नही कर सकते, और न इस बात पर आपत्ति कर सकते हैं कि स्वप्न-तन्त्र में किसी ऐसे अवयव की जगह, जिसे चित्र रूप में लाना कठिन है, जैसे विवाह की प्रतिज्ञाओ को भग करने का मनोबिम्ब, किसी और तरह का भग या तोडना, जैसे बाह या टाग का तोडना, आ गया है। इस तरह आप वर्णलिपि को चित्रलिपि में परिवर्तन करने की कठि-नाई कुछ हद तक दूर कर सकते है। (इन पृष्ठो को शुद्ध करते हुए मेरी दृष्टि अखबार के एक अनुच्छेद पर पडी, जिससे उपर्युक्त बात की अचानक ही पुष्टि होती है। वह अनुच्छेद मैं यहा प्रस्तुत करता हू।)

"ईश्वरीय बदला

विवाह की प्रतिज्ञा तोडने पर बाह टूटी

रिजर्व फौज के एक सैनिक की पत्नी अन्ना एम० ने क्लीमेन्टाइन के० पर पातिव्रत्य भग करने का आरोप लगाया। उसने कहा कि क्लीमेन्टाइन के० का अपने पति के मोर्चे पर चले जाने के दिनो में कार्ल एम० से अवैध सम्बन्ध था, जबकि उसका पति उसे ७० क्राउन प्रतिमास भेज रहा था। इसके अलावा, उसको अन्ना के पति से भी बहुत-सा धन मिला था, जबकि अन्ना और उसके बच्चो को भूख और मुसीबत में दिन गुजारने पडते थे। अन्ना ने अपने आरोप में यह भी कहा कि मेरे पति के कुछ साथियो ने मुझे सूचना दी है कि मेरा पति और क्लीमेंटाइन इकट्ठे शराब घर में गए और वहा बहुत रात तक शराब पीते रहे। क्लीमेन्टाइन ने एक बार कई सैनिको के सामने मेरे पति से सचमुच पूछा था कि जल्दी ही अपनी 'बुढिया औरत' को छोडकर मेरे पास आ जाओगे या नही, और

जिस मकान मे क्लीमेन्टाइन रहती है उसके चौकीदार ने मेरे पति को क्लीमेन्टाइन के कमरे में बिलकुल कपडे उतारे हुए देखा है।

कल लियोपोर्डस्टैड में क्लीमेन्टाइन ने एक मैजिस्ट्रेट के सामने कहा कि मैं कार्ल एम० को बिलकुल नही जानती। हमारे गोपनीय सम्बन्ध का तो प्रश्न ही नही पैदा होता।

पर एक गवाह एलवर्टाइन ने कहा कि मैंने क्लीमेन्टाइन को अन्ना के पति को चूमते देखा है, मुझे देखकर क्लीमेन्टाइन घबरा गई थी। कार्ल ने, जिसे पहले गवाह के तौर पर बुलाया गया था और जिसने तब क्लीमेन्टाइन से अपना गोपनीय सम्बन्ध होने की बात से इन्कार किया था, कल मैजिस्ट्रेट को एक पत्र दिया। इसमें गवाह ने अपने पहले के इन्कार को वापस ले लिया था, और यह स्वीकार किया था कि पिछले जून तक उसका क्लीमेन्टाइन के साथ अवैध सम्बन्ध जारी था। 'पहले मैंने क्लीमेन्टाइन के साथ अपने सम्बन्ध से इस कारण इन्कार किया था क्योंकि वह, मामला अदालत में आने से पहले, मेरे पास आई और उसने घुटने टेककर मुझसे कहा कि मैं कुछ न कहू, और उसकी रक्षा करूं। आज', गवाह ने लिखा था, 'मै अदालत के सामने सारी बात सच-सच कह देने को मजबूर हो गया हू, क्योकि मेरी बाईं बाह टूट गई है, और इसे मै अपने अपराध का ईश्वर द्वारा दिया गया दड समझता हू।'

जज ने फैसला किया कि दण्डनीय अपराध हुए इतने दिन हो चुके हैं कि अब उसपर कार्यवाही नही हो सकती। इसपर आरोप लगाने वाली ने अपना आरोप वापस ले लिया और अभियुक्ता को बरी कर दिया गया।"

जब आपके सामने उन शब्दो के चित्र बनाने का प्रश्न आता है, जो विचार-सम्बन्धो को सूचित करते है, उदाहरण के लिए 'क्योकि', 'इसलिए', 'परन्तु' इत्यादि, तब आपके पास उस तरह के साधन नही होते जैसे ऊपर बताए गए हैं। और इस तरह जहा तक चित्रो के रूप में आपके अनुवाद का प्रश्न है, मूल के ये हिस्से निश्चित रूप से नष्ट हो जाएगे। इसी प्रकार स्वप्न-तन्त्र स्वप्न-विचारो की वस्तु को अपनी 'कच्ची सामग्री' में परिवर्तित कर लेती है, जिनमे वस्तुए और क्रियाए होती हैं। यदि किसी तरह प्रतिबिंबो को कुछ और बढाकर ऐसे सम्बन्धो को सूचित करने की सम्भावना हो जो अपने आप में चित्रित नही किए जा सकते तो भी आप सन्तोष कर सकते हैं। ठीक इसी तरह स्वप्न-तन्त्र अधिकतर स्वप्न-विचारो की अधिकाश वस्तु को व्यक्त स्वप्न की **आकृति**[1] की विशेषताओ द्वारा इसकी स्पष्टता या धुधलेपन द्वारा, इसके अनेक भागो में विभाजन द्वारा तथा ऐसे ही उपायो से प्रकट करने में सफल होता है। साधारणतया कोई स्वप्न उतने ही

१ Form

भागो में बाटा जाता है जितने उसके मुख्य प्रतिपाद्य विपय होते हैं या जितनी गुप्त स्वप्नो में विचारो की क्रमिक श्रेणिया होती हैं, प्राय. एक छोटा आरम्भिक स्वप्न बाद के विस्तृत मुख्य स्वप्न का भूमिकारूप होता है, पर कोई गौण स्वप्न-विचार व्यक्त स्वप्न के बीच में **दृश्य-परिवर्तन** आदि द्वारा निरूपित होता है। इस प्रकार स्वप्नो की आकृति अपने आप में महत्वहीन चीज नही है, और उसका भी अर्थ लगाने की आवश्यकता है। प्राय एक ही रात में आने वाले कई स्वप्नो का एक ही अर्थ होता है, और वे बढती हुई प्रबलता वाले किसी उद्दीपन को अधिकाधिक पूर्णता से कानू में करने के प्रयत्न का सकेत करते हैं। एक स्वप्न में भी कोई विशेष रूप से कठिन अवयव 'डबलिग' (दोहरेपन) अर्थात् एक से अधिक प्रतीको द्वारा निरूपित हो सकता है।

यदि हम स्वप्न-विचारो और उन्हें निरूपित करने वाले व्यक्त स्वप्नो की तुलना जारी रखें तो सब दिशाओ में हमें ऐसी वस्तुए दिखाई देती हैं जिनकी हमें कभी आशा नहीं हो सकती थी। उदाहरण के लिए, यह कि स्वप्न की अर्थहीन बेतुकी बातो का भी अर्थ होता है। असल में यहा आकर स्वप्नो के बारे में डाक्टरी विचार और मनोविश्लेषण सम्बन्धी विचार में विभेद बहुत स्पष्ट हो जाता है। डाक्टरी विचार के अनुसार, स्वप्न इसलिए बेतुका होता है क्योंकि स्वप्न देखते समय हमारी मानसिक क्रिया ने अपना कार्य करना छोड दिया है, दूसरी ओर, हमारे विचार के अनुसार, स्वप्न तब बेतुका बन जाता है जब उसे गुप्त विचारो में निहित आलोचना, अर्थात् यह राय कि 'यह बेतुका है' निरूपित करनी होती है। थिएटर जाने विपयक जो स्वप्न मैंने आपको बताया था, (डेढ फ्लोरिन में तीन टिकट), वह इसका एक अच्छा उदाहरण है। इसमें यह राय जाहिर की गई थी 'इतनी जल्दी विवाह करना **बेहूदगी थी**।'

इसी प्रकार जब हम स्वप्नो का अर्थ लगाते हैं, तब हमें स्वप्न-द्रष्टाओ द्वारा प्राय प्रकट किए जाने वाले इस तरह के सन्देहो और अनिश्चयों का, कि अमुक अवयव स्वप्न में सचमुच दिखाई दिया या नही, कि वह सचमुच वैसा ही था और कुछ और चीज नही थी, असली अर्थ पता चल जाता है। आमतौर से, गुप्त विचारो में इन सन्देहो और अनिश्चयो से सम्बन्धित कोई चीज नही होती और वे पूरी तरह सेन्सरशिप के कार्य करने से ही पैदा होते हैं, और उनकी तुलना लिखे हुए को रबड से मिटाने की अशत असफल कोशिश से की जाती है।

हमारी सबसे आश्चर्यजनक खोज यह है कि स्वप्न-तन्त्र गुप्त स्वप्न में **विरोधी** बातो से किस तरह निपटता है। हम पहले ही देख चुके हैं कि गुप्त वस्तु में जिन प्रश्नो पर एक ही मत होता है उनके स्थान पर व्यक्त स्वप्न में सघनन या सक्षेप हो जाता है। विरोधी विचारो का भी वही हाल होता है जो समान विचारो का, पर उन्हें **उसी** व्यक्त अवयव के द्वारा प्रकट करने का यत्न किया जाता है। व्यक्त

स्वप्न के जिस अवयव का कोई विरोधी रूप हो सकता है, वह या तो सिर्फ अपना, या अपने विरोधी का, और या इकट्ठे दोनो का प्रतीक हो सकता है, तात्पर्य से ही यह निश्चय करना होगा कि कौन-सा अनुवाद किया जाए। इसीलिए स्वप्नो में 'नही' का निरूपण नही होता, या स्पष्ट अर्थ वाली 'नही' नही होती।

स्वप्न-तंत्र की इस विचित्रता का एक मनोरंजक सादृश्य भाषा के परिवर्धन में प्राप्त होता है। बहुत-से भाषा-शास्त्रियो ने यह माना है कि सबसे पुरानी भाषाओ में विपरीतार्थक शब्द जैसे मजबूत-कमजोर, प्रकाश-अन्धकार, बडा-छोटा आदि, एक ही धातु से उत्पन्न शब्द से प्रकट किए जाते थे (आदिम शब्दो के परस्पर विरोधी अर्थ)। इस प्रकार प्राचीन मिस्री भाषा में 'केन' शब्द शुरू मे मज़बूत और कमज़ोर दोनो के लिए था। बोलचाल में, ऐसे उभयक[1] (अर्थात् उभयार्थक) शब्दो के अर्थ मे गलतफहमी से बचने के लिए उनका अर्थभेद काकु या लहज़े, और उसके साथ होने वाली चेष्टाओ से स्पष्ट किया जाता था। लिखने मे ऐसे शब्दो के साथ एक और 'निश्चायक' जोड दिया जाता था, जो बोलचाल में प्रयोग के लिए नही होता था। इस प्रकार, 'केन' शब्द जब मज़बूत के अर्थ में लिखा जाता था तब इसके बाद एक सीधे खडे हुए छोटे आदमी का चित्र बना दिया जाता था, और जब 'केन' शब्द का प्रयोग कमज़ोर के अर्थ में होता था तब इसके बाद एक कमज़ोर ढीले-ढाले आदमी की तस्वीर बना दी जाती थी। एक ही आदिम शब्द के दो विरोधी अर्थो का बहुत समय बाद, मूल में थोडा हेर-फेर करके, दो भिन्न रूपो में अकन शुरू हुआ। इस प्रकार 'मज़बूत-कमज़ोर' वाचक 'केन' शब्द से दो शब्द निकले। केन=मज़बूत और कान=कमज़ोर। इस तरह दो विरोधी अर्थ रखने वाले शब्दो के बहुत-से अवशेष प्राचीनतम भाषाओ में ही नही मिलते, जो अब अपने परिवर्धन की अंतिम मंज़िलो मे है, बल्कि यही बात नई भाषाओ में भी है, जो आज भी जीवित है। इसके कुछ दृष्टान्त मैं सी० एबल की पुस्तक (१८८४) से उद्धृत करता हूं।

लैटिन में ऐसे उभयक शब्द ये है

एलटस=ऊचा या गहरा, **सेकर**=पवित्र या अभिशप्त।

मूलधातु के रूप-भेदो के उदाहरण ये है

क्लेमेअर=चिल्लाना, **क्लैम**=शाति से, चुपचाप, गुप्तरूप से।

सिकस=सूखा, **सकस**=रस, और जर्मन मे **स्टिम**=वाणी **स्टम**=गूगा।

सम्बन्धित भाषाओ की तुलना से ऐसे बहुत-से उदाहरण मिल जाते है

अग्रेजी **लौक**=बन्द करना, जर्मन **लौक**=छिद्र, लक=खाली स्थान।

---

१. Ambivalent

अंग्रेजी **क्लीव**[1], जर्मन **क्लेबेन**=चिपकना।

अंग्रेजी के **'विदआउट'** शब्द में पहले 'साथ' और 'विना' ये दोनो अर्थ थे, पर आज यह 'विना' के अर्थ में ही प्रयोग होता है, पर यह वात स्पष्ट है कि **'विद'** में जोडने के अर्थ के अलावा वंचित करने का अर्थ भी है, जैसे **विदड्रा, विदहोल्ड** (देखिए जर्मन **वीड्र**)।

स्वप्न-तंत्र की एक और विशेषता भी भाषा के परिवर्धन में दिखाई देती है। प्राचीन मिस्री भाषा में, और कुछ वाद की भाषाओं में भी, ध्वनियो का क्रम वदलने से उसी मूल विचार के लिए भिन्न-भिन्न शब्द वन जाते थे। अंग्रेजी और जर्मन शब्दो के इस तरह के कुछ सादृश्य ये हैं (जर्मन शब्द काले टाइप में है)

टोप (वर्तन)—पौट, वोट—**टव**, हरी—**रूह** (विश्राम)—रेस्ट, **वालकन** (शहतीर)—वीम, **क्लोबेन** (डंडा)—क्लब, वेट—**टोवेन** (प्रतीक्षा करना)।

लैटिन और जर्मन के सादृश्य

कैपेयर—पैकेन (पकडना), **रेन—निएर** (गुर्दा)।

यहा अकेले शब्दो में ध्वनियो का जैसा स्थान-परिवर्तन हुआ है, वैसा स्वप्न-तंत्र द्वारा कई तरह से किया जाता है—अर्थ का उलटा हो जाना, अर्थात् विरोधी अर्थ का आ जाना, हम पहले देख चुके हैं, इसके अलावा, हम स्वप्नो में देखते है कि स्थितिया उल्टी हो जाती है, या दो व्यक्तियो के सम्वन्ध उलट जाते हैं, मानो वह दृश्य किसी उलटी दुनिया में हो रहा है। स्वप्नो में प्राय खरगोश शिकारी का पीछा करता है। कभी-कभी घटनाओं का क्रम उलट जाता है, और इस तरह स्वप्नो में कार्य पहले और कारण पीछे हो जाता है, जिससे हमें किसी घटिया दर्जे के नाटक की वात याद आ जाती है, जिसमें नायक पहले गिर जाता है और उसे मारने वाली गोली इसके वाद में चलाई जाती है। या ऐसे स्वप्न होते है जिनमें अवयवो का सारा विन्यास या सिलसिला उल्टा हो जाता है। ये तव समझ में आ सकते है जव अंतिम अवयव को पहले और पहले अवयव को अंत में रखा जाए। आपको याद होगा कि स्वप्न-प्रतीकात्मकता का अध्ययन करते हुए भी हमने यही वात देखी थी उसमें पानी में कूदने या गिरने का, या पानी में से निकलने का एक ही अर्थ है—पैदा होना या पैदा करना, और सीढियो मे चढने या उतरने का एक ही अर्थ है। इससे हमें यह पता चलता है कि स्वप्न-विचारो को निरूपित करने में इतनी आजादी होने से स्वप्न-विपर्यास को कितना लाभ हो जाता है।

स्वप्न-तंत्र की इन विशेषताओं को **पुराने ढंग** की विशेषताए कहा जा सकता

---

[1] अंग्रेजी में क्लीव के दोनों अर्थ अव भी मौजूद हैं. To Cleave (=अलग करना) और To Cleave to (=चिपकना)।

—अंग्रेजी अनुवादक

है। इनमें भाषाओ या लिपियो की अभिव्यक्ति की आदिम रीतिया बनी हुई है और उनसे वही कठिनाइया सामने आती है, जिन पर हम बाद मे इन विषयो की आलोचना करते हुए विचार करेगे ।

अब इस विषय के कुछ और पहलुओ पर विचार करना है। यह स्पष्ट हो चुका है कि स्वप्न-तंत्र का कार्य गुप्त विचारो के शब्दो वाले रूप को अवबोध्य रूपो[1] और अधिकतर दृष्टिगम्य प्रतिबिबो के रूप में बदलना है। हमारे विचार ऐसे अवबोध्य या इन्द्रिय-गोचर रूपो मे ही पैदा हुए थे। उनकी सबसे पुरानी सामग्री और उनके परिवर्धन की सबसे पहली अवस्था इन इन्द्रिय सवेदनो[2] की, या अधिक यथार्थ रूप में कहे तो इनके स्मृति-चित्रो की ही थी। बाद में इन चित्रो मे शब्द जोडे गए और वे एक दूसरे से इस तरह बाध दिए गए जिससे विचार बन जाए। इस तरह स्वप्न-तंत्र हमारे विचारो पर प्रतिगामी[3] अर्थात् उल्टी ओर चलने वाला प्रक्रम करती है, और उसी रास्ते से लौटती है जिससे उनका परिवर्धन हुआ था, इस प्रतिगमन के मार्ग में वे सब नई बातें, जो स्मृति-चित्रो का विचारो में परिवर्धन होने के समय आई थी, आवश्यक रूप से दूर हो जाती है।

इस प्रकार, स्वप्न-तंत्र से हमारा यह अभिप्राय है। हमने इसके प्रक्रमो के बारे मे जो कुछ जाना है, उसके अलावा, व्यक्त स्वप्न में हमारी दिलचस्पी अवश्य बहुत कम हो जाएगी। पर फिर भी व्यक्त स्वप्न के बारे मे मै दो-तीन बातें कहूगा, क्योकि आखिरकार स्वप्न के इसी हिस्से से तो हमारा सीधा परिचय होता है।

यह स्वाभाविक है कि व्यक्त स्वप्न का महत्व हमारी नजरो में कुछ कम हो जाए। वह सावधानी से बनाया हुआ है, या कई असम्बन्धित चित्रो का एक क्रम-मात्र है, इस विषय में हमारी बहुत कुछ उपेक्षा हो जाएगी। किसी स्वप्न का बाहरी रूप ऊपर से कितना ही सार्थक दीखने पर भी हम जानते है कि यह रूप स्वप्न-विपर्यास के प्रक्रम द्वारा ही बना है, और इसका स्वप्न की अन्तर्वस्तु से कुछ भी सम्बन्ध नही है। पर कभी-कभी स्वप्न से इस ऊपरी रूप का भी अर्थ होता है, और वह बिना विपर्यास के, या मामूली विपर्यास करके गुप्त विचारो के एक महत्वपूर्ण अश को पेश करता है, पर हम इस नतीजे पर तब तक नही पहुच सकते जब तक हमने स्वप्न का अर्थ न लगा लिया हो, और इस तरह विपर्यास की मात्रा के बारे में हम किसी विचार पर न पहुच गए हो। इसी तरह का सन्देह वहा होता है जहा दो अवयवो मे नजदीकी सम्बन्ध मालूम होता है, यह सम्बन्ध इस बात का मूल्य-वान् सकेत भी हो सकता है कि गुप्त स्वप्न के वे अवयव इसी प्रकार जुडे हुए है, पर कभी-कभी हमे यह निश्चित रूप से पता चल सकता है कि विचार में जो चीज जुडी हुई है, वह स्वप्न में बहुत अलग-अलग हो गई है।

---

१ Perceptual forms २ Sense-impressions ३ Regressive

साधारणतया हमें व्यक्त स्वप्न के एक हिस्से की, दूसरे हिस्से के द्वारा, यह मानकर व्याख्या करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए कि जैसे स्वप्न एक सुसम्बद्ध अवधारण और वस्तुस्थिति-रूप-निरूपण है। अधिकतर अवस्थाओं में इसकी तुलना किसी ब्रेकिया पत्थर के टुकडे से की जा सकती है, जिसमें विभिन्न किस्मों के पत्थरों के टुकडे सीमेंट से जुडे रहते हैं, और उसपर दिखाई देनेवाली धारियां उन टुकडों की नहीं होतीं जिनसे यह बना है। सच तो यह है कि स्वप्न-तंत्र में एक प्रक्रिया ऐसी होती है जिसे परवर्ती विशदन[1] कहते हैं, इसका उद्देश्य स्वप्न-तंत्र के तात्कालिक परिणामों को मिलाकर एक और काफी सुसम्बद्ध समष्टि बना देना है। इस प्रक्रम में सामग्री प्रायः इस तरह सजाई जाती है जिससे वह समझ में आने के बिलकुल अयोग्य हो जाती है, और इसके लिए बीच में जितनी बातें डालने की जरूरत हो, उतनी डाल दी जाती हैं।

दूसरी ओर, हमें स्वप्न-तंत्र के महत्त्व को बहुत अधिक बढाकर न समझना चाहिए, या इसमें वे बातें नहीं मान लेनी चाहिए जो इसमें नहीं हैं। इसका कार्य उतना ही है जितना यहां बताया गया है। सघनन, विस्थापन, सुघट्य निरूपण और सारे स्वप्न का परवर्ती विशदन, इतनी ही बातें यह कर सकता है। स्वप्नों में निर्णय, आलोचना, आश्चर्य या निगमनात्मक[2] तर्क दिखाई देते हैं। वे स्वप्न-तंत्र से नहीं पैदा होते, और ऐसा बहुत कम होता है कि वे स्वप्न के बारे में बाद के चिन्तन को प्रकट करते हों। वे अधिकतर गुप्त विचारों के खंड होते हैं, जो थोडा-बहुत परिवर्तित रूप में और प्रसंग के अनुकूल रूप में व्यक्त स्वप्न में घुस जाते हैं। दूसरे, स्वप्न-तंत्र स्वप्नों में वार्तालाप नहीं पैदा कर सकता। थोडे-से अपवादरूप उदाहरणों को छोडकर सर्वत्र वह स्वप्न-द्रष्टा द्वारा पिछले दिन सुनी गई या कही गई बातों का अनुकरण होता है और उन बातों से बना हुआ होता है—ये बातें गुप्त विचारों में स्वप्न-द्रष्टा के स्वप्न की सामग्री या उसकी उत्तेजक वस्तु बनकर घुस जाती हैं। गणित सम्बन्धी गणनाएं भी स्वप्न-तंत्र के क्षेत्र में नहीं आतीं। व्यक्त स्वप्न में इस तरह की जो चीज दिखाई देती है, वह साधारणतया संख्याओं का मेलमात्र होती है, वह गणना-सी प्रतीत होती है, परन्तु बिलकुल बेहूदी गणना होती है, और गुप्त विचारों में उपस्थित किसी गणना की नकलमात्र होती है। इन परिस्थितियों में यह आश्चर्य की बात नहीं है कि हमें स्वप्न-तंत्र में जो दिलचस्पी अनुभव हुई थी, वह शीघ्र ही गुप्त विचारों की ओर मुड जाती है जो कि व्यक्त स्वप्न द्वारा थोडे या बहुत विपर्यस्त रूप में प्रकट होते हैं। परन्तु इस विषय पर सिद्धान्त रूप से विचार करते हुए यह उचित न होगा कि हमारी दिलचस्पी ऐसी मार्ग भ्रष्ट हो जाए कि हम सारे स्वप्न के स्थान पर पूरी तरह से गुप्त विचारों

१ Secondary elaboration २ Deductive

को ही स्थापित कर दें, और स्वप्न के बारे मे कोई ऐसा विचार प्रकट करने लगें जो गुप्त विचारो के बारे में ही सही है। यह वडी विचित्र बात है कि मनोविश्लेपण के परिणामो का ऐसा गलत प्रयोग किया गया है कि इन दोनो में भ्रम होने लगा। स्वप्न शव्द का प्रयोग **स्वप्न-तंत्र के परिणामो**, अर्थात् उस **रूप** के लिए ही हो सकता है जिसमे स्वप्न-तत्र ने गुप्त विचारो को परिवर्तित किया है।

यह कार्य एक अद्भुत प्रक्रम है। मानसिक जीवन में ऐसी कोई चीज अब तक ज्ञात नही थी। इस तरह सघनन, विस्थापन और मनोविंबो के रूप मे विचारो का प्रतिगामी अनुवाद एक नई चीज है और इसका स्वीकार कर लिया जाना ही मनो-विश्लेपण के क्षेत्र में किए गए हमारे प्रयत्नो का प्रचुर पारितोपिक है। स्वप्न-तत्र के साथ जो सादृश्य दिखाए गए है, उनसे आप यह भी देखेंगे कि मनोविश्लेपण सम्वन्धी तथा दूसरे प्रकार की गवेपणा मे, विशेप रूप से भापा और विचार-परि-वर्धन के क्षेत्रो में क्या सम्वन्ध है। इस तरह प्राप्त हुए ज्ञान का और भी अधिक महत्व आपको तव पता चलेगा जव आपको यह मालूम होगा कि स्वप्न-तत्र की प्रक्रिया की तरह ही स्नायु-रोगो के लक्षणो का निर्माण होता है।

मै यह भी जानता हू कि इन प्रयत्नो से मनोविज्ञान को जो नया लाभ हुआ है, उसका पूरी तरह अर्थ समझना अभी हमारे लिए सम्भव नही है। हम उन नए प्रमाणो का सकेतमात्र करेंगे जो अचेतन मानसिक क्रियाओ के अस्तित्व के वारे में—असल में गुप्त स्वप्न-विचारो का यही स्वरूप है—उससे प्राप्त हुए है और यह निर्देश करेंगे कि स्वप्न-निर्वचन से मन के अचेतन जीवन के ज्ञान के लिए कितना वडा दरवाजा—इतना वडा कि हमने कभी इसकी कल्पना भी नही की थी—खुल जाने की आशा है।

मै समझता हू कि अव आपके सामने तरह-तरह के छोटे स्वप्नो के उदाहरण रखने का समय आ गया है, जिनसे ऊपर वताई गई वातो का स्पष्टीकरण हो सके।

कि उसका चाचा स्वप्न का कार्य कभी सचमुच करेगा, इसलिए शर्तसूचक 'यदि' शब्द लगा देने से इसका अर्थ सूझने लगेगा "यदि मेरा चाचा, जो इतना धार्मिक आदमी है, शनिवार को सिगरेट पीने लगे तो मुझे भी मेरी माता लाड-प्यार कर सकती है।" स्पष्ट है कि इसका अर्थ यह हुआ कि माता द्वारा लाड किए जाने का उतना ही सख्त निषेध था जितना धर्मात्मा यहूदी के लिए पवित्र दिन पर सिगरेट पीने का। आपको मेरा वह कथन याद होगा कि स्वप्न में स्वप्न-विचारों के सब आपसी सम्बन्ध लोप हो जाते हैं, विचार टूटकर मूल वस्तु के रूप में आ जाते हैं, और निर्वचन करते हुए हमारा कार्य यह है कि जो सम्बन्ध लुप्त हो गए हैं, उन्हें फिर से जोड़ें।

२ स्वप्नों के विषय में मैंने जो कुछ लिखा है उसके कारण मैं इस विषय में आम जनता का सलाहकार-सा हो गया हूं और बहुत वर्षों से मेरे पास बड़े दूर-दूर के स्थानों से पत्र आते हैं, जिनमें स्वप्न लिखे रहते हैं, या मेरी राय पूछी होती है। स्वभावतः मैं उन लोगों का आभारी हूं जिन्होंने मुझे अपने स्वप्नों के साथ इतनी काफी सामग्री भी दी कि उनका निर्वचन हो सके या जिन्होंने स्वयं निर्वचन पेश किए हैं। म्युनिख के एक मेडिकल विद्यार्थी का १९१० का निम्नलिखित स्वप्न इसी तरह का है, जिसे मैं आपको सुना रहा हूं, इसलिए कि आपकी यह समझ में आ जाए कि साधारणतया तब तक स्वप्न को समझना कितना कठिन है जब तक स्वप्न-द्रष्टा स्वयं इसके बारे में जो कुछ बता सकता है, वह न बता दे। कारण कि मुझे शक है कि अपने मन में आप सोच रहे हैं कि प्रतीकों का अनुवाद कर देना निर्वचन का आदर्श तरीका है और मुक्त साहचर्य की विधि आप छोड़ देना पसन्द करेंगे, इसलिए ऐसी घातक गलती को मैं आपके मन से निकाल देना चाहता हूं।

१३ जुलाई, १९१०। सवेरे के समय मुझे यह स्वप्न आया . मैं टौबिनजेन की एक गली में साइकिल चलाता जा रहा था कि एक भूरा कुत्ता मेरे पीछे दौड़ता हुआ आया और उसने मेरी एक एड़ी पकड़ ली। मैं कुछ दूर और चलकर साइकिल से उतर गया और एक सीढ़ी पर बैठ कर कुत्ते को भगाने लगा, क्योंकि उसने अपने दांत मेरी एड़ी में अच्छी तरह गड़ा दिए थे। (कुत्ते के मुझे काटने से और इस सारे दृश्य से मुझे कुछ बुरा नहीं मालूम हुआ।) दो अधिक उम्र की महिलाएं सामने बैठी हंसती हुई मेरी ओर देख रही थीं। इसके बाद मैं जाग उठा, और जैसा कि पहले बहुत बार हुआ है, जाग जाने पर भी सारा स्वप्न मुझे स्पष्ट याद था।

इस उदाहरण में प्रतीकात्मकता से हमें कोई लाभ नहीं हो सकता, और स्वप्न-द्रष्टा हमें स्वयं आगे बताता है। "हाल में ही सड़क पर एक लड़की को देखने मात्र से मेरा उससे प्रेम हो गया था, पर मेरे पास उससे परिचय करने का कोई उपाय नहीं था। मैं उसके कुत्ते को माध्यम बनाकर उससे आसानी से परिचय प्राप्त कर सकता था, क्योंकि मैं स्वयं कुत्तों का बड़ा प्रेमी हूं और यह देखकर ही उसकी ओर आकृष्ट

हुआ था कि वह भी कुत्तो से प्रेम करती है।" आगे वह कहता है· "मैंने कई बार लड़ते हुए कुत्तो को बडी चतुराई से अलग किया है, जिससे देखने वाले चकित हो जाते थे।" अब हमें पता चलता है कि जो लडकी उसकी नजर में चढी है, वह सदा इसी कुत्ते के साथ घूमती दिखाई देती थी, पर व्यक्त स्वप्न में वह नही है, सिर्फ उसके साहचर्य में रहने वाला कुत्ता है। शायद वे बुजुर्ग महिलाएं, जो उसकी ओर देखकर हस रही थी, उस लडकी को निरूपित करती हैं, पर वह और जो कुछ बताता है, उससे वह बात स्पष्ट नहीं होती। वह स्वप्न में साइकिल चला रहा था—यह बात उस स्थिति को ही सूचित करती है, जो उसे याद थी, क्योंकि वह कुत्ते के साथ उस लडकी से जब मिला, तब वह साइकिल ही चला रहा था।

३. जब किसी आदमी का कोई प्रिय व्यक्ति मर जाता है, तब काफी दिनो बाद उसे एक विशेष तरह का स्वप्न आता है, जिसमें उसके इस ज्ञान का कि वह व्यक्ति मर चुका है, और उसकी उसे पुन जीवित देखने की इच्छा का बडा अजीब मिश्रण हो जाता है। कभी-कभी मृत व्यक्ति स्वप्न में मृत और साथ ही जीवित दिखाई देता है—जीवित इसलिए क्योकि वह यह नही जानता कि वह मर चुका है; मानो वह तब ही सचमुच मरेगा जब वह इस बात को जान लेगा। कभी-कभी वह आधा मरा और आधा जिन्दा होता है, और इन दोनो दशाओ के सूचक चिह्न अलग-अलग दिखाई देते हैं। आप इन स्वप्नो को निरे अर्थहीन नही कह सकते, क्योकि परियो की कहानियो की तरह, जिनमें मरने के बाद फिर जिन्दा हो जाना बिलकुल आम बात है, स्वप्नो में भी यह अग्राह्य नही हो सकता। जहा तक मैं ऐसे स्वप्नो का विश्लेषण कर सका हू, मुझे यह प्रतीत हुआ कि उनकी तर्कसगत व्याख्या की जा सकती है, कि मृत व्यक्ति को वापस बुलाने की पवित्र इच्छा बडे अजीबो-गरीब रूपो में अपने आप को प्रकट करती है। मैं आपके सामने इस तरह का एक स्वप्न पेश करूगा जो निश्चित ही बडा अजीब और बेतुका लगता है और जिसके विश्लेषण से हमारे सिद्धान्त-विवेचन में पहले आई हुई बहुत-सी बातें स्पष्ट हो जाएगी। स्वप्न-द्रष्टा का पिता कुछ वर्ष पहले गुजर गया था :

मेरे पिता की मृत्यु हो गई थी, पर उसे जमीन मे गाड़ दिया गया था और वह बीमार दिखाई देता था। वह जीवित रहा और मैंने भरसक कोशिश की कि वह यह बात न देख सके। इसके बाद स्वप्न में और बातें आ जाती है, जिनका कोई सीधा सम्बन्ध पहली बातो से नहीं मालूम पड़ता।

यह तथ्य, कि पिता मर गया था, हम जानते हैं, पर असल में उसे गाड़ा नही गया था। असल में, आगे होने वाली बातो से इस प्रश्न का कुछ भी सम्बन्ध नही है कि असली तथ्य क्या था। पर स्वप्न देखने वाले ने आगे कहा कि अपने पिता के अन्तिम संस्कार से लौटने के बाद उसका एक दात दर्द करने लगा। वह यहूदी धर्म-वचन, 'यदि तेरा दांत तुझे तंग करे तो उसे निकाल दें' के अनुसार चलना चाहता

कि उसका चाचा स्वप्न का कार्य कभी सचमुच करेगा, इसलिए शब्द लगा देने से इसका अर्थ सूझने लगेगा "यदि मेरा चाचा, ज आदमी है, शनिवार को सिगरेट पीने लगे तो मुझे भी मेरी माता सकती है।" स्पष्ट है कि इसका अर्थ यह हुआ कि माता द्वारा ला उतना ही सख्त निषेध था जितना धर्मात्मा यहूदी के लिए पवित्र पीने का। आपको मेरा वह कथन याद होगा कि स्वप्न में स्वप्न-आपसी सम्बन्ध लोप हो जाते हैं, विचार टूटकर मूल वस्तु के रूप और निर्वचन करते हुए हमारा कार्य यह है कि जो सम्बन्ध लुप्त फिर से जोड़ें।

२ स्वप्नो के विषय में मैंने जो कुछ लिखा है उसके कारण आम जनता का सलाहकार-सा हो गया हू और बहुत वर्षों से मेरे के स्थानो से पत्र आते हैं, जिनमें स्वप्न लिखे रहते हैं, या मेरी राय स्वभावत मैं उन लोगो का आभारी हू जिन्होने मुझे अपने स्वप्नो काफी सामग्री भी दी कि उनका निर्वचन हो सके या जिन्होने स्व किए हैं। म्युनिख के एक मेडिकल विद्यार्थी का १९१० का निम्नलि तरह का है, जिसे मैं आपको सुना रहा हू, इसलिए कि आपकी य जाए कि साधारणतया तब तक स्वप्न को समझना कितना कठिन है ष्टा स्वय इसके बारे में जो कुछ बता सकता है, वह न बता दे। शक है कि अपने मन में आप सोच रहे हैं कि प्रतीको का अनुवाद च न का आदर्श तरीका है और मुक्त साहचर्य की विधि आप ह करें गे, इसलिए ऐसी घातक गलती को मैं आपके मन से निकाल दे

१३ जुलाई, १९१०। सवेरे के समय मुझे यह स्वप्न आया . एक गली में साइकिल चलाता जा रहा था कि एक भूरा कुत्ता मेरे प आया और उसने मेरी एक एडी पकड ली। मैं कुछ दूर और चल उतर गया और एक सीढ़ी पर बैठ कर कुत्ते को भगाने लगा, क्य दात मेरी एडी में अच्छी तरह गडा दिए थे। (कुत्ते के मुझे काटने दृश्य से मुझे कुछ बुरा नहीं मालूम हुआ।) दो अधिक उम्र की बैठी हसती हुई मेरी ओर देख रही थीं। इसके बाद मैं जाग उठा, पहले बहुत बार हुआ है, जाग जाने पर भी सारा स्वप्न मुझे स्प

इस उदाहरण में प्रतीकात्मकता से हमें कोई लाभ नहीं हो सक द्रष्टा हमें स्वय आगे बताता है। "हाल में ही सडक पर एक लडकी मेरा उससे प्रेम हो गया था, पर मेरे पास उससे परिचय करने का था। मैं उसके कुत्ते को माध्यम बनाकर उससे आसानी से परिचय था, क्योंकि मैं स्वय कुत्तों का बडा प्रेमी हू और यह देखकर ही उस

के कारण कोई विरुद्ध बात नही आने देनी चाहिए । क्या इन दोनो स्थितियो में तब अधिक अच्छा मेल न हो जाता यदि उसने अपने रोगी पिता के प्रति भी धीरे-धीरे सचमुच वे ही भावनाए अपनाई होती जो उसने अपने रोगी दात के प्रति अपनाई थी, अर्थात् यदि उसने मृत्यु से यह चाहा होता कि वह उसके पिता के अनावश्यक, कष्टकारक और महगे जीवन का जल्दी खात्मा कर दे ?

मुझे ज़रा भी सन्देह नही कि असल मे लम्बी बीमारी में अपने पिता के प्रति उसका यही रुख रहा था और दिखावटी तौर से उसका अपनी पितृभक्ति पर जोर देना इस तरह की स्मृतियो को अपने मन से दूर रखने के उद्देश्य से था। इस तरह की अवस्थाओ मे पिता की मृत्यु की इच्छा पैदा हो जाना, और उसे कोई ऐसा करुण उद्गार प्रकट करके, जैसे 'इससे वह कष्ट से मुक्त हो जाएगा' छिपाना कोई असामान्य बात नही है । पर मैं विशेष रूप से आपको यह ध्यान दिलाना चाहता हू कि यहा गुप्त विचारो मे ही एक बाधा दूर हो गई है। हम निश्चित रूप से मान सकते है कि विचारो का पहला भाग सिर्फ अस्थायी रूप से अचेतन था, अर्थात् स्वप्न-तत्र के वास्तविक प्रक्रम के समय वह अचेतन था। दूसरी ओर, पिता के प्रति भावनाएं सम्भाव्यत स्थायी रूप से, और हो सकता है कि बचपन से ही, विरोधी थी, और पिता की बीमारी के दिनो में मानो डरते-डरते और छिपे रूप मे ये चेतना में घुस आई थी। यह बात अन्य गुप्त विचारो के बारे मे, जो असदिग्ध रूप से स्वप्न की वस्तु के सहायक हुए है, हम और भी अधिक निश्चय के साथ कह सकते है। यह सच है कि इसमे पिता के प्रति विरोधी भावनाओ के कोई संकेत नही है, पर जब हम बच्चे के जीवन में इन विरोधी भावो के उद्गम की खोज करते है, तब हमें यह याद आता है कि पिता का भय इस कारण उत्पन्न होता है कि जीवन के आरम्भिक वर्षो मे वह ही लडके की यौन चेष्टाओ का विरोध करता है, जैसा कि उसे पुत्र में जवानी आने के बाद सामाजिक दृष्टि से प्राय मजबूरन करना पडता है। हमारे स्वप्न-द्रष्टा का अपने पिता से यह सम्बन्ध था। उसके पितृप्रेम मे आदर और भय मिले हुए थे, और इस भय का मूल यह था कि शुरु में यौन चेष्टाओ से बचने के लिए उसे डराया गया ।

स्वप्न की अगली बातो की व्याख्या अब हम स्वयं रति-ग्रथि[1] से कर सकते है। **'वह बीमार लगता था'**, यह दात के डाक्टर के इस कथन का कि इस जगह से दात का हट जाना अच्छा नही लगता, निर्देश था, पर यह साथ ही उस 'बीमार (अर्थात् बुरा) लगने', का भी निर्देश करता है जिससे वह युवक अपनी तरुणाई के दिनो मे अपनी अत्यधिक यौन चेष्टाओ को प्रदर्शित करता है, या उनके प्रदर्शित हो जाने से डरता है। स्वप्न-द्रष्टा ने अपना दिल हल्का करने के लिए व्यक्त स्वप्न

---

१ Onanism Complex

था, और इसलिए दात निकालने वाले के पास गया पर दात निकालने वाले ने कहा कि ऐसे काम नही चलेगा, थोडा धीरज रखो। "मै इसमें", दात निकालने वाले ने कहा, "कुछ लगाकर स्नायु को सज्ञाहीन कर दूगा और तीन दिन वाद तुम आना, तब मैं इसे निकाल दूगा।" "यह निकालना", स्वप्न-द्रष्टा एकाएक बोला, "ही गाडना है।"

क्या उसका कहना सही था? सच है कि यहा ठीक सादृश्य नही है क्योकि दात नही निकाला गया, वल्कि उसका सिर्फ एक मुर्दा अश निकाला गया है, पर अनुभव से हमें यह पता चलेगा कि इस तरह की गलतिया स्वप्न-तत्र पैदा करता है। हम यह कल्पना करते हैं कि स्वप्न-द्रष्टा ने सघनन के प्रक्रम द्वारा मृत पिता और दात को, जो मरा हुआ था पर फिर भी मौजूद था, मिलाकर एक कर लिया था, इसलिए कोई आश्चर्य की वात नही कि व्यक्त स्वप्न में वेतुकापन आ गया, क्योकि स्पष्टत दात के वारे में कही गई सारी वात पिता पर लागू नहीं हो सकती। तव फिर पिता और दात दोनो में ऐसी सामान्य वात कौन-सी है जिससे इनकी तुलना हो सके।

ऐसी कोई वात अवश्य रही होगी, क्योकि स्वप्न-द्रष्टा ने आगे वताया कि मैं इस कहावत से परिचित हू कि यदि किसीको एक दात टूटने का स्वप्न आए तो इसका अर्थ यह है कि उसके परिवार का कोई व्यक्ति विदा होने वाला है।

हम जानते हैं कि यह आम प्रचलित निर्वचन ग़लत है या एक वडे विकृत अर्थ में ही सही है। इसलिए हमें सचमुच यह पता लगने पर और भी आश्चर्य होगा कि स्वप्न-वस्तु के अन्य अवयवो के पीछे इस प्रकार सकेत से सूचित की गई वात क्या है।

इसके वाद, विना किसी अनुरोध के, स्वप्न-द्रष्टा अपने पिता की वीमारी और मृत्यु के, तथा अपने और अपने पिता के सम्वन्धो के वारे में वातचीत करने लगा। वीमारी वहुत लम्वी चली थी और पिता की देखभाल और इलाज में पुत्र को वहुत धन खर्च करना पडा था। पर उसे वह खर्च भारी नही मालूम हुआ, न उसने कभी धीरज छोडा, और न उसके मन में यह इच्छा ही हुई कि पिता का अन्त जल्दी आ जाए। उसे अपनी सच्चे यहूदियो के योग्य पितृभक्ति पर और यहूदी धर्म का पूरी तरह पालन करने पर अभिमान था। क्या यहा हमें स्वप्न से सम्वन्धित विचारो में कोई परस्पर विरोध नही अनुभव होता? उसने दात और पिता को एक वनाया था। वह यहूदी धर्म के अनुसार ही दात को निकाल डालना चाहता था। यहूदी धर्म कहता है कि दर्द करने वाले दात भी निकाल देना चाहिए। वह अपने पिता से भी धर्म के आदेश के अनुसार ही व्यवहार करना चाहता था। पर यहा धर्म का आदेश यह था कि उसे खर्च और परेशानी की परवाह नहीं करनी चाहिए, सारा वोझ अपने ऊपर लेना चाहिए, और अपने मन मे अपनी परेशानी

के कारण कोई विरुद्ध वात नही आने देनी चाहिए। क्या इन दोनो स्थितियो में तव अधिक अच्छा मेल न हो जाता यदि उसने अपने रोगी पिता के प्रति भी धीरे-धीरे सचमुच वे ही भावनाए अपनाई होती जो उसने अपने रोगी दात के प्रति अपनाई थी, अर्थात् यदि उसने मृत्यु से यह चाहा होता कि वह उसके पिता के अनावश्यक, कष्टकारक और महगे जीवन का जल्दी खात्मा कर दे ?

मुझे जरा भी सन्देह नही कि असल मे लम्बी वीमारी में अपने पिता के प्रति उसका यही रुख रहा था और दिखावटी तौर से उसका अपनी पितृभक्ति पर जोर देना इस तरह की स्मृतियो को अपने मन से दूर रखने के उद्देश्य से था। इस तरह की अवस्थाओ में पिता की मृत्यु की इच्छा पैदा हो जाना, और उसे कोई ऐसा करुण उद्गार प्रकट करके, जैसे 'इससे वह कष्ट से मुक्त हो जाएगा' छिपाना कोई असामान्य वात नही है। पर मैं विशेष रूप से आपको यह ध्यान दिलाना चाहता हूं कि यहा गुप्त विचारो में ही एक वाधा दूर हो गई है। हम निश्चित रूप से मान सकते हैं कि विचारो का पहला भाग सिर्फ अस्थायी रूप से अचेतन था, अर्थात् स्वप्न-तत्र के वास्तविक प्रक्रम के समय वह अचेतन था। दूसरी ओर, पिता के प्रति भावनाए सम्भाव्यत स्थायी रूप से, और हो सकता है कि वचपन से ही, विरोधी थी, और पिता की वीमारी के दिनो में मानो डरते-डरते और छिपे रूप में ये चेतना में घुस आई थी। यह वात अन्य गुप्त विचारो के वारे में, जो असदिग्ध रूप से स्वप्न की वस्तु के सहायक हुए हैं, हम और भी अधिक निश्चय के साथ कह सकते हैं। यह सच है कि इसमे पिता के प्रति विरोधी भावनाओ के कोई सकेत नही हैं, पर जव हम वच्चे के जीवन में इन विरोधी भावो के उद्गम की खोज करते हैं, तव हमें यह याद आता है कि पिता का भय इस कारण उत्पन्न होता है कि जीवन के आरम्भिक वर्षो में वह ही लडके की यौन चेष्टाओ का विरोध करता है, जैसा कि उसे पुत्र में जवानी आने के वाद सामाजिक दृष्टि से प्राय मजबूरन करना पडता है। हमारे स्वप्न-द्रष्टा का अपने पिता से यह सम्वन्ध था। उसके पितृप्रेम मे आदर और भय मिले हुए थे, और इस भय का मूल यह था कि शुरू मे यौन चेष्टाओ से वचने के लिए उसे डराया गया।

स्वप्न की अगली वातों की व्याख्या अव हम स्वयं रति-ग्रथि[1] से कर सकते हैं। **'वह वीमार लगता था'**, यह दात के डाक्टर के इस कथन का कि इस जगह से दात का हट जाना अच्छा नही लगता, निर्देश था, पर यह साथ ही उस 'वीमार (अर्थात् वुरा) लगने', का भी निर्देश करता है जिससे वह युवक अपनी तरुणाई के दिनो में अपनी अत्यधिक यौन चेष्टाओ को प्रदर्शित करता है, या उनके प्रदर्शित हो जाने से डरता है। स्वप्न-द्रष्टा ने अपना दिल हल्का करने के लिए व्यक्त स्वप्न

१ Onanism Complex.

में बीमारी का रूप अपने ऊपर से हटाकर अपने पिता पर पहुचा दिया था। आप जानते ही है कि इस तरह का अपवर्तन[1] या विस्थापन अर्थात् कोई बात किसी स्थान से हटाकर दूसरी जगह पहुचा देना, स्वप्न-तत्र की एक युक्ति है। यह बात कि **'वह जिंदा रहा'**, पिता को फिर जीवित देखने की इच्छा तथा दात-डाक्टर के दात को बचाने के वायदे, इन दोनो से मेल खाती है। यह कथन कि **'मैंने भरसक कोशिश की कि वह इसे देख न सके'** बडे सूक्ष्म तरीके से हमें यह बात इस तरह पूरी करने के लिए प्रेरित करता है कि **'वह मृत था।'** पर उनको ऐसे ढग से पूरा करने का कि उसका सचमुच कुछ अर्थ बन जाए, जो एकमात्र तरीका है, वह भी हमें स्वय रति-ग्रथि की सूचना देता है, क्योकि यह सामान्य बात है कि वह नौजवान अपने यौन जीवन को अपने पिता से छिपाने की भरसक कोशिश करे। अन्त में मैं आपको यह याद दिलाना चाहता हू कि तथाकथित 'दात-दर्द के स्वप्न' सदा स्वय रति और इसकी आशकित सजा का ही निर्देश करते है।

आपने देखा कि किस तरह यह समझ में न आनेवाला स्वप्न, एक विशेप प्रकार के और भ्रम में डालने वाले सघनन द्वारा, इसमें से उन सब विचारो का विलोप कर देता है जो गुप्त विचार-श्रेणी के असली केन्द्र से सम्बन्धित हैं, और जो विचार सबसे गहरे और समय की दृष्टि से सबसे दूर वाले थे, उन्हे निरूपित करने के लिए दो तरह के अर्थों वाली स्थानापन्न रचनाए पैदा करके बना है।

४ हम उन विशेपताहीन और तुच्छ स्वप्नो की जड तक पहले पहुचने की बार-बार कोशिश कर चुके है जिनमें कोई बेतुकी या अजीब बात नही होती बल्कि जिनसे यह प्रश्न पैदा होता है हमें ऐसी तुच्छ बातो का स्वप्न क्यो आता है ? इसलिए मैं इस तरह का एक नया उदाहरण दूगा, जिसमें एक दूसरे से जुडे हुए तीन स्वप्न है जो एक युवती महिला ने एक ही रात में देखे थे।

(क) वह अपने मकान में अपने हॉल में से गुजर रही थी कि उसका सिर एक नीचे लटकते हुए फानूस से इतने जोर से टकराया कि खून निकल आया। इस घटना से उसे ऐसी किसी बात का ध्यान नही आया जो सचमुच हुई हो। उसका कथन बिलकुल दूसरी दिशा में जाता था "आप देखते हैं कि मेरे बाल कितनी बुरी तरह झड रहे हैं। कल मेरी मा ने मुझसे कहा था बेटी, यदि ऐसे ही चलता रहा तो तेरा सिर शीघ्र ही तेरे नितम्ब की तरह केशहीन हो जाएगा।" यहा हम देखते है कि सिर शरीर के दूसरे सिरे का सूचक है। फानूस के प्रतीक को समझने के लिए और किसी मदद की जरूरत नहीं, लम्बे हो सकने वाले सब पदार्थ पुरुप-लिंग के प्रतीक होते है। इस प्रकार, स्वप्न का वास्तविक विपय शिश्न के सस्पर्श से शरीर के निचले सिरे पर होनेवाला रक्तस्राव है। इसके और अर्थ भी हो सकते है। स्वप्न-

१ Inversion

द्रष्टा के और साहचर्यों से पता चलता है कि इस स्वप्न का इस धारणा से सम्बन्ध है कि मासिक धर्म पुरुष के साथ सम्भोग करने से पैदा होता है—यौन विषयो में यह धारणा कच्ची उम्र की लडकियो में आम तौर पर मिल जाती है।

(ख) **स्वप्न-द्रष्टा ने देखा कि एक अंगूरो के बाग में एक गहरा गड्ढा है, जिसके बारे में वह जानती थी कि वह एक पेड़ के उखड़ने से बना है।** इस मामले मे उसने बताया कि 'पेड़ **गायब था**', जिसका अर्थ यह हुआ कि उसने स्वप्न में पेड नही देखा। परन्तु इन्ही शब्दो से एक दूसरा विचार भी प्रकट होता है जिससे हमें इसके प्रतीकात्मक निर्वचन के बारे में कोई सन्देह नही रहता। यह स्वप्न यौन विषयो में एक और बालको की-सी धारणा, अर्थात् इस धारणा का निर्देश करता है कि शुरू मे लड़कियो की जननेन्द्रिया लडको जैसी ही थी, और इस अग का बाद वाला रूप लिंग-विच्छेद (पेड उखडने) से बना है।

(ग) **स्वप्न-द्रष्टा अपनी मेज़ की दराज़ के आगे खड़ी थी जिसे वह इतनी अच्छी तरह जानती है कि यदि उसे कोई छूए तो उसे तुरन्त पता चल जाएगा।** मेज की दराज भी और सभी दराजो, तिजोरियो और सन्दूको की तरह स्त्री जननेंद्रिय की प्रतीक है। वह जानती थी कि सम्भोग (या उसके अनुसार कोई भी सस्पर्श) होने पर जननेन्द्रिय इस बात के कुछ सकेत प्रकट करती है और उसे बहुत समय से इस बात की दोषी समझे जाने का भय था। मैं समझता हू कि इन तीनों स्वप्नो में मुख्य बल **जानने** पर है। उसके मन मे वह समय था जब वह यौन विषयो मे बालबुद्धि से खोजबीन किया करती थी, जिसके परिणामो पर उसे उस समय बडा अभिमान था।

५ प्रतीकात्मकता का एक और उदाहरण देखिए, पर इस बार मैं उस मानसिक स्थिति का भी सक्षेप मे उल्लेख करूगा जिसमें वह स्वप्न पैदा हुआ। एक पुरुष और एक स्त्री ने, जो एक दूसरे से प्रेम करते थे, एक रात इकट्ठे गुज़ारी, पुरुष ने उसका स्वभाव मातृत्वपूर्ण बताया। वह उन स्त्रियो में से थी जिसकी सतान-प्राप्ति की इच्छा आलिगनो के समय बलात् प्रकट हो जाती है, परन्तु उनकी मिलन की अवस्थाओ मे यह सावधानी रखना आवश्यक था कि वीर्य को गर्भ मे जाने से रोका जाए। अगले दिन सवेरे उठने पर उसने यह स्वप्न सुनाया

एक लाल टोपीधारी अफसर गली में उसका पीछा कर रहा था। वह उससे बचकर भागी और सीढ़ियो पर चढ गई और पीछे-पीछे वह भी आ गया। वह दम साधे अपने कमरे में पहुंची और उसने अपने पीछे के दरवाजे को बन्द करके ताला लगा दिया। वह आदमी बाहर रहा और उसने दरवाज़े के छेद में से झाककर देखा कि वह बाहर बेंच पर बैठा रो रहा था।

लाल टोपीवाले अफसर का पीछा करना और इसका दम साधे हुए सीढियो पर चढ़ जाना, जैसा कि आप जानते हैं, सम्भोग कार्य को निरूपित करता है।

स्वप्न देखने वाली का दरवाजा बन्द करके अपना पीछा करने वाले को बाहर रोक देना अपरिवर्तन या विस्थापन की युक्ति का एक उदाहरण है, जिसका स्वप्नो में इतना अधिक प्रयोग होता है, क्योकि वास्तव में पुरुष ही सम्भोग-कार्य पूरा होने से पहले हटा था। इसी प्रकार, उसने अपने मन के दु ख की भावना को अपने साथी पर डाल दिया है, क्योकि वही स्वप्न में रोता है, साथ ही उसके आसू वीर्य का भी निर्देश करते हैं।

आपने यह बात निश्चित ही कभी न कभी सुनी होगी कि मनोविश्लेषण के अनुसार सारे स्वप्न मैथुनार्थक होते हैं। अब आप इस निंदा के झूठ होने के बारे में स्वय अपनी राय बना सकते हैं। आप इच्छा-पूर्ति-स्वप्नो के बारे में, जिनमें प्राथमिक आवश्यकताओ—भूख, प्यास और आजादी की चाह—की सन्तुष्टि होती है, सुविधा-स्वप्नो और अधैर्य-स्वप्नो तथा ऐसे स्वप्नो के बारे में जो स्पष्टत लोभ और अहकार सूचित करते हैं, सुन चुके ह। पर यह बात आप निश्चित रूप से याद रख सकते हैं कि मनोविश्लेषण के परिणामो के अनुसार वे स्वप्न जिनमें विपर्यास की मात्रा काफी होती है **मुख्यतः** (पर यहा भी अनन्यत नही) मैथुन सम्बन्धी इच्छाओं को प्रकट करते हैं।

६ स्वप्नो में प्रतीको के उपयोग के बहुत-से उदाहरण मैं एक विशेष विचार से दे रहा हू। अपने पहले व्याख्यान में मैंने यह कठिनाई बताई थी कि मेरे कथनो को इस तरह प्रत्यक्ष प्रदर्शित नही किया जा सकता कि आपको मनोविश्लेपण की जाच के परिणामो पर विश्वास हो जाए और अब तक आप मुझसे नि सदेह सहमत हो गए होगे। परन्तु मनोविश्लेपण की अलग-अलग स्थापनाए फिर भी इतने घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं कि किसी भी प्रश्न पर विश्वास और निश्चय हो जाने पर सारे सिद्धान्त के अधिकतर भाग को आसानी से स्वीकार कर लिया जाता है। मनोविश्लेपण के बारे में यह कहा जा सकता है कि यदि आप इसे अपनी कनिष्ठिका पकडाएगे तो शीघ्र ही यह आपका पहुचा पकड लेगा। यदि गलतियो की व्याख्या को आप सन्तोपजनक मानते हैं तो तर्क का तकाजा है कि बाकी सारी बातो में भी आप अविश्वास न करें। स्वप्न-प्रतीकात्मकता भी इसी तरह इन बातो को स्वीकार करने में सहायता पहुचाती है। मैं आपको एक गरीब वर्ग की औरत का स्वप्न सुनाऊगा, जो प्रकाशित हो चुका है। इस औरत का पति चौकीदार था, और हम निश्चयपूर्वक मान सकते हैं कि उसने स्वप्न-प्रतीकात्मकता और मनोविश्लेपण का नाम भी कभी नही सुना था। तब आप स्वय यह फैसला कर सकते है कि यौन प्रतीको की मदद से निकाले गए अर्थ को मनमाना या खींच-तान से निकाला गया कहना उचित है या नही।

"तब कोई सेंध लगाकर मकान में घुस आया और उसने डर के मारे चौकीदार को आवाज़ लगाई, पर चौकीदार दो आवारागर्दों के साथ एक चर्च में चला गया

था, जिसमें कई सीढ़ियां चढ़कर जाया जाता था। चर्च के पीछे एक पहाड़ था, और पहाड़ पर एक घना जंगल। चौकीदार ने लोहे का टोप, गले का कवच और चोगा पहन रखा था और उसकी भूरी दाढी लहरा रही थी। उसके साथ जो दो आवारा-गर्द शान्तिपूर्वक गए थे, वे चोगे पहने हुए थे, जो उनके घड़ों पर बोरों की तरह लिपटे हुए थे। एक पगडंडी चर्च से पहाड़ की ओर जाती थी और उसके दोनों ओर ऊंची-ऊंची घास और झाड़ियां थीं जो अधिकाधिक घनी होती जाती थीं और पहाड़ की चोटी पर बाकायदा जंगल था।"

आप यहा उपर्युक्त प्रतीको को बिना परेशानी के पहचान जाएगे। पुरुष-लिंग तीन व्यक्तियो के दीखने से निरूपित हुआ है, और स्त्री के यौन अग चर्च, पहाड और जगल से युक्त दृश्य से निरूपित हुए हैं और सीढियो पर चढने का कार्य यहा भी सभोग-कार्य का प्रतीक है। शरीर का जो भाग स्वप्न मे 'पहाड' कहा गया है, उसे शरीर-शास्त्र में भी कामाचल (Mons veneris) कहते हैं।

७ अब मैं आपको एक और स्वप्न बताऊंगा। उसकी व्याख्या भी प्रतीको के द्वारा ही की जाएगी। इसके अलावा, यह स्वप्न इस दृष्टि से अधिक ध्यान देने योग्य और विश्वास पैदा करने वाला है कि स्वप्न-द्रष्टा ने स्वय सब प्रतीको का अनुवाद कर दिया, यद्यपि इसे निर्वचन के बारे मे पहले से कोई जानकारी नही थी। ऐसी परिस्थिति बहुत कम होती है, और हम ठीक-ठीक नही समझ सकते कि यह किन अवस्थाओं में होती है।

वह अपने पिता के साथ एक स्थान पर घूम रहा था जो प्रेटर (विएना का मुख्य पार्क) ही होगा, क्योंकि उन्होंने गोलघर और उसके सामने एक छोटा मकान देखा, जिसपर एक गुब्बारा कैद था जो सुस्त मालूम होता था। उसके पिता ने उससे पूछा कि यह सब किसलिए है। पुत्र को उसके पूछने पर आश्चर्य हुआ, पर फिर भी उसने कुछ स्पष्टीकरण किया। इसके बाद वे एक आंगन में आए। धातु की एक बड़ी चादर फैली हुई थी। उसका पिता उसमें से एक बड़ा टुकड़ा काट लेना चाहता था, पर उसने पहले चारों तरफ देखा कि मुझे कोई देख तो नहीं रहा। उसने अपने पुत्र से कहा कि तुम्हें सिर्फ ओवरसियर से कहने भर की जरूरत है, और फिर उसके बाद तुम इसे योंही ले जा सकते हो। इस आंगन से कुछ सीढ़ियां नीचे एक डण्डे की ओर जाती थीं। इस डण्डे के पार्श्वों पर कोई नरम वस्तु लगी हुई थी, जैसे यह चमड़े की आराम कुर्सी हो। इस डण्डे के नीचे एक लम्बा चबूतरा, और इससे परे एक और डण्डा था।

स्वप्न-द्रष्टा ने इसका स्वयं यह अर्थ बताया "गोलघर मेरी जननेन्द्रियो का प्रतीक है और इसके सामने वाला कैदी गुब्बारा शिश्न का प्रतीक है जिसके ढीला या नरम होने की मुझे शिकायत है।" उसका अधिक विस्तृत अनुवाद इस प्रकार होगा: गोलघर नितम्बो का प्रतीक है (जिसे बच्चे सदा जननेन्द्रियो मे शामिल

करते है) और सामने का छोटा मकान अण्डकोष है। स्वप्न में उसका पिता उससे पूछता है कि यह सब क्या है, अर्थात् जननेन्द्रियो का प्रयोजन और कार्य क्या है? इस स्थिति को अपवृत्त, अर्थात् उलटा, करना जिससे यह हो कि पुत्र सवाल पूछे, सीधी बात है, और ये सवाल असल में कभी नही पूछे गए, इसलिए हमें स्वप्न-विचारो को या तो अभिलाषा मानना चाहिए और या उन्हे इस तरह सशर्त अर्थ में लेना चाहिए "यदि मैं अपने पिता से इसकी व्याख्या करने के लिए कहता..." इस विचार का बाद का हिस्सा हम अभी देखेंगे।

जिस आगन में धातु की चादर पडी है, उसकी प्रतीको द्वारा व्याख्या नही करनी है, बल्कि वह पिता के कारबार के स्थान का निर्देश है। समझदारी के ख्याल से मैंने उसकी बताई हुई असली चीज की जगह धातु की चादर कर दी है, पर इसके अलावा, स्वप्न के शब्दो में मैंने कोई परिवर्तन नही किया। स्वप्न-द्रष्टा अपने पिता के कारबार में शामिल हुआ था और जिन बहुत आपत्तिजनक कार्यो पर अधिक लाभ का दारोमदार था, उनसे बहुत लज्जित हुआ था। इसलिए इस स्वप्न-विचार का ऊपर निर्दिष्ट पिछला अश इस प्रकार होगा, "(यदि मैं उससे पूछता तो) वह मुझे भी वैसे ही धोखा देता, जैसे अपने ग्राहको को देता है।" स्वप्न-द्रष्टा धातु का टुकडा तोडने की, जो व्यापार की बेईमानी का प्रतीक है, एक दूसरी व्याख्या पेश करता है। वह कहता है कि इसका अर्थ है हस्त-मैथुन[1] का कार्य। यह व्याख्या न केवल हमारी पूर्वपरिचित है, बल्कि इस निर्वचन के भी अनुसार है कि हस्त-मैथुन के गुप्त कार्य को उलटे विचार (**"हम इसे खुलेआम कर सकते है।"**) द्वारा प्रकट किया जाए। इस प्रकार यह तथ्य कि हस्त-मैथुन का आरोप पिता पर लगाया जाए, जैसे कि स्वप्न के पहले दृश्य मे पूछने को उसके साथ जोडा गया था, ठीक वैसा है जैसी कि हमें आशा करनी चाहिए थी। स्वप्न-द्रष्टा ने दीवारो के मुलायम स्पर्श के कारण डण्डे का अर्थ तुरन्त योनि बताया और मैं अपनी ओर से यह कहता हू कि ऊपर जाना तथा नीचे आना मैथुन-कार्य या सम्भोग का सूचक है।

पहले डडे के नीचे और दूसरे डडे के परली ओर वाले लम्बे चबूतरे की व्याख्या स्वप्न-द्रष्टा ने अपने इतिहास से स्वय की। वह कुछ समय सम्भोग करता रहा था और इसके बाद निरोधो के कारण उसने इसे छोड दिया था, पर इलाज कराकर वह फिर इसे करने योग्य बनने की आशा करता था।

८ नीचे मैं दो ऐसे स्वप्न पेश करता हू जो उल्लेखनीय बहुपत्नी-प्रवृत्तियो वाले एक विदेशी को आए थे, क्योकि उनसे इस कथन का स्पष्टीकरण हो सकता है कि प्रत्येक स्वप्न-द्रष्टा का अपना व्यक्तित्व मौजूद होता है, चाहे वह व्यक्त वस्तु

१ Masturbation

में छिपा हुआ ही क्यो न हो। स्वप्नो मे सदूक स्त्री-प्रतीक है।

(क) **स्वप्न-द्रष्टा एक यात्रा करने वाला था और उसका सामान एक गाड़ी में स्टेशन ले जाया जा रहा था। उसमें एक दूसरे के ऊपर बहुत-से सन्दूक लदे हुए थे और उनमें दो बड़े काले सन्दूक वैसे थे जैसे कि एजेन्टों के होते हैं। उसने दिलासा देते हुए किसीसे कहा "देखो, वे सिर्फ स्टेशन तक जा रहे हैं।"**

असल में, वह बहुत सारे सामान के साथ सफर करता है और इलाज में स्त्रियो सम्बन्धी बहुत-से किस्से बताये। दो काले सन्दूक, दो काली स्त्रियो के प्रतीक है जो उस समय उसके जीवन मे प्रमुख स्थान रखती थी। उनमे से एक उसके पास वियेना आना चाहती थी। पर मेरी सलाह से उसने उसे, तार द्वारा, आने से रोक दिया।

(ख) **चुंगी घर का एक दृश्य: एक सहयात्री ने उसका सन्दूक खोला और बेतकल्लुफी से सिगरेट पीते हुए कहा: "उसमें चुंगी योग्य कोई चीज नहीं।" चुगी अधिकारी उसपर विश्वास करता मालूम दिया, पर उसने फिर सन्दूक में हाथ डाला और एक सख्त निषिद्ध चीज़ उसमें मिली। तब यात्री ने लाचारी के ढंग से कहा: "क्या करूं इसके लिए लाचार हूं।"** स्वप्न-द्रष्टा स्वय यात्री है, और मै चुगी अफसर हू। साधारणतया वह मेरे साथ बहुत साफ और सीधा रहता है, पर उसने एक नया सम्बन्ध, जो उसने हाल में ही एक महिला के साथ स्थापित किया था, मुझसे छिपाने का पक्का इरादा किया था, क्योकि उसकी कल्पना थी, और बिलकुल ठीक थी, कि मै उस महिला को जानता था। वह इस चीज के पता लग जाने से उत्पन्न दुविधा और परेशानी की स्थिति एक अपरिचित पर डाल देता है, जिससे यह प्रतीत होता है कि वह स्वय स्वप्न मे बिलकुल नही आता।

९ अब मै एक ऐसे प्रतीक का उदाहरण देता हूं जिसका मैने अब तक उल्लेख नही किया

स्वप्न-द्रष्टा को अभी उसकी बहन मिली जिसके साथ उसकी दो सहेलिया थीं, जो आपस में बहनें थीं। उसने उन दोनो से हाथ मिलाया, पर अपनी बहन से नहीं मिलाया।

इसके साथ सम्बन्धित कोई असली घटना उसके मन मे नही थी। असल में उसके विचार उस समय में पहुच गए थे जब उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ करता था कि लडकी की छातिया इतनी देर में क्यो बढती है। इसलिए दो बहनें छातियो की प्रतीक है। वह उन्हे अपने हाथ से पकडना पसन्द करता यदि वह उसकी बहन न होती।

१० स्वप्नो में मृत्यु-प्रतीकात्मकता का एक उदाहरण है:

स्वप्न-द्रष्टा एक बहुत ऊंचा, सीधा, लोहे का पुल पार कर रहा था, और उसके साथ दो आदमी थे जिनके नाम वह जानता था, पर जागने पर भूल गया। एकाएक वे दोनों गायब हो गये और उसने एक भूत जैसा आदमी देखा, जिसने टोपी

और वडा चोगा पहन रखा था। उसने उससे पूछा कि क्या तुम तार-घर के हरकारे हो ? 'नहीं' या गाडी वाले हो? 'नहीं'। इसके बाद वह आगे चला गया और स्वप्न में उसे बड़ा डर लगा; जागने पर वह यह कल्पना करने लगा कि लोहे का पुल एकाएक टूट गया और वह गहरे खड्ड में जा गिरा।

जब इस बात पर बल दिया जाता है कि स्वप्न में दिखाई दिए व्यक्ति स्वप्न-द्रष्टा के अपरिचित हैं, या वह उनके नाम भूल गया है, तब साधारणतया वे ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनके साथ उसका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। स्वप्न-द्रष्टा के परिवार में तीन बच्चे थे यदि उसने शेष दो बच्चो की मृत्यु की कामना की होती, तभी उसे मृत्यु का भय लगना चाहिए। तार के हरकारे के बारे में उसने कहा कि वे सदा बुरी खबरें लाते हैं। अपनी वर्दी के अनुसार, स्वप्न में दिखलाई दिया मनुष्य लैंप जलाने वाला भी हो सकता था, जो लैंप बुझाता भी है क्योकि मृत्यु जीवन की रोशनी को बुझाती है। गाडी वाले के बारे में उसके मन में राजा कार्ल की जल-यात्रा के विषय में ऊलैंड की कविता थी। उसने दो साथियो के साथ एक झील पर की गई खतरनाक यात्रा का भी स्मरण किया, जिसमें उसने कविता में वर्णित राजा का अभिनय किया था। लोहे का पुल उसे एक हाल की दुर्घटना की और इस मूर्खतापूर्ण कहावत की याद दिलाता था 'जीवन एक लटका हुआ पुल है।'

११ यह मृत्यु-स्वप्न का एक और एक उदाहरण माना जा सकता है

कोई अपरिचित सज्जन स्वप्न-द्रष्टा के ऊपर काली किनारी वाली विज़िटिंग कार्ड डाल रहा था।

१२ अब मैं आपके सामने एक और स्वप्न रखता हू जो कई दृष्टियो से दिलचस्प लगेगा, परन्तु इसका आशिक कारण स्वप्न-द्रष्टा में स्नायु-रोग की अवस्था का होना है

वह एक रेलगाडी में था जो खुली जगह रुकी। उसने सोचा कि कोई दुर्घटना होने वाली है और इसलिए मुझे भाग निकलना चाहिए। अत. सब डिब्बों में जाकर उसने गार्ड, ड्राइवर आदि जो भी कोई उसे मिल', सबको मार डाला।

इस स्वप्न मे उसे एक दोस्त द्वारा सुनाई गई कहानी याद आई। किसी इटालियन रेलवे लाइन पर एक छोटे डिब्बे में एक पागल आदमी को ले जाया जा रहा था, पर गलती मे एक मुसाफिर को उस डिब्बे में आ जाने दिया गया। पागल आदमी ने दूसरे यात्री की हत्या कर दी। इस प्रकार स्वप्न-द्रष्टा ने अपने आपको वह पागल आदमी बना लिया। इसका कारण यह था कि उसे कभी-कभी इस मनोग्रस्तता से परेशानी होती थी कि मुझे 'उन सबके साथ, जिन्हे मेरी बातो का ज्ञान है', भाग जाना चाहिए। इसके बाद उसने स्वय स्वप्न का अधिक अच्छा प्रयोजन तलाश किया पिछले दिन उसने थियेटर में एक लडकी को देखा था, जिससे वह विवाह करना चाहता था, पर उसने अपना यह विचार त्याग दिया था, क्योंकि उस लडकी

ने उसके लिए ईर्ष्या का कारण पैदा किया। ईर्ष्या उसमें कितने तीव्र रूप में हो सकती थी, यह जानने पर भी वह उससे शादी करने की इच्छा रखता तो सचमुच पागल हो जाता। कहने का मतलव यह है कि वह उसे इतना अविश्वसनीय समझता था कि अपनी ईर्ष्या के कारण वह अपने रास्ते मे रोडा डालने वाले हर किसी की हत्या कर देता। कई कमरो में से, या यहा की तरह डिब्बो में से, गुजरना, जैसा कि हम पहले देख चुके है, विवाह का प्रतीक है। (विरोधी वातो के नियम के अनुसार यह एकपत्नीत्व को प्रकट करता है।)

खुली जगह में गाडी के रुकने और दुर्घटना के भय के बारे मे उसने यह किस्सा सुनाया

एक वार स्टेशन से वाहर रेलवे लाइन पर इस तरह एकाएक गाडी रुकने पर डिब्बे में बैठी हुई एक नवयुवती ने कहा था कि शायद गाडियो मे टक्कर होनेवाली है, और सबसे अच्छा यह होगा कि टागें ऊची उठा ली जाए। 'टागें उठाना' पदावली के साथ उसके देहात में वहुत वार की गई यात्राओ के साहचर्य थे, जिनमें वह ऊपर वताई गई लडकी के साथ अपने प्रेम के आरम्भिक सुखमय दिनो मे गया था। यह इस वात के लिए, कि यदि वह उससे अव विवाह करे तो पागल हो जाएगा, एक और युक्ति है। तो भी स्थिति को देखकर मेरा यह निश्चित विचार वना कि उसमें तव भी पागलपन का शिकार होने की इच्छा थी।

व्याख्यान | १३

स्वप्नों में अति प्राचीन और शैशवीय विशेषताएं

अब हम अपने इस निष्कर्ष से फिर नए सिरे से आगे बढते हैं कि सेंसरशिप या काट-छाट के प्रभाव से स्वप्न-तत्र गुप्त स्वप्न-विचारो को दूसरे रूप में बदल देता है। ये विचार उसी तरह के होते हैं जैसे जागृत जीवन के सुपरिचित चेतन विचार। वे जिस नए रूप में प्रकट होते हैं, वह अपनी बहुत-सी विशेषताओ के कारण हमें समझ में नही आता। हम कह चुके हैं कि इसका विकास हमारे बौद्धिक परिवर्धन की उन अवस्थाओ से है जिनसे हम बहुत आगे बढ आए हैं, अर्थात् चित्र-लिपियो, प्रतीकात्मक सम्बन्धो, और सभवत उन अवस्थाओ से है जो विचार की भाषा का विकास होने से पहले मौजूद थी। इस कारण हमने स्वप्न-तत्र द्वारा प्रयुक्त अभि-व्यक्ति के प्रकार को **अतिप्राचीन** या **प्रतिगामी** कहा था।

इससे आप यह नतीजा निकाल सकते हैं कि स्वप्न-तत्र का अधिक गहरा अध्य-यन करके हमारे बौद्धिक परिवर्धन की आरम्भिक अवस्थाओ के बारे में, जिनका इस समय कुछ भी पता नही है, मूल्यवान निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। मुझे आशा है कि यही होगा, पर इसका यत्न नही किया गया है। स्वप्न-तत्र हमें जिस युग में पहुचाता है, वह दो दृष्टियो से 'आदिम' है प्रथम तो इसका अर्थ है **व्यष्टि** अर्थात् मनुष्य के आरम्भिक दिन, अर्थात् उसका बचपन, और दूसरे, जहा तक यह बात है कि प्रत्येक व्यष्टि बचपन मे, कुछ सक्षिप्त रूप में, मानव-मूलवश के परिवर्धन के सारे क्रम को दोहराता है, वहा यह निर्देश **जातिचरित या वशवृत्त**[1] का निर्देश है। मै इस बात को असभव नही मानता कि हम गुप्त मानसिक प्रक्रमो के उस भाग में जो व्यष्टि के आरम्भिक दिनो मे सम्बन्ध रखता है, और उस भाग में, जिसकी जड मूलवश के बाल्यकाल में है, भेद कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, मुझे ऐसा लगता है कि प्रतीकात्मकता को, जो अभिव्यक्ति की ऐसी रीति है जो कि कभी भी व्यष्टि द्वारा नही सीखी गई, मूलवश की देन माना जाना चाहिए।

१ Phylogenetic

परन्तु स्वप्नो की एक यही अतिप्राचीन या पुरानी विशेषता नही होती। आप सब अनुभव से यह जानते हैं कि हम सबमे बचपन का स्मृतिनाश[१] (एमनेशिया) होता है। मेरा मतलब यह है कि जीवन के आरम्भिक, अर्थात् पाच, छ. या आठ वर्ष की आयु के दिनो के हमारी स्मृति मे वैसे अवशेष नही रहते जैसे बाद के अनुभवो के। यह ठीक है कि हमें ऐसे लोग भी मिलते हैं जो बचपन से आज तक लगातार स्मृति का दावा कर सकते हैं, पर उनकी तुलना में इसके विपरीत बहुत आदमी हैं, जिनकी स्मृति में बहुत-से खाली स्थान हैं। मेरी राय में इसपर काफी आश्चर्य नही पैदा हुआ। दो वर्ष की आयु का बच्चा अच्छी तरह बोल सकता है, और शीघ्र ही यह सिद्ध कर देता है कि वह अपने आपको उलझनदार मानसिक स्थितियो के अनुकूल बना सकता है, और इसके अलावा ऐसी बाते कहता है जो वर्षो बाद उसके सामने पेश किए जाने पर वह स्वय भूल गया होता है और फिर भी आरम्भिक वर्षो में स्मृति अधिक दक्ष होती है क्योकि उस समय इसपर उतना बोझा नही होता जितना बाद में हो जाता है। दूसरे, यह समझने का कोई कारण नही है कि स्मृति का कार्य मानसिक व्यापार का कोई विशेष रूप से ऊचा या कठिन रूप हो। इसके विपरीत, उन लोगो में भी बहुत अच्छी स्मृति-शक्ति हो सकती है जो बुद्धि की दृष्टि से बहुत नीचे धरातल पर हैं।

पर मैं पहली विशेषता के आधार पर आश्रित एक दूसरी विशेषता की ओर आपका ध्यान खीचना चाहता हू, और वह यह है कि बचपन के आरम्भिक वर्षो की विस्मृति में कुछ स्पष्ट रूप से रखी हुई स्मृतिया निकल आती हैं, जो अधिकतर सुघट्य प्रतिबिम्बो के रूप में होती हैं, जिनके बने रहने के लिए कोई पर्याप्त कारण नही मालूम होता। बाद के जीवन मे जो अनेक सस्कार पडते हैं, उनपर स्मृति वरण, अर्थात् छटाई के प्रक्रम से कार्य करती है—महत्वपूर्ण को रख लेती है और महत्वहीन को छोड देती है, पर बचपन से याद बातो के बारे मे यह स्थिति नही है। आवश्यक नही है कि वे बाते बचपन के महत्वपूर्ण अनुभवो को सूचित करती हो, यहा तक कि बहुत बार वे ऐसी चीज़े भी नही होती जो बच्चे के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण मालूम हुई हो, बल्कि प्राय अपने आपमें इतनी तुच्छ और अर्थहीन होती हैं कि हम अपने आप से आश्चर्य के साथ यही पूछ सकते हैं कि यह विशेष घटना भूली क्यो नही? मैंने विश्लेषण की मदद मे बचपन के स्मृति-नाश की ओर उसमें से दीखने वाले स्मृति-खडो की समस्या हल करने की कोशिश की है, और मैं इस निष्कर्ष पर पहुचा हू कि चाहे उसके विपरीत कोई भी प्रमाण मिले, पर असलियत यह है कि बडो की तरह बच्चा भी महत्व की बाते ही स्मृति में कायम रखता है; पर जो चीज़ महत्वपूर्ण है वह (सघनन के, और विशेष रूप से, विस्थापन के, जिन

---

१. Amnesia

सम्भव है कि प्रिय व्यक्ति किसी और का मिथ्या या मायात्मक[1] स्थानापन्न हो।

परन्तु इस स्थिति से आपके मन में एक और गम्भीर सवाल पैदा होगा। आप कहेगे "यद्यपि मृत्यु की यह इच्छा किसी समय सचमुच थी, और स्मृति से इसकी पुष्टि होती है, पर यह कोई सच्ची व्याख्या नही है, क्योंकि अब इस इच्छा को हुए बहुत समय हो चुका है,और इस समय यह निश्चित रूप से अचेतन में एक स्मृति के रूप में ही रह सकती है, जिसका भावात्मक मूल्य कुछ भी नही है, और एक शक्तिशाली उत्तेजक कारक के रूप में नही रह सकती। इस पिछली कल्पना के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नही है। स्वप्न में कोई इच्छा याद ही क्यो आती है?" यह प्रश्न पूछना सचमुच आपके लिए उचित है। इसका उत्तर देने की कोशिश करते हुए हम बहुत दूर पहुच जाएगे और हमें स्वप्न-सिद्धान्त के बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न के बारे में अपनी स्थिति प्रकट करनी होगी पर मुझे अपने विवेचन की सीमाओ में रहना है और इस प्रश्न पर अभी विचार करने का प्रलोभन छोडना होगा। इसलिए फिलहाल, आप इसे यही छोडने को तैयार हो जाए। हमें इस वास्तविक प्रमाण से ही सन्तोष कर लेना चाहिए कि बहुत समय से दबी हुई इस इच्छा के कारण ही स्वप्न का पैदा होना सिद्ध किया जा सकता है, और हमें इस प्रश्न की जाच जारी रखनी चाहिए कि क्या अन्य दूषित इच्छाओ का मूल भी इसी तरह पीछे की घटनाओ में तलाश किया जा सकता है?

हम मृत्यु-इच्छाओ पर ही विचार करते हैं जो अधिकतर हमें स्वप्न-द्रष्टा के सीमाहीन अहकार से ही उत्पन्न दिखाई देंगी। इस तरह की इच्छाए बहुत बार स्वप्नो का आधारभूत कारण दिखाई देती हैं। जब कभी कोई जीवन में हमारे मार्ग में आता है—और हमारे पारस्परिक सम्बन्ध इतने उलझे हुए होने पर ऐसा कितनी ही बार होता है!—तब उस व्यक्ति को दूर करने के लिए तुरन्त एक स्वप्न तैयार हो जाता है, चाहे वह पिता हो, माता हो, भाई हो, बहिन हो, पति हो या पत्नी हो। हमें यह बात आश्चर्यजनक लगी थी कि यह दुष्टता मनुष्यमात्र में जन्मजात होती है, और बिना और प्रमाण के हम निश्चित रूप से यह मानने को तैयार नही कि हमारे स्वप्नों के निर्वचनो का यह प्रमाण सही है। पर जब एक बार हमने यह देख लिया कि इस तरह की इच्छाओ का मूल अतीत में खोजना चाहिए, तब हमें उस मनुष्य के अतीत मे ऐसा समय ढूढने में कुछ कठिनाई नही हुई थी, जिसमे ऐसे अहकार और ऐसी इच्छाओ का होना कोई अजीब बात नही, चाहे वह इच्छा अपने इष्ट मित्रो के और प्रियजनो के विरुद्ध ही हो। अपने आरम्भिक वर्षो में (जो बाद में विस्मृति के पर्दे में छिप जाते हैं) बच्चा वही व्यक्ति है, जो ऐसे अहकार को बडे साफ रूप में बहुत बार प्रदर्शित करता है। इस तरह की सुनिश्चित प्रवृत्तिया, या ठीक-ठीक कहे तो उनके बचे हुए अवशेष, उसमें सदा स्पष्ट

1 Illusory

रूप में दिखाई देते हैं, कारण यह कि बालक पहले अपने से प्यार करता है, और बाद में दूसरो को प्यार करना और अपने कुछ अहकार को दूसरो पर कुर्बान करना सीखता है। जिन लोगो से वह शुरू से प्रेम करता मालूम होता है, उनसे भी वह इसीलिए प्रेम करता है क्योंकि उसे उनकी आवश्यकता है, और उनके बिना उसका काम नही चल सकता—अर्थात् यहा भी उसका प्रेरक भाव अहकार ही होता है। बाद में जाकर ही प्रेम का आवेग अहकार से अलग होता है, यह अक्षरश सत्य है कि बच्चा अपने अहकार के ज़रिए ही प्रेम करना सीखता है।

इस सिलसिले में बच्चे का अपने भाइयो और बहनो के प्रति जो रुख होता है और अपने माता-पिता के प्रति जो रुख होता है, उन दोनो की तुलना करना शिक्षा-प्रद होगा। आवश्यक नही कि छोटा बालक अपने भाइयो और बहनो को प्यार करता हो, और प्राय वह यह बात साफ कह देता है। इसमे कोई सदेह नही कि वह उन्हे अपना प्रतिद्वन्द्वी समझता है, और उनसे नफरत करता है, और सब लोग जानते हैं कि यह रुख आम तौर से लगातार वर्षो, अर्थात् बच्चे के बडे हो जाने पर भी, बना रहता है। यह ठीक है कि प्राय इसके स्थान पर एक अधिक कोमल भावना आ जाती है, या शायद यह कहना चाहिए कि कोमल भावना उस पहले वाली भावना के ऊपर आ जाती है, पर आम तौर से विरोधी भावना अधिक पहले की मालूम होती है। यह बात ढाई से चार साल तक के बच्चो मे उस समय बहुत आसानी से देखी जा सकती है, जब कोई नया शिशु पदार्पण करता है। साधारण-तया उसका बडी अनिच्छा से स्वागत किया जाता है, "मुझे यह पसन्द नही; चिडिया इसे फिर ले जाएगी," इस तरह की बाते आम तौर से कही जाती हैं। बाद में नए शिशु के आने पर मौके-बेमौके नापसन्दगी प्रकट की जाती है। उसे चोट पहुचाने और उसपर सचमुच आक्रमण करने की कोशिशे भी की जाती हैं। यदि आयु मे अन्तर कम है तो जब तक बच्चे का मानसिक व्यापार अधिक अच्छी तरह परिवर्धित होता है, उससे पहले ही प्रतिद्वन्द्वी मौजूद मिलता है, और वह अपने आपको स्थिति के अनुकूल बना लेता है। दूसरी ओर, यदि आयु में अन्तर अधिक है तो नए शिशु को देखकर पहले बच्चे में कुछ प्रेमपूर्ण भावनाए पैदा हो सकती हैं। वह उस शिशु को दिलचस्प चीज और एक तरह की जीवित गुडिया समझता है, और जब आठ वर्ष या अधिक का अन्तर होता है, और विशेष रूप से यदि बडा बच्चा लडकी है, तो रक्षण करने का मातृत्वपूर्ण आवेग तुरन्त प्रवृत्त हो जाता है, पर सच-सच कहा जाए तो जब हम किसी स्वप्न में किसी भाई या बहन की मृत्यु-इच्छा छिपी हुई देखते हैं, तब हमें कभी भी उलझन पैदा नही होती, क्योंकि, बिना बहुत परेशानी के, इसका मूल बचपन में या बहुत बार बाद के वर्षो में, जबकि वे इकट्ठे रहते थे, मिल जाता है।

शायद कोई बाल-घर (नर्सरी) ऐसा नही होगा, जिसमें माता-पिता का प्रेम

प्राप्त करने के लिए होड न होती हो, उन सबकी साझी सम्पत्ति के लिए मुकाबला न होता हो, और जिस कमरे में वे रहते हैं, उसमें जगह घेरने के लिए एक दूसरे से वढने की कोशिश न होती हो, और इन्हींके परिणामस्वरूप मार-पीट के झगडे न होते हो। यह विरोध-भाव छोटे भाइयो और वहनो की तरह वडो से भी होता है। मेरा ख्याल है कि वर्नार्ड शॉ ने ही यह लिखा है "अग्रेज युवती अपनी माता के वाद दूसरे नम्वर पर जिससे घृणा करती है वह उसकी वडी बहन है।" इस कथन में कुछ ऐसी वात है जो हमारे कानो को खटकती है। हमारे लिए वहनो और भाइयो की आपसी घृणा और मुकावलेवाजी को समझना वडा ही कठिन है, पर घृणा की भावनाए माता और पुत्री के तथा जनको और सन्तानो के सम्वन्ध के वीच में कैसे घुस सकती हैं?

यह सम्वन्ध वच्चो के दृष्टिकोण से भी नि सन्देह अधिक अनुकूल है, और इसीकी हम आशा भी करते हैं। भाइयो और वहनो में प्रेम न होने की अपेक्षा जनको और सन्तानो में प्रेम न होना कही अधिक वुरा मालूम होता है। यह कहा जा सकता है कि दूसरे प्रकार के प्रेम को हमने पवित्र मान लिया है जब कि पहले प्रकार के प्रेम को अपवित्र हो जाने दिया है। तो भी, रोज के तजुरवे से हमें यह पता चल सकता है कि जनको और वडी उम्र के वालको में एक दूसरे के प्रति जो भावनाए होती हैं, वे वहुधा समाज द्वारा स्थापित आदर्श से नीचे होती हैं और कितनी ही विरोध-भावना अन्दर ही अन्दर सुलगती रहती है, और यदि पितृभक्ति या मातृभक्ति या अन्य कोमल भावनाओ के विचार से उन्हे न दवाया जाए तो वे किसी समय ज्वाला के रूप में फूट निकलें। इस विरोध के प्रेरक कारण सुविदित हैं, और एक ही लिङ्ग के व्यक्तियो में परस्पर विरोध होने की, अर्थात् पुत्री का माता से, और पिता का पुत्र से विरोध होने की प्रवृत्ति हम देखते हैं। पुत्री को उसकी माता ऐसे हाकिम के रूप म दिखाई देती है जो उसकी इच्छाओं पर रुकावटें लगाती है, और जिसका काम यही है कि वह अपनी पुत्री से यौन आजादी का उतना त्याग कराए जितना समाज चाहता है। कुछ अवस्थाओ में माता भी प्रतिद्वन्द्वी होती है, जो उपेक्षित नही होना चाहती। यही वात पिता और पुत्र के वीच और भी उग्ररूप में होती है। पुत्र के लिए पिता उन सामाजिक वन्धनो का मूर्तरूप है जिन्हे वह वडी अनिच्छा से स्वीकार करता है। उसके लिए पिता ही वह व्यक्ति है जो वालकपन के यौन आनन्दो की और जव पारिवारिक सम्पत्ति हो तव उसका सुख भोगने की उसकी इच्छा पूरी करने के मार्ग में रुकावट वनता है। जव राज-सिंहासन का प्रश्न हो, तव यह अधीरता दुखदायी तीव्रता तक जा पहुचती है। पिता और पुत्री या माता और पुत्र का सम्वन्ध कम विनाशकारी मालूम होता है। माता और पुत्र का सम्वन्ध अपरिवर्तित कोमलता का सवसे शुद्ध उदाहरण है, जिसमें अहकार की किसी भावना से फर्क नहीं पडता।

आप पूछेंगे कि मैं ऐसी तुच्छ और हर किसीको ज्ञात बातो की चर्चा क्योकर रहा हू। इसका कारण यह है कि लोगो के मनो मे यह असन्दिग्ध प्रवृत्ति मौजूद है कि वे वास्तविक जीवन मे इन बातो के तात्पर्य का निषेध करते है और सामाजिक आदर्श जितना वास्तव में पूरा होता है, उससे अधिक पूरा होने की बात जाहिर करते हैं, पर अधिक अच्छा यह है कि मनोविज्ञान ही सचाई बताए और यह कार्य विश्वनिन्दक या 'सिनिक' लोगो के लिए न छोड दे। यह सच है कि यह सामान्य निषेध सिर्फ वास्तविक जीवन के बारे में किया जाता है, क्योंकि नाटक-उपन्यास में ऊपर बताए गए प्रेरक भावो का प्रयोग करने की आजादी है, जिससे इन आदर्शो को भारी चोट पहुचती है।

इसलिए यदि अधिकतर लोगो के स्वप्नो से यह प्रकट होता है कि वे अपने जनको की, विशेषरूप से उस जनक की, जो स्वप्न-द्रष्टा के समान लिंग वाला है, मृत्यु चाहते हैं तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नही। हम यह मान सकते हैं कि यह इच्छा जागृत जीवन मे भी, कभी-कभी चेतना में भी रहती है, यदि वह किसी और प्रेरक भाव के पीछे अपने को छिपा सके, जैसे कि हमारे तीसरे उदाहरण मे स्वप्न-द्रष्टा ने अपने पिता के बेकार कष्ट सहन पर दया के द्वारा अपने वास्तविक विचार को छिपा दिया। ऐसा बहुत कम होता है कि विरोध-भाव अकेला ही बना रहे—अधिकतर यह कोमल भावनाओ के सामने झुक जाता है, और वे अन्त मे इसे अवरुद्ध कर देती हैं, अर्थात् दबा देती हैं, और यह पडा रहता है, और अन्त मे स्वप्न मानो इसे अकेले रूप में प्रदर्शित करता है। जिस चीज को स्वप्न इस अकेले-पन द्वारा बहुत बढाए गए रूप में दिखाता है, वह तब अपना असली आकार ग्रहण कर लेती है, जब हमारा निर्वचन स्वप्न-द्रष्टा के शेष जीवन की दृष्टि से इसे इसका उचित स्थान दे दे (एच सैक्स)। पर यह मृत्यु की इच्छा हमें वहा भी दिखाई देती है जहा वास्तविक जीवन में इसका कोई आधार नही होता, और जहा बडी उम्र वाले युवक को कभी भी यह स्वीकार नही करना पडेगा कि उसने जागृत जीवन में इसे अपनाया था। इसका कारण यह है कि विरोध का, विशेषरूप से एक ही लिंग वाले जनक और सन्तान में आपसी विरोध का, सबसे गहरा और सबमे आम प्रेरक कारण बालकपन के आरम्भिक वर्षो में क्रियाशील हुआ था।

मेरा सकेत अनुराग-भावनाओ की उस प्रतिद्वन्द्विता की ओर है जिसमें लिंग सम्बन्धी तत्वो पर स्पष्टत बल होता है। पुत्र जब बहुत छोटा होता है, तभी उसमें अपनी माता के प्रति एक विशेष ममता पैदा होने लगती है—वह अपनी माता को अपनी निजी सम्पत्ति समझता है और पिता को ऐसे प्रतिद्वन्द्वी के रूप में देखता है जो उस अकेले की इस सम्पत्ति, उसके इस एकाकी स्वामित्व, का विरोधी है। इसी प्रकार, छोटी लडकी अपनी माता को ऐसे व्यक्ति के रूप में देखती है जो उसके पिता के साथ उसके अनुराग के सम्बन्ध में बाधा डालती है, और ऐसा स्थान घेरे

प्राप्त करने के लिए होड न होती हो, उन सबकी साझी सम्पत्ति के लिए मुकाबला न होता हो, और जिस कमरे में वे रहते हैं, उसमें जगह घेरने के लिए एक दूसरे से बढने की कोशिश न होती हो, और इन्हीके परिणामस्वरूप मार-पीट के झगडे न होते हो। यह विरोध-भाव छोटे भाइयो और बहनो की तरह बडो से भी होता है। मेरा ख्याल है कि बर्नार्ड शॉ ने ही यह लिखा है "अग्रेज युवती अपनी माता के बाद दूसरे नम्बर पर जिससे घृणा करती है वह उसकी बडी बहन है।" इस कथन में कुछ ऐसी बात है जो हमारे कानो को खटकती है। हमारे लिए बहनो और भाइयो की आपसी घृणा और मुकाबलेबाजी को समझना बडा ही कठिन है, पर घृणा की भावनाए माता और पुत्री के तथा जनको और सन्तानो के सम्बन्ध के बीच में कैसे घुस सकती है ?

यह सम्बन्ध बच्चो के दृष्टिकोण से भी नि सन्देह अधिक अनुकूल है, और इसी-की हम आशा भी करते है। भाइयो और बहनो में प्रेम न होने की अपेक्षा जनको और सन्तानो में प्रेम न होना कही अधिक बुरा मालूम होता है। यह कहा जा सकता है कि दूसरे प्रकार के प्रेम को हमने पवित्र मान लिया है जब कि पहले प्रकार के प्रेम को अपवित्र हो जाने दिया है। तो भी, रोज के तजुरबे से हमें यह पता चल सकता है कि जनको और बडी उम्र के बालको मे एक दूसरे के प्रति जो भावनाए होती है, वे बहुधा समाज द्वारा स्थापित आदर्श से नीचे होती हैं और कितनी ही विरोध-भावना अन्दर ही अन्दर सुलगती रहती है, और यदि पितृभक्ति या मातृ-भक्ति या अन्य कोमल भावनाओ के विचार से उन्हे न दबाया जाए तो वे किसी समय ज्वाला के रूप में फूट निकलें। इस विरोध के प्रेरक कारण सुविदित है, और एक ही लिङ्ग के व्यक्तियो में परस्पर विरोध होने की, अर्थात् पुत्री का माता से, और पिता का पुत्र से विरोध होने की प्रवृत्ति हम देखते हैं। पुत्री को उसकी माता ऐसे हाकिम के रूप म दिखाई देती है जो उसकी इच्छाओ पर रुकावटें लगाती है, और जिसका काम यही है कि वह अपनी पुत्री से यौन आजादी का उतना त्याग कराए जितना समाज चाहता है। कुछ अवस्थाओ में माता भी प्रतिद्वन्द्वी होती है, जो उपेक्षित नही होना चाहती। यही बात पिता और पुत्र के बीच और भी उग्ररूप में होती है। पुत्र के लिए पिता उन सामाजिक बन्धनो का मूर्तरूप है जिन्हें वह बडी अनिच्छा से स्वीकार करता है। उसके लिए पिता ही वह व्यक्ति है जो बालकपन के यौन आनन्दो की ओर जब पारिवारिक सम्पत्ति हो तब उसका सुख भोगने की उसकी इच्छा पूरी करने के मार्ग में रुकावट बनता है। जब राज-सिंहासन का प्रश्न हो, तब यह अधीरता दुखदायी तीव्रता तक जा पहुचती है। पिता और पुत्री या माता और पुत्र का सम्बन्ध कम विनाशकारी मालूम होता है। माता और पुत्र का सम्बन्ध अपरिवर्तित कोमलता का सबसे शुद्ध उदाहरण है, जिसमें अहकार की किसी भावना से फर्क नहीं पडता।

आप पूछेंगे कि मैं ऐसी तुच्छ और हर किसीको ज्ञात बातो की चर्चा क्योकर रहा हू। इसका कारण यह है कि लोगो के मनो में यह असन्दिग्ध प्रवृत्ति मौजूद है कि वे वास्तविक जीवन में इन बातो के तात्पर्य का निषेध करते हैं और सामाजिक आदर्श जितना वास्तव में पूरा होता है, उससे अधिक पूरा होने की बात जाहिर करते हैं, पर अधिक अच्छा यह है कि मनोविज्ञान ही सचाई बताए और यह कार्य विश्वनिन्दक या 'सिनिक' लोगो के लिए न छोड दे। यह सच है कि यह सामान्य निषेध सिर्फ वास्तविक जीवन के बारे में किया जाता है, क्योकि नाटक-उपन्यास में ऊपर बताए गए प्रेरक भावो का प्रयोग करने की आजादी है, जिससे इन आदर्शों को भारी चोट पहुचती है।

इसलिए यदि अधिकतर लोगो के स्वप्नो से यह प्रकट होता है कि वे अपने जनको की, विशेषरूप से उस जनक की, जो स्वप्न-द्रष्टा के समान लिंग वाला है, मृत्यु चाहते हैं तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नही। हम यह मान सकते हैं कि यह इच्छा जागृत जीवन मे भी, कभी-कभी चेतना में भी रहती है, यदि वह किसी और प्रेरक भाव के पीछे अपने को छिपा सके, जैसे कि हमारे तीसरे उदाहरण में स्वप्न-द्रष्टा ने अपने पिता के बेकार कष्ट सहन पर दया के द्वारा अपने वास्तविक विचार को छिपा दिया। ऐसा बहुत कम होता है कि विरोध-भाव अकेला ही बना रहे—अधिकतर यह कोमल भावनाओ के सामने झुक जाता है, और वे अन्त में इसे अवरुद्ध कर देती हैं, अर्थात् दबा देती हैं, और यह पड़ा रहता है, और अन्त मे स्वप्न मानो इसे अकेले रूप मे प्रदर्शित करता है। जिस चीज को स्वप्न इस अकेले-पन द्वारा बहुत बढाए गए रूप में दिखाता है, वह तब अपना असली आकार ग्रहण कर लेती है, जब हमारा निर्वचन स्वप्न-द्रष्टा के शेप जीवन की दृष्टि से इसे इसका उचित स्थान दे दे (एच सैक्स)। पर यह मृत्यु की इच्छा हमें वहा भी दिखाई देती है जहा वास्तविक जीवन में इसका कोई आधार नही होता, और जहा बडी उम्र वाले युवक को कभी भी यह स्वीकार नही करना पडेगा कि उसने जागृत जीवन में इसे अपनाया था। इसका कारण यह है कि विरोध का, विशेपरूप मे एक ही लिंग वाले जनक और सन्तान में आपसी विरोध का, सबसे गहरा और सबसे आम प्रेरक कारण बालकपन के आरम्भिक वर्षो मे क्रियाशील हुआ था।

मेरा सकेत अनुराग-भावनाओ की उस प्रतिद्वन्द्विता की ओर है जिसमें लिंग सम्बन्धी तत्वो पर स्पष्टत बल होता है। पुत्र जब बहुत छोटा होता है, तभी उसमें अपनी माता के प्रति एक विशेष ममता पैदा होने लगती है—वह अपनी माता को अपनी निजी सम्पत्ति समझता है और पिता को ऐसे प्रतिद्वन्द्वी के रूप में देखता है जो उस अकेले की इस सम्पत्ति, उसके इस एकाकी स्वामित्व, का विरोधी है। इसी प्रकार, छोटी लडकी अपनी माता को ऐसे व्यक्ति के रूप में देखती है जो उसके पिता के साथ उसके अनुराग के सम्बन्ध मे बाधा डालती है, और ऐसा स्थान घेरे

प्राप्त करने के लिए होड न होती हो, उन सबकी साझी सम्पत्ति के लिए मुकावला न होता हो, और जिस कमरे में वे रहते हैं, उसमें जगह घेरने के लिए एक दूसरे से वढने की कोशिश न होती हो, और इन्हींके परिणामस्वरूप मार-पीट के झगडे न होते हो। यह विरोध-भाव छोटे भाइयो और वहनो की तरह वडो से भी होता है। मेरा ख्याल है कि वर्नार्ड शॉ ने ही यह लिखा है "अंग्रेज युवती अपनी माता के बाद दूसरे नम्वर पर जिससे घृणा करती है वह उसकी वडी बहन है।" इस कथन में कुछ ऐसी वात है जो हमारे कानो को खटकती है। हमारे लिए वहनो और भाइयो की आपसी घृणा और मुकावलेवाजी को समझना वडा ही कठिन है, पर घृणा की भावनाए माता और पुत्री के तथा जनको और सन्तानो के सम्वन्ध के वीच में कैसे घुस सकती है ?

यह सम्वन्ध वच्चो के दृष्टिकोण से भी नि सन्देह अधिक अनुकूल है, और इसी-की हम आशा भी करते है। भाइयो और वहनो में प्रेम न होने की अपेक्षा जनको और सन्तानो में प्रेम न होना कही अधिक बुरा मालूम होता है। यह कहा जा सकता है कि दूसरे प्रकार के प्रेम को हमने पवित्र मान लिया है जव कि पहले प्रकार के प्रेम को अपवित्र हो जाने दिया है। तो भी, रोज के तजुरवे से हमें यह पता चल सकता है कि जनको और वडी उम्र के वालको में एक दूसरे के प्रति जो भावनाए होती है, वे वहुधा समाज द्वारा स्थापित आदर्श से नीचे होती है और कितनी ही विरोध-भावना अन्दर ही अन्दर सुलगती रहती है, और यदि पितृभक्ति या मातृ-भक्ति या अन्य कोमल भावनाओ के विचार से उन्हे न दवाया जाए तो वे किसी समय ज्वाला के रूप में फूट निकलें। इस विरोध के प्रेरक कारण सुविदित है, और एक ही लिङ्ग के व्यक्तियो में परस्पर विरोध होने की, अर्थात् पुत्री का माता से, और पिता का पुत्र से विरोध होने की प्रवृत्ति हम देखते हैं। पुत्री को उसकी माता ऐसे हाकिम के रूप म दिखाई देती है जो उसकी इच्छाओ पर रुकावटें लगाती है, और जिसका काम यही है कि वह अपनी पुत्री से यौन आजादी का उतना त्याग कराए जितना समाज चाहता है। कुछ अवस्थाओ में माता भी प्रतिद्वन्द्वी होती है, जो उपेक्षित नही होना चाहती। यही वात पिता और पुत्र के वीच और भी उग्ररूप में होती है। पुत्र के लिए पिता उन सामाजिक वन्धनो का मूर्तरूप है जिन्हे वह वडी अनिच्छा से स्वीकार करता है। उसके लिए पिता ही वह व्यक्ति है जो वालकपन के यौन आनन्दो की ओर जव पारिवारिक सम्पत्ति हो तव उसका सुख भोगने की उसकी इच्छा पूरी करने के मार्ग में रुकावट वनता है। जव राज-सिंहासन का प्रश्न हो, तव यह अधीरता दुखदायी तीव्रता तक जा पहुचती है। पिता और पुत्री या माता और पुत्र का सम्वन्ध कम विनाशकारी मालूम होता है। माता और पुत्र का सम्वन्ध अपरिवर्तित कोमलता का सवसे शुद्ध उदाहरण है, जिसमें अहकार की किसी भावना से फर्क नही पडता।

आप पूछेंगे कि मैं ऐसी तुच्छ और हर किसीको ज्ञात बातो की चर्चा क्योंकर रहा हू । इसका कारण यह है कि लोगो के मनो में यह असन्दिग्ध प्रवृत्ति मौजूद है कि वे वास्तविक जीवन मे इन बातो के तात्पर्य का निषेध करते है और सामाजिक आदर्श जितना वास्तव मे पूरा होता है, उससे अधिक पूरा होने की बात जाहिर करते है, पर अधिक अच्छा यह है कि मनोविज्ञान ही सचाई बताए और यह कार्य विश्वनिन्दक या 'सिनिक' लोगो के लिए न छोड दे । यह सच है कि यह सामान्य निषेध सिर्फ वास्तविक जीवन के बारे में किया जाता है; क्योकि नाटक-उपन्यास में ऊपर बताए गए प्रेरक भावो का प्रयोग करने की आजादी है, जिससे इन आदर्शो को भारी चोट पहुंचती है ।

इसलिए यदि अधिकतर लोगो के स्वप्नो से यह प्रकट होता है कि वे अपने जनको की, विशेषरूप से उस जनक की, जो स्वप्न-द्रष्टा के समान लिंग वाला है, मृत्यु चाहते है तो इसमे आश्चर्य की कोई बात नही । हम यह मान सकते है कि यह इच्छा जागृत जीवन में भी, कभी-कभी चेतना में भी रहती है, यदि वह किसी और प्रेरक भाव के पीछे अपने को छिपा सके, जैसे कि हमारे तीसरे उदाहरण में स्वप्न-द्रष्टा ने अपने पिता के बेकार कष्ट सहन पर दया के द्वारा अपने वास्तविक विचार को छिपा दिया । ऐसा बहुत कम होता है कि विरोध-भाव अकेला ही बना रहे—अधिकतर यह कोमल भावनाओ के सामने झुक जाता है, और वे अन्त में इसे अवरुद्ध कर देती हैं, अर्थात् दबा देती हैं, और यह पडा रहता है, और अन्त में स्वप्न मानो इसे अकेले रूप में प्रदर्शित करता है । जिस चीज़ को स्वप्न इस अकेले-पन द्वारा बहुत बढाए गए रूप मे दिखाता है, वह तब अपना असली आकार ग्रहण कर लेती है, जब हमारा निर्वचन स्वप्न-द्रष्टा के शेष जीवन की दृष्टि से इसे इसका उचित स्थान दे दे (एच सैक्स) । पर यह मृत्यु की इच्छा हमें वहा भी दिखाई देती है जहा वास्तविक जीवन में इसका कोई आधार नही होता, और जहा बड़ी उम्र वाले युवक को कभी भी यह स्वीकार नही करना पडेगा कि उसने जागृत जीवन में इसे अपनाया था । इसका कारण यह है कि विरोध का, विशेषरूप से एक ही लिंग वाले जनक और सन्तान मे आपसी विरोध का, सबसे गहरा और सबसे आम प्रेरक कारण बालकपन के आरम्भिक वर्षो मे क्रियाशील हुआ था ।

मेरा संकेत अनुराग-भावनाओ की उस प्रतिद्वन्द्विता की ओर है जिसमें लिंग सम्बन्धी तत्वो पर स्पष्टत बल होता है । पुत्र जब बहुत छोटा होता है, तभी उसमें अपनी माता के प्रति एक विशेष ममता पैदा होने लगती है—वह अपनी माता को अपनी निजी सम्पत्ति समझता है और पिता को ऐसे प्रतिद्वन्द्वी के रूप में देखता है जो उस अकेले की इस सम्पत्ति, उसके इस एकाकी स्वामित्व, का विरोधी है । इसी प्रकार, छोटी लड़की अपनी माता को ऐसे व्यक्ति के रूप में देखती है जो उसके पिता के साथ उसके अनुराग के सम्बन्ध में बाधा डालती है, और ऐसा स्थान घेरे

प्राप्त करने के लिए होड न होती हो, उन सबकी साझी सम्पत्ति के लिए मुकाबला न होता हो, और जिस कमरे में वे रहते है, उसमें जगह घेरने के लिए एक दूसरे से वढने की कोशिश न होती हो, और इन्हींके परिणामस्वरूप मार-पीट के झगडे न होते हो। यह विरोध-भाव छोटे भाइयो और वहनो की तरह वडो से भी होता है। मेरा ख्याल है कि वर्नार्ड शॉ ने ही यह लिखा है "अंग्रेज युवती अपनी माता के वाद दूसरे नम्वर पर जिससे घृणा करती है वह उसकी वडी वहन है।" इस कथन में कुछ ऐसी वात है जो हमारे कानो को खटकती है। हमारे लिए वहनो और भाइयो की आपसी घृणा और मुकावलेवाजी को समझना वडा ही कठिन है, पर घृणा की भावनाए माता और पुत्री के तथा जनको और सन्तानो के सम्वन्ध के वीच में कैसे घुस सकती है ?

यह सम्वन्ध वच्चो के दृष्टिकोण से भी नि सन्देह अधिक अनुकूल है, और इसी-की हम आशा भी करते है। भाइयो और वहनो में प्रेम न होने की अपेक्षा जनको और सन्तानो में प्रेम न होना कही अधिक वुरा मालूम होता है। यह कहा जा सकता है कि दूसरे प्रकार के प्रेम को हमने पवित्र मान लिया है जब कि पहले प्रकार के प्रेम को अपवित्र हो जाने दिया है। तो भी, रोज के तजुरवे से हमें यह पता चल सकता है कि जनको और वडी उम्र के वालको में एक दूसरे के प्रति जो भावनाए होती है, वे वहुधा समाज द्वारा स्थापित आदर्श से नीचे होती है और कितनी ही विरोध-भावना अन्दर ही अन्दर सुलगती रहती है, और यदि पितृभक्ति या मातृ-भक्ति या अन्य कोमल भावनाओ के विचार से उन्हें न दवाया जाए तो वे किसी समय ज्वाला के रूप में फूट निकलें। इस विरोध के प्रेरक कारण सुविदित है, और एक ही लिङ्ग के व्यक्तियो में परस्पर विरोध होने की, अर्थात् पुत्री का माता से, और पिता का पुत्र से विरोध होने की प्रवृत्ति हम देखते है। पुत्री को उसकी माता ऐसे हाकिम के रूप म दिखाई देती है जो उसकी इच्छाओ पर रुकावटें लगाती है, और जिसका काम यही है कि वह अपनी पुत्री से यौन आजादी का उतना त्याग कराए जितना समाज चाहता है। कुछ अवस्थाओ में माता भी प्रतिद्वन्द्वी होती है, जो उपेक्षित नही होना चाहती। यही वात पिता और पुत्र के वीच और भी उग्ररूप में होती है। पुत्र के लिए पिता उन सामाजिक वन्धनो का मूर्तरूप है जिन्हे वह वडी अनिच्छा से स्वीकार करता है। उसके लिए पिता ही वह व्यक्ति है जो वालकपन के यौन आनन्दो की ओर जव पारिवारिक सम्पत्ति हो तव उसका सुख भोगने की उसकी इच्छा पूरी करने के मार्ग में रुकावट वनता है। जव राज-सिंहासन का प्रश्न हो, तव यह अधीरता दुखदायी तीव्रता तक जा पहुचती है। पिता और पुत्री या माता और पुत्र का सम्वन्ध कम विनाशकारी मालूम होता है। माता और पुत्र का सम्वन्ध अपरिवर्तित कोमलता का सवसे शुद्ध उदाहरण है, जिसमें अहकार की किसी भावना से फर्क नहीं पडता।

और इससे घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाली वह ग्रन्थि दिखाई देती है जिसे **वधियाकरण ग्रन्थि** (कैस्ट्रेशन कम्प्लेक्स) कहते हैं, अर्थात् मैथुन सम्बन्धी मामलो के क्षेत्र में डराए जाने की प्रतिक्रिया या शुरू की शैशवीय यौन चेष्टा की उस रुकावट की प्रतिक्रिया, जो पिता द्वारा लगाई गई, कही जाती है।

अब तक हमने जो बाते निश्चित रूप से जान ली है, उनसे बालक के मानसिक जीवन का अध्ययन करने में हमें मदद मिली है और अब हम इसी तरह स्वप्नो में दिखाई देने वाली दूसरे प्रकार की प्रतिषिद्धि इच्छाओ, अर्थात् बहुत अधिक कामुक इच्छाओ, के उद्भव की व्याख्या प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं। इसलिए हमे बालक के यौन जीवन के परिवर्धन का अध्ययन करना पडता है, और इसमे हमें विभिन्न स्थानो से इन तथ्यो की जानकारी मिलती है। प्रथम तो, यह सब निराधार कल्पना है कि बालक का यौन जीवन नही होता और उसमें यौन भावना सबसे पहले तरुणावस्था में दिखाई देती है, जब उसकी जननेन्द्रिया परिपक्व अवस्था में आ जाती हैं। इसके विपरीत, उसका शुरू से एक यौन जीवन होता है जो वस्तु की दृष्टि से समृद्ध होता है, यद्यपि यह अनेक बातो में उस यौन जीवन से भिन्न होता है जो बाद में प्रकृत[1] या सामान्य माना जाता है। वयस्क जीवन मे जिन्हे (काम) विकृतिया[2] कहते है, उनमें, और प्रकृत या सामान्य यौन जीवन में इन दृष्टियो से अन्तर होता है · (१) (काम) विकृति मे स्पीशीज के भेद (अर्थात् मनुष्य और पशु के बीच के अन्तर) को भुला दिया जाता है, (२) इसमें विरक्ति द्वारा लगाई गई रुकावटो को महसूस नही किया जाता, (३) निषिद्ध संभोग की रुकावट (नजदीकी रक्त-सम्बन्धियो से यौन परितुष्टि करने का निषेध) को पार कर लिया जाता है, (४) सम मैथुन, अर्थात् समान लिंग वाले व्यक्ति से यौन परितुष्टि की जाती है और (५) जननेन्द्रियो द्वारा किया जाने वाला कार्य शरीर के अन्य अगो और विभिन्न क्षेत्रो से कर दिया जाता है। ये सब रुकावटे शुरू से ही मौजूद नही होती, बल्कि परिवर्धन और शिक्षण के समय थोडी-थोडी करके बनती हैं। छोटे बच्चे मे ये नही होती। उसे मनुष्य और पशु में बहुत भारी अन्तर नही दीखता। मनुष्य जिस दर्प से अपने आपको दूसरे पशुओ से अलग करता है, वह उसमें बाद में उदय होता है। उसे जीवन के आरम्भ में टट्टी या पाखाने से कोई विरक्ति नही होती। वह इसे शिक्षण के प्रभाव से धीरे-धीरे सीखता है, वह लिंगो के अन्तर को कोई खास महत्व नही देता, असल में तो वह यह समझता है कि दोनो में जननेन्द्रियो का निर्माण एक ही तरह होता है। वह अपनी आरम्भिक यौन इच्छाओ और अपनी उत्सुकता को अपने निकटतम लोगो या उन व्यक्तियो के प्रति ही प्रकट करता है जो अन्य कारणो से उसके विशेष प्रिय हो—उसके माता-पिता, भाई-बहिन, या धाय और अन्त में, हम उसमें वह विशेष बात देखते है जो बाद मे किसी प्रेम-सम्बन्ध

१. Normal २ Perversions.

हुए है जिसकी, वह अनुभव करती है कि, मै स्वय अच्छी तरह पूर्ति कर सकती हू। प्रेक्षण से पता चलता है कि इन भावनाओ का अस्तित्व कितना प्राचीन है। इन भावनाओ को हम **ओडिपस ग्रन्थि**[1] कहते है, क्योकि ओडिपस की कहानी में पुत्र की स्थिति से पैदा होने वाली इच्छाओ के दो चरम रूप—पिता को मार डालने और माता से विवाह करने की इच्छा—सिर्फ थोडे-से परिवर्तित रूप में पूरे हो जाते है। मै इस बात पर बल नही देता कि जनको और सतानो में जितने सम्बन्ध हो सकते है, वे सब ओडिपस ग्रथि के अन्तर्गत ही आते है। यह सम्बन्ध और भी अधिक उलझन भरे हो सकते है। फिर यह ग्रथि कम या अधिक परिवर्धित हो सकती है, या यह अपवर्तित हो सकती है, पर यह बालक के मानसिक जीवन मे एक नियमित और बहुत महत्वपूर्ण कारक है। इसके प्रभाव और इससे पैदा होने वाली अन्य घटनाओ का महत्व जितना अधिक समझा जाए, उतना ही थोडा है। इसके अलावा जनक बहुत बार स्वय बच्चो को ओडिपस ग्रथि से प्रतिक्रिया करने के लिए उद्दीपित करते है, क्योकि वे अपने बच्चो के लिंग-भेद के अनुसार प्राय उन्हें पसन्द या नापसन्द करते है, अर्थात् पिता पुत्री को और माता पुत्र को पसन्द करती है, या जहा पति-पत्नी का प्रेम शिथिल हो गया है, वहा सतान को प्रेम के उस आलबन का स्थानापन्न बना लिया जाता है, जिसका आकर्षण खत्म हो गया है।

यह नही कहा जा सकता कि ओडिपस ग्रथि की खोज के लिए ससार ने मनोविश्लेषण सम्बन्धी गवेषणा के प्रति बहुत कृतज्ञता प्रकट की है। इसके विपरीत, इस विचार से बडी उम्र के लोगो में बडा उग्र विरोध पैदा हुआ है और जिन्होने सब जगह निषिद्ध और घृणित माने जाने वाले भावो के अस्तित्व का खडन करने में अपनी आवाज नही उठाई, उन्होने बाद में ऐसे अप्रासगिक निर्वचन पेश करके उसकी कमी पूरी कर दी जिनसे ओडिपस ग्रन्थि का महत्व खत्म हो जाय। मेरा अपना यह अटल विश्वास है कि इसमें न तो कोई खडन करने योग्य बात है और न प्रसन्न होने की बात है—हमें उन तथ्यो से अपने मन की सगति बैठा लेनी चाहिए जिनमें यूनानी पौराणिक कथा को अटल नियति का हाथ दिखलाई देता था। फिर यह कितनी मनोरजक बात है कि ओडिपस ग्रथि, जिसको वास्तविक जीवन से दूरकर दिया गया है, और उपन्यासो में पहुचा दिया गया है, उनमें अपने पूर्णरूप में परिवर्धित हो गई है। ओ० रैंक ने इस आधार पर सावधानी से अध्ययन करके यह दिखलाया है कि किस तरह इसी ग्रन्थि से नाटकीय काव्य को असख्य रूपो, रूपभेदो और छिपे हुए रूपो में, सक्षेप में कहा जाए तो उसी तरह विपर्यस्त होकर जिस तरह स्वप्न-सेंसरशिप के कार्य में हम देख आए है, बडी मात्रा में प्रेरक भाव प्राप्त हुए है। इस प्रकार हम उन स्वप्न-द्रष्टाओ में ओडिपस ग्रन्थि तलाश कर सकते है जो सौभाग्यवश बाद के जीवन में अपने माता-पिता के साथ सघर्ष से बचे रहे है,

1 Oedipus complex

और इससे घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाली वह ग्रन्थि दिखाई देती है जिसे **बधियाकरण ग्रन्थि** (कैस्ट्रेशन कम्लेक्स) कहते है, अर्थात् मैथुन सम्बन्धी मामलो के क्षेत्र मे डराए जाने की प्रतिक्रिया या शुरू की शैशवीय यौन चेष्टा की उस रुकावट की प्रतिक्रिया, जो पिता द्वारा लगाई गई, कही जाती है।

अब तक हमने जो बाते निश्चित रूप से जान ली है, उनसे बालक के मानसिक जीवन का अध्ययन करने मे हमें मदद मिली है और अब हम इसी तरह स्वप्नो में दिखाई देने वाली दूसरे प्रकार की प्रतिषिद्ध इच्छाओ, अर्थात् बहुत अधिक कामुक इच्छाओ, के उद्भव की व्याख्या प्राप्त करने की आशा कर सकते है। इसलिए हमे बालक के यौन जीवन के परिवर्धन का अध्ययन करना पडता है, और इसमें हमें विभिन्न स्थानो से इन तथ्यो की जानकारी मिलती है। प्रथम तो, यह सब निराधार कल्पना है कि बालक का यौन जीवन नही होता और उसमे यौन भावना सबसे पहले तरुणावस्था में दिखाई देती है, जब उसकी जननेन्द्रिया परिपक्व अवस्था मे आ जाती है। इसके विपरीत, उसका शुरू से एक यौन जीवन होता है जो वस्तु की दृष्टि से समृद्ध होता है, यद्यपि यह अनेक बातो में उस यौन जीवन से भिन्न होता है जो बाद में प्रकृत[1] या सामान्य माना जाता है। वयस्क जीवन में जिन्हे (काम) विकृतिया[2] कहते है, उनमें, और प्रकृत या सामान्य यौन जीवन में इन दृष्टियो से अन्तर होता है (१) (काम) विकृति मे स्पीशीज के भेद (अर्थात् मनुष्य और पशु के बीच के अन्तर) को भुला दिया जाता है, (२) इसमें विरक्ति द्वारा लगाई गई रुकावटो को महसूस नही किया जाता, (३) निषिद्ध सभोग की रुकावट (नजदीकी रक्त-सम्बन्धियो से यौन परितुष्टि करने का निषेध) को पार कर लिया जाता है, (४) सम मैथुन, अर्थात् समान लिंग वाले व्यक्ति से यौन परितुष्टि की जाती है और (५) जननेन्द्रियो द्वारा किया जाने वाला कार्य शरीर के अन्य अगो और विभिन्न क्षेत्रो से कर दिया जाता है। ये सब रुकावटे शुरू से ही मौजूद नही होती, बल्कि परिवर्धन और शिक्षण के समय थोडी-थोडी करके बनती है। छोटे बच्चे में ये नही होती। उसे मनुष्य और पशु मे बहुत भारी अन्तर नही दीखता। मनुष्य जिस दर्प से अपने आपको दूसरे पशुओ से अलग करता है, वह उसमें बाद में उदय होता है। उसे जीवन के आरम्भ में टट्टी या पाखाने से कोई विरक्ति नही होती। वह इसे शिक्षण के प्रभाव से धीरे-धीरे सीखता है, वह लिंगो के अन्तर को कोई खास महत्व नहीं देता, असल में तो वह यह समझता है कि दोनो में जननेन्द्रियो का निर्माण एक ही तरह होता है। वह अपनी आरम्भिक यौन इच्छाओ और अपनी उत्सुकता को अपने निकटतम लोगो या उन व्यक्तियो के प्रति ही प्रकट करता है जो अन्य कारणो से उसके विशेष प्रिय हो—उसके माता-पिता, भाई-बहिन, या धाय और अन्त मे, हम उसमें वह विशेष बात देखते है जो बाद में किसी प्रेम-सम्बन्ध

१ Normal २ Perversions

के प्रवल होने पर उसमें फिर दिखाई देती है—अर्थात् वह अपनी परितुष्टि के लिए यौन अगो तक ही सीमित नही रहता, वल्कि यह जान जाता है कि शरीर के बहुत-से अन्य भागो में भी वैसी सवेदकता है, और उनसे भी वैसा सुखदायक सवेदन मिल सकता है, और उनसे वह जननेन्द्रियो का कार्य लेता है। तो, यह कहा जा सकता है कि वालक में **बहुरूपी (काम) विकृति**[1] होती है, और यदि उसमें इन सब आवेगो के लेश ही मिलते हैं, तो भी, इसका एक ओर तो यह कारण है कि इस समय वे उस रूप से कम तीव्र रूप में होते हैं, जो वे वाद के जीवन में हासिल कर लेते हैं, और दूसरी ओर शिक्षा वालक की सव यौन अभिव्यक्तियो को तुरन्त और प्रबलता से अवरुद्ध कर देती है, अर्थात् दवा देती है। इस अवरोध को एक सिद्धान्त का रूप दे दिया जाता है, क्योकि वडी आयु के लोग इनमें से कछ अभिव्यक्तियो को नजरन्दाज् करने की कोशिश करते हैं, और कुछ का गलत अर्थ लगाकर वे उन्हें उनके यौन स्वरूप से वचित करने की कोशिश करते हैं, यहा तक कि अन्त में सारी बात का पूरी तरह निपेध किया जा सकता है। ये प्राय वही लोग होते हैं जो पहले छोटे वच्चो के यौन 'नटखटपन' की निन्दा करते हैं, और उसके वाद अपने घर बैठकर उन्ही वच्चो की यौन शुद्धता का जोर-शोर से मडन करते हैं। जव वच्चो को आजाद छोड दिया जाए या जव उन्हें इस ओर वहकाया जाए तव उनमे काफी मात्रा में विकृत यौन व्यापार दिखाई देते हैं। वडे लोगो को इसे वहुत गम्भीरता से ग्रहण न करना और इसे 'वच्चो का खेल' समझना ठीक ही है, क्योकि वच्चो को वडो और पूरी तरह जिम्मेदार लोगो के नैतिक नियमो से नही नापा जा सकता। तो भी ये चीजें होती अवश्य हैं, और इस रूप में उनका महत्व भी है कि उनसे जन्मजात शारीरिक प्रवृत्तियो का पता चलता है, और उनसे वाद में होने वाले परिवर्धन उत्पन्न और पोपित होते हैं। उनसे हमें वच्चे के यौन जीवन का अन्तर्दर्शन होता है, और इस तरह सारी मानव जाति के यौन जीवन का अन्तर्दर्शन होता है। इसलिए यदि हमें अपने स्वप्नो के विपर्यासो के पीछे ये सव विकृत इच्छाए दिखाई देती हैं तो इसका यही अर्थ है कि इस वात में भी स्वप्न पूरी तरह प्रतिगामी होकर शैशवीय अवस्था में आ गये हैं।

इन निपिद्ध इच्छाओ में भी विशेप महत्व निपिद्ध सभोग की इच्छाओ अर्थात् उन इच्छाओ को देना चाहिए जो माता-पिता या भाई-वहिनो के साथ मैथुन करने की दिशा में होती हैं। आप जानते हैं कि मनुष्य-समाज ऐसे मैथुन को कितनी घृणा की दृष्टि से देखता है, या कम से कम घृणा की दृष्टि से देखने का दिखावा करता है, और इसको रोकने पर कितना वल दिया जाता है। निपिद्ध सम्भोग की इस भयकरता का कारण वताने के वडे अजीवोगरीव यत्न किए गए। कुछ लोगो

---

१ Polymorphous perversion

ने यह मान लिया है कि प्रकृति ने स्पीशीज को कायम रखने के लिए मन में स्वयं ये प्रतिषेध की भावनाए पैदा करके एक व्यवस्था कर दी है क्योंकि अन्तरभिजनन,[1] अर्थात् निकट सम्बन्धियो में विवाह, से मूल वंश का ह्रास हो जाएगा। कुछ लोगो ने इस बात पर बल दिया है कि बिलकुल बचपन से बहुत अधिक निकटता के कारण उन व्यक्तियो के प्रति यौन इच्छा दूर हो गई है। परन्तु इन दोनो अवस्थाओ में निषिद्ध सम्भोग से आप ही आप रक्षा हो जाती है, और हमें सख्त निषेध लागू करने की आवश्यकता समझ में नही आती, जिनसे प्रबल इच्छा का-सा सकेत मिलता है। मनोविश्लेषण के अनुसधानो ने बिलकुल निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया है कि असल मे **निषिद्ध प्रेम की इच्छा** सबसे पहले होती है, और यह इच्छा सदा होती है, और इसके प्रति विरोध बाद मे ही दिखाई देता है, और इस विरोध का कारण उस व्यक्ति के मनोविज्ञान में ढूढने की आवश्यकता नही। बाल मनोविज्ञान पर विचार करने से स्वप्नो को समझने के विषय में जो परिणाम निकले हैं, उनका साराश यह है · हमे पता चला है कि भूले हुए बाल्यकाल के अनुभवो की सामग्री न केवल स्वप्न की पहुच मे होती है, बल्कि बालक का मानसिक जीवन उसकी सब विशेषताओ, उसके अहकार, निषिद्ध सम्भोग के लिए उसके वस्तु-चुनाव को साथ लिए हुए उसमें बना रहता है, और इसलिए वह अचेतन में कायम रहता है, और कि हमारे स्वप्न हर रात हमें इस बचपन की अवस्था मे लौटा ले जाते हैं। इस कथन से इस विश्वास की पुष्टि होती है कि **अचेतन शैशवीय मानसिक जीवन ही है,** और इससे यह आपत्तियोग्य भावना, कि मनुष्य की प्रकृति में इतनी दुष्टता और बुराई दिखाई देती है, कुछ कम हो जाती है, क्योंकि यह भयकर दुष्टता और बुराई सिर्फ वही चीज है जो मानसिक जीवन मे मूल आदिकालीन और बचपन का अश है, जो हमे बच्चो मे कार्य करता दिखाई देता है, जिसकी हम अगत इसलिए उपेक्षा कर देते हैं कि वह इतने छोटे पैमाने पर होता है, और अशत इसलिए उपेक्षा कर देते हैं कि हम बच्चो मे आचार सम्बन्धी उचे मानदण्ड की आशा नही करते। इस बचपन की अवस्था मे लौटकर हमारे स्वप्न हमारी बुराई और दुष्टता को बाहर लाते हुए दिखलाई देते हैं, पर यह दिखलावा धोखे मे डालने वाला है, हालाकि हम इससे भयभीत हो गए हैं, हम उतने बुरे नही हैं जितने स्वप्न के निर्वचन के कारण मालूम होने लगते हैं।

यदि हमारे स्वप्नो के दुष्ट आवेग सिर्फ बचपन के या शैशवीय हैं, यदि हमारे आचार सम्बन्धी परिवर्धन का शुरू का रूप है, यदि स्वप्न हमें विचार और भावना में बालक बनाने का कार्यमात्र करता है तो इन बुरे स्वप्नो पर शर्मिदा होना तर्कसगत नहीं। परन्तु तर्क करने की योग्यता हमारे मानसिक जीवन का सिर्फ एक अश है।

---

१ In-breeding

इसके अलावा, उसमें और बहुत कुछ है जो तर्कसगत नही और होता यह है कि तर्कसगत न होते हुए भी ऐसे स्वप्नो पर शर्मिन्दा होते हैं । हम इनपर स्वप्न-सेंसरशिप की क्रिया करते हैं और जब इनमें से कोई इच्छा अपवाद रूप से ऐसे स्पष्ट रूप से हमारी चेतना में घुस आती है कि हम इसे पहचान जाते हैं, तब हमें शर्म और गुस्सा महसूस होता है, हा, हम कभी-कभी किसी विपर्यस्त स्वप्न पर ठीक इस तरह शर्मिन्दा होते हैं जैसे हम इसे सचमुच का समझते थे। जरा उस सम्मानित बुजुर्ग महिला के 'प्रेम-सेवा' विपयक स्वप्न पर, उसकी परेशानी भरी वात पर, गौर कीजिए, यद्यपि उसका अर्थ उसके सामने कभी पेश नही किया गया। इस प्रकार, समस्या अभी हल नही हुई और अब भी यह सम्भव है कि यदि हम स्वप्नो में वुराई के इस प्रश्न पर और आगे विचार करें तो किसी और निष्कर्ष पर तथा मनुष्य-स्वभाव के किसी और अन्दाजे पर पहुच जाए।

अपनी सारी जाच-पडताल से हम दो परिणामो पर पहुचे, पर इनसे नई समस्याओ और नए सदेहो के शुरू होने का ही सकेत मिलता है। प्रथम, स्वप्नो में प्रतिगमन सिर्फ रूप का नही होता, वलिक अत सार का भी होता है। यह हमारे विचारो का अभिव्यक्ति के आदिम रूप में अनुवाद ही नही कर देता, वलिक हमारे आदिमकालीन मानसिक जीवन की विशेपताओ—अहकार की पुरानी प्रधानता तथा हमारे यौन जीवन के आरम्भिक आवेगो—को भी फिर जगा देता है, और हमें हमारे वौद्धिक विचार भी प्राप्त करा देता है, वशर्ते कि हम प्रतीकात्मकता की इस प्रकार धारणा वना सकें। और दूसरे ये सव पुरानी शैशवीय विशेपताए, जो कभी प्रधान और एकमात्र प्रधान थी, आज अचेतन में चली गई माननी होगी, और हमें इसके वारे में अपने विचारो को वदलना और वढाना होगा। अव 'अचेतन' शव्द सिर्फ उसका वाचक नही जो अस्थायी रूप से अर्थात् कुछ समय के लिए गुप्त है अचेतन एक विशेप प्रदेश है जिसकी अपनी अलग इच्छाए और अभिव्यक्ति की अलग रीतिया हैं और विशेप मानसिक तत्र और प्रक्रियाए हैं जो और जगह कार्य नही करती। परन्तु हमारे निर्वचन से प्रकट होनेवाले गुप्त विचार इस प्रदेश के निवासी नही होते, वे तो उस तरह के विचारो जैसे होते हैं जो जागृत जीवन में भी हमारे अन्दर रहते हैं, और फिर भी वे अचेतन हैं इस विरोधाभास का परिहार कैसे किया जाए ? हमें यह अनुभव होने लगता है कि यहा हमें विवेक से काम लेना होगा। एक चीज जो हमारे चेतन जीवन में उत्पन्न होती है और जिसमें इसकी विशेपताए होती हैं—हम इसे पिछले दिन का 'अवशेप' कहते हैं—अचेतन प्रदेश की एक वस्तु मे मिलकर स्वप्न का निर्माण करती है, और दो प्रदेशो के वीच में ही स्वप्न-तत्र पूरा हो जाता है। इस अवशेप पर अचेतन के प्रभाव का आघात होना ही सम्भाव्यत प्रतिगमन के लिए अनिवार्य शर्त है। मन के अन्य क्षेत्रो की खोज करने से पहले तक हमारे लिए स्वप्नो की प्रकृति के वारे में अधिक गहरी जा सकने वाली

अन्तर्दृष्टि यही है, पर शीघ्र ही गुप्त स्वप्न-विचारो के अचेतनस्वरूप को दूसरा नाम देना होगा, ताकि इसका उस अचेतन सामग्री से विभेद किया जा सके जो शैशवीय क्षेत्र में आती है।

हम नि सन्देह यह भी पूछ सकते हैं . सोते हुए हमारे मानसिक व्यापार को ऐसे प्रतिगमन पर जबर्दस्ती कौन पहुचाता है ? नीद को बिगाड़ने वाले मानसिक उद्दीपनो पर बिना इसके क्यो विचार नही किया जा सकता और यदि स्वप्न-सेंसरशिप के कारण मानसिक व्यापार को अपने आपको पुराने और अब समझ मे न आने वाले अभिव्यक्ति-रूपो में छिपाना पड़ता है, तो उन पुराने आवेगो, इच्छाओ और विशेषताओ को, जो अब दबाई जा चुकी हैं, पुन जिन्दा करने का उद्देश्य क्या है ? संक्षेप में, **रूप और अन्तःसार में** प्रतिगमन का क्या लाभ है ? इसका एकमात्र सन्तोषजनक उत्तर यह होगा कि स्वप्नो के बन सकने का यह एक सभव तरीका है कि, गतिकीय दृष्टि से विचार करें तो, स्वप्न को जन्म देने वाले उद्दीपन से और किसी तरह छुटकारा नही मिल सकता, पर यह ऐसा उत्तर है जिसे उचित सिद्ध करने के लिए इस समय हमारे पास कोई युक्ति नही है।

व्याख्यान | १४

इच्छा-पूर्ति

क्या मैं उन क्रमिक पडावो की आपको फिर याद दिलाऊ जिनसे हम अपनी वर्तमान अवस्था में पहुचे है ? जब अपनी विधि का प्रयोग करते हुए हम स्वप्नो में होने वाले विपर्यास पर पहुचे थे, तब हमने कुछ समय के लिए इस पर विचार छोड देने का निश्चय किया था और स्वप्नो की प्रकृति के बारे में कोई निश्चित जानकारी हासिल करने के लिए बचपन के स्वप्नो पर विचार किया था। इसके बाद इस जाच के परिणाम प्राप्त करके हमने सीधे ही स्वप्न-विपर्यास की समस्या पर विचार किया और मुझे आशा है कि थोडा-थोडा करके हमने इसे अच्छी तरह समझ लिया है। परन्तु अब हमें यह मानना पडेगा कि इन दो दिशाओ में हम जिन परिणामो पर पहुचे है, वे पूरे-पूरे मेल नही खाते और यही उचित होगा कि हम अपने परिणामो में मेल बैठाए।

दोनो जाच-पडतालो से यह स्पष्ट हो गया है कि स्वप्न-तत्र की सारभूत विशेषता यह है कि विचारो का मतिभ्रमात्मक अनुभव में रूपान्तर हो जाता है। यह देखकर चकित रह जाना पडता है कि यह प्रक्रम कैसे हो जाता है, परन्तु यह सामान्य मनोविज्ञान के विचार करने की समस्या है, और हमें यहा इस पर विचार नही करना है। बालको के स्वप्नो से हमें यह पता चला है कि स्वप्न-तत्र का उद्देश्य किसी इच्छा की पूर्ति द्वारा ऐसे मानसिक उद्दीपन को दूर कर देना है जो नीद में बाधा डाल रहा है। विपर्यस्त स्वप्नो के बारे में हम कोई ऐसी ही बात तब तक नही कह सकते थे, जब तक हम उनके अर्थ लगाने का तरीका न समझ लें, पर शुरू मे ही हमें यह आशा थी कि हम उनके विषय में अपने विचारो का अपने शैशवीय स्वप्न विषयक विचारो से मेल बैठा सकेंगे। यह आशा पहली बार तब पूरी हुई जब हमने यह देखा कि सब स्वप्न असल में शैशवीय स्वप्न है, कि उनमें बचपन की सामग्री का प्रयोग होता है, और बच्चो के मन में रहने वाले आवेग और तत्र उनमें स्पष्ट रूप से होते है। जब यह महसूस करते है कि स्वप्नो में होनेवाले विपर्यास को हमने अच्छी तरह समझ लिया है, तब हमें यह

पता लगाना चाहिए कि यह धारणा विपर्यस्त स्वप्नो के बारे में भी सही है या नही, कि स्वप्न इच्छा-पूर्ति होते हैं।

अभी हमने कई स्वप्न का अर्थ लगाया था, पर उनमें इच्छा-पूर्ति के प्रश्न पर बिलकुल विचार नही किया था। मैं निश्चित रूप से समझता हू कि उनपर विचार करते हुए यह प्रश्न बार-बार आपके मन में उठता रहा · "उस इच्छा-पूर्ति का क्या हुआ जिसे स्वप्न-तत्र का उद्देश्य माना जाता है?" यह प्रश्न अवश्य महत्वपूर्ण है, क्योंकि सामान्य लोगो मे से हमारे आलोचक निरन्तर यह प्रश्न पूछते हैं। आप जानते ही हैं कि मनुष्य जाति में बौद्धिक नवीनताओ के प्रति सहज उदासीनता है। इसके प्रकट होने का एक तरीका यह है कि ऐसी किसी भी नवीनता को तुरन्त उसके छोटे से छोटे रूप में ले आया जाता है और यदि सम्भव हो तो उसे किसी रूढोक्ति का रूप दे दिया जाता है। 'इच्छा-पूर्ति' स्वप्नो के नए सिद्धात के लिए एक रुढि बात हो गई है। लोग सुनते है कि स्वप्नो को इच्छा-पूर्ति बताया जाता है। तब वे पूछते है "इच्छापूर्ति कहा से पैदा होती है?" और उनके यह प्रश्न पूछने का अर्थ यह है कि वे उस विचार को ही अस्वीकार करते हैं। उन्हे तुरन्त अपने ऐसे असख्य स्वप्न याद आ जाते हैं जिनमें बडी अप्रिय भावना अनुभव हुई थी, और कभी-कभी तो बड़ा पीडाकारक भय तक अनुभव हुआ था, और इस प्रकार स्वप्नो के विषय में मनोविश्लेपण के सिद्धान्त का यह कथन उन्हे बहुत असम्भाव्य मालूम होता है। इसका आसानी से यह जवाब दिया जा सकता है कि विपर्यस्त स्वप्नो में इच्छा-पूर्ति खुले रूप में प्रकट नही होती, बल्कि उसे खोजना पडता है। इसलिए यह तब तक प्रदर्शित नही की जा सकती जब तक स्वप्नो का अर्थ न लगाया गया हो। आप यह भी जानते हैं कि इन विपर्यस्त स्वप्नो की तह में कार्य कर रही इच्छाए वे होती है जिन्हे सेंसरशिप ने निषिद्ध और अस्वीकृत कर दिया है, और कि उनके होने के कारण ही विपर्यास पैदा होता है, और सेंसरशिप का हस्तक्षेप होता है। परन्तु सामान्य व्यक्ति को यह समझना कठिन है कि हमे स्वप्न का अर्थ लगाने से पहले उसमें इच्छा-पूर्ति होने के विषय में प्रश्न नही उठाना चाहिए। वह सदा इस बात को भूल जाता है। उसकी इच्छा-पूर्ति के सिद्धान्त को मानने की इच्छा असल में स्वप्न-सेसरशिप का ही परिणाम है, जो उसे वास्तविक विचार के स्थान पर एक स्थानापन्न लाने को प्रेरित करती है, और इन काट-छाट की हुई स्वप्न-इच्छाओ को उसके अस्वीकार कर देने से ही पैदा होती है।

नि सन्देह, हमें खुद यह आवश्यकता महसूस होनी चाहिए कि इतने सारे स्वप्नो की वस्तु कष्टकारक होने का स्पष्टीकरण करे, पर विशेष रूप से हम यह जानना चाहेगे कि हमें चिन्ता-स्वप्न क्यो आते है। यहा पहली बार, हमारे सामने स्वप्नों मे भावो या मनोविकारो की समस्या आती है। इस समस्या पर विशेष विचार करने की आवश्यकता है, पर बदकिस्मती से हम इनपर इस समय विचार नहीं कर

सकते। यदि स्वप्न इच्छा-पूर्ति है तो कोई कष्टदायक भाव कभी भी इसमें नही आने चाहिए इस वारे में सामान्य आदमी का कहना ठीक मालूम होता है, पर इस मामले मे तीन वातें उलझनें पैदा करती है, जिन्हें सामान्य लोग नजरदाज कर देते हैं।

पहली हो सकता है कि स्वप्न-तत्र इच्छा-पूर्ति की सृष्टि करने में पूरी तरह सफल न हुआ हो, और इस कारण गुप्त विचारो की कष्टकारी भावना का कुछ अश व्यक्त स्वप्न में भी आ गया हो। तब मनोविश्लेषण को यह दिखाना होगा कि ये विचार उस स्वप्न की अपेक्षा वहुत अधिक कष्टकारी थे, जो इनसे बना है। इतनी वात हर उदाहरण में सिद्ध की जा सकती है। तो हम स्वीकार करते हैं कि स्वप्न-तत्र का प्रयोजन सफल नही हुआ क्योंकि प्यास के उद्दीपन से उत्पन्न पीने के स्वप्न से वह प्यास नही बुझती। इसके बाद भी आदमी प्यासा रहता है और उसे जागकर पानी पीना पडता है। तो भी, यह एक ठीक स्वप्न है, इसमें इसके सारभूत स्वरूप की किसी वात का अभाव नही है। हर सूरत में स्पष्ट रूप से पह-चाना जा सकने वाला आशय तो प्रशसनीय है ही। स्वप्न-तत्र में विफलता होने के ये उदाहरण वहुत काफी मिलते हैं, और इसका एक कारण यह है कि स्वप्न-तत्र के लिए वस्तु का रूप-भेद करने की अपेक्षा भाव के स्वरूप में अभीष्ट परिवर्तन लाना वहुत कठिन होता है। भाव प्राय वश में नही आते, इसलिए यह होता है कि स्वप्न-तत्र के प्रक्रम में स्वप्न-विचारो की कष्टकारक **वस्तु** इच्छा-पूर्ति का रूप ले लेती है, पर कष्टकारक **भाव** जैसे का तैसा कायम रहता है। जव यह होता है तव भाव और वस्तु में कोई मेल नही होता, जिससे आलोचको को यह कहने का अवसर मिलता है कि स्वप्न इच्छा-पूर्ति से विलकुल भिन्न चीज हैं क्योंकि हानिरहित वस्तु के साथ भी स्वप्न में कष्टकारक भावनाए जुडी होती हैं। इस नासमझी की-सी वात का हम यह उत्तर देंगे कि इस तरह के स्वप्नो में ही स्वप्न-तत्र की इच्छा-पूर्ति की प्रकृति सबसे अधिक दिखाई देती है, क्योंकि यह वहा सबसे अलग अकेली नज़र आती है। इस आलोचना में भूल इसलिए होती है कि जो लोग स्नायु-रोगो से परिचित नही हैं, वे वस्तु और भाव में वस्तुत जितना सम्बन्ध है, उससे अधिक नजदीकी सबध की कल्पना करते हैं, और इसलिए यह नही समझ सकते कि वस्तु में परिवर्तन होते हुए भी उसके साथ वाला भाव अपरिवर्तित रह सकता है।

दूसरी वात, जो इससे भी अधिक महत्व की है पर साधारण लोगो द्वारा इसी तरह उपेक्षित कर दी जाती है, यह है इच्छापूर्ति से निश्चित रूप से कुछ सुख मिलना चाहिए, पर वे पूछते हैं "किसे ?" नि सन्देह उस व्यक्ति को जिसमें वह इच्छा है, पर हम जानते हैं कि स्वप्न-द्रष्टा का अपनी इच्छाओं के प्रति एक विचित्र रुख होता है, वह उन्हे अस्वीकार करता है, उनमें काट-छाट करता है, सक्षेप में, वह उनसे कोई वास्ता नही रखना चाहता। इसलिए उनकी पूर्ति उसे कोई सुख

नही दे सकती, वलिक इससे उल्टी अनुभूति देगी और यहा अनुभव से पता चलता है कि यह 'विपरीत या उलटी' अनुभूति जिसकी अभी व्याख्या करनी है, चिन्ता का रूप ग्रहण करती है। जहा तक स्वप्न-द्रष्टा की इच्छाओ का प्रश्न है, वे ऐसे दो पृथक् व्यक्तियो के समान है जो किसी महत्वपूर्ण साझी वात द्वारा घनिष्ट रूप से जुड़े हुए है। इसके विस्तार में जाने के वजाय मै आपको वह प्रसिद्ध 'परी की कहानी' याद दिलाऊगा, जिसमें आप इन सम्वन्धो की आवृत्ति होती देखेंगे [एक भली परी ने किसी गरीव आदमी और उसकी स्त्री से उनकी किन्ही तीन इच्छाए पूरी करने का वायदा किया। वे खुश हो गए और उन्होने अपनी इच्छाए सावधानी से चुनने का निश्चय किया। परन्तु स्त्री अगली झोपडी मे पकाए जा रहे कोपते की गन्ध से आकृष्ट हो गई, और उसने उस जैसे दो कोपते अपने लिए प्राप्त करने की इच्छा की, और वे फौरन हाजिर हो गए--इस तरह पहली इच्छा पूरी हो गई। इसपर पुरुष आपे से वाहर हो गया और गुस्से में उसने यह इच्छा की कि वे दोनो कोफ्ते उसकी पत्नी की नाक की नोक पर लटक जाए। यह भी हो गया। वे कोफ्ते अपने स्थान से नही हटाए जा सके। इस तरह दूसरी इच्छा भी पूरी हो गई। पर यह पुरुष की इच्छा थी और इसकी पूर्ति स्त्री के लिए वहुत अप्रिय थी। वाकी कहानी आप जानते है क्योकि आखिरकार वे पति-पत्नी थे, इसलिए उसे तीसरी इच्छा यह करनी पडी कि कोफ्ते स्त्री की नाक की नोक पर से हट आवे।] हम इस परी की कहानी का दूसरे प्रसगो में वहुत वार प्रयोग कर सकते है, पर यहा मै इससे सिर्फ यह तथ्य स्पष्ट करना चाहता हू कि हो सकता है कि एक व्यक्ति की इच्छा की पूर्ति किसी दूसरे के लिए वड़ी अरुचिकर हो, जव तक कि वे दोनो व्यक्ति पूरी तरह एक रूप और एकात्म न हो।

अव 'चिन्ता-स्वप्नो' को और भी अधिक अच्छी तरह समझना कठिन नही रहेगा। एक प्रेक्षण का उपयोग और करना है, और इसके वाद हम ऐसी परिकल्पना वना सकते है जिसका कई वातो से समर्थन होता हो। वह प्रेक्षण यह है कि चिन्ता-स्वप्नो में प्राय ऐसी वस्तु होती है जिसमें कोई विपर्यास नही होता। ऐसा लगता है, मानो वह सेन्सरशिप से वच निकली है। इस तरह का स्वप्न एक अप्रच्छन्न, अर्थात् अपने स्पष्ट रूप में दिखाई देने वाली, इच्छा-पूर्ति होता है, और इसमें इच्छा वह नही होती जिसे स्वप्न-द्रष्टा स्वीकार करना चाहता है, वल्कि वह होती है जिसे उसने अस्वीकार कर दिया है। सेन्सरशिप की क्रिया होने के स्थान पर चिन्ता पैदा हो गई है। शैशवीय स्वप्न तो स्वप्न-द्रष्टा द्वारा स्वीकृत इच्छा की खुलेआम पूर्ति होता है, और साधारण विपर्यस्त स्वप्न दमित[1] अर्थात अधिक दवाई गई, इच्छा की प्रच्छन्न अर्थात् अस्पष्ट या छिपी हुई पूर्ति होता है। परन्तु

---

१. Repressed

चिन्ता-स्वप्न का सूत्र यह है कि यह दमित इच्छा की खुले आम पूर्ति होता है। चिन्ता इस बात का सकेत है कि दमित इच्छा सेन्सरशिप की अपेक्षा अधिक प्रबल सिद्ध हुई है, और उसके बावजूद अपनी पूर्ति कर चुकी है, या करने वाली थी। हम यह बात समझ सकते है कि हमारे लिए, जो सेन्सरशिप के पक्ष में है, दमित इच्छा की पूर्ति दु खदायी भाव पैदा करने और कोई सफाई पेश करने की बात ही हो सकती है तो यदि आप चाहे तो इस तरह कह सकते हैं कि हमारे स्वप्नो में व्यक्त चिन्ता वह चिन्ता है जो उन इच्छाओ की प्रबलता के कारण अनुभव होती है जिन्हे और मौको पर हम दवा दिया करते हैं। सिर्फ स्वप्नो के अध्ययन से हमें पता नही चलता कि यह सफाई चिन्ता का रूप क्यो ले लेती है। स्पष्ट है कि हमें चिन्ता पर दूसरे प्रसगो में विचार करना चाहिए।

जो परिकल्पना विना किसी विपर्यास वाले चिन्ता-स्वप्नो के लिए ठीक है, वह उन स्वप्नो के लिए भी जिनमें कुछ विपर्यास हो गया है, और दूसरी प्रकार के अप्रिय स्वप्नो के लिए भी, जिनमें उससे उत्पन्न अप्रिय भावनाए सम्भवत चिन्ता के पास तक जा पहुचती है, मानी जा सकती है। साधारणतया चिन्ता-स्वप्न हमें जगा देते हैं। प्राय हम अपनी नीद उस समय पहले ही तोड देते हैं, जव स्वप्न की तह में मौजूद, दमित इच्छा सेन्सरशिप को हराकर पूर्ण पूर्ति पर पहुचती है। ऐसी अवस्था में स्वप्न अपना प्रयोजन पूरा नही कर सका, पर इससे इसकी सारभूत विशेषता नही वदल गई। हमने स्वप्न की तुलना रात के चौकीदार से की है। वह नीद का पहरेदार है और उसका प्रयोजन नीद में रुकावट को रोकना है। रात के चौकीदारो को भी उस समय स्वप्नो की ही तरह सोने वालो को जगाना पडता है जव वे गडवडी या मकट के कारण को दूर करने में अकेले समर्थ नही होते। तो भी, कभी-कभी हमें तव भी नीद जारी रखने में सफलता हो जाती है जव हमारे स्वप्न हमें कुछ वेचैन करने लगते है, और चिन्ता पैदा करने लगते हैं। हम नीद में अपने आपसे कहते है "आखिर यह स्वप्न ही तो है", और सोते रहते हैं।

आप पूछेंगे कि ऐसा कव होता है कि स्वप्न की इच्छा सेन्सरशिप को हराने में समर्थ हो जाती है? यह इच्छा पर या सेन्सरशिप पर निर्भर है। हो सकता है कि कभी-कभी अज्ञात कारणो से इच्छा की प्रवलता वहुत अधिक हो जाती हो, पर हमारी धारणा यह है कि शक्ति-सतुलन में यह परिवर्तन होने का कारण प्राय सेन्सरशिप का रुख ही होता है। हम पहले जान चुके है कि सेन्सरशिप की तीव्रता प्रत्येक उदाहरण में अलग-अलग होती है और वह विभिन्न अवयवो से विभिन्न प्रकार की सख्ती वरतती है। अव हम इतनी वात और कहना चाहते है कि इसका साधारण व्यवहार भी वहुत वदलने वाला होता है, और यह उसी अवयव के प्रति भी सदा एक समान कठोर नही दिखाई देती। तव यदि ऐसा हो कि सेन्सरशिप किसी स्वप्न-इच्छा के विरुद्ध, जो इसे उखाड फेंकने को तैयार है, अपने आपको

शक्तिहीन अनुभव करती है तो वह विपर्यास का उपयोग करने के बजाय अपना आखिरी हथियार काम में लाती है, और चिन्ता पैदा करके नीद को नष्ट कर देती है।

यहा आकर हमे यह महसूस होता है कि अब भी हमारे पास इस विषय में कोई धारणा नही कि ये दुष्ट, अस्वीकृत इच्छाएं रात के समय ही क्यो उभर आती है, और हमे नीद मे परेशान करती हैं। इसका उत्तर एक और परिकल्पना द्वारा ही दिया जा सकता है, जो नीद के स्वरूप पर प्रकाश डालती है। दिन के समय इन इच्छाओ पर सेन्सरशिप का भारी बोझ पडता है और साधारणतया यह असम्भव होता है कि वे अपने आपको ज़रा भी अनुभव करा सकें। पर रात मे यह सम्भावना है कि मानसिक जीवन की और सब चेष्टाओ की तरह यह सेन्सरशिप निलम्बित[1] अर्थात् क्रियाहीन, या बहुत ही कमजोर हो जाती हो और नीद की एकमात्र इच्छा ही व्यापक हो जाती हो। इस प्रकार, रात के समय सेन्सरशिप की इस आंशिक निष्क्रियता के कारण ही निषिद्ध इच्छाएं फिर सक्रिय हो सकती हैं। इनसोमनिया, अर्थात् निद्राहीनता रोग, से पीडित दुर्बल स्नायु वाले लोग यह स्वीकार करते हैं कि शुरू मे उनकी निद्राहीनता अपनी इच्छा के अधीन थी, कारण यह कि उन्हे सोने की हिम्मत नही पडती थी क्योकि वे अपने स्वप्नो से डरते थे—आशय यह हुआ कि वे सेन्सरशिप की कम जागरूकता के परिणामो से डरते थे। आपको यह समझने मे कोई कठिनाई नही होगी कि सेन्सरशिप की यह कमी घोर असावधानी का पक्ष पोषण नही करती। नीद हमारे मोटर-कार्यों[2] को कमजोर कर देती है। यदि हमारे दुष्ट आशय हमारे भीतर हलचल शुरू कर दें, तो भी वे अधिक से अधिक इतना ही कर सकते हैं कि एक स्वप्न पैदा कर दें जो सब व्यावहारिक प्रयोजनो की दृष्टि से हानिरहित होता है, और इस आराम देने वाली परिस्थिति के कारण ही सोने वाला यह कह दिया करता है—यह तो सच है कि वह रात में यह बात कहता है पर यह उसके स्वप्न-जीवन का हिस्सा नही होती—"यह तो सिर्फ स्वप्न है।" इस प्रकार हम इसे चलने देते हैं और सोना जारी रखते हैं।

तीसरी बात यह है कि यदि आप हमारे इस विचार को याद करें कि अपनी इच्छा के विरुद्ध यत्न करता हुआ स्वप्न-द्रष्टा दो पृथक, परन्तु फिर भी घनिष्ठ रूप से जुडे हुए व्यक्तियो का मिला-जुला रूप है तो आप इस बात का एक और सम्भव तरीका समझ सकेंगे कि इच्छा-पूर्ति के द्वारा कोई बहुत अप्रिय बात कैसे पैदा की जा सकती है। मेरा संकेत सजा की ओर है। यहां भी तीन इच्छाओ वाली परी की कहानी से बात स्पष्ट होने मे मदद मिलेगी। तश्तरी में रखे हुए कोफ्ते पहले व्यक्ति (स्त्री)

---

1. Suspended 2. Motor-functions

की इच्छा की प्रत्यक्ष पूर्ति थे। उसकी नाक की नोक पर लगे हुए कोफ्ते दूसरे व्यक्ति (पति) की इच्छा की पूर्ति है, पर साथ ही वे पत्नी की मूर्खतापूर्ण इच्छा की सजा भी हैं। स्नायु-रोगो में हमें ऐसी इच्छाए मिलेंगी जो परी की कहानी की तीसरी अर्थात् एकमात्र शेष इच्छा से प्रयोजन की दृष्टि से मिलती-जुलती होगी। मनुष्य के मानसिक जीवन में ऐसी बहुत सारी सजा की प्रवृत्तिया है। वे बडी प्रबल होती है, और उन्हे हम अपने कुछ कष्टकारक स्वप्नो का कारण मान सकते हैं। अब शायद आप यह सोचेगे कि इस सबके बाद प्रसिद्ध इच्छा-पूर्ति की कोई खास चीज नही बची, पर बारीकी से विचार करने पर आप यह स्वीकार करेंगे कि आपका कहना गलत है। स्वप्नो के सम्भावित स्वरूप के बारे में, कुछ लेखको के अनुसार उनके असली स्वरूप के बारे में, जो बहुत सारी सम्भावनाए हो सकती है, (इनपर बाद में विचार किया जाएगा), उनकी तुलना में हल, अर्थात् इच्छा-पूर्ति चिन्ता-पूर्ति और सजा-पूर्ति, निश्चित ही नगण्य है। इसके साथ इतनी बात और जोड दीजिए कि चिन्ता इच्छा से ठीक उलटी या विरोधी चीज है, और विरोधी चीजें साहचर्य में एक दूसरे के बहुत निकट रहती है और जैसा कि हम बता चुके है, वे अचेतन में वस्तुत एक दूसरे के ऊपर पडी होती हैं। इसके अलावा सजा भी एक इच्छा की पूर्ति है—यह दूसरे अर्थात् सेंसर करने वाले व्यक्ति की इच्छा-पूर्ति है।

तो कुल मिलाकर मैंने इच्छा-पूर्ति के सिद्धात पर आपके आक्षेपो को स्वीकार नही किया, पर हमे प्रत्येक विपर्यस्त स्वप्न में इसकी उपस्थिति दिखानी होगी, और निश्चित समझिए कि हम इस जिम्मेदारी से जरा भी बचना नही चाहते। हम डेढ फ्लोरिन में तीन बेकार थियेटर-टिकटोवाले स्वप्न पर, जिसका हम पहले निर्वचन कर चुके है, विचार करेंगे, जिसमे हम पहले बहुत कुछ सीख चुके हैं। मुझे आशा है कि वे बातें आपको याद होगी। एक महिला ने, जिसके पति ने उसे उसकी (उससे सिर्फ तीन महीने छोटी) सहेली एलिस की सगाई की बात बताई थी, अगली रात स्वप्न में देखा कि मै और मेरा पति थियेटर में हैं और बैठने के स्थानो का एक हिस्सा प्राय खाली है। उसके पति ने उससे कहा था कि एलिस और उसका भावी पति भी थियेटर आना चाहते थे पर वे नही आ सके क्योकि उन्हे बहुत रद्दी स्थान, अर्थात् डेढ फ्लोरिन में तीन टिकट वाले स्थान मिल सके। उसकी पत्नी ने कहा कि उन्हे उसमे बहुत हानि नहीं हुई। हमने देखा था कि स्वप्न-विचारो का सम्बन्ध उसके जल्दी विवाह करने और अपने पति से असन्तुष्ट रहने के कारण उत्पन्न परेशानी से था। हमें यह जानने की उत्सुकता होगी कि ये निराशाभरे विचार इच्छा-पूर्ति के रूप मे कैसे बदले, और व्यक्त वस्तु में इच्छा-पूर्ति का कौन-सा चिह्न देखा जा सकता है। यह तो हम पहले ही जानते है कि 'बहुत जल्दी, बहुत जल्दबाजी वाले अवयव' को सेंसरशिप ने पहले ही दूर कर दिया है। खाली स्थान इस अवयव का निर्देश

करते हैं। 'डेढ़ में तीन' वाक्यांश अब हमें पहले की अपेक्षा अधिक समझ में आने लगा है क्योंकि उसके बाद हम प्रतीकों की जानकारी हासिल कर चुके हैं।[1] संख्या तीन असल में एक पुरुष की प्रतीक है और हम व्यक्त अवयव का आसानी से यह अर्थ कर सकते हैं "दहेज द्वारा एक आदमी (पति) खरीदना" ("मैं अपने दहेज द्वारा दस गुना अच्छा आदमी खरीद सकती थी")। थियेटर जाना स्पष्टत विवाह का प्रतीक है, टिकट जल्दी हासिल करना 'विवाह जल्दी करने' का सीधा स्थानापन्न है। यह स्थानापन्नता इच्छा-पूर्ति का कार्य है। स्वप्न-द्रष्टा ने अपने शीघ्र विवाह पर हमेशा उतना असन्तोष अनुभव नहीं किया था। जिस दिन उसने अपनी सहेली की सगाई की बात सुनी उस समय तक उसे अपने विवाह का अभिमान था और वह अपनी सहेली की अपेक्षा अपने को अधिक सौभाग्यवती मानती थी। आमतौर से सुनने में आता है कि निष्कपट लड़कियां सगाई हो जाने पर प्राय. इस बात पर खुशी जाहिर करती हैं कि अब वे शीघ्र ही सब नाटकों में जा सकेंगी। और अब तक निषिद्ध सब चीजें देख सकेंगी।

यहां कुतूहल का संकेत और 'ताकने' की जो इच्छा प्रदर्शित की गई, वह निःसन्देह शुरू में, विशेष रूप से माता-पिता के बारे में, यौन 'ताकने के आवेग' से पैदा हुई, और लड़की को जल्दी विवाह करने के लिए प्रेरित करने में यह प्रबल प्रेरक कारण बना। इस प्रकार, थियेटर जाना विवाहित होने का स्पष्ट रूप से सूचक स्थानापन्न बन गया। इस समय अपने शीघ्र विवाह के कारण परेशान होने पर वह उस समय में जा पहुंची जब इसी विवाह ने उसकी दर्शनेच्छा[2] (ताकने की इच्छा) को पूरा किया था, और इस प्रकार उसने इस पुराने इच्छा-आवेग से प्रेरित होकर विवाह के विचार के स्थान पर थियेटर जाने की बात स्थापित कर दी।

हम कह सकते हैं कि छिपी हुई इच्छा-पूर्ति प्रदर्शित करने के लिए हमने जो उदाहरण चुना है, वह सबसे अधिक सुविधाजनक उदाहरण नहीं है, पर और सब विपर्यस्त स्वप्नों में ऊपर प्रयुक्त रीति के सदृश रीति से ही चलना होगा। इस समय यहां ऐसा करना मेरे लिए सम्भव नहीं। इसलिए मैं सिर्फ अपना यह विश्वास प्रकट करूंगा कि ऐसी प्रक्रिया सदा सफल सिद्ध होगी। पर मैं अपने सिद्धान्त के इस पहलू पर कुछ अधिक कहना चाहता हूं। अनुभव से मुझे मालूम हुआ है कि स्वप्न के सारे सिद्धान्त में सबसे अधिक संकट वाली चीज यही है, जिसमें बहुत-से खंडनों और गलतफहमियों की गुंजायश होती है। इसके अतिरिक्त, आप शायद यह समझ

---

१ इस सन्तानहीन स्त्री के स्वप्न में आने वाली संख्या तीन का एक और निर्वचन भी आसानी से हो सकता है पर मैं यहां उसका उल्लेख नहीं करूंगा क्योंकि इस विश्लेषण से उसे निर्दिष्ट करने वाली कोई सामग्री नहीं मिली।

२. Skoptophilia.

रहे है कि मैने अपने कथन का कुछ अश पहले ही वापस ले लिया है, क्योकि मैने यह कहा है कि स्वप्न, इच्छा-पूर्ति या इसकी विरोधी चीज अर्थात् चिन्ता या सजा है जो वास्तविक रूप में आ गई है, और आप समझेंगे कि यह बहुत अच्छा मौका है जबकि मुझे अपने कथन को और सीमित करने के लिए मजबूर किया जा सकता है। मुझे इस कारण भी वुरा-भला कहा गया है कि मैं अपने को सुबोध लगने वाले तथ्यो को इतने सक्षिप्त रूप में पेश करता हू कि वे सुनने वालो को कायल नही कर पाते।

जव कोई व्यक्ति स्वप्न-निर्वचन में इतनी दूर तक जा चुका, और यहा तक हमारे सब निष्कर्षो को स्वीकार कर चुका है, तव प्राय इच्छा-पूर्ति के इस प्रश्न पर आकर वह रुक जाया करता है, और पूछता है : "मै मानता हू कि प्रत्येक स्वप्न का कुछ अर्थ है, और मनोविश्लेषण की विधि का प्रयोग करके यह अर्थ पता लगाया जा सकता है, पर विरोधी वाते सामने देखते हुए भी उसे सदा इच्छा-पूर्ति के फार्मूले मे ही क्यो फिट करना चाहिए। जैसे दिन में हमारे विचार कई पहलुओ वाले होते है, वैसे ही हमारे रात के विचार भी क्यो नही होने चाहिए, अर्थात् कभी कोई स्वप्न इच्छा-पूर्ति भी हो सकता है, पर कभी, जैसा कि आप स्वय मानते है, वह इसका विपरीन या उल्टा, अर्थात् भय का वास्तविक रूप भी हो सकता है, या इसी तरह किसी सकल्प की अभिव्यक्ति, कोई चेतावनी, किसी समस्या के पक्ष और विपक्ष में विचार, या कोई भर्त्सना या अन्तःकरण की कोई कचोट हो सकता है या जो काम करना है उसके लिए अपने आप को तैयार करने की कोशिश हो सकता है, इत्यादि। किसी इच्छा या अधिक से अधिक इसकी विपरीत बात पर ही सदा आग्रह क्यो हो ?"

यह माना जा सकता है कि यदि और सव वातो पर हम एक मत हो तो इस प्रश्न पर मतभेद का कोई वडा महत्व नही ? क्या हम इतने से सन्तोष नही कर सकते कि हमने स्वप्नों का अर्थ पता लगा लिया है, और वे तरीके जान लिए है जिनसे हम उनका अर्थ पता लगा सकते है ? यदि हम इस अर्थ को वहुत सख्ती से सीमित करने की कोशिश करते है तो निश्चित रूप से हम वहुत पीछे लौट आते है, पर यह वात नही। इस विषय पर गलतफहमी हमारे स्वप्न सम्वन्धी ज्ञान की सारभूत और आवश्यक वातो पर पहुच जाती है, और स्नायु-रोगो को समझने के कार्य में इसके महत्व को कम कर देती है। इसके अलावा, 'दूसरे पक्ष पर अनुग्रह करने के लिए', जिनका व्यवसाय-जीवन में कुछ महत्व है, तैयार रहने की तत्परता यहा न केवल अप्रासगिक है, वल्कि वैज्ञानिक मामलो में वस्तुत हानिकारक है। इस प्रश्न पर कि स्वप्नो का अर्थ कई तरफा या अनेक पहलुओ वाला क्यो नही होना चाहिए, मेरा उत्तर वही है, जो ऐसे मामले में प्राय होना है मैं नही जानता कि वैसा क्यो नही होना चाहिए। यदि वे वैसे होते तो मुझे कोई ऐतराज न होता। जहा तक मेरा सम्बन्ध है वे वैसे हो सकते है। पर स्वप्नो के इस अधिक विस्तृत

और अधिक सुविधाजनक अवधारण के मार्ग में सिर्फ एक छोटी-सी वाधा है—कि तथ्यत वे वैसे नही होते। मेरा दूसरा उत्तर इस वात पर वल देगा कि यह भावना कि स्वप्न विचारो की और वौद्धिक कार्यो की वहुत तरह की रीतियो के निरूपक होते हैं, मेरे लिए कोई नई चीज नही है। एक वार एक रोगी के रोगवृत्त (हिस्ट्री) में मैंने एक ऐसा स्वप्न दर्ज किया जो लगातार तीन रातो तक आया और फिर कभी नही आया, मैंने उसकी यह व्याख्या की कि यह स्वप्न किसी सकल्प का प्रतिरूप था, और उस सकल्प के पूरा होते ही इसके फिर दीखने की आवश्यकता नही रही। वाद में मैंने एक स्वप्न प्रकाशित किया जो एक अपराध-स्वीकृति को निरूपित करता था। इसलिए यह कैसे हो सकता है कि मैं स्वय अपना खडन करू और वलपूर्वक कहू कि स्वप्न सदा और एकमात्र इच्छा-पूर्ति होते हैं?

मैं कोई ऐसी मूर्खतापूर्ण ग़लतफ़हमी चलने देने के वजाय, जिससे स्वप्नो के विषय मे हमारी सारी मेहनत अकारथ हो जाए, इस वात पर वल देना ज्यादा अच्छा समझता हूं। उस गलतफ़हमी के कारण लोग **स्वप्न को गुप्त स्वप्न-विचार समझ लेते हैं,** और स्वप्न के वारे मे वे वाते कह देते हैं **जो गुप्त स्वप्न-विचारों पर और सिर्फ उन्हीं पर** लागू होती हैं। कारण कि यह विलकुल सच है कि स्वप्न अभी वताए गए सव तरह के विचारो, अर्थात् सकल्प, चेतावनी, चिन्तन, आचार सम्वन्धी किसी समस्या को हल करने की तैयारी या कोशिश इत्यादि को निरूपित भी कर सकते हैं, और ये वातें स्वप्नो के स्थान पर भी आ सकती हैं, पर जव आप वारीकी से देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि यह वात सिर्फ उन गुप्त विचारो के वारे में सही है जो स्वप्न के रूप में वदल गए हैं। स्वप्नो के निर्वचनो से आपको मालूम हुआ था कि मनुष्य के अचेतन विचार-प्रक्रमो में ऐसे सकल्प, तैयारिया और चिन्तन भरे पडे हैं जिनमें से स्वप्न-तत्र के द्वारा स्वप्न वनते हैं। यदि किसी समय आपकी दिलचस्पी स्वप्न-तत्र मे उतनी नही है, वल्कि लोगो के अचेतन विचार-प्रक्रमो पर केन्द्रित है, तो तव आप स्वप्न-निर्माण को छोड देंगे, और स्वप्नो के वारे में यह कहने लगेंगे कि वे किसी चेतावनी, संकल्प आदि को निरूपित करते हैं, और यह वात व्यावहारिक प्रयोजनो के लिए सही है। मनोविश्लेषण-कार्यो में प्राय. यह किया जाता है: साधारणतया हम स्वप्नो के व्यक्त रूप को हटाने की कोशिश करते हैं, और उसके स्थान पर उन सम्वन्धित गुप्त विचारो को लाने का यत्न करते हैं जिनमें स्वप्न पैदा होते हैं।

इस प्रकार हमें गुप्त स्वप्न-विचारो का मूल्याकन करने की कोशिश से विलकुल प्रासंगिक रूप मे यह पता चलता है कि ऊपर गिनाए गए सव अति जटिल मानसिक कार्य अचेतन रूप से किए जा सकते हैं—यह निष्कर्ष जितना विस्मयकारक है, निश्चित रूप से उतना ही महत्वपूर्ण है।

पर थोड़ा-सा पीछे लौटिए। आपका यह कहना विलकुल सही है कि स्वप्न इन

अनेक विचार-रीतियो को निरूपित करते हैं, परन्तु यह तभी सही है जब आपके मन में बिलकुल स्पष्ट हो कि यह बात को सक्षिप्त रूप में कहने का तरीका है, और आप यह कल्पना न करें कि आप जिस अनेकरूपता की बात कर रहे हैं, वह स्वय ही स्वप्नो के सारभूत स्वरूप का हिस्सा है। जब आप किसी 'स्वप्न' की चर्चा करते हैं, तब आपका आशय या तो व्यक्त स्वप्न अर्थात् स्वप्न-तत्र से उत्पन्न वस्तु होगा, अथवा अधिक से अधिक वह स्वप्न-तत्र अर्थात् मानसिक प्रक्रम होगा, जो गुप्त स्वप्न-विचारो को व्यक्त स्वप्नो के रूप में लाता है। इस शब्द का किसी और अर्थ में प्रयोग विचार-विभ्रम है, जिससे अवश्य बडी गडबड पैदा हो जाएगी। यदि कुछ भी आप स्वप्न के पीछे मौजूद गुप्त विचारो के बारे में कहना चाहते हैं तो स्पष्ट रूप से वैसा कहिए, और अपनी शिथिल अभिव्यक्ति से समस्या को और अस्पष्ट मत बनाइए। गुप्त स्वप्न-विचार वह सामग्री है जिसे स्वप्न-तत्र व्यक्त स्वप्न में बदल देता है। आप सामग्री को, और सामग्री पर होने वाले प्रक्रम को अलग-अलग पहचानने के समय क्यो लगातार भ्रम में पडते जाते हैं? यदि आप ऐसे भ्रम में पडते हैं तो उन लोगो से आप किस तरह श्रेष्ठ हैं जिन्हें सिर्फ अन्तिम उत्पन्न वस्तु का ही पता होता है और जो यह नही बता सकते कि वह कहा से आती है, या कैसे बनती है?

स्वय स्वप्न के लिए एकमात्र आवश्यक चीज वह स्वप्न-तत्र है जिसने विचार-सामग्री पर क्रिया की है, और जब हम सिद्धात-विवेचन पर आते हैं, तब हमें इसका तिरस्कार करने का कोई अधिकार नही, चाहे कुछ क्रियात्मक स्थितियो में इसकी उपेक्षा की जा सकती हो। दूसरी बात यह है कि विश्लेपण सम्बन्धी प्रेक्षण से प्रकट होता है कि स्वप्न-तत्र में सिर्फ गुप्त विचारो को ऊपर वर्णित आद्य या प्रतिगामी अभिव्यक्ति-रूपो में बदल देना ही नही है, इसके विपरीत, कुछ ऐसी चीज इसमें सदा जोडी भी जाती है जो दिन के समय के गुप्त विचारो में नही होती, पर जो स्वप्न-निर्माण में वास्तविक प्रेरक बल होती है। यह अनिवार्य अवयव उसी तरह अचेतन इच्छा होती है, जिसकी पूर्ति के लिए स्वप्न की वस्तु रूपान्तरित होती है। तो, जहा तक हम स्वप्न में निरूपित विचारमात्र पर गौर कर रहे हैं, वहा तक स्वप्न ऐसी कोई भी चीज, जैसे चेतावनी, सकल्प, तैयारी आदि हो सकता है, पर इसके अलावा, यह स्वय सदा एक अचेतन इच्छा की पूर्ति होता है, और जब आप इसे स्वप्न-तत्र का परिणाममात्र मानते हैं, तब यह सिर्फ इच्छा-पूर्ति होता है। तो, स्वप्न कभी भी सकल्प या चेतावनी की अभिव्यक्तिमात्र नही होता, और इससे अधिक भी नहीं होता। इसमें सकल्प या और जो भी कुछ हो, वह एक अचेतन इच्छा की मदद से आद्य रूप में बदल जाता है, और इस तरह रूपान्तरित हो जाता है या रूपान्तरित[1] हो जाता है कि वह इच्छा-पूर्ति हो जाता है। यह एक ही विशेषता,

1 Metamorphosed

अर्थात् इच्छा की पूर्ति सदा रहती है, और दूसरे अवयव बदलते रहते हैं। असल में स्वप्न स्वयं कोई इच्छा हो सकता है; उस अवस्था मे स्वप्न अचेतन इच्छा की सहायता से हमारे जागते समय की गुप्त इच्छा की पूर्ति को निरूपित करता है।

यह सब बात मेरे अपने मन मे बिलकुल स्पष्ट है, पर मैं नही जानता कि आपको भी यह इतने ही स्पष्ट रूप में समझाने में मैं सफल हुआ हू या नही, और इसे आपके सामने सिद्ध करना कठिन है क्योकि एक ओर तो प्रमाण के लिए बहुत सारे स्वप्नो के सावधान विश्लेषण द्वारा प्रस्तुत गवाही की आवश्यकता है, और दूसरी ओर, हमारी स्वप्न विषयक अवधारणा का यह कठिन और सबसे महत्वपूर्ण अंग, कुछ ऐसी बातो का उल्लेख किए बिना, जिनकी अभी हमने चर्चा नही की, निश्चायक रूप से पेश नही किया जा सकता। यह देखने के बाद कि ये सब घटनाए कितनी घनिष्ठता से जुडी हुई है, आप यह कल्पना नही कर सकते कि हम किसी एक घटना के स्वरूप पर, उसी तरह की और घटनाओ को बिना छुए, दूर तक विचार कर सकते हैं। क्योकि अब तक हमें उन घटनाओ के बारे में कुछ मालूम नही है जो स्वप्नो के इतने नजदीक नही है, अर्थात् स्नायु-रोग-लक्षण, इसलिए हमें एक बार फिर उतने से ही सन्तुष्ट हो जाना चाहिए जितना सचमुच हमने हासिल कर लिया है। अब मैं आपको सिर्फ एक और उदाहरण की व्याख्या बताऊगा, और एक नया विचार बीच मे लाऊगा।

एक बार फिर उस स्वप्न पर विचार कीजिए जिसपर हम कई बार पहले विचार कर चुके है, अर्थात् डेढ फ्लोरिन मे थियेटर के तीन टिकटो वाला स्वप्न। मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि इसे उदाहरण के रूप में रखने में मेरा कोई गुप्त उद्देश्य नही था। आप जानते हैं कि गुप्त विचार क्या थे यह सुनने के बाद कि उसकी सहेली की सगाई अभी हुई है, यह परेशानी कि मैंने शादी करने में इतनी जल्दी क्यो की, अपने पति के प्रति आदर मे कमी, और यह विचार कि यदि मैंने भी प्रतिज्ञा की होती तो मुझे अधिक अच्छा पति मिल सकता था। हम यह भी जान चुके है कि जिस इच्छा ने इन विचारो में से स्वप्न बनाया वह 'देखने या ताकने' की इच्छा थी, अर्थात् थियेटर जा सकने की इच्छा थी—बहुत सम्भवत. इस पुरानी उत्सुकता की एक शाखा थी कि विवाह के बाद वास्तव में क्या होता है। यह सुविदित है कि बच्चो में यह कुतूहल माता-पिता के यौन जीवन की दिशा मे होता है। कहने का आशय यह है कि यह एक शैशवीय आवेग है, और बाद के जीवन में यह जहा कही कायम रहता है, वहा इसकी जड़ शैशवकाल मे ही होती है, पर स्वप्न से पिछले दिन प्राप्त समाचार से यह दर्शनेच्छा जाग उठने का कोई कारण नही था। इससे सिर्फ परेशानी और अफसोस हुआ। (दर्शनेच्छा का) यह आवेग पहले स्वप्न-विचारो मे जुडा हुआ नही था, और मनोविश्लेषण इनको अपने विचार के अन्तर्गत लिए बिना, स्वप्न-निर्वचनो के परिणामो का उपयोग कर सकता था,

पर यहा भी परेशानी स्वय स्वप्न पैदा नही कर सकती। इस विचार में से, कि 'विवाह करने में इतनी जल्दी करना मूर्खता थी', तब तक स्वप्न नही बन सकता था, जब तक उस विचार ने बचपन की यह देखने की इच्छा को कि विवाह के बाद क्या होता है, न जगा दिया हो। इस प्रकार इस इच्छा ने स्वप्न-वस्तु बनाई और उसमें विवाह के स्थान पर 'थियेटर जाना' ला दिया, और उसका रूप विवाह से पहले की इस इच्छा-पूर्ति का रूप था कि 'मै अब थियेटर जा सकती हू, और वे सब चीजें देख सकती हू जो हमें कभी देखने नही दी गई, और तुम नही देख सकती, मेरा विवाह हो चुका है और तुम्हे प्रतिज्ञा करनी है।' इस प्रकार वास्तविक स्थिति विपरीत स्थिति मे बदल गई, और पहले की जीत के स्थान पर हार की बेचैनी आ गई, और प्रसगत 'ताकने या देखने' के आवेग और अहकारपूर्ण प्रतिद्वन्द्विता के आवेग, दोनो की सन्तुष्टि हो गई। यह पीछे वाला सन्तोष ही स्वप्न की व्यक्त वस्तु नियत या निर्धारित करता है, क्योकि इसमे वह सचमुच थियेटर में बैठी है जबकि उसकी सहेली अन्दर नही आ सकती। स्वप्न-वस्तु के वे अश, जिनके पीछे गुप्त विचार अब भी अपने आप को छिपाए हुए हैं, सन्तुष्टिकारक स्थिति के अनुचित और समझ में न आने वाले रूप-भेदो के रूप में प्राप्त होगे। **निर्वचन** का काम यह है कि उन सारी बातो को अलग कर दे जो इच्छा-पूर्ति को निरूपित करती है, और इन सकेतो से कष्टकारक गुप्त विचारो की पुन रचना करे।

मैंने आपके ध्यान मे जो नई बात लाने के लिए कहा था वह यही थी कि आप इन गुप्त स्वप्न-विचारो पर, जो अब प्रमुख रूप से सामने आए है, ध्यान दें। मेरी यह प्रार्थना है कि आप ये बातें न भूलें (एक) स्वप्न-द्रष्टा को इनका ज्ञान या चेतना नही है, (दो) वे बिलकुल तर्कसगत और सुसम्बद्ध है और इसलिए हम उन्हे इस रूप में समझ सकते है कि वे उसी उद्दीपन्न की सुबोध प्रतिक्रिया है जिसने स्वप्न को जन्म दिया, और (तीन) उनका मूल्य किसी मानसिक आवेग या बौद्धिक व्यापार के मूल्य जितना हो सकता है। अब मैं इन विचारो को और भी दृढता से **पिछले दिन के अवशेष** कहूगा, स्वप्न-द्रष्टा उन्हे माने या न माने। इसके बाद मैं इस 'अवशेष' और 'गुप्त स्वप्न-विचारो' में अन्तर करूगा, और इस तरह, जैसे कि हम करते रहे है, स्वप्न के निर्वचन से ज्ञात हर बातको 'गुप्त स्वप्न' कहूगा, जब कि 'पिछले दिन का अवशेष' गुप्त स्वप्न विचारो का सिर्फ एक अश है। तो, जो कुछ होना है उनके विषय में हमारा अवधारण यह है पिछले दिन के अवशेष में कोई चीज और जुड गई है। यह चीज भी अचेतन से सबध रखती है। यह एक प्रबल पर दमित, अर्थात् दबाया गया, इच्छा-आवेग है, और इसके होनेपर ही स्वप्न का निर्माण हो सकता है। इच्छा-आवेग अवशेष पर क्रिया करके गुप्त स्वप्न-विचारो के उन दूसरे भाग की सृष्टि करता है जिसका हमारे जागृत जीवन के दृष्टिकोण

से अब बुद्धिसगत या सुबोध दिखाई देना आवश्यक नही रहता।

अवशेष और अचेतन इच्छा के आपसी सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए मैंने कही एक दृष्टान्त दिया है, और उसीको मै यहा दोहराना चाहता हू। प्रत्येक कारबार के लिए उसके खर्च उठाने वाले पूजीपति की और एक ऐसे मालिक-प्रबन्धक की आवश्यकता होती है जिसे उस कारबार की जानकारी हो और उसे चलाना आता हो। स्वप्न-निर्माण में पूजीपति वाला कार्य सदा अचेतन इच्छा द्वारा, और इस इच्छा द्वारा ही, किया जाता है। यह ही इसके लिए आवश्यक मानसिक ऊर्जा रूपी धन देती है, मालिक-प्रबन्धक पिछले दिन का अवशेष है जो खर्च करने का तरीका निश्चित करता है। नि सन्देह ऐसा हो सकता है कि स्वय पूजीपति को कारबार की सामान्य या विशेष जानकारी हो, या मालिक-प्रबन्धक के पास ही पूजी हो। इससे व्यावहारिक स्थिति बडी सरल हो जाती है, पर उसका सिद्धान्त-पक्ष अधिक कठिन हो जाता है। अर्थशास्त्र मे हम पूजीपति का कार्य करने वाले मनुष्य में और उसी मनुष्य की मालिक-प्रबन्धक की हैसियत मे विभेद करते है, और इस विभेद से वह मूल स्थिति आ जाती है जिसके आधार पर हमारा दृष्टात खडा है। स्वप्न के निर्माण मे भी वे परिणामन या विविध रूप पाए जाते है—ये मैं आपके ढूढने के लिए छोड देता हूं।

इस प्रश्न पर अब हम और विचार नही करेंगे क्योंकि मुझे लगता है कि आपके मन मे एक बाधक ख्याल बहुत समय से आया हुआ होगा, और वह विचारने योग्य है। आप पूछ सकते है . "क्या तथाकथित 'अवशेष' उस अर्थ में वास्तव मे अचेतन है जिसमें स्वप्न के निर्माण के लिए आवश्यक इच्छा अचेतन है ?" आपकी शका उचित है। यह सारे विषय की मुख्य समस्या है। वे दोनो एक ही अर्थ में अचेतन नही है। स्वप्न-इच्छा एक दूसरे प्रकार के **अचेतन** से सम्बन्ध रखती है। इस अचेतन की जडें, जैसा कि हम देख चुके हैं, शैशवकाल में होती है, और इसमे विशेष तन्त्र होते हैं। इन दोनो प्रकार के 'अचेतनों' में फर्क करने के लिए इन्हे अलग-अलग नाम देना सबसे अच्छा रहेगा। पर फिर भी हम तब तक इस मामले में रुके रहेगे, जबतक कि हम स्नायु-रोगों की घटनाओ से परिचित न हो जाए। यदि किसी प्रकार के अचेतन के अस्तित्व की हमारी अवधारणा को पहले ही कल्पना-प्रसूत मान लिया जाए, तो हमारे यह कहने पर कि अपने उद्देश्य पर पहुचने के लिए हमें दो प्रकार के अचेतन मानने पडे है, लोगो पर क्या असर पडेगा ?

यह बात हम यही छोडते हैं। यहा फिर आपने अधूरी बात सुनी, परन्तु क्या यह विचार आशाजनक नही कि हमारी इस जानकारी को हम स्वय या हमारे पीछे आनेवाले आगे बढाएगे और क्या स्वय हमने काफी नई और काफी चौंकाने वाली बातें नही जानी हैं ?

व्याख्यान | १५

संदिग्ध पहलू और समीक्षात्मक विचार

स्वप्नो के विषय को छोडने से पहले हम उन आम प्रचलित सदेहो और अनिश्चितताओ पर विचार करना चाहते है, जो ऊपर पेश किए गए नए विचारो और अवधारणाओ के सिलसिले में पैदा होती है। आपमें से जो लोग इन व्याख्यानो को ध्यान से सुनते रहे है, उनके मन में इस तरह की कुछ सामग्री जमा हो गई होगी।

१ आप पर यह असर पडा होगा कि मनोविश्लेषण की विधि का पूरी तरह अनुसरण करने पर भी हमारे स्वप्न-निर्वचन के कार्य में अनिश्चितता के लिए इतनी गुजाइश रह जाती है कि व्यक्त स्वप्नो का उनके गुप्त स्वप्न-विचारो में विश्वसनीय अनुवाद उसके द्वारा नही किया जा सकता। सबसे पहले आप यह कहेगे कि हमें कभी भी यह पता नही चलता कि स्वप्न के किसी अवयव विशेष को उसके साक्षात् रूप में माना जाए, या उसे प्रतीक माना जाए, क्योकि प्रतीको के रूप में प्रयुक्त वस्तुओ का अपना स्वरूप, प्रतीक बन जाने के कारण, समाप्त नही हो जाता। जब इस प्रश्न का फैसला करने के लिए कोई बाहरी साक्ष्य नही है, तब उस खास चीज का निर्वचन निर्वचनकर्ता की मनमानी इच्छा पर छोड देना होगा। दूसरी बात यह कि क्योकि स्वप्न-तत्र में विरोधी या विपरीत वस्तुए एक दूसरे के ऊपर होती है, इसलिए यह प्रत्येक उदाहरण में अनिश्चित होता है कि कोई विशिष्ट स्वप्न-अवयव अपने दीखने वाले स्वरूप में ग्रहण किया जाए, या अपने विपरीत अर्थ में ग्रहण किया जाए—यह निर्वचनकर्ता को अपनी मनमानी करने का एक और मौका मिला। तीसरी, स्वप्नो में प्रत्येक प्रकार के, अपवर्तन का प्रयोग बहुत अधिक बार होने के कारण वह जब चाहे यह कल्पना कर सकता है कि ऐसा अपवर्तन हुआ है। अन्त में, आप इस बात की ओर मेरा ध्यान खीचेंगे कि यह निश्चय नही हो पाता कि जो निर्वचन किया गया है, सिर्फ वही हो सकता था, और यह खतरा हमेशा रहता है कि उसी स्वप्न का सर्वथा उचित दूसरा निर्वचन उपेक्षित रह जाए। आप इस निष्कर्ष पर पहुचेंगे कि इन अवस्थाओ में निर्वचनकर्ता के विवेक को बहुत छूट

मिल जाती है जिसके कारण परिणाम में वैज्ञानिक निश्चितता आनी कठिन है, अथवा आप यह भी मान सकते हैं कि स्वप्नो में कोई दोप नही है, वल्कि हमारी अवधारणाओ और साध्यावयवो[1] में ही कोई गलती है, जिसके कारण हमारे निर्वचन सन्तोपजनक नही हो पाते।

आप जो कुछ कहते है, वह ठीक है, पर तो भी, मैं नही समझता कि इससे आपके इन निष्कर्पो का औचित्य सिद्ध होता है कि हम जिस तरह का स्वप्न-निर्वचन करते है वह निर्वचनकर्ता के मन की मौज पर निर्भर है, और प्राप्त परिणामो के अधूरेपन से हमारी प्रक्रिया की शुद्धता पर आक्षेप आता है। यदि आप निर्वचनकर्ता की 'मन की मौज' के स्थान पर उसके कौशल, उसके अनुभव और उसकी समझ की वात कहे तो मैं आपसे सहमत हू। इस तरह के व्यक्तिगत अश के विना, विशेप रूप से निर्वचन कठिन होने पर, कभी भी काम नही चल सकता, पर यही वात दूसरे वैज्ञानिक कार्य मे भी होती है। मैं यह नही मान सकता कि किसी निश्चित विधि का प्रयोग एक आदमी दूसरे की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह या अधिक वुरी तरह करेगा; उदाहरण के लिए, प्रतीको के निर्वचन से आपमे मनमानी की जो भावना पैदा हुई है, वह इस वात पर विचार करने से दूर हो सकती है कि साधारणतया स्वप्न-विचारो का एक दूसरे से जुडा हुआ सिलसिला और स्वप्न के समय स्वप्न का स्वप्न-द्रष्टा के जीवन और सारी मानसिक स्थिति से जुडा हुआ सिलसिला, सव सम्भव निर्वचनो में से एक की ओर सीधा सकेत करता है, और शेप सवको वेकार कर देता है। यह निष्कर्प कि निर्वचनो में अधूरापन परिकल्पनाओ के युक्तिसगत न होने के कारण है, यह सोचने पर गलत सिद्ध हो जाता है कि इसके विपरीत, स्वप्नो की अस्पप्टार्थता या अनिश्चितता ऐसा गुण है जिसके होने की हमें अवश्य आशा करनी चाहिए।

हमारे उस कथन को स्मरण कीजिए कि स्वप्न-तंत्र स्वप्न-विचारो का चित्र-लिपि से मिलती-जुलती अभिव्यक्ति की आदिम रीति मे अनुवाद कर दिया करता है। इस तरह की सव आदिम अभिव्यक्ति-प्रणालियो में अस्पप्टार्थता और अनिश्चितता अवश्य हुआ करती है, पर इस कारण हमारा उनके व्यवहारोपयोगी होने पर शक करना उचित नही। आप जानते है कि स्वप्न-तन्त्र में विरोधियो का सम्पात, अर्थात् एक दूसरे के ऊपर आ जाना वैसा ही है, जैसे कि प्राचीनतम भापाओ में आदिम शब्दो के परस्पर विरोधी अर्थ। भापा-तत्व-शास्त्री आर० एवल ने, जिसने हमें यह जानकारी मिली है, १८८४ मे लिखा था कि आप विलकुल कल्पना न करे कि इस तरह के परस्पर विरोधी दो अर्थो वाले शब्दो से एक व्यक्ति दूसरे से जो कुछ कहता है, उसमें कोई अस्पप्टता रहती है। इसके विपरीत, लहजे या सुर, हाव-भाव और

---

1 Premises

नही है। वे सम्प्रेषण के साधन नही हैं। इसके विपरीत, उनका समझ में न आना ही महत्व की बात है। इसलिए यदि यह परिणाम निकले कि स्वप्नो की कुछ अस्पष्ट अर्थ वाली और अनिश्चित बातें स्पष्टरूप से तय न की जा सकें तो हमें आश्चर्य नही करना चाहिए, या किसी भ्रम में नही पडना चाहिए। हमारी तुलना से, जो एकमात्र निश्चित जानकारी प्राप्त होती है, वह यह है कि इस अनिश्चितता को (जिसे लोग हमारे स्वप्न-निर्वचनो की यथार्थता के विरुद्ध दलील बनाना चाहते हैं।) अभिव्यक्ति की सभी आदिम प्रणालियो की सामान्य विशेषता मानना चाहिए।

अभ्यास और अनुभव से ही यह तय हो सकता है कि स्वप्न असल में कहा तक समझ में आ सकते हैं। मेरी अपनी राय यह है कि वे बहुत दूर तक समझ में आ सकते हैं, और उचित रीति से शिक्षा पाए हुए विश्लेषको ने जो परिणाम निकाले हैं, उनकी तुलना से मेरे विचार की पुष्टि होती है। आम जनता वैज्ञानिक कार्यो में भी, वैज्ञानिक सफलता के मार्ग की कठिनाइयो और अनिश्चितताओ के मुकाबले में अपनी प्रबल सन्देहशीलता का प्रदर्शन करके खुश हुआ करती है। मैं समझता हू कि उनका ऐसा करना गलत है। सम्भवत आप सबको यह पता नही होगा कि यही बात तब हुई थी जब बाबुल और असीरिया में मिले लेखो को पढने की कोशिश की जा रही थी। एक ऐसा समय आया, जब लोकमत जोर-शोर से यह घोषणा कर रहा था कि कीलकाक्षर-लेखो को पढने में लगे हुए लोग झूठी कल्पना के शिकार हो गए है और यह जाच-पडताल का सारा काम एक धोखा और ठगी है। पर १८५७में रायल एशियाटिक सोसायटी ने एक निश्चायक परीक्षा की। उसने इस गवेषण-कार्य में लगे हुए चार सबसे प्रमुख व्यक्तियो रालिन्सन, हिंक्स, फौक्स टैलबाट और ओपर्ट से यह कहा कि वे मुहरबन्द लिफाफो में एक नए खोजे गए लेख के स्वतन्त्र अनुवाद सोसायटी को भेजें, और उन चारो की तुलना करने के बाद सोसायटी ने यह एलान किया कि उन चारो में काफी समानता है, जिससे अब तक प्राप्त परिणामो पर विश्वास किया जा सकता है, और आगे प्रगति की आशा की जा सकती है। तब पढे-लिखे सामान्य लोगो का हसी उडाना धीरे-धीरे खत्म हो गया और उसके बाद मे कीलकाक्षर-लेखो के पढने में बहुत अधिक निश्चितता आ गई।

२ दूसरी तरह के ऐतराजो का ऐसी भावनाओं से निकट सम्बन्ध है जिनसे शायद आप भी नही बचे हैं, और वे ये हैं कि हमारे स्वप्न-निर्वचन की रीति से प्राप्त कई परिणाम खीच-तान या जबर्दस्ती लाए गए या मजाक-से लगते हैं। यह आलोचना इतनी अधिक होती है कि मैं उस आलोचना पर विचार करूगा जो मेरे काम में सबसे पीछे हुई थी। अब सुनिए आजाद देश स्विटजरलैंड में हाल में ही एक हेडमास्टर से इस कारण अपने पद से त्यागपत्र देने को कहा गया कि वह मनोविश्लेषण में दिलचस्पी रखता था। उसने विरोध किया, और बर्न के एक अखबार में उसके मामले पर स्कूल-अधिकारियो का फैसला प्रकाशित किया गया। उस लेख मे मैं

मनोविश्लेषण सम्बन्धी कुछ वाक्य उद्धृत करूगा "इसके अलावा, उक्त पुस्तक मे ज्यूरिच के डा० फिस्टर द्वारा दिए गए उदाहरण में कितनी खीच-तान की गई है, यह देखकर हम चकित रह गए। यह सचमुच आश्चर्य की वात है कि एक ट्रेनिंग कालेज के हेडमास्टर ने इस तरह के वचनो और सिर्फ ऊपर से ठीक दीखने वाली गवाहियो को इतने अधविश्वास के साथ स्वीकार कर लिया।" ये वाक्य 'एक शान्त मन से फैसला करनेवाले' की अन्तिम राय वताए गए है। मुझे यह शान्त मनवाली वात झूठी मालूम होती है। इन वचनो पर इस आशा से जरा वारीकी से विचार कीजिए कि इस विषय पर थोडे विचार और जानकारी से 'शान्तमन के फैसले' को भी कोई हानि नही होगी।

यह देखकर सचमुच वडा आश्चर्य होता है कि कोई आदमी सिर्फ अपने ऊपर पडे पहले प्रभाव के आधार पर इतनी जल्दी और निर्भ्रांत रूप से मनोविज्ञान के किसी कठिन प्रश्न पर मत स्थिर कर सकता है। उसे निर्वचन खीच-तान से किए गए मालूम होते हैं, और उसे वे नही जचते इसलिए वे गलत हैं, और यह सारा काम बिलकुल कूडा है। ऐसे आलोचक इस सम्भावना को अपने पास भी नही फटकने देते कि निर्वचनो के ऐसे ही होने के लिए काफी अच्छी युक्तिया हो सकती हैं। यदि वे इस सम्भावना को समझते हैं तो अगला प्रश्न यह होगा कि वे प्रवल युक्तिया क्या हैं।

इस आलोचना का अधार वह परिस्थिति है जिसका विस्थापन के प्रभाव से आवश्यक सबंध है, और विस्थापन स्वप्न-सेंसरशिप का सवसे प्रवल हथियार वताया गया है। इसकी सहायता से स्थानापन्न रचनाए वनती हैं, जिन्हे हम अस्पष्ट निर्देश कहते हैं। पर ये अस्पष्ट निर्देश ऐसे होते हैं, जिन्हे इस रूप में पहचानना तथा उनके पीछे की ओर चलकर असली विचार को खोजना भी आसान नही होता, क्योकि वे इसके साथ वडे असाधारण और कभी-कभी होने वाले वाहरी साहचर्यो द्वारा जुडे रहते हैं। पर इस सवका सम्वन्ध ऐसी वस्तुओ से होता है जिन्हे छिपाना इष्ट होता है। स्वप्न-सेंसरशिप का ठीक यही उद्देश्य है। पर हमें छिपाई गई वस्तु उसी स्थान पर देखने से मिल जाने की आशा न करनी चाहिए जहा यह सामान्यतया होती है। आजकल इस विषय में सीमान्त-निरीक्षण अधिकारी स्कूल अधिकारियो की अपेक्षा कही अधिक होशियार हैं, क्योकि वे निश्चित कागजात खोजते हुए सिर्फ पोर्टफोलिओ और चिट्ठियो के थैलो की तलाशी लेकर ही सन्तुष्ट नही हो जाते, वल्कि उन्हे यह सम्भावना भी रहती है कि जासूस और तस्कर कोई आपत्तिजनक चीज अपने शरीर में ऐसे स्थान पर छिपाकर न ले जाए जहा उन्हे देखना वहुत मुश्किल है, या जहा रखने योग्य वे वस्तुए नही होती, उदाहरण के लिए, अपने वूटो की दोहरी तलियो में। यदि छिपाई हुई वस्तुए वहा मिल जाए तो निश्चित ही यह कहना सच है कि उन्हे 'घसीटकर रोशनी में लाया गया', पर फिर भी वे एक वहुत

'सैंटायरौस' शब्द को 'सै' तथा 'टायरौस' ('टायर तेरा है') में बांटकर लगाया और इससे उस नगर पर सिकन्दर की विजय की भविष्यवाणी की। इस निर्वचन के कारण सिकन्दर ने घेरा जारी रखा, और अंत में नगर का पतन हो गया। वह निर्वचन कितना झूठा या कृत्रिम मालूम होता है, पर नि संदेह वह सही था।

३ मैं आसानी से कल्पना कर सकता हूं कि यह बात सुनकर आप विशेष प्रभावित होंगे कि जिन लोगो ने मनोविश्लेषक के रूप में बहुत समय तक स्वप्नो के निर्वचन का अध्ययन किया है, उन्होने भी हमारी स्वप्नो की अवधारणा पर आक्षेप किए हैं। नई गलतियो के ऐसे अच्छे मौके को कैसे छोड दिया जाता? इसलिए विचारो में विभ्रम के कारण और अनुचित सामान्यकरण के आधार पर ऐसी बातें कही गई है, जो स्वप्नो की डाक्टरी अवधारणा से कम ग़लत नही हैं। इनमें से एक बात आप पहले सुन चुके हैं कि स्वप्न उस समय की परिस्थिति के अनुकूल बनने की कोशिशो और भविष्य की समस्याओ के हल को प्रकट करते हैं। दूसरे शब्दो में, वे 'भविष्यलक्षी प्रवृत्ति' या लक्ष्य की ओर चलते हैं (ए० मीडर)। हम पहले यह दिखा चुके है कि इस कथन का आधार स्वप्न तथा गुप्त स्वप्न-विचार को ठीक-ठीक अलग न कर सकना है और इसमें स्वप्न-तन्त्र को नजरदाज कर दिया गया है। जो लोग इस 'भविष्यलक्षी प्रवृत्ति' की बात कहते हैं, यदि उससे उनका आशय उस अचेतन मानसिक व्यापार से है जिसमें गुप्त विचार होते है, तो एक ओर तो इसमें कोई नई बात नही है, और दूसरी ओर,यह पूरा वर्णन नही है,क्योंकि अचेतन मानसिक व्यापार भविष्य के लिए तैयारी करने के अलावा और बहुत-से कामो में लगा रहता है। इस कथन मे तो और भी विभ्रम दिखाई देता है कि प्रत्येक स्वप्न की तह में 'मृत्यु-संकेत' देखा जा सकता है। मुझे यह बात अच्छी तरह समझ में नही आई कि इस कथन का क्या आशय है, पर यह संदेह होता है कि इसकी आड में स्वप्न तथा स्वप्न-द्रष्टा के सारे व्यक्तित्व को एक जगह मिलाकर घुटाला कर दिया गया है।

थोडे-से प्रभावोत्पादक उदाहरणो के आधार पर किया गया एक अनुचित सामान्यकरण इस कथन मे मौजूद है कि प्रत्येक स्वप्न के दो तरह के निर्वचन हो सकते हैं—एक उस तरह का जिस तरह का हमने बताया है, अर्थात् तथाकथित 'मनोविश्लेषणात्मक' निर्वचन, और दूसरा तथाकथित 'रहस्यवादी'[१] निर्वचन जो नैसर्गिक प्रवृत्तियो की उपेक्षा करता है और ऊंचे मानसिक कार्यो के निरूपण का लक्ष्य रखता है (एच० सिल्बरर)। इस तरह के कुछ स्वप्न होते हैं, पर इस अवधारणा में बहुसंख्यक स्वप्न भी नही आ सकते। जो कुछ आप सुन चुके है,उसके बाद यह कथन कि सब स्वप्नो का निर्वचन द्विलिंगित[२] अर्थात् दो प्रवृत्तियो के—जिनमें से एक पुरुष और दूसरी स्त्री है—मेल के रूप में किया जा सकता है, (ए०

---

१ Anagogic २ Bisexually

एडलर) आपको बिलकुल बेतुका जचेगा। इस तरह के स्वप्न होते अवश्य है। और आगे चलकर आपको पता चलेगा कि उनका ढाचा कुछ हिस्टीरिया के लक्षणो वाले ढाचे जैसा ही है। स्वप्नो की नई सामान्य विशेषताओ की इन सब खोजो की चर्चा करके मैं आपको उनके विरुद्ध चेतावनी देना चाहता हू या कम से कम उनके विषय में अपनी राय आपके सामने स्पष्ट कर देना चाहता हू।

४ एक समय था जब कि स्वप्नविषयक गवेषणाओ का वैज्ञानिक महत्व नष्ट-प्राय प्रतीत होता था, क्योकि जिन रोगियो का विश्लेषण द्वारा इलाज होता था, वे अपने स्वप्नो की वस्तु को अपने डाक्टरो के प्रिय सिद्धान्तो के अनुकूल बनाते दिखाई देते थे। कुछ लोगो को मुख्यत यौन या मैथुन सम्बन्धी आवेगो का ही, दूसरो को सत्ता या आधिपत्य के आवेगो का ही, और कुछ को पुनर्जन्म का ही स्वप्न आता था (डबल्यू० स्टीकल)। इस बात का महत्व यह सोचने पर बहुत कम हो जाता है कि लोगो ने, स्वप्नो पर प्रभाव डालने के लिए मनोविश्लेषण के इलाज जैसी कोई चीज होने से पहले ही, स्वप्न देखे थे और आजकल इलाज कराने वाले रोगी इलाज शुरू करने से पहले भी स्वप्न देखा करते थे। इस बात में, जिसे नई समझा जा रहा है, जो असली तथ्य है वह तुरन्त आपसे आप स्पष्ट दिखाई देता है, और स्वप्नो के सिद्धान्त के लिए महत्वहीन है। पिछले दिन का अवशेष, जिससे स्वप्न पैदा होते है, जागृत जीवन की बडी दिलचस्पियो से बचा हुआ अवशेष है। यदि डाक्टर के शब्द और उसके दिए हुए उद्दीपन रोगी के लिए महत्वपूर्ण बन गए है तो वे, जो कुछ भी अवशेष है, उसमें प्रविष्ट हो जाते है और स्वप्न-निर्माण के लिए ठीक उसी तरह मानसिक उद्दीपन बन जाते है जैसे पिछले दिन की भावुकतापूर्ण अन्य दिलचस्पिया, जो अभी कम नही हुई है। वे उन शारीरिक उद्दीपनो की तरह ही क्रिया करते है जो सोते हुए आदमी पर सोते समय प्रभाव डालते है। स्वप्न पैदा करने वाले इन दूसरे कारको की तरह डाक्टर द्वारा पैदा की गई विचार-शृखला भी प्रत्यक्ष स्वप्न-वस्तु मे दिखाई दे सकती है, या गुप्त विचारो में उसके अस्तित्व का पता चल सकता है। हम सचमुच यह बात जानते है कि परीक्षणो द्वारा स्वप्न पैदा किए जा सकते है, या अधिक ठीक-ठीक कहा जाए तो स्वप्न-सामग्री का कुछ हिस्सा इस प्रकार स्वप्न मे प्रविष्ट कराया जा सकता है। इस प्रकार, अपने रोगियो पर प्रभाव डालने वाला विश्लेषक वैसा ही कार्य करता है जैसा मोर्ली वोल्ड करता था—वह जिस व्यक्ति पर परीक्षण करता था उसके अंग को खास स्थितियो में रख देता था।

हम प्रभाव डालकर प्राय यह निश्चित कर सकते है कि कोई मनुष्य किस **विषय** में स्वप्न देखे, पर यह कभी नही कर सकते कि वह **क्या** स्वप्न देखे, क्योकि स्वप्न-तन्त्र की प्रक्रिया और अचेतन स्वप्न-इच्छा किसी भी तरह के बाहरी प्रभाव की पहुंच से बाहर है। जब हम शारीरिक उद्दीपनो से पैदा होने वाले स्वप्नो पर

विचार कर रहे थे, तब हमने यह स्पष्ट समझ लिया था कि स्वप्न-द्रष्टा पर शारीरिक या मानसिक उद्दीपनो के क्रिया करने की जो प्रतिक्रिया होती है, उससे स्वप्न जीवन की विशेषता और स्वतन्त्रता स्पष्ट दिखाई देती है। ऊपर मैंने जिस आलोचना की चर्चा की है, जो कि स्वप्न सम्बन्धी जाच-पडताल की वैज्ञानिकता पर सदेह करती है, वह भी ऐसा कथनमात्र है जो स्वप्न तथा स्वप्न-सामग्री में विभेद न करने के आधार पर खडा है।

मैं स्वप्नो की समस्याओ के बारे में आपको इतना ही बताना चाहता था। आप समझ रहे होगे कि मैंने बहुत बडे क्षेत्र को पार किया है, और यह भी देख लिया होगा कि प्राय प्रत्येक बात पर मेरा विवेचन अधूरा रहा है, जैसा कि आवश्यक ही था। पर इसका कारण यह है कि स्वप्नो की घटनाए स्नायु-रोगो की घटनाओ से बहुत नजदीकी सम्बन्ध रखती हैं। हमारी योजना यह थी कि स्नायु-रोगो के अध्ययन की भूमिका के रूप में स्वप्नो का अध्ययन किया जाए, और स्नायु-रोगो पर विचार करने के बाद स्वप्नो पर विचार करने की अपेक्षा यह तरीका निश्चित रूप से अच्छा था। परन्तु क्योकि स्वप्न हमें स्नायु रोगो को समझने के लिए तैयार करते हैं, इसलिए स्वप्नो के बारे में सही धारणा भी तभी हो सकती है, जब स्नायु-रोगो के रूपो का कुछ ज्ञान हमें हो।

मैं नही जानता कि आप इसके बारे में क्या सोचेंगे पर मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि आपकी इतनी दिलचस्पी और समय स्वप्न सबन्धी समस्याओ पर लगा देने का मुझे कुछ भी अफसोस नही। उन कथनो की, जो मनोविश्लेपण के आधारभूत सिद्धान्त हैं, सचाई का इतनी जल्दी निश्चय कराने का कोई और तरीका मुझे नही आता। यह स्पष्ट करने के लिए कि स्नायु-रोगी के लक्षणो का कुछ अर्थ होता है, वे कोई प्रयोजन सिद्ध करते हैं, और रोगी के जीवन सम्बन्धी अनुभवो से पैदा होते हैं, महीनो, बल्कि वर्षो, कठिन परिश्रम की आवश्यकता है। दूसरी ओर ये चीजे किसी स्वप्न में, जो पहले बिलकुल गडबड और समझ मे न आने वाला दिखाई देता था, दिखाने के लिए कुछ ही घटो की मेहनत काफी है, और इस तरह उन सब आधारो की पुष्टि हो जाती है जिन पर मनोविश्लेपण खडा है—अर्थात् अचेतन मानसिक प्रक्रमो का अस्तित्व, उनको चलाने वाले विशेपतन्त्र, और उनसे अभिव्यक्त होने वाले निसर्ग वृत्तियो के प्रेरक बल। और जब हम देखते हैं कि स्वप्नो के ढाचे और स्नायु-रोगों के ढाचे में कितना सादृश्य है, तथा सोचते हैं कि स्वप्न-द्रष्टा कितनी जल्दी अच्छी तरह सजग और तर्कसगत मनुष्य बन जाता है, तब हमें यह निश्चय हो जाता है कि स्नायु-रोग भी मानसिक जीवन में क्रियाशील बलो के सतुलन मे होने वाले परिवर्तन पर ही निर्भर है।

तीसरा भाग

स्नायु-रोगों का सामान्य सिद्धान्त

मनोविश्लेषण और मनश्चिकित्सा

एक साल के बाद फिर अपने विषय पर विचार करने के लिए आपको यहां देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। पिछले साल मेरे व्याख्यानो का विषय 'गलतियो और स्वप्नो पर मनोविश्लेषण का प्रयोग' था। इस वर्ष मैं आपको स्नायु-रोग विषयक घटनाओ के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त कराना चाहता हू—ये घटनाए, जैसा कि आप शीघ्र ही देख लेंगे, हमारे पहले वाले विषय से बहुत-सी बातो में मिलती-जुलती हैं, पर शुरू करने से पहले मैं आपसे यह बात कह देना चाहता हूं कि इस बार मैं आपको अपने प्रति पिछले साल वाला रुख नही रखने दूगा। पिछले साल मैंने आपके निर्णय से सहमत हुए बिना कदम आगे बढाने की कोशिश नही की थी। मैंने आपके साथ बहुत बहस की थी, आपके आक्षेपो को स्वीकार किया था, और आपको तथा आपकी 'स्वस्थ समझदारी' को निर्णायक माना था। अब ऐसा करना सम्भव नही और इसका कारण बिलकुल सीधा है। गलतिया और स्वप्न आपकी परिचित घटनाए थी। यह कहा जा सकता है कि उनका आपको उतना ही अनुभव था जितना कि मुझे, अथवा आप आसानी से उतना अनुभव हासिल कर सकते थे। परन्तु स्नायु-रोगो का व्यक्त रूप आपके लिए अज्ञात क्षेत्र है। आप में से जो लोग स्वय डाक्टर नही हैं, वे मेरे दिए हुए विवरण से जो कुछ जान सकते हैं उसके अलावा उनके पास वहा पहुंचने का कोई तरीका नही, और जहा विवाद के विषय का ज्ञान न हो वहा बढिया से बढिया निर्णय-बुद्धि भी किस काम की ?

परन्तु मेरे इस कथन का यह मतलब मत समझिए कि मैं यह व्याख्यान 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' की तरह आपके सामने दूगा, या आपसे इसे बिना शर्त मानने को कहूगा। ऐसी गलत धारणा से आप मेरे साथ घोर अन्याय करेंगे। मेरा लक्ष्य निश्चयात्मक विश्वास पैदा करना नही है। मेरा लक्ष्य तो जाच-पडताल के लिए प्रेरित करना और पूर्वग्रहो, अर्थात् पहले से बने-बनाए सस्कारो को नष्ट करना है। यदि विषय की जानकारी न होने के कारण आप फैसला करने की स्थिति में नही

है, तो न तो विश्वास करना चाहिए और न अविश्वास, सिर्फ ध्यान से सुनना चाहिए, और जो कुछ मै कहता हू, उसका असर अपने ऊपर पडने देना चाहिए। निश्चयात्मक विश्वास या आस्था इतनी आसानी से नही पैदा की जा सकती, और जब यह आसानी से पैदा की जाती है, तो वह शीघ्र ही बेकार और अस्थिर सिद्ध हो जाती है। इन मामलो पर ऐसे आदमी को विश्वास करने का हक नही है जिसने मेरी तरह वर्षो इस विषय का अध्ययन न किया हो और न ही नए और आश्चर्य-जनक रहस्यो का उद्घाटन स्वय अनुभव किया हो। तो, बौद्धिक मामलो में एका-एक विश्वास, बिजली की तरह कायापलट, और क्षण भर में मत-त्याग क्यो होते हैं। क्या आप यह नही देखते कि 'प्रथम दृष्टि का प्रेम' भाव-क्षेत्र से बहुत भिन्न मानसिक क्षेत्र से पैदा होता है। हम अपने मरीजो का मनोविश्लेषण के विश्वासी होना या इसके प्रति भक्ति रखना आवश्यक नही समझते। इससे हमें उनपर सदेह होने लगेगा।

हम सबसे अच्छी बात यह समझते है कि उनमें हितैषी सन्देह वृत्ति का रुख बना रहे। इसलिए आपको प्रचलित मनश्चिकित्सा सम्बन्धी विचार के साथ-साथ मनोविश्लेषण की अवधारणाओ को भी अपने मनो में चुपचाप बढते रहने का अव-सर देना चाहिए,जिससे अन्त में ऐसा मौका आ सकता है कि वे एक दूसरे पर असर डालें और मिलकर एक निश्चित राय का रूप ग्रहण कर लें।

दूसरी ओर आप यह कल्पना जरा भी न करें कि मै आपके सामने जो मनो-विश्लेषण का दृष्टिकोण पेश करूगा वह कोई अटकल या कल्पनावासी विचार-प्रणाली है। इसके विपरीत, यह उन अनुभवो का परिणाम है जो या तो प्रत्यक्ष प्रेक्षणो पर या प्रेक्षण से निकाले गए निष्कर्षो पर आधारित है। ये निष्कर्ष पर्याप्त या उचित रीति से निकाले गए ह या नही, इसका फैसला विज्ञान की भविष्य में होने वाली उन्नति से होगा। लगभग ढाई दशाब्दी के बाद और इतनी आयु हो जाने के बाद मै बिना आत्मप्रशसा की भावना के यह कह सकता हू कि इन प्रेक्षणो में जो कार्य करना पडा, वह विशेष रूप से कठिन, गहन और सारा ध्यान लगाने से होने वाला काम था। प्राय मेरी यह धारणा बनी है कि हमारे विरोधी हमारे कथनो के इस मूलस्रोत पर विचार करने को तैयार नही थे, मानो वे उन विचारो को आत्मनिष्ठ, अर्थात् विचारक की अपनी भावना का परिणाम, मानते थे जिन-पर कोई भी आदमी जब चाहे आपत्ति उठा सकता है। अपने विरोधियो की यह बात मुझे बिलकुल समझ मे नही आती—शायद इसका कारण यह है कि डाक्टर लोग स्नायु-रोगियो की ओर इतना कम ध्यान देते हैं, और उनकी बातो को इतनी असावधानी से सुनते है कि उनके लिए रोगियो के वचनो में कोई विशेष बात देख सकना या उनसे विस्तृत प्रेक्षण करना असम्भव हो गया है। मै यहा आपको यह आश्वासन देना चाहता हू कि मै इन व्याख्यानो में विवादास्पद बातो का,

विशेष रूप से व्यक्तियों का कोई उल्लेख नहीं करूंगा । इस कथन की सचाई मैं कभी अपने मन में नहीं बिठा सका कि 'द्वन्द्व या संघर्ष सब वस्तुओं का जनक है ।' मेरा ख्याल है कि यह कथन यूनानी सोफिस्टों के दर्शन से पैदा हुआ है और उस दर्शन की तरह इसमें भी यह त्रुटि है कि इसमें द्वन्द्वात्मकता[1] (या तर्क-पद्धति) को बहुत अधिक महत्व दे दिया गया है । इसके विपरीत, मुझे ऐसा लगता है कि तथाकथित वैज्ञानिक विवाद, कुल मिलाकर बिलकुल व्यर्थ है । और यह बात तो है ही कि यह प्राय सदा बड़ी व्यक्तिगत रीति से किया जाता है । कुछ वर्ष पहले तक मैं गर्व से यह कह सकता था कि मैं वैज्ञानिक झगड़े में सिर्फ एक बार बाकायदा उलझा हूं और वह भी सिर्फ एक वैज्ञानिक लोवनफैल्ड (म्यूनिखवाले) के साथ । इस झगडे का अन्त यह हुआ कि हम दोनों मित्र बन गए और आज तक मित्र है, पर मैंने बहुत समय तक यह परीक्षण फिर नहीं किया, क्योंकि मुझे यह निश्चय नहीं था कि इसका परिणाम यही होगा ।

इससे आप निश्चित रूप से यही समझेंगे कि इस तरह खुलेआम इन प्रश्नों पर विचार करने से इन्कार से यही पता चलता है कि आप आलोचना से बहुत डरते हैं या हठी, या वैज्ञानिक जगत में प्रचलित मुहावरे में कहा जाए तो, दुराग्रही हैं । इसपर मेरा यह उत्तर है कि यदि आप इतने कठोर परिश्रम के बाद किसी निश्चय पर पहुंचे हों तो उससे आपको कुछ दृढ़ता के साथ उसपर डटे रहने का अधिकार होना चाहिए । इसके अलावा मैं यह कह सकता हूं कि अपने गवेषणा-कार्य के बीच में मैंने स्वयं महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अपने विचार बदले हैं, और सदा इस तथ्य को प्रकाशित कर दिया है । इस स्पष्टवादिता या साफ-गोई का क्या परिणाम हुआ ? कुछ लोगों ने मेरे विचारों में स्वयं मुझ द्वारा किए गए संशोधनों को बिलकुल नजरन्दाज कर दिया, और वे आज भी उन विचारों के लिए मेरी आलोचना करते हैं जिनका अब मेरे लिए वह अर्थ नहीं रहा । कुछ लोग यह परिवर्तन करने के कारण मेरी निन्दा करते हैं और इसलिए मुझे भरोसा करने के अयोग्य बताते हैं । जो आदमी एक या दो बार विचार बदल ले वह विश्वास का पात्र कैसे हो सकता है, क्योंकि उसका इस बार का कथन भी गलत हो सकता है, पर जो आदमी अपनी एक बार कही हुई बात पर अड़ा रहे या उसमें आसानी से हेर-फेर करने से इन्कार कर दे, वह हठी या दुराग्रही है । ठीक है न ? ऐसी परस्पर विरोधी आलोचनाओं को देखते हुए सिवाय इसके क्या रास्ता है कि आदमी जैसा है वैसा कहे, और उसे जैसा जंचे वैसा करे मैंने ऐसा ही करने का फैसला किया, और मैं बाद के अनुभव के अनुसार अपने सिद्धान्तों में परिवर्तन या संशोधन करने में संकोच नहीं करता । अब तक मुझे अपने मूल दृष्टिकोण को बदलने के लिए

---

१ Dialectics

नही है। वे सम्प्रेपण के साधन नही है। इसके विपरीत, उनका समझ में न आना ही महत्व की बात है। इसलिए यदि यह परिणाम निकले कि स्वप्नो की कुछ अस्पष्ट अर्थ वाली और अनिश्चित बातें स्पष्टरूप से तय न की जा सकें तो हमें आश्चर्य नही करना चाहिए, या किसी भ्रम में नही पडना चाहिए। हमारी तुलना से, जो एकमात्र निश्चित जानकारी प्राप्त होती है, वह यह है कि इस अनिश्चितता को (जिसे लोग हमारे स्वप्न-निर्वचनो की यथार्थता के विरुद्ध दलील बनाना चाहते हैं।) अभिव्यक्ति की सभी आदिम प्रणालियो की सामान्य विशेपता मानना चाहिए।

अभ्यास और अनुभव से ही यह तय हो सकता है कि स्वप्न असल में कहा तक समझ में आ सकते हैं। मेरी अपनी राय यह है कि वे बहुत दूर तक समझ मे आ सकते है, और उचित रीति से शिक्षा पाए हुए विश्लेपको ने जो परिणाम निकाले हैं, उनकी तुलना से मेरे विचार की पुष्टि होती है। आम जनता वैज्ञानिक कार्यो में भी, वैज्ञानिक सफलता के मार्ग की कठिनाइयो और अनिश्चितताओं के मुकाबले में अपनी प्रवल सन्देहशीलता का प्रदर्शन करके खुश हुआ करती है। मै समझता हू कि उनका ऐसा करना गलत है। सम्भवत आप सबको यह पता नही होगा कि यही वात तव हुई थी जव वावुल और असीरिया में मिले लेखो को पढने की कोशिश की जा रही थी। एक ऐसा समय आया, जव लोकमत जोर-शोर से यह घोपणा कर रहा था कि कीलकाक्षर-लेखो को पढ़ने में लगे हुए लोग झूठी कल्पना के शिकार हो गए हैं और यह जाच-पडताल का सारा काम एक धोखा और ठगी है। पर १८५७में रायल एशियाटिक सोसायटी ने एक निश्चायक परीक्षा की। उसने इस गवेपण-कार्य में लगे हुए चार सवसे प्रमुख व्यक्तियो रालिन्सन, हिंक्स, फौक्स टैलवाट और ओपर्ट से यह कहा कि वे मुहरवन्द लिफाफों में एक नए खोजे गए लेख के स्वतन्त्र अनुवाद सोसायटी को भेजें, और उन चारो की तुलना करने के वाद सोसायटी ने यह एलान किया कि उन चारो में काफी समानता है, जिससे अव तक प्राप्त परिणामो पर विश्वास किया जा सकता है, और आगे प्रगति की आशा की जा सकती है। तव पढे-लिखे सामान्य लोगो का हसी उडाना धीरे-धीरे खत्म हो गया और उसके वाद से कीलकाक्षर-लेखो के पढने में बहुत अधिक निश्चितता आ गई।

२ दूसरी तरह के ऐतराजो का ऐसी भावनाओ से निकट सम्बन्ध है जिनसे शायद आप भी नही वचे हैं, और वे ये हैं कि हमारे स्वप्न-निर्वचन की रीति से प्राप्त कई परिणाम खीच-तान या जवर्दस्ती लाए गए या मजाक-से लगते हैं। यह आलोचना इतनी अधिक होती है कि मै उस आलोचना पर विचार करूगा जो मेरे काम में सवसे पीछे हुई थी। अव सुनिए आजाद देश स्विटजरलैंड में हाल में ही एक हेडमास्टर ने इस कारण अपने पद से त्यागपत्र देने को कहा गया कि वह मनोविश्लेपण में दिलचस्पी रखता था। उसने विरोध किया, और वर्न के एक अखवार में उसके सामने पर स्कूल-अधिकारियो का फैसला प्रकाशित किया गया। उस लेख से मै

मनोविश्लेपण सम्बन्धी कुछ वाक्य उद्धृत करूगा . "इसके अलावा, उक्त पुस्तक मे ज्यूरिच के डा० फिस्टर द्वारा दिए गए उदाहरण में कितनी खीच-तान की गई है, यह देखकर हम चकित रह गए । यह सचमुच आश्चर्य की वात है कि एक ट्रेनिंग कालेज के हेडमास्टर ने इस तरह के वचनो और सिर्फ ऊपर से ठीक दीखने वाली गवाहियो को इतने अधविश्वास के साथ स्वीकार कर लिया ।" ये वाक्य 'एक शान्त मन से फैसला करनेवाले' की अन्तिम राय वताए गए है । मुझे यह शान्त मनवाली वात झूठी मालूम होती है। इन वचनो पर इस आशा से जरा वारीकी से विचार कीजिए कि इस विषय पर थोडे विचार और जानकारी से 'शान्तमन के फैसले' को भी कोई हानि नहीं होगी।

यह देखकर सचमुच वडा आश्चर्य होता है कि कोई आदमी सिर्फ अपने ऊपर पडे पहले प्रभाव के आधार पर इतनी जल्दी और निर्भ्रांत रूप से मनोविज्ञान के किसी कठिन प्रश्न पर मत स्थिर कर सकता है । उसे निर्वचन खीच-तान से किए गए मालूम होते हैं, और उसे वे नही जचते इसलिए वे गलत हैं, और यह सारा काम विलकुल कूडा है । ऐसे आलोचक इस सम्भावना को अपने पास भी नही फटकने देते कि निर्वचनो के ऐसे ही होने के लिए काफी अच्छी युक्तिया हो सकती है । यदि वे इस सम्भावना को समझते है तो अगला प्रश्न यह होगा कि वे प्रवल युक्तिया क्या हैं ।

इस आलोचना का अधार वह परिस्थिति है जिसका विस्थापन के प्रभाव से आवश्यक सवध है, और विस्थापन स्वप्न-सेंसरशिप का सवसे प्रवल हथियार वताया गया है । इसकी सहायता से स्थानापन्न रचनाए वनती हैं, जिन्हे हम अस्पष्ट निर्देश कहते है । पर ये अस्पष्ट निर्देश ऐसे होते हैं, जिन्हे इस रूप मे पहचानना तथा उनके पीछे की ओर चलकर असली विचार को खोजना भी आसान नही होता, क्योकि वे इसके साथ वडे असाधारण और कभी-कभी होने वाले वाहरी साहचर्यो द्वारा जुडे रहते है । पर इस सवका सम्वन्ध ऐसी वस्तुओ से होता है जिन्हे छिपाना इष्ट होता है । स्वप्न-सेंसरशिप का ठीक यही उद्देश्य है । पर हमें छिपाई गई वस्तु उसी स्थान पर देखने से मिल जाने की आशा न करनी चाहिए जहा यह सामान्यतया होती है। आजकल इस विषय मे सीमान्त-निरीक्षण अधिकारी स्कूल अधिकारियो की अपेक्षा कही अधिक होशियार हैं, क्योकि वे निश्चित कागजात खोजते हुए सिर्फ पोर्टफोलिओ और चिट्ठियो के थैलो की तलाशी लेकर ही सन्तुष्ट नही हो जाते, वल्कि उन्हे यह सम्भावना भी रहती है कि जासूस और तस्कर कोई आपत्तिजनक चीज अपने शरीर में ऐसे स्थान पर छिपाकर न ले जाए जहा उन्हे देखना वहुत मुश्किल हैं, या जहा रखने योग्य वे वस्तुए नही होती, उदाहरण के लिए, अपने वूटो की दोहरी तलियो में। यदि छिपाई हुई वस्तुएं वहा मिल जाए तो निश्चित ही यह कहना सच है कि उन्हे 'घसीटकर रोशनी में लाया गया', पर फिर भी वे एक वहुत

अच्छी 'खोज' है।

हम यह मानते हैं कि गुप्त स्वप्न-अवयव और इसके व्यक्त स्थानापन्न का सम्बन्ध कभी-कभी बहुत असामान्य और बहुत दूर का प्रतीत होता है, यहा तक कि कभी-कभी वह उपहासयोग्य-सा मालूम होता है, और इसका कारण यह है कि हमें ऐसे बहुत सारे उदाहरणो का अनुभव है जिनमें हम स्वय अर्थ नही खोज सके। सिर्फ हमारे प्रयत्नो से इन निर्वचनो पर पहुचना प्राय असम्भव होता है। कोई भी समझदार आदमी उन दोनो को जोडने वाले सम्बन्ध का अन्दाजा नही कर सकता। या तो स्वप्न-द्रष्टा किसी प्रत्यक्ष साहचर्य के द्वारा सीधे ही पहेली सुलझा देता है (**वही** इसे सुलझा सकता है क्योकि स्थानापन्न रचना उसके ही मन में पैदा हुई है), अथवा वह इतनी अधिक सामग्री दे देता है कि उसे हल करने के लिए विशेष जाच-पडताल की जरूरत नही पडती—हल आप से आप हमारे ऊपर आ पडता है। यदि स्वप्न-द्रष्टा इनमें से किसी भी तरीके से हमारी मदद नही करता तो वह व्यक्त अवयव सदा के लिए हमारी समझ से बाहर रहेगा। इस तरह का एक और उदाहरण देखिए जो हाल में ही हुआ था। मेरी एक रोगिणी का पिता उसके इलाज को दिनो में गुजर गया और इसके बाद वह अपने स्वप्नो में हर मौके पर उसे जीवित देखा करती थी। इनमें से एक स्वप्न में उसका पिता एक ऐसे सिलसिले में दिखाई दिया जो वैसे लागू नही हो सकता था, और बोला "**अब सवा ग्यारह बजे हैं, अब साढे ग्यारह बजे हैं, अब पौने बारह बजे हैं।**" इस अजीब-सी बात के अर्थ के बारे में वह इतना ही साहचर्य बता सकी कि उसका पिता उस समय बडा प्रसन्न होता था जब उसके बडे बालक दोपहर के भोजन में ठीक समय पर पहुचते थे। यह बात स्वप्न-अवयव के साथ निश्चित रूप से जचती थी, पर इससे इसके पैदा होने के कारण पर कोई रोशनी नही पडती थी। इलाज में हम स्थिति पर पहुच गए थे, उसके कारण इस सन्देह के लिए काफी आधार मालूम होता था कि इसके स्वप्न में अपने प्रिय और सम्मानित पिता के प्रति किसी विरोध का हाथ है, पर उस विरोध को सावधानी से दबा दिया गया है। अपने और साहचर्य बताते हुए, जो इस स्वप्न से बिलकुल दूर मालूम होते थे, उसने बताया कि मैंने पिछले दिन मनोवैज्ञानिक समस्याओ पर एक लम्बा विवेचन सुना था, और एक रिश्तेदार ने मुझसे कहा था "उरमेन्श (Urmensch) (आदिम मानव) हम सबके अन्दर जीवित है।" अब हमें नई रोशनी दिखाई दी। अब इसे भी यह कल्पना करने का बहुत अच्छा मौका मिल गया है कि उसका मृत पिता जीवित है और उसने स्वप्न में उसे 'उहरमेन्श' (Uhrmensch) (समय बताने वाला) बना दिया जो दोपहर के भोजन के समय तक हर पन्द्रह मिनट का समय बताता था।

इसमें एक श्लेष जैसी चीज स्पष्ट दिखाई देती है, और सचाई तो यह है कि बहुत बार स्वप्न देखने वाले का श्लेष निर्वचनकर्ता के जिम्मे डाल दिया जाता है।

और भी ऐसे उदाहरण हैं जिनमें यह फैसला करना आसान नही है कि हम जिस चीज़ पर विचार कर रहे हैं, वह मजाक है या स्वप्न। पर आपको याद होगा कि बोलने की कुछ गलतियो में भी यही सन्देह पैदा हुआ था। एक आदमी ने यह स्वप्न सुनाया कि मैं अपने चाचा के साथ उसकी आटो (मोटर) में बैठा था और मेरे चाचा ने मुझे चूम लिया। स्वप्न-द्रष्टा ने स्वय फौरन ही यह निर्वचन पेश किया : इसका अर्थ था 'आटो-एरोटिज्म' (अर्थात् आत्मरति) (यह शब्द हमारे लिबिडो अर्थात् रागवृत्ति के सिद्धान्त मे प्रयुक्त होता है और इसका अर्थ है प्रेम के किसी बाहरी आलबन के बिना प्राप्त परितुष्टि)। अब प्रश्न यह है कि क्या यह आदमी हमारा मजाक उडाकर खुश होरहा था और यह दिखा रहा था कि उसके मन में आया हुआ श्लेष या व्यंग्य एक स्वप्न का हिस्सा था। मैं ऐसा नही समझता ' उसे सच-मुच ही यह स्वप्न आया था। पर स्वप्नो और मजाको में यह अजीब समानता कहां से हो जाती है? एक बार इस प्रश्न ने मुझे मेरे रास्ते से कुछ दूर कर दिया था क्यो कि इसके कारण मेरे लिए व्यग्य-परिहास के प्रश्न पर बारीकी से जाच करना आवश्यक हो गया। इससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुचा कि व्यग-परिहास का जन्म इस तरह होता है : एक पूर्व चेतन[1] विचार-शृंखला कुछ क्षण के लिए अचेतन विशदन के प्रक्रम से प्रभावित होती है जिससे वह एक व्यग्योक्ति के रूप मे पैदा होती है। अचेतन के प्रभाव में रहते हुए यह वहा क्रियाशील तन्त्रो, संघनन और विस्थापन से प्रभावित होती है, अर्थात् उन्ही प्रक्रमो से प्रभावित होती है जो हमे स्वप्न-तन्त्र में कार्य करते दिखाई दिए थे, और स्वप्न तथा व्यग्य-परिहास में कभी-कभी जो समानता दिखाई देती है, उसका कारण दोनो का यह सामान्य गुण ही है। पर बिना किसी भीतरी मतलब वाला 'स्वप्न-मजाक' हमें उतना मनोरजक नही लगता, जितनी कोई सामान्य व्यग्योक्ति लगती है। व्यग्य-परिहास के अधिक गहरे अध्ययन से आपको इसका कारण पता चला जाएगा। 'स्वप्न-मजाक' बहुत घटिया दर्जे का मजाक मालूम होता है, यह हमें हसाता नही, बल्कि उदासीन कर देता है।

इस मामले में हम स्वप्न-निर्वचन के प्राचीन तरीके के रास्ते पर चल रहे हैं जिसने हमें बहुत-सी बेकार बातो के अलावा निर्वचन के बहुत-से ऐसे मूल्यवान् उदाहरण भी दिए हैं, जिनसे अच्छे उदाहरण हमे नही मिल सकते। मै आपको एक ऐसा स्वप्न सुनाऊंगा जिसका महत्व इतिहास-प्रसिद्ध है, और जो मामूली फर्क के साथ प्लूटार्क तथा डैल्डिस के आर्टेमीडोरस ने बयान किया है—यह स्वप्न सिकन्दर महान ने देखा था। जब वह टायर नगर का घेरा डाले पडा था, और टायर नगर डटकर मुकाबला कर रहा था (ई० पू० ३२२)। तब उसने एक रात को स्वप्न मे एक नाचता हुआ सैटायर (एक यूनानी देवता) देखा। स्वप्न-निर्वचक एरिस्टैंडरीस ने, जो सेना के अभियानो में साथ-साथ चलता था, इस स्वप्न का अर्थ

1 Preconscious

'सैंटायरौस' शब्द को 'सै' तथा 'टायरौस' ('टायर तेरा है') में बांटकर लगाया और इससे उस नगर पर सिकन्दर की विजय की भविष्यवाणी की। इस निर्वचन के कारण सिकन्दर ने घेरा जारी रखा, और अत में नगर का पतन हो गया। वह निर्वचन कितना झूठा या कृत्रिम मालूम होता है, पर नि सदेह वह सही था।

३ मैं आसानी से कल्पना कर सकता हू कि यह बात सुनकर आप विशेष प्रभावित होगे कि जिन लोगो ने मनोविश्लेषक के रूप में बहुत समय तक स्वप्नो के निर्वचन का अध्ययन किया है, उन्होने भी हमारी स्वप्नो की अवधारणा पर आक्षेप किए है। नई गलतियो के ऐसे अच्छे मौके को कैसे छोड दिया जाता ? इसलिए विचारो में विभ्रम के कारण और अनुचित सामान्यकरण के आधार पर ऐसी बातें कही गई है, जो स्वप्नो की डाक्टरी अवधारणा से कम गलत नही हैं। इनमें से एक बात आप पहले सुन चुके हैं कि स्वप्न उस समय की परिस्थिति के अनुकूल बनने की कोशिशो और भविष्य की समस्याओ के हल को प्रकट करते हैं। दूसरे शब्दो में, वे 'भविष्यलक्षी प्रवृत्ति' या लक्ष्य की ओर चलते है (ए० मीडर)। हम पहले यह दिखा चुके है कि इस कथन का आधार स्वप्न तथा गुप्त स्वप्न-विचार को ठीक-ठीक अलग न कर सकना है और इसमें स्वप्न-तन्त्र को नजरदाज कर दिया गया है। जो लोग इस 'भविष्यलक्षी प्रवृत्ति' की बात कहते है, यदि उससे उनका आशय उस अचेतन मानसिक व्यापार से है जिसमें गुप्त विचार होते हैं, तो एक ओर तो इसमें कोई नई बात नही है, और दूसरी ओर, यह पूरा वर्णन नही है, क्योकि अचेतन मानसिक व्यापार भविष्य के लिए तैयारी करने के आलावा और बहुत-से कामो में लगा रहता है। इस कथन में तो और भी विभ्रम दिखाई देता है कि प्रत्येक स्वप्न की तह में 'मृत्यु-सकेत' देखा जा सकता है। मुझे यह बात अच्छी तरह समझ में नही आई कि इस कथन का क्या आशय हे, पर यह सदेह होता है कि इसकी आड में स्वप्न तथा स्वप्न-द्रष्टा के सारे व्यक्तित्व को एक जगह मिलाकर घुटाला कर दिया गया है।

थोडे-से प्रभावोत्पादक उदाहरणो के आधार पर किया गया एक अनुचित सामान्यकरण इस कथन में मौजूद है कि प्रत्येक स्वप्न के दो तरह के निर्वचन हो सकते हैं—एक उस तरह का जिस तरह का हमने बताया है, अर्थात् तथाकथित 'मनोविश्लेषणात्मक' निर्वचन, और दूसरा तथाकथित 'रहस्यवादी'[1] निर्वचन जो नैसर्गिक प्रवृत्तियो की उपेक्षा करता है और ऊचे मानसिक कार्यो के निरूपण का लक्ष्य रखता है (एच० सिल्बरर)। इस तरह के कुछ स्वप्न होते हैं, पर इस अवधारणा में बहुसख्यक स्वप्न भी नही आ सकते। जो कुछ आप सुन चुके है, उसके बाद यह कथन कि सब स्वप्नो का निर्वचन द्विलिंगित[2] अर्थात् दो प्रवृत्तियो के—जिनमें से एक पुरुष और दूसरी स्त्री है—मेल के रूप में किया जा सकता है, (ए०

१ Anagogic २ Bisexually

एडलर) आपको बिलकुल बेतुका जचेगा। इस तरह के स्वप्न होते अवश्य है। और आगे चलकर आपको पता चलेगा कि उनका ढाचा कुछ हिस्टीरिया के लक्षणो वाले ढाचे जैसा ही है। स्वप्नो की नई सामान्य विशेपताओ की इन सब खोजो की चर्चा करके मै आपको उनके विरुद्ध चेतावनी देना चाहता हू या कम से कम उनके विषय मे अपनी राय आपके सामने स्पष्ट कर देना चाहता हूं।

४ एक समय था जब कि स्वप्नविपयक गवेपणाओ का वैज्ञानिक महत्व नष्ट-प्राय प्रतीत होता था, क्योकि जिन रोगियो का विश्लेपण द्वारा इलाज होता था, वे अपने स्वप्नो की वस्तु को अपने डाक्टरो के प्रिय सिद्धान्तो के अनुकूल बनाते दिखाई देते थे। कुछ लोगो को मुख्यत यौन या मैथुन सम्बन्धी आवेगो का ही, दूसरो को सत्ता या आधिपत्य के आवेगो का ही, और कुछ को पुनर्जन्म का ही स्वप्न आता था (डबल्यू० स्टीकल)। इस बात का महत्व यह सोचने पर बहुत कम हो जाता है कि लोगो ने, स्वप्नो पर प्रभाव डालने के लिए मनोविश्लेपण के इलाज जैसी कोई चीज होने से पहले ही, स्वप्न देखे थे और आजकल इलाज कराने वाले रोगी इलाज शुरू करने से पहले भी स्वप्न देखा करते थे। इस बात में, जिसे नई समझा जा रहा है, जो असली तथ्य है वह तुरन्त आपसे आप स्पष्ट दिखाई देता है, और स्वप्नो के सिद्धान्त के लिए महत्वहीन है। पिछले दिन का अवशेष, जिससे स्वप्न पैदा होते है, जागृत जीवन की बडी दिलचस्पियो से बचा हुआ अवशेष है। यदि डाक्टर के शब्द और उसके दिए हुए उद्दीपन रोगी के लिए महत्वपूर्ण बन गए है तो वे, जो कुछ भी अवशेप है, उसमें प्रविष्ट हो जाते है और स्वप्न-निर्माण के लिए ठीक उसी तरह मानसिक उद्दीपन बन जाते है जैसे पिछले दिन की भावुकतापूर्ण अन्य दिलचस्पिया, जो अभी कम नही हुई है। वे उन शारीरिक उद्दीपनो की तरह ही क्रिया करते है जो सोते हुए आदमी पर सोते समय प्रभाव डालते है। स्वप्न पैदा करने वाले इन दूसरे कारको की तरह डाक्टर द्वारा पैदा की गई विचार-शृखला भी प्रत्यक्ष स्वप्न-वस्तु में दिखाई दे सकती है, या गुप्त विचारो में उसके अस्तित्व का पता चल सकता है। हम सचमुच यह बात जानते है कि परीक्षणो द्वारा स्वप्न पैदा किए जा सकते है, या अधिक ठीक-ठीक कहा जाए तो स्वप्न-सामग्री का कुछ हिस्सा इस प्रकार स्वप्न मे प्रविष्ट कराया जा सकता है। इस प्रकार, अपने रोगियो पर प्रभाव डालने वाला विश्लेपक वैसा ही कार्य करता है जैसा मोर्ली वोल्ड करता था—वह जिस व्यक्ति पर परीक्षण करता था उसके अग को खास स्थितियो में रख देता था।

हम प्रभाव डालकर प्राय. यह निश्चित कर सकते है कि कोई मनुष्य किस विषय में स्वप्न देखे, पर यह कभी नही कर सकते कि वह **क्या** स्वप्न देखे, क्योकि स्वप्न-तन्त्र की प्रक्रिया और अचेतन स्वप्न-इच्छा किसी भी तरह के बाहरी प्रभाव की पहुंच से बाहर है। जब हम शारीरिक उद्दीपनो से पैदा होने वाले स्वप्नो पर

विचार कर रहे थे, तब हमने यह स्पष्ट समझ लिया था कि स्वप्न-द्रष्टा पर शारीरिक या मानसिक उद्दीपनो के क्रिया करने की जो प्रतिक्रिया होती है, उससे स्वप्न जीवन की विशेषता और स्वतन्त्रता स्पष्ट दिखाई देती है। ऊपर मैंने जिस आलोचना की चर्चा की है, जो कि स्वप्न सम्बन्धी जाच-पडताल की वैज्ञानिकता पर सदेह करती है, वह भी ऐसा कथनमात्र है जो स्वप्न तथा स्वप्न-सामग्री में विभेद न करने के आधार पर खडा है।

मैं स्वप्नो की समस्याओ के बारे में आपको इतना ही बताना चाहता था। आप समझ रहे होगे कि मैंने बहुत बडे क्षेत्र को पार किया है, और यह भी देख लिया होगा कि प्राय प्रत्येक बात पर मेरा विवेचन अधूरा रहा है, जैसा कि आवश्यक ही था। पर इसका कारण यह है कि स्वप्नो की घटनाए स्नायु-रोगो की घटनाओ से बहुत नजदीकी सम्बन्ध रखती हैं। हमारी योजना यह थी कि स्नायु-रोगो के अध्ययन की भूमिका के रूप में स्वप्नो का अध्ययन किया जाए, और स्नायु-रोगो पर विचार करने के बाद स्वप्नो पर विचार करने की अपेक्षा यह तरीका निश्चित रूप से अच्छा था। परन्तु क्योकि स्वप्न हमें स्नायु रोगो को समझने के लिए तैयार करते हैं, इसलिए स्वप्नो के बारे में सही धारणा भी तभी हो सकती है, जब स्नायु-रोगो के रूपो का कुछ ज्ञान हमें हो।

मैं नही जानता कि आप इसके बारे में क्या सोचेंगे पर मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि आपकी इतनी दिलचस्पी और समय स्वप्न सबन्धी समस्याओ पर लगा देने का मुझे कुछ भी अफसोस नही। उन कथनो की, जो मनोविश्लेपण के आधारभूत सिद्धान्त हैं, सचाई का इतनी जल्दी निश्चय कराने का कोई और तरीका मुझे नही आता। यह स्पष्ट करने के लिए कि स्नायु-रोगी के लक्षणो का कुछ अर्थ होता है, वे कोई प्रयोजन सिद्ध करते हैं, और रोगी के जीवन सम्बन्धी अनुभवो से पैदा होते हैं, महीनो, बल्कि वर्षो, कठिन परिश्रम की आवश्यकता है। दूसरी ओर ये चीजें किसी स्वप्न में, जो पहले बिलकुल गडबड और समझ में न आने वाला दिखाई देता था, दिखाने के लिए कुछ ही घटो की मेहनत काफी है, और इस तरह उन सब आधारो की पुष्टि हो जाती है जिन पर मनोविश्लेपण खडा है—अर्थात् अचेतन मानसिक प्रक्रमो का अस्तित्व, उनको चलाने वाले विशेपतन्त्र, और उनसे अभिव्यक्त होने वाले निसर्ग वृत्तियो के प्रेरक बल। और जब हम देखते हैं कि स्वप्नो के ढाचे और स्नायु-रोगों के ढाचे में कितना सादृश्य है, तथा सोचते हैं कि स्वप्न-द्रष्टा कितनी जल्दी अच्छी तरह सजग और तर्कसगत मनुष्य बन जाता है, तब हमें यह निश्चय हो जाता है कि स्नायु-रोग भी मानसिक जीवन में क्रियाशील बलो के सतुलन में होने वाले परिवर्तन पर ही निर्भर है।

तीसरा भाग

स्नायु-रोगों का सामान्य सिद्धान्त

मनोविश्लेषण और मनश्चिकित्सा

एक साल के बाद फिर अपने विषय पर विचार करने के लिए आपको यहा देखकर मुझे बडी प्रसन्नता हो रही है। पिछले साल मेरे व्याख्यानो का विषय 'गलतियो और स्वप्नो पर मनोविश्लेषण का प्रयोग' था। इस वर्ष मैं आपको स्नायु-रोग विषयक घटनाओ के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त कराना चाहता हूं—ये घटनाएं, जैसा कि आप शीघ्र ही देख लेगे, हमारे पहले वाले विषय से बहुत-सी बातो मे मिलती-जुलती हैं, पर शुरू करने से पहले मैं आपसे यह बात कह देना चाहता हूं कि इस बार मे आपको अपने प्रति पिछले साल वाला रुख नही रखने दूगा। पिछले साल मैंने आपके निर्णय से सहमत हुए बिना कदम आगे बढाने की कोशिश नही की थी। मैंने आपके साथ बहुत बहस की थी, आपके आक्षेपो को स्वीकार किया था, और आपको तथा आपकी 'स्वस्थ समझदारी' को निर्णायक माना था। अब ऐसा करना सम्भव नही और इसका कारण बिलकुल सीधा है। गलतिया और स्वप्न आपकी परिचित घटनाएं थी। यह कहा जा सकता है कि उनका आपको उतना ही अनुभव था जितना कि मुझे, अथवा आप आसानी से उतना अनुभव हासिल कर सकते थे। परन्तु स्नायु-रोगो का व्यक्त रूप आपके लिए अज्ञात क्षेत्र है। आप में से जो लोग स्वय डाक्टर नही हैं, वे मेरे दिए हुए विवरण से जो कुछ जान सकते हैं उसके अलावा उनके पास वहा पहुंचने का कोई तरीका नही, और जहा विवाद के विषय का ज्ञान न हो वहा बढिया से बढ़िया निर्णय-बुद्धि भी किस काम की ?

परन्तु मेरे इस कथन का यह मतलब मत समझिए कि मैं यह व्याख्यान 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' की तरह आपके सामने दूगा, या आपसे इसे बिना शर्त मानने को कहूगा। ऐसी गलत धारणा से आप मेरे साथ घोर अन्याय करेंगे। मेरा लक्ष्य निश्चयात्मक विश्वास पैदा करना नही है। मेरा लक्ष्य तो जाच-पडताल के लिए प्रेरित करना और पूर्वग्रहो, अर्थात् पहले से बने-बनाए सस्कारो को नष्ट करना है। यदि विषय की जानकारी न होने के कारण आप फैसला करने की स्थिति में नही

हैं, तो न तो विश्वास करना चाहिए और न अविश्वास, सिर्फ ध्यान से सुनना चाहिए, और जो कुछ मैं कहता हू, उसका असर अपने ऊपर पड़ने देना चाहिए। निश्चयात्मक विश्वास या आस्था इतनी आसानी से नही पैदा की जा सकती, और जब यह आसानी से पैदा की जाती है, तो वह शीघ्र ही बेकार और अस्थिर सिद्ध हो जाती है। इन मामलो पर ऐसे आदमी को विश्वास करने का हक नही है जिसने मेरी तरह वर्षो इस विषय का अध्ययन न किया हो और न ही नए और आश्चर्य-जनक रहस्यो का उद्घाटन स्वय अनुभव किया हो। तो, बौद्धिक मामलो में एका-एक विश्वास, बिजली की तरह कायापलट, और क्षण भर में मत-त्याग क्यो होते हैं। क्या आप यह नही देखते कि 'प्रथम दृष्टि का प्रेम' भाव-क्षेत्र से बहुत भिन्न मानसिक क्षेत्र से पैदा होता है। हम अपने मरीजो का मनोविश्लेषण के विश्वासी होना या इसके प्रति भक्ति रखना आवश्यक नही समझते। इससे हमें उनपर सदेह होने लगेगा।

हम सबसे अच्छी बात यह समझते हैं कि उनमें हितैषी सन्देह वृत्ति का रुख बना रहे। इसलिए आपको प्रचलित मनश्चिकित्सा सम्बन्धी विचार के साथ-साथ मनोविश्लेषण की अवधारणाओ को भी अपने मनो में चुपचाप बढते रहने का अव-सर देना चाहिए,जिससे अन्त में ऐसा मौका आ सकता है कि वे एक दूसरे पर असर डालें और मिलकर एक निश्चित राय का रूप ग्रहण कर लें।

दूसरी ओर आप यह कल्पना जरा भी न करें कि मैं आपके सामने जो मनो-विश्लेषण का दृष्टिकोण पेश करूगा वह कोई अटकल या कल्पनावासी विचार-प्रणाली है। इसके विपरीत, यह उन अनुभवो का परिणाम है जो या तो प्रत्यक्ष प्रेक्षणो पर या प्रेक्षण से निकाले गए निष्कर्षो पर आधारित हैं। ये निष्कर्ष पर्याप्त या उचित रीति से निकाले गए है या नही, इसका फैसला विज्ञान की भविष्य में होने वाली उन्नति से होगा। लगभग ढाई दशाब्दी के बाद और इतनी आयु हो जाने के बाद मैं बिना आत्मप्रशसा की भावना के यह कह सकता हू कि इन प्रेक्षणो में जो कार्य करना पड़ा, वह विशेष रूप से कठिन, गहन और सारा ध्यान लगाने से होने वाला काम था। प्राय मेरी यह धारणा बनी है कि हमारे विरोधी हमारे कथनो के इस मूलस्रोत पर विचार करने को तैयार नही थे, मानो वे उन विचारो को आत्मनिष्ठ, अर्थात् विचारक की अपनी भावना का परिणाम, मानते थे जिन-पर कोई भी आदमी जब चाहे आपत्ति उठा सकता है। अपने विरोधियो की यह बात मुझे बिलकुल समझ में नही आती—शायद इसका कारण यह है कि डाक्टर लोग स्नायु-रोगियो की ओर इतना कम ध्यान देते हैं, और उनकी बातो को इतनी असावधानी से सुनते हैं कि उनके लिए रोगियो के वचनो में कोई विशेष बात देख सकना या उनसे विस्तृत प्रेक्षण करना असम्भव हो गया है। मैं यहा आपको यह आश्वासन देना चाहता हू कि मैं इन व्याख्यानो में विवादास्पद बातो का,

विशेष रूप से व्यक्तियो का कोई उल्लेख नही करूगा। इस कथन की सचाई मैं कभी अपने मन में नही बिठा सका कि 'द्वन्द्व या सघर्ष सब वस्तुओ का जनक है।' मेरा ख्याल है कि यह कथन यूनानी सोफिस्टो के दर्शन से पैदा हुआ है और उस दर्शन की तरह इसमे भी यह त्रुटि है कि इसमें द्वन्द्वात्मकता[1] (या तर्क-पद्धति) को बहुत अधिक महत्व दे दिया गया है। इसके विपरीत, मुझे ऐसा लगता है कि तथाकथित वैज्ञानिक विवाद, कुल मिलाकर बिलकुल व्यर्थ है। और यह बात तो है ही कि यह प्राय सदा बड़ी व्यक्तिगत रीति से किया जाता है। कुछ वर्ष पहले तक मैं गर्व से यह कह सकता था कि मैं वैज्ञानिक झगडे में सिर्फ एक बार बाकायदा उलझा हू और वह भी सिर्फ एक वैज्ञानिक लोवनफैल्ड (म्यूनिखवाले) के साथ। इस झगडे का अन्त यह हुआ कि हम दोनो मित्र बन गए और आज तक मित्र है, पर मैंने बहुत समय तक यह परीक्षण फिर नही किया, क्योकि मुझे यह निश्चय नही था कि इसका परिणाम यही होगा।

इससे आप निश्चित रूप से यही समझेंगे कि इस तरह खुलेआम इन प्रश्नो पर विचार करने से इन्कार से यही पता चलता है कि आप आलोचना से बहुत डरते हैं या हठी, या वैज्ञानिक जगत मे प्रचलित मुहावरे में कहा जाए तो, दुराग्रही हैं। इसपर मेरा यह उत्तर है कि यदि आप इतने कठोर परिश्रम के बाद किसी निश्चय पर पहुचे हो तो उनसे आपको कुछ दृढता के साथ उसपर डटे रहने का अधिकार होना चाहिए। इसके अलावा मैं यह कह सकता हू कि अपने गवेषणा-कार्य के बीच में मैंने स्वय महत्वपूर्ण प्रश्नो पर अपने विचार बदले हैं, और सदा इस तथ्य को प्रकाशित कर दिया है। इस स्पष्टवादिता या साफ-गोई का क्या परिणाम हुआ? कुछ लोगो ने मेरे विचारो में स्वय मुझ द्वारा किए गए सशोधनो को बिलकुल नज़रन्दाज़ कर दिया, और वे आज भी उन विचारो के लिए मेरी आलोचना करते हैं जिनका अब मेरे लिए वह अर्थ नही रहा। कुछ लोग यह परिवर्तन करने के कारण मेरी निन्दा करते है और इसलिए मुझे भरोसा करने के अयोग्य बताते हैं। जो आदमी एक या दो बार विचार बदल ले वह विश्वास का पात्र कैसे हो सकता है, क्योकि उसका इस बार का कथन भी गलत हो सकता है, पर जो आदमी अपनी एक बार कही हुई बात पर अडा रहे या उसमें आसानी से हेर-फेर करने से इन्कार कर दे, वह हठी या दुराग्रही है। ठीक है न? ऐसी परस्पर विरोधी आलोचनाओ को देखते हुए सिवाय इनके क्या रास्ता है कि आदमी जैसा है वैसा कहे, और उसे जैसा जचे वैसा करे: मैंने ऐसा ही करने का फैसला किया, और मैं बाद के अनुभव के अनुसार अपने सिद्धान्तो में परिवर्तन या सशोधन करने में सकोच नही करता। अब तक मुझे अपने मूल दृष्टिकोण को बदलने के लिए

१. Dialectics

कोई उचित कारण नही मिला और मुझे आशा है कि इसकी कभी भी आवश्यकता नही होगी।

तो, अब मुझे आपके सामने स्नायु-रोगो के प्रकटनो, अर्थात् प्रकट रूपो के बारे में मनोविश्लेषण का सिद्धात पेश करना है। इस प्रयोजन के लिए सादृश्य और वैषम्य दोनो ही के कारण सबसे अधिक आसानी इस तरह होगी कि ऐसा उदाहरण लिया जाए जो हमारी पहले विचारित घटनाओ के सिलसिले से जुडा हुआ है। मैं एक लाक्षणिक कार्य[1] का उदाहरण दूगा जो बहुत-से लोगो में मैं अपने परामर्श-कक्ष में देखता हू। विश्लेषक उन लोगो की कोई मदद नही कर सकता, जो आध घटे के लिए अपनी जीवन भर की कष्ट-कथा सुनाने उसके पास आते हैं। वह अपनी गहरी जानकारी के कारण दूसरो की तरह उसे यह राय नही दे सकता कि उनमें कोई खराबी नही है और उन्हें थोडी-सी जल-चिकित्सा करा लेनी चाहिए। हमारे एक साथी ने एक बार सलाह मागने वाले रोगियो के बारे में पूछे जाने पर बहुत खुश होते हुए कहा था कि मैं 'उनपर—अदालत का इतना समय बर्बाद करने के लिए—इतने क्राउन जुर्माना कर देता हू।' इसलिए आपको यह सुनकर चकित न होना चाहिए कि अधिक से अधिक व्यस्त मनोविश्लेषको के पास भी सलाह मागने वाले मरीजों की भीड नही लगी रहती। मैंने प्रतीक्षा के स्थान और अपने परामर्श-कक्ष के बीच वाले साधारण दरवाजे के अलावा बीच में एक और दरवाजा लगवा लिया है, और उसे नमदे से मढवा दिया है। इसका कारण स्पष्ट है। होता सदा यह है कि जब मैं लोगो को प्रतीक्षा-स्थान से अन्दर बुलाता हू तब वे इन दरवाजो को बन्द नही करते और अपने पीछे दरवाजों को खुला छोड देते हैं। जब मैं ऐसा देखता हू, तब कुछ कडाई से तुरन्त उस रोगी से प्रार्थना करता हू कि वह लौटकर पहले दरवाजे बन्द करे, चाहे वह कितना ही सजा-धजा आदमी हो, या साज-सिंगार पर कितने ही घटे खर्च करने वाली स्त्री हो। मेरे इस कार्य को अकारण और रौब दिखाने वाला समझा जाता है। कभी-कभी मेरा कहना अनुचित भी हुआ है क्योकि वह व्यक्ति ऐसा निकला जो स्वय किवाड की हत्थी नही पकड सकता था, पर अधिकतर मामलो में मेरा कार्य उचित था, क्योकि जो आदमी इस तरह का आचरण करता है और किसी डाक्टर के परामर्श-कक्ष का दरवाजा प्रतीक्षा-कक्ष की ओर खुला छोड देता है, वह अशिष्ट आदमी है, और उससे उदासीनता का व्यवहार करना ही उचित है। आप बाकी बात सुनने से पहले ही किसी पक्ष में कोई धारणा मन बना लीजिए। रोगी दरवाजा केवल तभी बन्द नहीं करता जब वह बाहर के कमरे में अकेला इन्तजार कर रहा है, पर जब दूसरे उससे अपरिचित लोग वहा प्रतीक्षा कर रहे हो तब वह कभी भी दरवाजा खुला नही छोडता। इस दूसरी

---

1 Symptomatic act

स्थिति में वह बहुत अच्छी तरह जानता है कि डाक्टर से बातचीत के समय उसकी बात किसी और के कान में न पडना उसके अपने लिए ही हितकर है और वह दोनो दरवाजो को सावधानी से बन्द करना कभी नही भूलता।

इस तरह रोगी की यह भूल न तो आकस्मिक है, न अर्थहीन और न महत्व-हीन ही, क्योकि इससे डाक्टर के प्रति रोगी के रुख का पता चलता है। वह उस बडे वर्ग का व्यक्ति है जो ऊंची स्थिति के लोगो के पीछे फिरते हैं और उनसे आतंकित रहना चाहते हैं। शायद उसने टेलीफोन से यह पूछताछ की थी कि उसे किस समय मिलने का मौका प्राप्त होने की सम्भावना है, और वह यह आशा कर रहा था कि उम्मीदवारो की वैसी ही भीड लगी होगी जैसी युद्ध के दिनो में पंसारियो के यहा लगी रहती थी। वहा पहुचने पर उसे खाली कमरा दिखाई देता है जिसमे बहुत मामूली ढग की कुर्सिया पडी हैं, और वह स्तब्ध हो जाता है। वह डाक्टर के प्रति जो अनावश्यक आदर दिखाने की तैयारी करके आया था, उसे किसी तरह झाड फेंकना चाहता है और डाक्टर को सामान्य आदमी मानना चाहता है, और इसलिए वह प्रतीक्षा-कक्ष और परामर्श-कक्ष के बीच के दरवाजे को बंद करना भूल जाता है। वह यह जतलाना चाहता है : "अरे, यहां तो कोई भी नही, और न कोई होगा, चाहे मैं कितनी ही देर बैठा रहूं !" वह मिलने के समय अशिष्ट और गर्वपूर्ण ढग से व्यवहार करेगा, यदि उसे तेज झटका देकर शुरू में ही उसकी पूर्व धारणा को न रोक दिया जाए।

इस छोटे-से लाक्षणिक कार्य के विश्लेपण में ऐसी कोई बात नही है जो आप पहले से नही जानते, अर्थात् यह निष्कर्ष कि यह आकस्मिक घटना नही है, बल्कि इसमें कुछ प्रेरक कारण, अर्थ और आशय है, कि इसका सम्बन्ध एक मानसिक प्रसंग से है जो स्पष्ट रूप से बताया जा सकता है, और कि इससे एक और भी महत्वपूर्ण मानसिक प्रक्रम का हलका-सा सकेत मिलता है; पर सबसे बडी बात यह है कि इससे यह बात सूचित होती है कि इस प्रकार निर्दिष्ट प्रक्रम का इसे वहन करने वाले व्यक्ति की चेतना को ज्ञान नही है, क्योकि जिन रोगियो ने दोनो दरवाजे खुले छोडे उनमें से एक भी यह मानने को तैयार न होता कि वह अपनी उपेक्षा द्वारा मुझे हीन जतलाना चाहता था। शायद उनमें से बहुतो को खाली प्रतीक्षा-कक्ष में घुसने पर निराशा की भावना का ध्यान आया होगा, पर इस भावना और इसके बाद वाले लाक्षणिक कार्य का सम्बन्ध निश्चित रूप में उनकी चेतना के बाहर रहा।

अब एक लाक्षणिक कार्य के इस छोटे-से विश्लेपण को एक रोगी पर किए गए प्रेक्षण के साथ रखा जाए। मैं ऐसा उदाहरण दूगा जो मुझे अच्छी तरह याद है, और वह थोडे-से शब्दो में रखा भी जा सकता है। किसी वृत्तान्त के लिए थोड़े विस्तार से कहना आवश्यक है।

एक युवा अफसर ने, जो कुछ दिनो की छुट्टी लेकर घर आया था, मुझसे अपनी सास का इलाज करने के लिए कहा । उसकी सास वडी सुखदायक परिस्थितियो में रह रही थी, पर फिर भी अपने और अपने परिवार के जीवन में एक निरर्थक विचार द्वारा कडवाहट भर रही थी । मैंने देखा कि वह ५३ वर्ष की मधुर और सरलस्वभाव वाली महिला थी, और उसने विना सकोच के अपने वारे में निम्नलिखित वृत्तान्त वताया वह अपने विवाह से वडी सुखी है और अपने पति के साथ जो एक वडी फैक्टरी का मैनेजर है, देहात में रहती है । उसका पति हद से ज्यादा दयालु है । उन्होने ३० वर्ष पहले प्रेम-विवाह किया था और तव से उनमें कभी मनमुटाव, झगडा या क्षण भर की भी ईर्ष्या नही पैदा हुई थी । उसके दोनो बच्चो का विवाह बहुत अच्छी जगह हुआ, पर उसका पति अपनी कर्तव्य-भावना के कारण अव भी कार्य में जुटा हुआ है । एक वर्ष पहले एक अविश्वसनीय और उसकी समझ में न आने वाली वात हुई । उसे किसीने विना नाम के पत्र लिखकर यह सूचित किया कि उसका गुणी पति एक नौजवान लडकी से साठ-गाठ कर रहा है और उसने तुरन्त इस वात पर विश्वास कर लिया—तव से उसका सुख नष्ट हो गया है । विस्तृत विवरण कुछ-कुछ इस प्रकार था उसके यहा एक नौकरानी थी, जिसके साथ वह अपनी निजी वातचीत काफी खुलकर किया करती थी । इस नौजवान औरत के मन में एक और लडकी के प्रति वडी तीव्र घृणा थी, जो खास अच्छे घर की न होते हुए भी जीवन में उसकी अपेक्षा अधिक सफल हुई थी । दूसरी नवयुवती ने नौकरी करने के वजाय व्यापार-कार्य की शिक्षा हासिल की थी, और वह फैक्टरी में नौकर हो गई थी, जहा कुछ कर्मचारियो को वाहर का काम करने के लिए भेजने के कारण कुछ स्थान खाली हो गए थे, और इस तरह वह अच्छे पद पर पहुच गई थी । वह फैक्टरी में रहती थी, सव भलेमानसो को जानती थी और उसे लोग 'मिस' कह कर भी पुकारते थे । जो औरत जिंदगी में पिछड गई थी, वह अपनी उस सहपाठिन पर तरह-तरह के दोप लगाया करती थी । एक दिन हमारी रोगिणी और उसकी नौकरानी एक वडी उम्र के आदमी के वारे में वातचीत कर रही थी, जो उनके घर आया था, और जिसके वारे में यह कहा जाता था कि वह अपनी पत्नी के साथ नही रहता है और उसने एक रखैल रखी हुई है । क्यो रखी हुई है, यह वह नही जानती थी, पर उसने एकाएक कहा . "इससे भयकर किसी वात की मैं कल्पना भी नहीं कर सकती कि मेरा पति रखैल रखता है" अगले दिन डाक से उसे वनावटी लिखावट में लिखा हुआ प्रेपक के नाम से रहित एक पत्र मिला, जिसमें वही सूचना दी गई थी जिसकी उसने अभी कल्पना की थी। उसने,शायद ठीक ही,यह निष्कर्ष निकाला कि वह पत्र लिखना उस जलनखोर नौकरानी का काम था, क्योंकि जिस स्त्री को उसके पति की रखैल वताया गया था, वह वही लडकी थी जिससे यह नौकरानी वडी घृणा करती थी। यद्यपि उसे तुरन्त

यह षड्यन्त्र समझ में आ गया और वह अपने चारों ओर ऐसे कायरतापूर्ण दोषारोपण इतने अधिक देख चुकी थी कि उनपर बिलकुल विश्वास नही करती थी, पर तो भी इस पत्र से हमारी रोगिणी बहुत उत्तेजित हो गई और उसने बुरा-भला कहने के लिए अपने पति को तुरन्त बुलवाया। पति ने हसते हुए इस दोषारोपण का खण्डन किया, और अपने पारिवारिक चिकित्सक को (जो फैक्टरी का डाक्टर भी था) बुलवा भेजा और उसने इस दुखी महिला को शात करने की कोशिश की। उन्होने जो अगला कदम उठाया, वह भी बहुत तर्कसगत था। नौकरानी को बर्खास्त कर दिया गया, पर जिसे रखैल बताया गया था उसे कुछ नही कहा गया। रोगिणी का कहना है कि तब से मैंने इस मामले पर शाति से विचार करने की कोशिश की है, और मैं उस पत्र की बातो पर विश्वास नही करती, पर यह धारणा कभी बहुत गहरी नही गई, और न कभी बहुत दिन कायम रही। उस नवयुवती का नाम सुनकर या सडक पर उसे देखकर ही सदेह, पीडा और निंदा का नया दौरा शुरू हो जाता है।

इस गुणवती स्त्री के 'केस' का रोग-चित्र यह है। मनश्चिकित्सा का बहुत अनुभव न रखने वाले को भी यह समझ मे आ जाएगा कि दूसरे स्नायु-रोगियो से इस केस में यह भेद है कि यह रोगिणी अपने लक्षणो को बहुत हल्के रूप में पेश करती थी, उन्हे प्रच्छन्न[1] करती थी, अर्थात् छिपाती थी, और असल में उस गुमनाम पत्र से उसका विश्वास कभी नही हट सका।

अब प्रश्न यह है कि ऐसे केस में मनश्चिकित्सक का क्या रुख होता है। यह तो हम पहले ही जानते है कि जो रोगी प्रतीक्षा-कक्ष के किवाड बन्द नही करता, उसके लाक्षणिक कार्य के बारे में वह क्या कहेगा। वह इसे एक आकस्मिक घटना बताता है जिसमें मनोवैज्ञानिक दिलचस्पी की कोई बात नही है, और इसलिए उसके सोचने की कोई चीज़ नही है। पर इस ईर्ष्यालु महिला के केस में वह वही रवैया नही रख सकता। लाक्षणिक कार्य तो महत्वहीन दिखाई देता है, पर लक्षण इसे गम्भीर मामला बताता है। रोगिणी को इससे घोर कष्ट हो रहा है, और एक परिवार के टूटने का भय है। इसलिए इसमें मनश्चिकित्सक की दिलचस्पी तो निर्विवाद रूप से होनी ही चाहिए। प्रथम तो, मनश्चिकित्सक लक्षण को किसी विशेष गुण से नामाकित करने की कोशिश करता है। यह महिला जिस मनोबिंब या विचार मे अपने को पीडा दे रही है, उसे अर्थहीन नही कहा जा सकता। ऐसा सचमुच होता है कि बडी उमर के पति नौजवान स्त्रियो से सम्बन्ध कायम कर लेते है, पर इसमें कुछ और चीज है जो अर्थहीन और समझ मे न आने वाली है। रोगिणी के पास यह कल्पना करने के लिए उस गुमनाम चिट्ठी के अलावा रत्ती भर भी आधार नहीं है कि उसका प्रेमी और विश्वासपात्र पति भी उसी वर्ग का आदमी है जैसे समाज में

---

१. Dissimulated

आमतौर से पाए जाते हैं। वह जानती है कि इस पत्र में कोई प्रमाण नही दिया गया। वह इस पत्र के लिखे जाने का कारण सन्तोषजनक रीति से बता सकती है। इसलिए उसे अपने आप से कह सकना चाहिए कि मेरी ईर्ष्या बिलकुल निराधार है, और वह ऐसा कहती भी है, पर वह कष्ट इस तरह पा रही है, मानो वह अपनी ईर्ष्या को बिलकुल साधार मानती है। इस तरह के विचार, जिनपर यथार्थता का तर्क और दलीलें प्रभाव नही डाल सकती सर्वसम्मति से **भ्रम**[1] कहलाते हैं। इसलिए यह भली महिला **ईर्ष्या के भ्रम** से कष्ट पा रही है। स्पष्टत इस केस की सारभूत विशेषता यही है।

यह पहली बात तय हो जाने के बाद हमारी मनश्चिकित्सा विषयक दिलचस्पी बढ जाती है। अगर कोई भ्रम यथार्थता के तथ्यो से दूर नही किया जा सकता, तो शायद वह यथार्थता से पैदा ही नही हुआ। तो फिर यह कहा से पैदा हुआ ? भ्रम विविध प्रकार के हो सकते हैं। तो, इस केस में भ्रम की वस्तु ईर्ष्या ही क्यो है ? किस तरह के लोगो को भ्रम, विशेष रूप से ईर्ष्या के भ्रम, होते हैं ? अब हम मनश्चिकित्सक से इन प्रश्नो का उत्तर सुनना चाहते हैं, पर यहा वह हमें धक्का दे जाता है। वह हमारे सिर्फ एक प्रश्न पर विचार करता है। वह इस स्त्री के पारिवारिक रोगवृत्त (हिस्ट्री) जाच करेगा और **शायद** हमें यह जवाब देगा कि जो लोग इस तरह के भ्रमो से पीडित होते हैं, उनके परिवारो में ऐसे या दूसरी तरह के रोग या विकार बार-बार हुए होते हैं। दूसरे शब्दो में, इस महिला में यह भ्रम इस कारण पैदा हुआ कि उसमें इसके लिए आनुवशिक पूर्वप्रवृत्ति[2] विद्यमान थी। यह बात कुछ ठीक है, पर क्या हम इतना ही जानना चाहते हैं ? क्या उसकी बीमारी का सिर्फ यही कारण है ? क्या यह मान लेने से हमें सन्तोष हो जाता है कि इसी तरह का भ्रम पैदा होना, और कोई भ्रम न पैदा होना, महत्वहीन, मनमाना और व्याख्या के अयोग्य है, और क्या हम मान लें कि यह कथन—कि आनुवशिक पूर्वप्रवृत्ति निश्चायक होती है——नकारात्मक अर्थ में भी सच है, अर्थात् जीवन में उसे चाहे जो अनुभव और भावनाए पैदा हुई होती, पर उसमें यह भ्रम किसी समय पैदा होना अनिवार्य था ? आप यह जानना चाहेंगे कि क्या वैज्ञानिक मनश्चिकित्सा इसकी आगे कोई व्याख्या नही करती ? मेरा उत्तर है "कोई बेईमान ही इससे अधिक व्याख्या करता है।" मनश्चिकित्सक इस तरह के केस में कोई और व्याख्या कर सकने का रास्ता नही जानता। वह रोग-निर्णय[3] से, और विस्तृत अनुभव होते हुए भी इसके भावी मार्ग के बडे अनिश्चित फलानुमान[4] से ही सन्तुष्ट हो जाता है।

प्रश्न यह है कि क्या मनोविश्लेपण इससे अच्छा नतीजा दिखा सकता है ? हा,

---

१ Delusions २ Hereditary predisposition ३ Diagnosis
४ Prognosis

मुझे निश्चित आशा है कि इस जैसे अस्पष्ट केस में भी कुछ ऐसी चीज़ ढूढी जा सकती है जिससे वात अधिक अच्छी तरह समझ में आ जाए। पहले आप इस छोटी-सी वात पर विचार कीजिए, कि जिस गुमनाम पत्र के आधार पर उसका भ्रम मौजूद है, उसकी प्रेरणा स्वय रोगिणी ने ही यह कहकर दी थी कि मेरे लिए इस वात से भयकर और कोई वात नही है कि मेरे पति की किसी नौजवान स्त्री से साठ-गाठ है। उसने ऐसा कहकर नौकरानी के मन मे पत्र भेजने का विचार पैदा किया। इस प्रकार भ्रम उस पत्र से कुछ स्वतत्र स्थिति रखता है,यह उसके मन में भय के रूप में—या, इच्छा के रूप में ?—पहले ही से मौजूद था। इसके अतिरिक्त, विश्लेपण के सिर्फ दो घटो में जो और छोटे-छोटे सकेत प्रकट हुए, वे अधिक ध्यान देने योग्य है। जब रोगिणी ने अपनी कहानी ख़त्म कर दी,तव मेरी इस प्रार्थना पर कि वह मुझे अपने दूसरे विचार, मनोविव और स्मृति में आने वाली वाते वताए, उसने वडी उदासीनता से इसका उत्तर दिया। उसने कहा कि मेरे मन में कुछ नही आता और वह मुझे सव वात वता चुकी है। और दो घटे वाद आगे कोशिश छोड देनी पडी, क्योकि उसने कह दिया कि मैं अव विलकुल स्वस्थ अनुभव कर रही हू, और मुझे निश्चय है कि यह अस्वस्थ विचार मुझमें अव नही आएगा। उसने यह वात स्वभावत प्रतिरोध के कारण और आगे विश्लेपण के भय के कारण कही थी। फिर भी, इन दो घटो में उसके मुह से कुछ ऐसी वाते निकल गई जिनसे एक विशेप निर्वचन न केवल किया जा सकता था, वल्कि अनिवार्यत होता था, और इस निर्वचन से ईर्ष्या के भ्रम की उत्पत्ति पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता था। असल में, उसमें एक नौजवान के लिए, उसी जमाई के लिए मोहासक्ति[1] विद्यमान थी,जिसने उससे मेरी सहायता लेने को कहा था। इस मोहासक्ति के वारे में वह कुछ नही, या शायद वहुत ही थोडा, जानती थी। उनके सम्वन्ध की परिस्थितियो में यह मोहासक्ति उसके हानिरहित वात्सल्य के रूप में अपने आप को छिपा सकती थी। जो कुछ हम अव तक जान चुके हैं, उसके वाद इस अच्छी स्त्री और श्रेष्ठ माता के मन की वात समझ लेना कुछ कठिन नही। ऐसी मोहासक्ति, ऐसी भयंकर असम्भव वात, उसके चेतन मन में नही आ सकती थी; तो भी यह वनी रही, और अचेतन रूप से इसने भारी दवाव डाला। अव कुछ न कुछ तो होता ही—किसी न किसी तरह का आराम पाने का तरीका ढूढना ही पडता, और इसे कम करने का सवसे सरल तरीका विस्थापन का तंत्र था जो भ्रमात्मक ईर्ष्या पैदा होने में सदा मदद करता है। यदि वह वुढ़िया स्त्री अकेली ही उस नौजवान से प्रेम न करती होती, वल्कि यदि उसका वूढा पति भी किसी नौजवान औरत से प्रेम करता होता तो उसका अन्त करण इस विश्वासघात के कष्ट से मुक्त हो जाता। इस प्रकार उसके

---

१. Infatuation

पति की अपत्नीव्रतता या विश्वासघात की कल्पना उसके जलते हुए घाव पर शीतल मरहम का काम करती थी। उसे अपने प्रेम का कभी भी ज्ञान नही हुआ, पर भ्रम में, जिससे इतना लाभ होता था, इसे सोचते रहना अनिवार्य, भ्रमात्मक और चेतन हो जाता था। इसके विरुद्ध पेश की गई सब दलीलो का स्वभावत कोई लाभ नही हो सकता था, क्योकि वे इस सोचने के विरुद्ध होती थी, उस मूल बात के विरुद्ध नही, जिसके कारण इस चिंतन में शक्ति थी और जो पहुच से बाहर अचेतन में गडी हुई थी।

अब इस छोटे अधूरे मनोविश्लेषण के प्रयत्न के परिणामो को इकट्ठा जोडकर इस केस को समझने की कोशिश की जाए। यह मान लिया गया है कि प्राप्त जानकारी सही थी, और इस प्रश्न पर मैं आपका फैसला नही चाहता। पहली बात तो यह कि वह भ्रम अब अर्थहीन और अबोध्य नही रहा। यह समझ में आने योग्य है, और इसके तर्कसगत प्रेरक कारण है, और यह रोगिणी के भाव सम्बन्धी अनुभव से एक सिलसिले में जुडा हुआ है। दूसरे, यह एक और मानसिक प्रक्रम की, जो स्वय दूसरे सकेतो से प्रकट हो गया है, आवश्यक प्रतिक्रिया के रूप में पैदा हुआ है, और इसका भ्रमात्मक स्वरूप, इसका यथार्थ और तर्कसगत आक्षेपो का विरोध करने का गुण इस दूसरे मानसिक प्रक्रम के साथ यह सम्बन्ध होने के कारण ही है। यह एक अभीष्ट वस्तु, एक तरह की सात्वना है। तीसरे रोग के मूल में जो अनुभव है, वह ही यह तथ्य असदिग्ध रूप से निश्चित कर देता है कि भ्रम ईर्ष्या का होगा, और किसी चीज का नही। हमने जिस लाक्षणिक कार्य का विश्लेषण किया था, उससे दो महत्वपूर्ण सादृश्य भी आपकी समझ में आ गए होगे, अर्थात् लक्षण के पीछे भावार्थ और आशय की खोज, और दी गई स्थिति की किसी बात से, जो अचेतन, अर्थात् अज्ञात है, इसका सम्बन्ध।

इतने से नि सदेह इस केस में पैदा होने वाले सब प्रश्नो का उत्तर नही मिल जाता। इसके विपरीत, इसमें और भी समस्याए मालूम होती है, जिनमें से कुछ अब तक जरा भी समाधानयोग्य नही सिद्ध हुई, और कुछ इस केस की प्रतिकूल परिस्थितियो के कारण हल नही की जा सकती। उदाहरण के लिए, यह सुखी विवाह वाली महिला अपने जमाई के प्रेम में क्यो पड गई, और उसे इस तरह के चिन्तन के रूप में अपने मन की अवस्था अपने पति पर आरोपित करके क्यो आराम मिलता है, जब कि आराम पाने के और भी तरीके हो सकते थे। यह न समझिए कि यह प्रश्न उठाना बेकार और अकारण है। इसका सम्भव उत्तर पेश करने के लिए हमारे पास पहले ही काफी सामग्री है। रोगिणी जीवन के उस सकट वाले समय में पहुच गई थी जिसमें स्त्री में मैथुनेच्छा एकाएक और अनचाहे बढ जाती है। अकेला यह कारण ही काफी हो सकता था, या एक और यह कारण हो सकता था कि बुढ वर्षो ने उसके श्रेष्ठ और पत्नीनिष्ठ पति का मैथुन-सामर्थ्य कम, अब

भी प्रबल सामर्थ्य वाली, स्त्री की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए काफी न रहा हो। प्रेक्षण से हमें पता चला है कि ऐसे ही लोग, जिनकी निष्ठा और विश्वस्तता इस प्रकार सामान्य बात होती है, अपनी पत्नियो से विशेष प्रेम से व्यवहार करते है, और उनके स्नायु-रोगो का विशेष रूप से ख्याल करते है। इसके अतिरिक्त, यह बात भी महत्वहीन नही है कि इस अप्रकृत[1] मोहासक्ति का आलंबन उसकी पुत्री का नौजवान पति था। पुत्री के प्रति प्रबल कामासक्ति, जिसका मूल माता की अपनी यौन रचना मे होता है, प्राय इस तरह रूपान्तरित होकर कायम रहती है। इस सिलसिले मे मै आपको यह याद दिला दू कि सास और जमाई का सम्बन्ध, स्मरणातीत काल से, मनुष्य जाति द्वारा विशेष रूप से नाजुक माना जाता रहा है, और आदिम मूल वशो में इसके विषय मे बडे प्रबल टैबू[2] या निषेध और सावधानिया रखी गई है। विधि और निषेध,दोनो पक्षो मे यह प्राय उन सीमाओ को लाघ जाता है जो सभ्य समाज मे वाछनीय समझे जाते है। इन तीन सम्भव बातो मे से इस केस में एक बात क्रियाशील रही, या दो बातें रही, या तीनो की तीनो रही, यह मै आपको नही बता सकता, यद्यपि इसका कारण सिर्फ यह है कि इस केस का विश्लेषण दो घटे से अधिक नही हो सका।

अब मैं समझ रहा हू कि मै अब तक सब ऐसी बातें कहता रहा, जिन्हे समझने के लिए अभी आप तैयार नही थे। मनश्चिकित्सा और मनोविश्लेषण की तुलना पेश करने के लिए ही मैने ऐसा किया, पर मै यहा आपसे एक बात कहना चाहता हू। क्या आपको इन दोनो में कोई परस्पर विरोध जैसी चीज दिखाई दी? मनश्चिकित्सा मनोविश्लेषण के प्राविधिक या टेक्नीकल तरीके प्रयोग मे नही लाती, भ्रम की वस्तु पर बिलकुल विचार नही करती, और आनुवशिकता की बात कहकर हमें सिर्फ एक साधारण और दूरवर्ती कारण बताती है, और पहले, अधिक वैज्ञानिक, और निकटतम कारण नही बताती। पर क्या इसमे कोई परस्पर विरोध है? क्या एक चीज दूसरी की पूरक ही नही है? क्या आनुवशिकता वाली बात अनुभव के महत्व से मेल नही खाती और क्या वे दोनो मिलकर बहुत प्रभावकारी नही बन जाती? आप स्वीकार करेंगे कि मनश्चिकित्सा के कार्य मे कोई ऐसी सारभूत बात नही है जो मनोविश्लेषण सम्बन्धी गवेषणाओ के विरुद्ध हो सके। इसलिए इसका विरोध करने वाले मनश्चिकित्सक है, मनश्चिकित्सा नही। मनोविश्लेषण और मनश्चिकित्सा का बहुत कुछ वैसा ही सम्बन्ध है जैसा औतिकी[3] तथा शरीर का—एक मे अगो के बाहरी रूपो का अध्ययन होता है और दूसरे मे ऊतको[4] का और घटक तत्वो से इनके निर्माण का। इन दोनो अध्ययन-क्षेत्रो में,जिनमें एक का काम दूसरे मे चालू रखा जाता है, कोई परस्पर विरोध आसानी से नही

१ Abnormal २ देखिए Totem und Tabu ३ Histology, ४ Tissues

सोचा जा सकता। आप जानते है कि आजकल चिकित्सा के वैज्ञानिक अध्ययन का आधार शरीर है, पर किसी समय शरीर की भीतरी सरचना[१] देखने के लिए मनुष्य के शवो की चीर-फाड करना उतना ही बुरा और निषिद्ध माना जाता था, जितना आजकल मनुष्य के मन की भीतरी कार्य-पद्धति देखने के लिए मनोविश्लेषण को माना जाता है। और शायद कुछ ही समय बाद हम यह देख लेंगे कि वैज्ञानिक आधार पर मनश्चिकित्सा तब तक न हो सकेगी, जब तक मानसिक जीवन की गहराई में हो रहे अचेतन प्रक्रमो का पूरा-पूरा ज्ञान न हो।

आपमें से कुछ लोग ऐसे हो सकते है जो मनोविश्लेषण से काफी प्रीति रखते हो, हालाकि प्राय इसकी आलोचना की जाती है, और यह कामना रखते हो कि यह अपने आपको एक और दिशा में, अर्थात् चिकित्सा के क्षेत्र में भी उचित सिद्ध कर देगा। आप जानते है कि मनश्चिकित्सा-पद्धति अब तक भ्रमो पर असर डालने में असमर्थ रही है। क्या मनोविश्लेषण, शायद इन लक्षणो के तत्र के भीतरी रूप को जानने के कारण, उनपर असर डाल सकता है? नही, मुझे आपसे यही कहना है कि यह उनपर असर नही डाल सकता, क्योकि कम से कम इस समय तो यह इन रोगियो के इलाज में बिलकुल उतना ही असमर्थ है जितनी और कोई चिकित्सा-शैली। यह सच है कि हम यह समझ सकते हैं कि मरीज को क्या हुआ है, पर हमारे पास ऐसा कोई साधन नही जिससे हम खुद मरीज को यह बात समझा सकें। आप सुन चुके है कि इस भ्रम का विश्लेपण में आरम्भिक बातो से आगे न कर सका। तब क्या आप यह कहेगे कि ऐसे केसो का विश्लेपण अवाछनीय होता है, क्योकि वह निष्फल रहता है? हमारा यह कर्तव्य और अधिकार है कि हम तात्कालिक लाभ पर बिना ध्यान दिए अपनी गवेषणाए करते जाए। कोई दिन आएगा—कहा और कब, यह हम नही जानते—जब हर छोटे से छोटा ज्ञान-खण्ड क्षमता में और चिकित्सा की क्षमता में परिवर्तित हो जाएगा। यदि मनोविश्लेपण भ्रमो की तरह और सब तरह के स्नायु-रोगो और मानसिक रोगो में विफल सिद्ध हो, तो भी यह वैज्ञानिक गवेपणा के अनुपम साधन के रूप में उपयुक्त ही होगा। यह सच है कि हम इसका व्यवसाय करने की स्थिति में नही हो सकते। जिस मनुष्यरूप सामग्री से हमें सीखना है, वह जीवित है और उसमें अपनी इच्छा होती है, और इस कार्य मे हिस्सा लेने के लिए उसके पास कोई व्यक्तिगत प्रेरक कारण होने चाहिए, और फिर यह इसमें हिस्सा लेने से इन्कार भी कर देती है। इसलिए आज का व्याख्यान खत्म करते हुए मैं आपसे यह कहना चाहता हू कि ऐसे बहुत सारे स्नायु-रोग है, जिनके लिए हमारा यह ज्ञान सचमुच चिकित्सा-क्षमता में बदल चुका है, और इन रोगो में, जो वैसे असाध्य मालूम होते है, हमारी विधियो मे कुछ अवस्थाओ में ऐसे परिणाम निकलते है जो चिकित्सा के क्षेत्र में अनुपम है।

१ Structure

व्याख्यान | १७

लक्षणों का अर्थ

पिछले व्याख्यान में मैंने आपको वताया था कि क्रियात्मक मनश्चिकित्सा किसी एक लक्षण के वास्तविक रूप या उसकी वस्तु के वारे में विलकुल नही सोचती, पर मनोविश्लेपण अपनी वात यहा से ही शुरू करता है, और उसे यह निश्चय हो चुका है कि स्वय लक्षण का कोई अर्थ होता है, और वह रोगी के जीवन के अनुभवो से सम्वन्वित है। स्नायु-रोगो के लक्षणो का अर्थ सवसे पहले जे० व्रायर ने हिस्टीरिया के एक रोगी का अध्ययन और सफल इलाज करते हुए (१८८०-८२) खोजा था, और तव से वह केस प्रसिद्ध हो गया है। यह सही है कि पी० जेनेट स्वतंत्र रूप से उसी परिणाम पर पहुचा था। सच तो यह है कि प्रकाशन पहले फ्रासीसी अनुसधानकर्ता (जेनेट) के ही परिणामो का हुआ, क्योकि व्रायर ने अपने प्रेक्षण दस-ग्यारह वर्ष वाद में (१८९३-९५) प्रकाशित किए, जव हम दोनो इकट्ठे कार्य करते थे। प्रसगत, हमारे लिए यह कोई वडे महत्व की वात नही कि यह खोज किसने की, क्योकि आप जानते हैं कि प्रत्येक खोज एक से अधिक वार की जाती है, और कोई खोज एक ही वार में पूरी नही हो जाती, और न पात्रता के अनुसार सफलता मिलती है। अमेरिका का नाम कोलम्वस के नाम पर नही पड़ा। व्रायर और जेनेट ने पहले महान् मनश्चिकित्सक लारेट ने यह विचार प्रकट किया था कि पागलो के भ्रमो का भी कुछ अर्थ निकल सकता है, यदि हम उनका अर्थ लगाना जानते हो। मै मानता हू कि मैं स्नायविक लक्षणो की व्याख्या करने के कारण जेनेट को वहुत ऊंचा मान देने को उत्सुक था, क्योकि वह उन्हे रोगी के मन पर छाए हुए 'अचेतन मनोविम्वो' की अभिव्यक्तिया मानता था, पर तवसे जेनेट ने अनुचित चुप्पी साध ली है, मानो उसके लिए अचेतन कहने का एक तरीका मात्र था, और उसके मन में कोई 'वास्तविक' या 'यथार्थ' वात नही थी। तव से जेनेट के विचार मेरी समझ में नही आते, पर मै समझता हू कि उसने मुफ्त में ही वहुत वड़ा श्रेय छोड दिया है।

तो गलतियो और स्वप्नो की तरह स्नायविक लक्षणो का भी अर्थ होता है, और

उनकी तरह ये भी जिस व्यक्ति में दिखाई देते हैं, उसके जीवन से सम्बन्धित होते हैं। यह एक महत्वपूर्ण बात है, जो मैं कुछ उदाहरणो से आपके सामने स्पष्ट करना चाहता हू। मैं जोर देकर कह ही सकता हू, सिद्ध नही कर सकता, कि प्रत्येक केस में यही बात होती है। स्वय प्रेक्षण करनेवाले किसी भी आदमी को इसका निश्चय हो जाएगा। कुछ कारणो से मैं यह उदाहरण हिस्टीरिया के केसो में से नही लूगा, वल्कि एक और प्रकार के स्नायु-रोग में से लूगा जो इससे उत्पत्ति की दृष्टि से नजदीकी सम्बन्ध रखते हैं, और उसके बारे मे मैं कुछ आरम्भिक शब्द कहना चाहता हू। यह चीज, जिसे हम मनोग्रस्तता-रोग[1] कहते हैं, हिस्टीरिया की तरह आम नही है। यह उतना शोर मचाकर सामने नही आता, बल्कि इस तरह व्यवहार करता है कि जैसे यह रोगियो का निजी मामला है। इसमे प्राय कोई शारीरिक लक्षण नही दिखाई देते और इसके सब लक्षण मानसिक क्षेत्र मे पैदा होते हैं। मनोग्रस्तता रोग और हिस्टीरिया उस स्नायविक रोग के दो रूप हैं जिसके अध्ययन पर मनोविश्लेपण का पहले निर्माण हुआ, और जिसके इलाज को हमारी चिकित्सा शैली अपनी विजय समझती है। पर मनोग्रस्तता-रोग में मानसिक से शारीरिक पर रहस्यमय छलाग नही होती, और मनोविश्लेपण की गवेपणाओ से हिस्टीरिया की अपेक्षा यह कही अधिक अच्छी तरह स्पष्ट हो गया है। हम यह समझने लगे हैं कि स्नायविक रचना की कुछ प्रमुख बातें इसमे अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।

मनोग्रस्तता-रोग[2] इस रूप में होता है, रोगी के मन में ऐसे विचार भरे रहते हैं, जिनमें उसकी वास्तव मे दिलचस्पी नही होती, वह ऐसे आवेग अनुभव करता है जो उसे अपरिचित मालूम होते हैं, और ऐसी क्रियाए करने को प्रेरित होता है जिनसे उसे आनन्द नही मिलता, पर जिनसे हटने का सामर्थ्य भी उसमें नही है। विचार (मनोग्रस्तिया या आवसेशन) अपने आप में अर्थहीन या रोगी के लिए विना दिलचस्पी के हो सकते हैं, वे प्राय विलकुल मूर्खता भरे होते हैं। उनमे विचार का तनावपूर्ण सकेन्द्रण शुरू होता है, और वह विचार रोगी को थका देता है, और रोगी वडी अनिच्छा से इसके अधीन होता है। उसे अपनी इच्छा के विरोध में चिन्ता और कल्पना करनी पडती है, मानो वह उसके लिए जिन्दगी या मौत का सवाल है। वह अपने अन्दर जो आवेग देखता है, वे भी वैसे ही मूर्खतापूर्ण और निरर्थक प्रतीत हो सकते हैं, परन्तु अधिकतर उनमे कोई भयानक चीज होती है जैसे भयकर अपराध करने के लिए फुसलाहट, और इसलिए रोगी उन्हे न केवल अपरिचित की तरह अस्वीकार करता है, वल्कि डरकर उनसे दूर भागता है, और

---

[1] Obsessional neurosis [2] इसे अग्रेजी में Compulsion-neurosis भी कहते हैं।

प्रतिषेधों, सावधानियों और रुकावटों द्वारा उनपर अमल करने की सम्भावना से अपनी रक्षा करता है। सचाई तो यह है कि वह एक बार भी इन आवेगों को कार्य रूप में परिणत नहीं करता। पलायन और सतर्कता सदा विजयी होती है। जो कार्य वह वास्तव में करता है वह बडे हानिरहित और निश्चित रूप से तुच्छ कार्य होते हैं—जिन्हें मनोग्रस्तीय कार्य कहा जाता है—जो अधिकतर रोज के सामान्य कामों की आवृत्ति और जरा धूमधाम से किए गए कार्य ही होते हैं और इस तरह इन सामान्य आवश्यक क्रियाओं—सोना, नहाना-धोना, कपडे पहनना, घूमने जाना आदि—को बडे श्रमसाध्य और कठिन कार्य बना देता है। अस्वस्थ विचार, आवेग और क्रियाएं मनोग्रस्तता-रोग के अलग-अलग प्ररूपों और उदाहरणों में एक ही अनुपात में नहीं मिले होते। इसके विपरीत, नियम यह है कि इन अभिव्यक्त रूपों में से एक प्रधान होता है, और उसके नाम पर रोग का नाम पडता है, पर इसके सब रूपों में जो सामान्य अंश है वह काफी असंदिग्ध है।

निश्चित रूप से यह पागलपन का रोग है। मैं समझता हूं कि मनश्चिकित्सा की अजीब से अजीब कल्पना भी इस जैसी कोई चीज नहीं बना सकती थी, और यदि हम इसे रोज आंखों से न देखते होते तो हमारे लिए इसपर विश्वास करना भी बड़ा कठिन था। पर आप यह न समझिए कि ऐसे रोगी को यह सलाह देकर, कि अपना ध्यान इधर-उधर न होने दो, इन मूर्खतापूर्ण मनोबिम्बों की ओर कोई ध्यान न दो, और इन अर्थहीन कार्यों के बजाय कोई काम की बात करो, आप उसे कुछ लाभ पहुंचा सकते हैं। यह तो वह स्वयं ही करना चाहता है, क्योंकि उसे अपनी दशा का पूरी तरह पता है। अपने मनोग्रस्तता-लक्षणों के बारे में वह आपकी राय से सहमत है और वह बडी खुशी से अपनी राय देता भी है, बात सिर्फ इतनी है कि उसका अपने ऊपर वश नहीं है। मनोग्रस्तता की अवस्था में की जानेवाली क्रियाओं को एक इस तरह की ऊर्जा से पोषण मिलता है जिसकी समकक्ष चीज प्रकृत मानसिक जीवन में सम्भवतः कोई भी नहीं है। उसके सामने सिर्फ एक रास्ता है—वह विस्थापन कर सकता है और विनिमय यानी अदल-बदल कर सकता है; एक मूर्खतापूर्ण मनोबिम्ब के स्थान पर वह दूसरा, कुछ हलके प्रकार का मनोबिम्ब ला सकता है, एक सतर्कता या प्रतिषेध से वह दूसरे पर जा सकता है। धूमधाम से किए जाने वाले एक कार्य के स्थान पर वह दूसरा कार्य कर सकता है। वह अपनी अनिवार्यता या बाध्यता की भावना को विस्थापित कर सकता है, पर वह इसे दूर नहीं कर सकता। यह सारे लक्षणों को विस्थापित करने का सामर्थ्य, जिसमें उनके मूल रूप जड से बदल जाते हैं, इस रोग की मुख्य विशेषता है। इसके अलावा, यह बात भी खास है कि इस अवस्था में मानसिक जीवन में व्याप्त 'विरोधी मान' (ध्रुवत्व)[1] में खास तौर से तीव्र भिन्नता दिखाई देती है, विध्यात्मक और निषे-

[1] Opposite-Values (Polarities)

घात्मक दोनो प्रकार की बाध्यताओ के साथ-साथ बुद्धि के क्षेत्र में सशय दिखाई देता है, जो क्रमश फैलता जाता है और अन्त में वह उस बात में भी होने लगता है जो प्राय निश्चित मानी जाती है। ये सब बातें मिलकर ऐसी स्थिति बना देती हैं जिसमें निर्णय-बुद्धि घटती जाती है, ऊर्जा का नाश होता है, और आजादी कम होती है, और यद्यपि मनोग्रस्तता का रोगी भी हमेशा शुरू में ऊर्जस्वित स्वभाव का होता है, प्राय बहुत-सी रायें रखता है, और आम तौर से औसत से अधिक बुद्धि वाला होता है, पर उसका आचार सम्बन्धी परिवर्धन काफी अधिक हुआ होता है, वह वहुत धर्मभीरु और अधिकतर सही होता है। आप कल्पना कर सकते हैं कि परस्पर विरोधी गुणो और अस्वस्थ व्यक्त रूपो के इस गोरखधन्धे में अपने पाव जमाए रखना काफी श्रमसाध्य काम है। इस समय हमारा ध्येय इस रोग के कुछ लक्षणो का अर्थ लगाना मात्र है।

शायद हमारे पिछले विवेचन को देखते हुए आप यह जानना चाहेगे कि मनोग्रस्तता-रोग के बारे में आजकल की मनश्चिकित्सा क्या कहती है। इसका बहुत मामूली-सा कार्य है। मनश्चिकित्सा ने अनेक तरह की बाध्यताओ के नाम रख दिए हैं, पर वह उनके बारे में और कुछ नही कहती। इसके बदले वह इस बात पर जोर देती है कि जिन व्यक्तियो में ये लक्षण दिखाई देते हैं, वे 'पतित'[1] होते हैं। इससे हमें अधिक सन्तोप नही होता। इससे हम उनका सिर्फ मूल्य आकते हैं—यह तो व्याख्या के बजाय निन्दा है। मैं समझता हू कि मनश्चिकित्सा हमें यह बताना चाहती है कि प्ररूप अर्थात् असली आम रूप से पतित हो जाने पर लोगो में स्वभावत सब तरह से विपमताए पैदा हो जाती हैं। अब हम भी यह मानते हैं कि जिन लोगो में ऐसे लक्षण होते हैं, वे दूसरे मनुष्यो से प्ररूप में कुछ न कुछ भिन्न होते हैं, पर हम यह जानना चाहते हैं कि क्या वे दूसरे स्नायु-रोगियो, अर्थात् हिस्टीरिया वाले या पागल लोगो की अपेक्षा अधिक 'पतित' होते हैं? इस तरह स्वरूप-निर्देश करना अत्यधिक साधारण वर्णन है। जब हम यह देखते हैं कि ऐसे लक्षण असाधारण योग्यता वाले उन नर-नारियो में पाए जाते हैं, जिन्होने अपनी पीढी पर अपने चिह्न छोडे हैं, तब यह सन्देह होने लगता है कि क्या ऐसा कहना जरा भी उचित है? उनकी अपनी विवेक-बुद्धि और जीवन-चरित-लेखको की असत्य-परायणता के कारण हमें आदर्श महापुरुपो के भीतरी स्वभाव के बारे में प्राय बहुत कम जानकारी होती है, पर कभी-कभी ऐसा अवश्य होता है कि उनमें से कोई, सचाई के बारे में एमिल जोला की तरह मताध होता है, और तब हमें उन बहुत-सारी असाधारण मनोग्रस्तता वाली आदतो का पता चल जाता है, जिनसे उसने सारे जीवन कष्ट उठाया।

मनश्चिकित्सा ने इन लोगो को 'पतित महापुरुप' कहकर पिंड छुडा लिया।

---

[1] Degenerate

अच्छा किया, पर मनोविश्लेषण ने यह सिद्ध कर दिया कि इन असाधारण मनोग्रस्तता-लक्षणो को दूसरे रोगो के लक्षणो की तरह, और उस तरह जैसे उन लोगो मे, जो पतित नही हैं, स्थायी रूप से हटाया जा सकता है। स्वय मुझे ऐसा करने में वहुत वार सफलता मिली है।

मैं मनोग्रस्तता-लक्षणो के विश्लेषण के सिर्फ दो उदाहरण दूगा। इनमें से एक पुराना है, पर उससे अच्छा उदाहरण मुझे आज तक नही मिला, और एक हाल का है। मैं इन दो उदाहरणो तक ही रहूगा, क्योकि इस तरह का वर्णन वड़ा स्पष्ट होना चाहिए, और उसमें वहुत विस्तार में जाना होगा।

लगभग ३० वर्ष की आयु वाली एक महिला वडे प्रवल मनोग्रस्तता-लक्षणो से पीडित थी। यदि दुर्भाग्य ने मेरा काम न विगाड दिया होता तो शायद मैं उसकी मदद कर सका होता—इसके वारे मे शायद आगे चलकर मै वताऊगा। वह निम्नलिखित अजीव मनोग्रस्तता के कार्य एक दिन में कई वार करती थी। वह अपने कमरे में से दौडकर पास वाले कमरे में चली जाती, वहा कमरे के वीच में रखी हुई मेज के पास एक विशेष स्थिति में खडी हो जाती, घन्टी वजाकर अपनी नौकरानी को वुलाती, उसे कोई मामूली-सा हुक्म देती, या विना हुक्म दिए वाहर भेज देती, और फिर दौडकर अपने कमरे में लौट जाती। इसमें निश्चित रूप से कोई भय पैदा करने वाली वात नही थी, पर इससे कुतूहल तो पैदा हो ही सकता है। इसकी व्याख्या विश्लेषक के विना कुछ किए वडे सरल और सीधे तरीके से सामने आई। मै यह कल्पना भी नही कर सकता कि मुझे इस मनोग्रस्तता के अर्थ की शका भी कैसे हो सकती, या इसकी व्याख्या भी मैं कैसे कर सकता था। मैंने रोगी से जव भी यह पूछा: "तुम ऐसा क्यो करती हो? इसका क्या अर्थ है?" तव उसने यही उत्तर दिया "मैं नहीं जानती।" पर एक दिन, जव मै उसके वहुत वडे सकोच को, जिसमें एक सिद्धान्त का प्रश्न आता था, दूर करने में सफल हुआ, एकाएक वह जान गई, क्योंकि उसने मनोग्रस्तता के उस कार्य का इतिहास सुना दिया। लगभग दस वर्ष पहले, उसने अपने से वहुत अधिक आयु के एक आदमी से विवाह किया था, जो सुहागरात में नपुंसक सिद्ध हुआ था। वह उस रात संभोग का प्रयत्न करने के लिए अनेक वार अपने कमरे से दौडकर उसके कमरे में गया, पर हरवार असफल रहा। सवेरे उसने क्रोध से कहा था: "किसी आदमी को विस्तर लगाने वाली नौकरानी की नजरो में गिरा देना ही काफी है!" और पास ही पड़ी लाल स्याही की वोतल लेकर उसे चादर पर उलट दी थी, पर ठीक उस स्थान पर नहीं उलटा था जहा ऐसा निशान हो सकता था। पहले मैं यह नही समझ सका कि इस स्मृति का प्रस्तुत मनोग्रस्तता-कार्य से क्या सम्वन्ध हो सकता है, क्योकि मुझे दोनो स्थितियों में इसके अलावा और कोई समानता नही दिखाई दी थी कि एक कमरे से दूसरे कमरे में दौडने की और शायद नौकरानी के घटना-स्थल पर आने की वातें एक-सी हैं।

धात्मक दोनो प्रकार की बाध्यताओ के साथ-साथ बुद्धि के क्षेत्र में सशय दिखाई देता है, जो क्रमश फैलता जाता है और अन्त में वह उस बात में भी होने लगता है जो प्राय निश्चित मानी जाती है। ये सब बातें मिलकर ऐसी स्थिति बना देती हैं जिसमें निर्णय-बुद्धि घटती जाती है, ऊर्जा का नाश होता है, और आजादी कम होती है, और यद्यपि मनोग्रस्तता का रोगी भी हमेशा शुरू में ऊर्जस्वित स्वभाव का होता है, प्राय बहुत-सी रायें रखता है, और आम तौर से औसत से अधिक बुद्धि वाला होता है, पर उसका आचार सम्बन्धी परिवर्धन काफी अधिक हुआ होता है, वह बहुत धर्मभीरु और अधिकतर सही होता है। आप कल्पना कर सकते हैं कि परस्पर विरोधी गुणो और अस्वस्थ व्यक्त रूपो के इस गोरखधन्धे में अपने पाव जमाए रखना काफी श्रमसाध्य काम है। इस समय हमारा ध्येय इस रोग के कुछ लक्षणो का अर्थ लगाना मात्र है।

शायद हमारे पिछले विवेचन को देखते हुए आप यह जानना चाहेगे कि मनोग्रस्तता-रोग के बारे में आजकल की मनश्चिकित्सा क्या कहती है। इसका बहुत मामूली-सा कार्य है। मनश्चिकित्सा ने अनेक तरह की बाध्यताओ के नाम रख दिए हैं, पर वह उनके बारे में और कुछ नही कहती। इसके बदले वह इस बात पर जोर देती है कि जिन व्यक्तियो में ये लक्षण दिखाई देते हैं, वे 'पतित'[1] होते हैं। इससे हमें अधिक सन्तोष नही होता। इससे हम उनका सिर्फ मूल्य आकते हैं—यह तो व्याख्या के वजाय निन्दा है। मैं समझता हू कि मनश्चिकित्सा हमें यह वताना चाहती है कि प्ररूप अर्थात् असली आम रूप से पतित हो जाने पर लोगो में स्वभावत सब तरह से विषमताए पैदा हो जाती हैं। अब हम भी यह मानते हैं कि जिन लोगो में ऐसे लक्षण होते हैं, वे दूसरे मनुष्यो से प्ररूप में कुछ न कुछ भिन्न होते हैं, पर हम यह जानना चाहते हैं कि क्या वे दूसरे स्नायु-रोगियो, अर्थात् हिस्टीरिया वाले या पागल लोगो की अपेक्षा अधिक 'पतित' होते हैं ? इस तरह स्वरूप-निर्देश करना अत्यधिक साधारण वर्णन है। जब हम यह देखते हैं कि ऐसे लक्षण असाधारण योग्यता वाले उन नर-नारियो में पाए जाते हैं, जिन्होने अपनी पीढी पर अपने चिह्न छोडे हैं, तब यह सन्देह होने लगता है कि क्या ऐसा कहना जरा भी उचित है ? उनकी अपनी विवेक-बुद्धि और जीवन-चरित-लेखको की असत्य-परायणता के कारण हमें आदर्श महापुरुषो के भीतरी स्वभाव के बारे में प्राय बहुत कम जानकारी होती है, पर कभी-कभी ऐसा अवश्य होता है कि उनमें से कोई, सचाई के बारे में एमिल जोला की तरह मताध होता है, और तब हमें उन बहुत-सारी असाधारण मनोग्रस्तता वाली आदतो का पता चल जाता है, जिनसे उसने सारे जीवन कष्ट उठाया।

मनश्चिकित्सा ने इन लोगो को 'पतित महापुरुष' कहकर पिंड छुडा लिया।

---

१. Degenerate

अच्छा किया, पर मनोविश्लेषण ने यह सिद्ध कर दिया कि इन असाधारण मनोग्रस्तता-लक्षणो को दूसरे रोगो के लक्षणो की तरह, और उस तरह जैसे उन लोगो मे, जो पतित नही हैं, स्थायी रूप से हटाया जा सकता है। स्वय मुझे ऐसा करने में बहुत बार सफलता मिली है।

मैं मनोग्रस्तता-लक्षणो के विश्लेषण के सिर्फ दो उदाहरण दूगा। इनमें से एक पुराना है, पर उससे अच्छा उदाहरण मुझे आज तक नही मिला, और एक हाल का है। मैं इन दो उदाहरणो तक ही रहूगा, क्योकि इस तरह का वर्णन बड़ा स्पष्ट होना चाहिए, और उसमें बहुत विस्तार में जाना होगा।

लगभग ३० वर्ष की आयु वाली एक महिला बडे प्रबल मनोग्रस्तता-लक्षणो से पीडित थी। यदि दुर्भाग्य ने मेरा काम न बिगाड दिया होता तो शायद मैं उसकी मदद कर सका होता—इसके बारे में शायद आगे चलकर मैं बताऊगा। वह निम्नलिखित अजीब मनोग्रस्तता के कार्य एक दिन में कई बार करती थी। वह अपने कमरे मे से दौडकर पास वाले कमरे में चली जाती, वहा कमरे के बीच मे रखी हुई मेज के पास एक विशेष स्थिति में खडी हो जाती, घन्टी बजाकर अपनी नौकरानी को बुलाती, उसे कोई मामूली-सा हुक्म देती, या बिना हुक्म दिए बाहर भेज देती, और फिर दौडकर अपने कमरे मे लौट जाती। इसमें निश्चित रूप से कोई भय पैदा करने वाली बात नही थी, पर इससे कुतूहल तो पैदा हो ही सकता है। इसकी व्याख्या विश्लेषक के बिना कुछ किए बडे सरल और सीधे तरीके से सामने आई। मैं यह कल्पना भी नही कर सकता कि मुझे इस मनोग्रस्तता के अर्थ की शका भी कैसे हो सकती, या इसकी व्याख्या भी मैं कैसे कर सकता था। मैंने रोगी से जब भी यह पूछा "तुम ऐसा क्यो करती हो? इसका क्या अर्थ है?" तब उसने यही उत्तर दिया. "मैं नही जानती।" पर एक दिन, जब मै उसके बहुत बडे सकोच को, जिसमें एक सिद्धान्त का प्रश्न आता था, दूर करने में सफल हुआ, एकाएक वह जान गई, क्योकि उसने मनोग्रस्तता के उस कार्य का इतिहास सुना दिया। लगभग दस वर्ष पहले, उसने अपने से बहुत अधिक आयु के एक आदमी से विवाह किया था, जो सुहागरात में नपुसक सिद्ध हुआ था। वह उस रात सभोग का प्रयत्न करने के लिए अनेक बार अपने कमरे मे दौडकर उसके कमरे में गया, पर हरबार असफल रहा। सवेरे उसने क्रोध से कहा था "किसी आदमी को बिस्तर लगाने वाली नौकरानी की नजरो मे गिरा देना ही काफी है!" और पास ही पड़ी लाल स्याही की बोतल लेकर उसे चादर पर उलट दी थी, पर ठीक उस स्थान पर नही उलटा था जहा ऐसा निशान हो सकता था। पहले मै यह नही समझ सका कि इस स्मृति का प्रस्तुत मनोग्रस्तता-कार्य से क्या सम्बन्ध हो सकता है, क्योकि मुझे दोनो स्थितियो में इसके अलावा और कोई समानता नही दिखाई दी थी कि एक कमरे से दूसरे कमरे में दौडने की और शायद नौकरानी के घटना-स्थल पर आने की बातें एक-सी हैं।

तब रोगिणी मुझे साथ के कमरे में मेज के पास ले गई, जहा मैंने मेजपोश पर एक बडा निशान देखा। उसने यह भी बताया कि मै मेज के पास इस तरह खडी होती हू कि जब नौकरानी अन्दर आए, तब वह इस निशान को अवश्य देख सके। इसके बाद प्रस्तुत मनोग्रस्तता-कार्य और सुहाग रात की घटना के सम्बन्ध-सूत्र के बारे में कोई शक नही रह सकता था हालाकि अभी इसके बारेमे बहुत कुछ जानना बाकी था।

प्रथम तो यह बात स्पष्ट थी कि रोगिणी अपने आप को अपना पति बना रही थी। उसके एक कमरे से दूसरे कमरे में जाने का अनुकरण करके वह उसका अभिनय कर रही थी। दोनो में समानता बनाए रखने के लिए हमे यह मानना पडेगा कि उसने चारपाई और चादर के स्थान पर मेज और मेजपोश को प्रस्तुत कर लिया। यह बिलकुल मनमानी बात मालूम हो सकती है, पर हमने स्वप्न-प्रतीको पर व्यर्थ ही विचार नही किया। स्वप्नो मे मेज बहुत बार चारपाई को निरूपित करती है। 'चारपाई और मेज' का मिलाकर अर्थ विवाह है और इसलिए इनमें से एक आसानी से दूसरे के स्थान पर आ जाता है।

यह सब बात इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि मनोग्रस्तता-कार्य अर्थपूर्ण कार्य है, यह उस बहुत महत्वपूर्ण दृश्य का निरूपण या आवृत्ति **प्रतीत होता है**, पर इतने ही सादृश्य पर रुक जाना जरूरी नही, यदि हम दोनो स्थितियो के सम्बन्ध को अधिक बारीकी से पडताल करें तो शायद हमें कुछ और बात, अर्थात् इस मनोग्रस्तता-कार्य के प्रयोजन का पता चल जाए। स्पष्टत असली बात नौकरानी को बुलाने मे है, जिसे वह लाल निशान दिखाती है, और उसके पति के इन शब्दो से 'किसीको उसकी नौकरानी की नजरो में गिरा देना काफी है', उसकी बातो का वैपम्य दिखाई देता है। इस प्रकार, जिसका अभिनय वह महिला कर रही थी, वह नौकर के सामने शर्मिन्दा **नहीं** होना और धब्बा जहा होना चाहिए, वही है। इसलिए हम देखते है कि उसने दृश्य को सिर्फ दोहराया नही है, बल्कि उस सिलसिले को जारी रखा है और उसमें सशोधन किया है, और इसे ऐसा रूप दे दिया है जो इसका होना चाहिए था। इसमे एक और बात भी पता चलती है, और वह है उस परिस्थिति का सशोधन, जिसने वह रात इतनी कष्टदायक बना दी थी, और जिसके कारण लाल स्याही की आवश्यकता हुई, अर्थात् पति की नपुमकता। इस प्रकार, मनोग्रस्तता-कार्य का अर्थ यह है "नही, यह सच नही है। वह नौकरानी की नजरो में गिरा नही। वह नपुसक नही था।" स्वप्न की तरह यहा भी इस मनोग्रस्तता-कार्य में वह इस इच्छा को पूर्ण हुआ निरूपित करती है जिससे उस दुर्भाग्यपूर्ण घटना के बाद उसके पति का मान पुन कायम होने का प्रयोजन सिद्ध हो जाता है।

इस महिला के बारे में मै आपको और जो भी कुछ बता सकता था, वह सब इस अर्थ के साथ मेल खाता है। या अधिक सही रूप मे कहे तो हम उसके बारे में और जो भी कुछ जानते है, उस सबमे उस मनोग्रस्तता-कार्य का जो वैसे बिलकुल समझ में

नही आता था, यही अर्थ सूचित होता है। वह वर्षो से अपने पति से अलग थी और उससे कानूनन तलाक लेने का इरादा कर रही थी। पर अपने मन में उसके उससे मुक्त होने की कोई सम्भावना नहीं हो सकती थी। वह अपने आप को उसके प्रति निष्ठावान् होने के लिए मजबूर कर रही थी। वह दुनिया से और सब व्यक्तियो से अपने को खीचकर अलग ले गई जिससे उसे प्रलोभन पैदा न हो, और अपने कल्पना-लोक में उसने उसे माफ कर दिया और आदर्श रूप में प्रतिष्ठित किया। उसके रोग का असली भीतरी रहस्य यह था कि इस तरह वह पडोसियो की द्वेषपूर्ण कानाफूसी से बच सकती थी, अपने को पति से अलग रहने को उचित ठहरा सकती थी, और अपने पति को अपने से अलग रहते हुए सुख से जीवन बिताने का मौका दे सकती थी। इस प्रकार किसी हानि रहित मनोग्रस्तता-कार्य के विश्लेषण से हम सीधे रोगी के सबसे अन्दर वाले रहस्य पर पहुच जाते हैं, और साथ ही हमें सामान्य मनोग्रस्तता-रोग का रहस्य बहुत कुछ पता चल जाता है। मुझे यह मजूर है कि आप इस उदाहरण पर कुछ समय लगाए क्योकि इसमें ऐसी दशाए एक जगह मौजूद हैं जिनकी सब उदाहरणो में आशा करना युक्तिसगत नही। इस लक्षण का निर्वचन रोगिणी ने विश्लेषक की सहायता या हस्तक्षेप के बिना एकाएक खोज लिया था, और इसका एक ऐसी घटना से सम्बन्ध था, जो बचपन से भूले हुए समय की नही थी, जैसा कि आमतौर पर हुआ करती है, बल्कि वह रोगिणी के वयस्क जीवन में हुई थी और उसे स्पष्ट रूप से याद थी। आलोचक लक्षणो के हमारे निर्वचन पर आदतन जो आक्षेप किया करते हैं, वे सब यहा पर बिलकुल असंगत हैं। पर सदा हमारा भाग्य इतना अच्छा नही होता।

एक बात और, क्या आपको यह अनुभव हुआ कि यह निर्दोष मनोग्रस्तता-कार्य हमें इस महिला के सबसे अधिक निजी और गोपनीय मामलो मे सीधे ही पहुचा देता है? स्त्री के लिए अपनी सुहागरात की कहानी कहने से बढकर गोपनीय कोई बात नही है, और क्या यह आकस्मिक बात है और क्या इसका कोई विशेष अर्थ नही है कि हम सीधे ही उसके यौन जीवन के भीतरी रहस्यो पर पहुच जाते है? निश्चित रूप से इसका यह कारण हो सकता है कि मैंने यही उदाहरण चुना। इस प्रश्न पर जल्दी में फैसला न कीजिए, बल्कि, दूसरे उदाहरण पर विचार कीजिए जो बिलकुल दूसरी तरह का है और उस तरह के उदाहरणो, अर्थात् सोने से पहले किए जाने वाले कृत्यो के उदाहरणो, में से है।

एक उन्नीस वर्ष की अच्छी तरह पली-पुसी हुई होशियार लडकी, जो अपने माता-पिता की एकमात्र सन्तान थी, और शिक्षा तथा बौद्धिक कार्य में उनसे बढकर थी, बडी चपल और उत्साही लडकी थी, पर कुछ वर्षो से वह बडी चिडचिडी हो गई थी, जिसका कोई कारण दिखाई नही देता था। वह विशेष रूप से अपनी माता से बहुत चिडचिडाती थी, असन्तुष्ट और निरुत्साहित थी तथा अनिश्चय और

सन्देह की वृत्तिवाली हो गई थी। और अन्त में वह कहने लगी कि मै चौराहो और चौडी सडको पर अकेली नही चल सकती। हम उसकी जटिल दशा पर बहुत बारीकी से विचार नही करेंगे। इसके कम से कम दो निदान हो सकते हैं 'अगोराफोबिया' (खुले स्थान की भीति) और 'मनोग्रस्तता-रोग', पर हम उन कार्यो की ओर ध्यान देंगे जो यह नौजवान लडकी सोने से पहले किया करती थी और जिनसे उसके माता को बडी परेशानी पैदा हुई। एक अर्थ में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक सामान्य अवस्थावाला व्यक्ति सोने से पहले कुछ बधे-बधाए काम करता है या कम से कम उसे कुछ ऐसी अवस्थाओ की आवश्यकता होती है जिनके बिना उसे सोने में बाधा पडती है। जागृत जीवन से नीद में पहुचने के लिए एक नियमित सूत्र बना लिया गया जो हर रात उसी तरह दोहराया जाता। पर स्वस्थ व्यक्ति को नीद की जिस भी अवस्था की जरूरत है, उसकी बुद्धिसगत व्याख्या की जा सकती है, और यदि बाहरी परिस्थितियो के कारण कोई परिवर्तन आवश्यक हो जाए तो वह बिना समय बरबाद किए आसानी से अपने आपको उसके अनुकूल बना लेता है पर अस्वस्थ कृत्य अपरिवर्तनीय होता है। अधिक से अधिक त्याग करके भी इसे किया जाता है। इसे बुद्धिसगत प्रेरक भावो से ढक लिया जाता है, और इसमें तथा स्वस्थ कृत्य में सिर्फ यह ऊपरी भेद दिखाई देता है कि इसे करते हुए कछ विशेष सावधानी रखी जाती है। पर बारीकी से जाच करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इसे पूरी तरह नही ढका जा सकता है, और उस कृत्य में कुछ ऐसे काम भी होते हैं जो तर्कसगत नही ठहराए जा सकते और कुछ तो बिलकुल तर्क विरुद्ध होते हैं। अपनी रात की सतर्कताओ का प्रेरक कारण बताते हुए हमारी रोगिणी यह कहती है कि रात में मुझे पूरी शान्ति चाहिए, और शोर की कोई सम्भावना मै नही रहने देती। इसके लिए वह दो काम करती है अपने कमरे की बडी घडी बन्द कर देती है, और शेष सब घडिया, यहा तक कि अपनी छोटी-सी कलाई घडी भी कमरे से बाहर कर देती है। फूलो के गमले और गुलदस्ते सावधानी से मेज पर रख दिए जाते हैं ताकि वे रात में नीचे गिरकर और टूटकर उसकी नीद खराब न कर सके। वह जानती है कि शान्ति कायम करने के लिए ये सतर्कताए मिथ्या उपाय हैं। छोटी घडी की टिक-टिक चारपाई के साथवाली मेज पर रखी होने पर भी सुनाई नही दे सकती और हम सब जानते हैं कि पेंडुलम वाली घडी की नियमित टिकटिक से नीद कभी खराब नही होती, बल्कि उससे नीद पैदा होने की सम्भावना अधिक है। वह यह भी मानती है कि उसका यह भय कि रात में अपने स्थान पर रखे हुए गुलदस्ते और गमले अपने आप नीचे गिर जाएगे, और टूट जाएगे, बिलकुल असम्भाव्य है। इसी तरह, उसके कुछ और कार्यो में शाति के लिए आग्रह उसका उद्देश्य नही होता। असल में तो वह यह व्यवस्था करके कि उसके सोने के कमरे और उसके माता-पिता के सोने के कमरे का दरवाजा आधा खुला रहे

(जिसके लिए वह दरवाजे में कई तरह की चीजें रख देती है), वह शोर के आने के लिए रास्ता खोलती हुई प्रतीत होती है। पर सबसे महत्वपूर्ण काम स्वय बिस्तर से सम्बन्ध रखते हैं। बिस्तर के सिरहाने वाला गोल तकिया या मसनद लकडी के पलग के पिछले हिस्से को नही छूना चाहिए। छोटा तकिया गोल तकिए से ठीक विकर्ण की स्थिति में होना चाहिए, और किसीमें नही। इसके बाद वह अपना सिर इस सम चतुर्भुज के बीचोबीच लम्बाईनुमा रख देती है। रजाई ओढने से पहले उसे हिलाना जरूरी है, जिससे उसमें भरे हुए पख पैरो की तरफ चले जाए पर वह इसे फिर दबाकर फैलाती है और सारे में कर देती है।

मैं उसके कृत्य की और छोटी-मोटी बाते छोड देता हू। उनसे हमें कोई नई बात नही पता चलेगी, और हम अपने प्रयोजन से बहुत दूर निकल जाएगे। पर आप यह मत समझिए, कि यह सब बिलकुल बिना बाधा के हो जाता है। हर काम के साथ यह चिन्ता लगी रहती है कि यह सब उचित रीति से नही हुआ, इसकी जाच की जाए और इसे ठीक किया जाए। पहले उसे अपनी एक सतर्कता पर शक होता है और फिर दूसरी पर, और परिणाम यह होता है कि वह लड़की सोने से पहले एक-दो घन्टा लगा देती है और भयभीत माता-पिता को भी नही सोने देती।

इन कष्टो का विश्लेषण उतनी आसानी से नही होगा जितनी आसानी से पहली रोगिणी के मनोग्रस्तता-कार्य का हो गया था। मैंने इसके निर्वचन के बारे में कुछ सकेत और सुझाव पेश किए जिनपर उसने सदा स्पष्ट इकार किया या घृणा और सन्देह प्रकट किया, पर अस्वीकृति की पहली प्रतिक्रिया के बाद के समय मे उसने सुझाई गई सम्भावना का स्वय विचार किया, उनमे उत्पन्न साहचर्य नोट किए, स्मृतिया पैदा की, और सम्बन्ध-सूत्र कायम किए और अन्त मे उसने उन्हे स्वय निकालते हुए सब निर्वचन स्वीकार कर लिए। उसने जितना-जितना निर्वचन किया, उतना ही उतना वह अपनी मनोग्रस्ततावाली सतर्कताए शिथिल करती गई और इलाज खत्म होने से पहले उसने सब कृत्य छोड दिए थे। मैं आपसे यह कहना चाहता हू कि आजकल हम जिस तरह विश्लेषण कार्य करते हैं, उसमें निश्चित रूप से यह नही होता कि किसी एक ही लक्षण पर तब तक लगातार जुटे रहे जब तक कि इसका अर्थ पूरी तरह स्पष्ट न हो जाए। इसके विपरीत, किसी एक बात को इस आशा पर बार-बार छोड देना पडता है कि शायद हम किसी दूसरे प्रसंग में नए सिरे मे इसपर पहुच जाए। इसलिए, उस लक्षण का जो निर्वचन मैं आपको बतानेवाला हू, वह उन सब परिणामो का मिला-जुला रूप है जो बीच में अन्य प्रश्नो पर विचार करते हुए सप्ताहो और महीनो में हासिल हुए थे।

धीरे-धीरे रोगिणी को यह समझ में आने लगा कि वह बडी और छोटी घडियो को रात के समय इसलिए बाहर कर देती है क्योकि वे स्त्री-जननेन्द्रियो की प्रतीक है। घडियो को, जिनके बारे में हम जानते है कि उनके और भी प्रतीकात्मक अर्थ

हो सकते है, आवर्ती प्रक्रम और नियमित मध्यान्तरो से सम्बद्ध होने के कारण यह जननेन्द्रिय का अर्थ प्राप्त होता है। कोई स्त्री यह शेखी बघार सकती है कि उसे मासिक धर्म घडी की तरह नियमित होता है। इस रोगिणी को विशेष भय यह था कि घडिया उसकी नीद खराब करेंगी। घडी की टिक-टिक की आवाज कामोत्तेजन के समय भगनासा की थरथराहट के तुल्य है। यह सवेदन, जो उसे परेशान करता था, उसे कई बार नीद से सचमुच जगा चुका था और अब भगनासा के पुन खडे होने का भय इस रूप में प्रकट होता था कि वह सब चलती हुई बडी और छोटी घडियो को अपने से दूर हटाने का नियम बनाए हुए थी। गमले और गुलदस्ते, और पात्रो की तरह, स्त्री-जननेन्द्रियो के प्रतीक है, इसलिए रात में उन्हे गिरने और टूटने से रोकने की सतर्कता भी अर्थशून्य नही। हम जानते है कि यह प्रथा बहुत व्यापक है कि सगाई के समय कोई बर्तन या तश्तरी तोडी जाती है। वहा मौजूद सब लोग एक-एक टुकडा लेकर प्रतीकात्मक रूप में यह स्वीकार करते है कि अब हमारा इस वधू पर कोई दावा नही है। यह प्रथा सम्भवत एक पत्नी-विवाह के साथ पैदा हुई। रोगिणी ने अपने कृत्य के इस हिस्से पर भी कुछ स्मृति और साहचर्यो से रोशनी डाली। एक बार बचपन मे वह काच या चीनी मिट्टी का बर्तन ले जाते हुए गिर पडी थी, जिससे उसकी उगली कट गई थी और उससे बुरी तरह खून बहने लगा था। जब वह बडी हुई और उसे मैथुन सम्बन्धी तथ्यो का पता चला तब उसे यह भय पैदा हो गया कि सुहागरात को उसके खून नही निकलेगा, और इस प्रकार वह अक्षतयोनि नही सिद्ध होगी। गुलदस्तो के टूटने के बारे में उसकी सतर्कता का अर्थ यह था कि वह अक्षतयोनि होने और सम्भोग के प्रथम कार्य के समय रक्तरजित होने के प्रश्न विषयक सारी ग्रन्थि को अस्वीकार करती थी, वह रक्तरजित होगी और वह रक्तरजित नही होगी, इन दोनो चिन्ताओ को वह अस्वीकार करती थी। असल में, इन सतर्कताओ का शोर रोकने के साथ सिर्फ दूर का सम्बन्ध था।

एक दिन उसे अपने कृत्य की मुख्य बात उस समय सूझी जब एकाएक उसे अपना यह नियम समझ में आ गया कि वह गोल तकिए को चारपाई के पिछले हिस्से मे नही छूने देती थी। उसने कहा कि गोल तकिया मुझे सदा औरत मालूम होता था और चारपाई का सीधा खडा हुआ पीछे का हिस्सा आदमी मालूम होता था। इसलिए वह मानो जादू करके आदमी और औरत को अलग रखना चाहती थी, अर्थात् माता-पिता को अलग-अलग करना और उनका सम्भोग रोकना चाहती थी। उसके कृत्य के शुरू होने मे वर्षो पहले उसने एक अधिक सीधे तरीके मे यह लक्ष्य सिद्ध करने की कोशिश की थी। उसने भय का दिखावा किया था, या भय की प्रवृत्ति का लाभ उठाया था, जिसमे उसके सोने के कमरे और उसके माता-पिता के सोने के कमरे के बीच का दरवाजा बद न किया जाए। यह नियम अब

भी उसके मौजूदा कृत्य में सचमुच शामिल था। इस प्रकार, उसने अपने माता-पिता की बातचीत चुपके-चुपके सुन पाने का तरीका बना लिया था। इस कार्य में किसी समय उसे महीनों नीद नही आई थी। अपने माता-पिता को इस तरह परेशान करके ही वह सन्तुष्ट नही हुई थी, और कभी-कभी वह उस समय माता और पिता के बिस्तर में उनके बीच में सोने में भी सफल हुई थी। 'गोल तकिया' और चारपाई तब वास्तव मे इकट्ठे नही मिल सके थे। जब अंत में वह इतनी बडी हो गई कि माता-पिता के साथ उस बिस्तर मे सुविधा के साथ नही सो सकती थी, तब उसने जान-बूझकर भय का दिखावा करके, और अपनी माता से अपना स्थान बदलकर तथा पिता के पास उसका स्थान लेकर वही प्रयोजन पूरा किया। निश्चित रूप से इस घटना से ही उसके कल्पना-लोक का आरम्भ हुआ जिसका प्रभाव उसके कृत्य में स्पष्ट दिखाई देता था।

यदि गोल तकिये का अर्थ औरत था तो रजाई हिलाकर सब पख पैरो की ओर ले आने का, जिससे तली में एक उभार बन जाए, भी कुछ अर्थ था। इसका अर्थ था स्त्री को निषेचित करना, अर्थात् उसको गर्भाधान कराना। उसने गर्भावस्था को फिर भी दूर नही किया, क्योंकि वर्षों वह इस बात से डरी रही कि उसके माता-पिता के सम्भोग से कोई और बच्चा पैदा हो जाएगा और इस तरह उसका कोई प्रतिस्पर्धी आ जाएगा। दूसरी ओर, यदि बडे गोल तकिये का अर्थ माता था तो छोटे तकिये का अर्थ पुत्री ही हो सकता था। तो यह तकिया बडे तकिये पर टेढा करके क्यो रखा जाता था, और उसका सिर ठीक इसके बीच मे लम्बाई-नुमा क्यो रखा जाता था? उससे आसानी से यह ध्यान आ जाता था कि दीवारो पर बनाए गए चित्रो में समचतुर्भुज का प्रयोग खुली स्त्री-जननेन्द्रियो को सूचित करने के लिए किया जाता है। पुरुष (पिता) का कार्य इस तरह वह स्वय करती थी, और पुरुष-लिंग के स्थान पर अपना सिर रखती थी। (देखिए बधिया करने के लिए सिर काटने का प्रतीक)।

आप कहेंगे कि एक कुमारी लडकी के दिमाग में यह कैसे भयकर विचार चल रहे हैं? मैं यह बात मानता हू, पर यह न भूलिए कि मैंने ये विचार बनाए नही हैं, सिर्फ उन्हे उघाड दिया है। सोने से पहले इस तरह के कृत्य या काम-काज भी काफी विचित्र बात है, और इस काम-काज और उसकी कल्पना-सृष्टि में निर्वचन से जो सादृश्य और सम्बन्ध प्रकट हुआ है, उससे आप इन्कार नही कर सकते। परन्तु मेरे लिए अधिक महत्व की बात यह है कि आप इस बात पर ध्यान दें कि यह काम-काज किसी एक ही कल्पना-सृष्टि का परिणाम नही था, बल्कि इसमें कई कल्पना-सृष्टिया मिली हुई थी, जिनकी कही एक गाठ या बन्धन-केन्द्र होगा। यह भी देखिए कि इन काम-काज की विस्तृत बातो से विध्यात्मक और निषेधात्मक दोनो रूपो मे यौन इच्छाओ का पता चलता है। कुछ अंश में वे यौन इच्छाओ (

अभिव्यक्ति है, और कुछ अश में वे इनके विरुद्ध सफाई है।

इस काम-काज के विश्लेषण को रोगिणी के दूसरे लक्षणो के सिलसिले में रखकर और भी बहुत-सी जानकारी प्राप्त की जा सकती है, पर इस समय हमारा वह प्रयोजन नही है। आपको, पिता के प्रति कामासक्ति, जो बहुत पहले बचपन में ही पैदा हो गई थी, और जिसने इस लडकी को परवश बना दिया था, के निर्देश से ही सन्तुष्ट हो जाना चाहिए था। शायद इसी कारण, वह अपनी माता से इतना वैर-भाव रखती थी। हम इस तथ्य को भी नजरन्दाज नही कर सकते कि इस लक्षण से भी हम रोगिणी के यौन जीवन पर ही पहुचेंगे। स्नायु-रोगो के लक्षणों के अर्थ और प्रयोजन में हम जितना अधिक जाएगे, इसपर हमें उतना ही कम आश्चर्य होगा।

दो छटे हुए उदाहरणो से मैंने आपके सामने यह दिखलाया है कि गलतियो और स्वप्नो की तरह स्नायविक लक्षणो का भी अर्थ होता है और उनका रोगी के जीवन की घटनाओ से निकट सम्बन्ध होता है। क्या दो उदाहरणो के बल पर मैं आपसे इस विशेष महत्वपूर्ण कथन पर विश्वास कर लेने की आशा कर सकता हू? नही, पर क्या आप मुझसे यह आशा कर सकते हैं कि मैं आपको तब तक उदाहरण देता जाऊगा जब तक आप कह न दें कि हमें विश्वास हो गया? यह भी नही। क्योकि प्रत्येक केस का जितना विस्तृत और पूरा विवेचन करना पडता है, उसे देखते हुए मुझे स्नायु-रोगो के सिद्धान्त में इस एक प्रश्न पर सारे सत्र में प्रति सप्ताह पाच घण्टे लगाने होगे। इसलिए मैं वे नमूने देकर ही सन्तोष करूगा जो अपने कथन के साक्ष्य रूप में मैंने दिए हैं, और विशेष जानकारी के लिए आपका ध्यान इस विषय के साहित्य की ओर खीचूगा। ब्रायर के पहले केस (हिस्टीरिया) के लक्षणो का प्रसिद्ध निर्वचन तथाकथित डिमनेशिया प्रीकौक्स (अर्थात् स्वय पोपी मनोवैकल्य) के बहुत अस्पष्ट लक्षणो का सी० जी० युग द्वारा किया हुआ वह उल्लेखनीय विशदीकरण, जो उसने तब किया था जब वह सिर्फ मनोविश्लेपक था, और तत्काल भविष्यवक्ता बनने की आकाक्षा नही रखता था, और हमारी पत्र-पत्रिकाओ में आने वाले इस तरह के सब केस इसके लिए अच्छी अध्ययन सामग्री हैं। इस तरह की खोज-बीन बहुत हुई है। स्नायविक लक्षणो का विश्लेषण, निर्वचन और अनुवाद मनोविश्लेपको को इतना आकर्षक लगा है कि इनकी तुलना में उन्होंने स्नायु-रोगो की दूसरी समस्याओ को कुछ समय के लिए भुला दिया है।

आप में से जो भी व्यक्ति इस प्रश्न का अध्ययन करने के लिए आवश्यक परिश्रम करेगा वह साक्ष्य सामग्री की प्रचुरता से निश्चय ही बहुत प्रभावित होगा, पर उसके रास्ते में एक कठिनाई भी आएगी। लक्षण का अर्थ, जैसा कि हम देख चुके हैं, रोगी के जीवन से सम्बन्धित होता है। वह लक्षण जितना व्यष्टित बना होगा,

उतना ही स्पष्टत: हम यह सम्बन्ध-सूत्र स्थापित करने की आशा कर सकते हैं। तब यह कार्य एक खास खोज बन जाता है क्योंकि उसे भूतकाल की स्थिति की प्रत्येक अनुपयोगी क्रिया और प्रत्येक अर्थहीन विचार, जिसमें वह विचार और क्रिया उचित होते, एक उपयोगी प्रयोजन सिद्ध करते हैं। उस रोगिणी का मनोग्रस्तता-कार्य, जो दौडकर मेज पर पहुचती थी और नौकरानी को बुलाने के लिए घटी बजाती थी, इस तरह के लक्षण का सबसे बढिया नमूना है। पर एक सर्वथा भिन्न प्ररूप के लक्षण बहुत बार दिखाई देते हैं। ये वे लक्षण हैं जिन्हें हम रोग के प्रारूपिक[1] लक्षण कहते हैं। ये प्रत्येक केस में प्राय एक-से होते हैं। उनमें फर्क प्राय दिखाई नही देते या बहुत ही थोडे होते हैं, और इसलिए उनका रोगी के जीवन या उसके भूतकाल की विशेष स्थितियो से सम्बन्ध जोडना कठिन होता है। दूसरी रोगिणी के नीद से पहले के काम-काज बहुत-सी दृष्टियो से बिलकुल प्रारूपिक हैं, यद्यपि उसमें कुछ निजी विशेषताए भी हैं, जिनके कारण, यह कहा जा सकता है कि उसका 'ऐतिहासिक' निर्वचन भी हो सकता है, पर मनोग्रस्तता के सब रोगियो में आवृत्ति या दोहराना, अपनी कुछ क्रियाओ को अलग कर लेना, और तालबद्ध व्यापार पाए जाते हैं। उनमें से बहुत-से लोग बहुत नहाते-धोते हैं। जो रोगी अगोराफोबिया (टौपोफोबिया अर्थात् स्थान-भीति के रोगी होते हैं—अब यह रोग मनोग्रस्तता-रोग नही माना जाता बल्कि इसे चिंता-हिस्टीरिया में गिना जाता है) रोग-चित्त की वही विशेषताए फिर पेश करते हैं। वे घिरे हुए स्थानो, चौडे खुले चौराहो, लबी सडको और गलियो से डरते हैं। यदि कोई उनके साथ हो, या कोई सवारी उनके पीछे आ रही हो तो वे रक्षित अनुभव करते हैं। तो भी, इतनी समानता रखते हुए अलग-अलग मरीजो में अपनी निजी दशाएं दिखाई देती हैं। आप उन्हे मनोवस्थाए कह सकते हैं, जिनमें एक दूसरे से बहुत असमानता होती है। कोई रोगी सिर्फ तग गलियो से डरता है, कोई सिर्फ चौडी सडको से डरता है, कोई सिर्फ तब चल सकता है जब आसपास अधिक लोग न हो, और कोई तब ही चल सकता है जब चारो ओर लोग ही लोग हो। इसी तरह हिस्टीरिया में व्यक्तिगत विशेषताओ की प्रचुरता के अलावा सदा बहुत सारे सामान्य प्रारूपिक लक्षण होते हैं जो ऐतिहासिक ढग से आसान निर्वचन करने में बाधा डालते प्रतीत होते हैं। हमें यह न भूलना चाहिए कि इन प्रारूपिक लक्षणो द्वारा ही हम निदान करने में अपना आधार बना सकते हैं। मान लीजिए कि हिस्टीरिया के किसी केस में हम पीछे की ओर चलते हुए किसी प्रारूपिक लक्षण से किसी अनुभव तक या एक जैसे अनुभवो की शृखला तक (उदाहरण के लिए हिस्टीरिया वमन (उलटी) से घृणित प्रकार की भावनाओ की श्रेणी तक) सम्बन्ध जोड लेते हैं, तो किसी दूसरे केस में यह पता चल

---

१ Typical

सकता है कि वमन (उलटी) पैदा करने वाले अनुभव पहले वाले अनुभवो से सर्वथा भिन्न है और ऊपर से वे कारण मालूम होते है, और इस तरह विभ्रम हो जाता है। पर ऐसा लगने लगता है जैसे किसी अज्ञात कारण से हिस्टीरिया के रोगियो को वमन (उलटी) अवश्य होनी चाहिए, और मनोविश्लेषण द्वारा प्रकाश में लाए गए ऐतिहासिक कारण बहाने मात्र है, जो भीतरी आवश्यकता के कारण मौका मिलने पर अपनी प्रयोजन-सिद्धि के लिए अपना लिए गए है।

इससे हम इस निराशाजनक नतीजे पर पहुचते है कि यद्यपि स्नायविक लक्षणो के व्यक्तिगत रूपो की सतोषजनक व्याख्या रोगी के अनुभवो से उनका सबध स्थापित करके निश्चित रूप से की जा सकती है, तो भी उन्ही केसो में अधिकतर होने वाले प्रारूपिक लक्षणो मे हमारा विज्ञान असफल रह जाता है। इसके अलावा, मैंने किसी लक्षण के ऐतिहासिक अर्थ की दृढता से खोज करने में आने वाली सब कठिनाइया आपके सामने नही रखी है, और न मैं उन्हे रखूगा, क्योकि यद्यपि मैं आपसे न कोई चीज छिपाना चाहता हू और न किसी चीज की शेखी बघारना चाहता हू पर हमारे इस मिले-जुले अध्ययन के शुरू में ही मैं आपको विभ्रम और गडबडी में नही डालना चाहता। यह सच है कि लक्षण-निर्वचन को समझना अभी हमने शुरू ही किया है पर जो जानकारी हमें प्राप्त हुई है, उसे हम याद रखेंगे और अज्ञात बातो की कठिनाइयो को एक-एक करके हल करेंगे आपको इस विचार से शायद खुशी होगी कि एक तरह के लक्षण और दूसरी तरह के लक्षण में कोई मौलिक अतर मानना संभव नही है। यदि लक्षण का व्यक्तिगत रूप रोगी के अनुभवो से इतने निश्चित रूप से सबधित है तो सभव है कि प्रारूपिक लक्षण ऐसे अनुभव से सबधित हो जो स्वय प्रारूपिक है और सारी मनुष्य जाति में सामान्य है। स्नायु-रोग की अन्य सदा पाई जाने वाली विशेषताए, जैसे मनोग्रस्तता-रोग की पुनरावृत्ति और सदेह, ऐसी व्यापक प्रतिक्रियाए हो सकती है जिन्हे रोगी अस्वस्थ परिवर्तन के स्वरूप के कारण अतिरजित करने को मजबूर होता है। सक्षेप में बात यह है कि निराश होकर जल्दी से हाथ-पाव छोड देना उचित नही है। हमें यह देखना चाहिए कि हम और क्या पता लगा सकते है।

इसी तरह की कठिनाई स्वप्नो के सिद्धात में आई थी, जिसकी मैं अपने स्वप्नो के विवेचन के समय पूरी तरह व्याख्या नही कर सका था। स्वप्नो की व्यक्त वस्तु बहुत रूपो में होती है और अलग-अलग व्यक्ति में उसका बडा भिन्न रूप होता है, और हम बडे विस्तार से यह दिखा चुके है कि इस वस्तु के विश्लेषण से क्या जानकारी प्राप्त हो सकती है। पर ऐसे स्वप्न भी होते है जो इसी तरह प्रारूपिक कहे जा सकते है और प्रत्येक को आते है, अर्थात् एक ही वस्तु वाले स्वप्न जिनके विश्लेषण में एक ही कठिनाइया आती है। ये गिरने, उडने, बहने, तैरने, रोके जाने, नगा होने के स्वप्न और ऐसे ही दूसरे चिन्ता-स्वप्न होते है, जिनमें सबधित व्यक्ति

के अनुसार, पहले एक और फिर दूसरा निर्वचन होता है, और उनके बार-बार एक-से तथा प्रारूपिक रूप में आने की कोई व्याख्या नही हो पाती। पर हम देखते हैं कि इन स्वप्नो मे भी सामान्य जमीन पर व्यक्तिगत विशेषता की सजावट मौजूद होती है। सभवत वे भी दूसरे प्रकार के स्वप्नो के अध्ययन से, स्वप्न-जीवन विषयक अन्य जानकारी के साथ सुसगत हो सकते हैं पर किसी जबरदस्ती या खींचतान द्वारा नही, बल्कि इन चीजो को समझने का क्षेत्र धीरे-धीरे विस्तृत करके।

उपघातों पर बद्धता : अचेतन

मैने पिछली बार कहा था कि हम अपना आगे का कार्य अव तक प्राप्त जानकारी के आधार पर आगे वढाएगे, अपने मनों में उससे उत्पन्न सदेहो के आधार पर नही। अभी हमने ऊपर के उदाहरणो के विश्लेपण से उत्पन्न सवसे मनोरजक निष्कर्षो पर विचार आरम्भ भी नही किया है।

पहली वात दोनो मरीजो ने यह धारणा पैदा की है कि वे अपने भूतकाल की एक विशेप वात से **वधे हुए हैं**, कि वे यह नही जानते कि अपने को उससे कैसे छुडाए, और इसलिए वे वर्तमान और भविष्य दोनो से विच्छिन्न हो जाते है, मानो वे अपनी वीमारी में सवसे अलग रह जाते है, जैसे पुराने जमाने में लोग अपने आश्रमो या कुटियो में अकेले रहकर अपने वदकिस्मती के दिन विता दिया करते थे। पहले रोगी के मामले में उसका अपने पति से विवाह, जो असल में वहुत समय पहले खत्म हो चुका था, उसके मन में जम गया था। अपने लक्षणो के द्वारा वह उस पति के साथ अपना सम्वन्ध कायम रख सकी। उन लक्षणो में हमने ऐसी आवाजें सुनी जो उस पुरुप का समर्थन करती थी, उसे क्षमा करती थी, उसे ऊचा उठाती थी, और उसके अभाव में शोक प्रकट करती थी। यद्यपि वह युवती है और दूसरे पुरुपो को आकर्पित कर सकती है, पर वह हर सम्भव वास्तविक और काल्पनिक सतर्कता रखती है जो उस पुरुप के प्रति उसकी निष्ठा कायम रखेगी। वह अपरिचितो से नही मिलती, अपने वनाव-सिगार पर ध्यान नही देती, इसके अलावा वह जिस कुर्सी पर वैठ जाती है उससे आसानी से नही उठ सकती, और वह अपना हस्ताक्षर नही करती और कोई उपहार नही दे सकती, क्योकि उसकी अपनी चीज और किसी को नही मिलनी चाहिए।

दूसरी रोगिणी, अर्थात् नौजवान लडकी में जवानी से वहुत पहले पिता से जो कामुक अनुराग वन गया था, वह उसके जीवन में यह कार्य कर रहा है। उसने स्वय भी यह देखा है कि जव तक वह इस तरह वीमार है, तव तक वह विवाह नही कर सकती। हम यह सदेह कर सकते हैं कि वह विवाह के अयोग्य वनने और इस

तरह अपने पिता के साथ ही रह सकने के लिए इतनी बीमार हो गई है।

हमें यह प्रश्न पूछना ही होगा कि कोई व्यक्ति जीवन के प्रति ऐसा असाधारण और अलाभकर रुख कैसे, किन साधनो से और किन प्रेरक भावो से प्रेरित होकर अपना सकता है, यदि यह रुख स्नायु-रोग मे सर्वत्र दीखने वाला गुण हो और इन दो मरीजो की कोई अपनी विशेषता न हो। सच्ची बात यह है कि यह ऐसा ही है। यह प्रत्येक स्नायु-रोग मे पाया जाने वाला सामान्य लक्षण है, और इसका व्यावहारिक महत्व बहुत अधिक है। ब्रायर की पहली हिस्टीरिया की रोगिणी इसी तरह उस समय से बद्ध[1] हो गई थी, अर्थात बध गई थी, जब उसका पिता बहुत रोगी था, और उसने उसकी परिचर्या की थी। उसके अच्छा हो जाने के बावजूद वह तभी से कुछ हद तक जीवन से विछिन्न रही है, क्योकि यद्यपि वह स्वस्थ और और चुस्त रही है, पर उसने स्त्री का सामान्य जीवन-कार्य नही अपनाया। अपने प्रत्येक रोगी में विश्लेपण करने पर हम देखते है कि लक्षणो और उनके अभावो ने रोगी को उसके जीवन से किसी गुजरे हुए जमाने में पहुचा दिया है। अधिकतर उदाहरणो में यह जमाना जीवन के इतिहास का बहुत आरम्भिक भाग, बचपन का काल या दूध पीते समय का जमाना होता है, यद्यपि यह बात बेतुकी लगती है।

हमारे स्नायु-रोगियो के इस व्यवहार से बहुत सादृश्य रखने वाला रोग तथाकथित **उपघातज स्नायु-रोग**[2] है, जिसे युद्ध ने कुछ समय से इतना आम बना दिया है। ऐसे उदाहरण युद्ध से पहले रेलवे दुर्घटनाओ तथा जीवन को खतरा पैदा करने वाले दूसरे डरावने अनुभवो के बाद भी होते थे। उपघातज स्नायु-रोग मूलत वे स्नायु-रोग नही है जो स्वय पैदा होते है, जिनकी हम विश्लेपण द्वारा खोज करते है और जिनका हम इलाज करते है। आज तक हमें अपने अन्य विषयो सम्बन्धी विचारो से उनका सम्बन्ध जोडने मे सफलता नही हुई। बाद में मैं आपको यह दिखाने की आशा करता हू कि इसमे क्या रुकावट पडती है। फिर भी उनमे एक बात पर पूरी सहमति है जिसपर बल दिया जा सकता है। उपघातज स्नायु-रोगो से यह बहुत अच्छी तरह प्रकट हो जाता है कि उनके मूल मे उपघात सम्बन्धी घटनाओ के समय से बद्धता होती है। ये रोगी अपने स्वप्नो मे सदा उपघात वाली स्थिति पैदा करते है। हिस्टीरिया जैसे दौरो वाले मामलो मे जिनमें विश्लेपण हो सकता है, यह प्रतीत होता है कि उस दौरे मे वह स्थिति पूरी की पूरी फिर उत्पन्न हो जाती है, मानो यह व्यक्ति अभी तक उस स्थिति को पूरी तरह हल नही कर सकेगा, मानो यह काम अभी उसके सामने सचमुच अधूरा पडा है। हम उनके इस रुख को पूरी नजीदगी से स्वीकार करते है। इससे उस मार्ग का सकेत मिलता है जिसे हम मानसिक प्रक्रमों का आर्थिक अवधारण कह सकते है। 'उपघात सबधी'

---

[1] Fixated [2] Traumatic neuroses

शब्द का इस **आर्थिक** अर्थ के अलावा, असल में, और कोई अर्थ नही है । उस अनुभव को हम उपघातज, अर्थात् चोट से पैदा होने वाला कहते है जो बहुत थोडे-से समय में मन पर उद्दीपन की इतनी अधिक मात्रा ला देता है कि उसका प्रकृत साधनो से स्वीकरण[१] या विशदन नही किया जा सकता और इसलिए मन में मौजूद ऊर्जा के वितरण में स्थायी विक्षोभ पैदा हो जाते है ।

इस सादृश्य को देखकर हम उन अनुभवो को भी उपघातज में गिना देना चाहते है,जिनसे हमारे स्नायु-रोगी बधे हुए प्रतीत होते है । इस प्रकार, हमें स्नायु-रोग की एक सरल अवस्था मिल जाएगी । इसकी उपघातज रोग से तुलना न हो सकेगी और यह अभिभूत करने वाले भावात्मक अनुभव को पचाने की असमर्थता से पैदा होगा । असल में, ब्रायर ने और मैने १८९३–९५ में अपने नए प्रेक्षणो को एक सिद्धान्त का रूप दिया था । वह कुछ ऐसे ही रूप में था । उपर्युक्त पहले मरीज का मामला, जिसमें एक युवा औरत अपने पति से अलग हो गई है, इस वर्णन में बहुत अच्छी तरह जच जाती है । वह अपने विवाह की अव्यवहार्यता को 'विजय' नही कर सकी और अब भी उस उपघात से बधी हुई थी, पर दूसरे नौजवान लडकी वाले केस से, जो अपने पिता से बधी हुई थी, तुरन्त यह पता चलता है कि यह सूत्र काफी व्यापक नही है । एक ओर तो छोटी लडकी का अपने पिता के प्रति बाल्यकालीन प्रशसाभाव ऐसा आम अनुभव है और इतना अधिक पाया जाता है कि यदि यहा 'उपघातज' शब्द का प्रयोग करें तो वह निरर्थक हो जाता है, दूसरी ओर, केस के इतिहास से पता चलता है कि इस पहले यौन बन्धन को रोगी ने उस समय बिना कोई बाहरी लक्षण प्रकट किए बिलकुल हानि रहित ढग से पार कर लिया और वह कई वर्षो बाद ही मनोग्रस्तता-रोग के रूप में प्रकट हुआ ।

इस प्रकार हम देखते है कि स्नायु-रोग में बहुत-सी उलझनें, बडी विविधता और अनेक निर्धारक कारक है । पर हमारा विचार है कि उपघात सबधी दृष्टि-कोण को मिथ्या मानकर छोडना जरूरी नही होगा, और कि यह दूसरी जगह ही ठीक तरह जच जाएगा और इसका समन्वय करना होगा ।

यहा फिर हमें अपना पहले वाला रास्ता छोडना होगा । इस समय हम इससे बहुत आगे नही पहुच सकते और इसको सन्तोषजनक रीति से आगे चलाने से पहले हमें बहुत कुछ सीखना पडेगा, पर उपघातो मे बद्धता के विषय को छोडने से पहले यह समझ लेना चाहिए कि यह घटना स्नायु-रोगो के अलावा और बहुत-से क्षेत्रो में व्यक्त होती है, प्रत्येक स्नायु-रोग मे ऐसी बद्धता होती है, पर प्रत्येक बद्धता मे स्नायु-रोग नही सूचित होता, या प्रत्येक बद्धता का स्नायु-रोग से सम्बन्ध होना आवश्यक नही,या प्रत्येक बद्धता स्नायु-रोग में ही नही पैदा होती । दु ख किसी भूत-

---

१ Assimilation

काल की चीज़ पर भावबद्धता का मूल रूप[1] और आदर्श उदाहरण है और स्नायु-रोगो की तरह इसमे भी वर्तमान और भविष्य से पूर्ण विच्छेद की अवस्था हो जाती है। पर साधारण आदमी भी दु ख और स्नायु-रोग में स्पष्ट भेद करता है। दूसरी ओर, ऐसे स्नायु-रोग रोग भी हैं जिन्हे दु ख के अस्वस्थ रूप कहा जा सकता है।

ऐसा भी होता है कि किसी उपघातज अनुभव से, जिसने व्यक्ति के जीवन के सारे ढाचे को जड से हिला दिया हो, उसका जीवन पूर्णतया स्थिर हो गया हो और इस तरह उसने वर्तमान और भविष्य में सारी दिलचस्पी छोड़ दी हो और वह स्थायी रूप से भूतकाल के चिन्तन मे ही डूबा रहता हो। पर ऐसे दु खी लोगो का स्नायु-रोगी बन जाना आवश्यक नही। इसलिए एक विशेषता स्नायु-रोगियो में सदा होने पर भी, और इसके अर्थपूर्ण होने पर भी, इसका स्नायु-रोग में उचित से अधिक महत्व नही समझना चाहिए।

अब हमारे विश्लेषण से निकले दूसरे निष्कर्ष पर विचार कीजिए। इस निष्कर्ष पर हमे बाद मे कोई मर्यादा लगाने की आवश्यकता नही होगी। पहली रोगिणी से हमने उसके अर्थहीन मनोग्रस्तता-कार्य की, और इसके सिलसिले से वह जिन घनिष्ठ स्मृतियो को याद करती थी, उनकी बात सुनी है। हमने दोनो के सम्बन्ध पर भी विचार किया और स्मृति के साथ इसके सम्बन्ध-सूत्र को देखकर इस मनोग्रस्तता-कार्य का प्रयोजन भी अनुमान से निकाला। पर एक बात को हमने पूरी तरह उपेक्षित कर दिया, जब कि इस बात पर अधिक से अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। जब तक रोगिणी यह कार्य करती रही, तब तक वह यह नही जानती थी कि इसका पिछले अनुभव से किसी भी तरह सम्बन्ध है। दोनो बातो का सम्बन्ध-सूत्र छिपा हुआ था। वह यह बिलकुल सच्चा उत्तर दे सकती थी कि मैं यह नही जानती कि किस आवेग के वशीभूत होकर ऐसा करती हू। तब एकाएक ऐसा हुआ कि इलाज के प्रभाव से उसे यह सम्बन्ध-सूत्र पता चल गया, और वह इसे कह सकी। पर तब भी उसे यह पता नही था कि वह क्रिया करने में उसका क्या प्रयोजन था—उसका प्रयोजन भूतकाल की कष्टकारी घटना को सुधारना और अपने प्रिय पति को अपनी नजरो में ऊचा उठाना था। उसे यह समझने में और मेरे सामने स्वीकार करने में बहुत समय और प्रयास लगाना पड़ा कि उसके मनोग्रस्तता-कार्य के पीछे ऐसा प्रेरक भाव ही क्रियाशील हो सकता था।

दु खदायी सुहागरात के बाद वाले सवेरे के दृश्य से सम्बन्ध, और अपने पति के प्रति रोगिणी की अपनी कोमल भावना, ये दोनो बाते मिलकर मनोग्रस्तता-कार्य का 'अर्थ' कही गई हैं। पर इस अर्थ के दोनो पहलू उससे छिपे हुए थे। जब तक वह यह कार्य करती रही, तब तक उसे न तो अपने काम का कहां से समझ में

---

१ Prototype

शब्द का इस आर्थिक अर्थ के अलावा, असल में, और कोई अर्थ नही है। उस अनुभव को हम उपघातज, अर्थात् चोट से पैदा होने वाला कहते है जो बहुत थोडे-से समय में मन पर उद्दीपन की इतनी अधिक मात्रा ला देता है कि उसका प्रकृत साधनो से स्वीकरण[1] या विशदन नही किया जा सकता और इसलिए मन में मौजूद ऊर्जा के वितरण में स्थायी विक्षोभ पैदा हो जाते हैं।

इस सादृश्य को देखकर हम उन अनुभवो को भी उपघातज में गिना देना चाहते है,जिनसे हमारे स्नायु-रोगी बधे हुए प्रतीत होते है। इस प्रकार, हमें स्नायु-रोग की एक सरल अवस्था मिल जाएगी। इसकी उपघातज रोग से तुलना न हो सकेगी और यह अभिभूत करने वाले भावात्मक अनुभव को पचाने की असमर्थता से पैदा होगा। असल में, ब्रायर ने और मैंने १८९३–९५ में अपने नए प्रेक्षणो को एक सिद्धान्त का रूप दिया था। वह कुछ ऐसे ही रूप में था। उपर्युक्त पहले मरीज का मामला, जिसमें एक युवा औरत अपने पति से अलग हो गई है, इस वर्णन में बहुत अच्छी तरह जच जाती है। वह अपने विवाह की अव्यवहार्यता को 'विजय' नही कर सकी और अब भी उस उपघात से बधी हुई थी, पर दूसरे नौजवान लडकी वाले केस से, जो अपने पिता से बधी हुई थी, तुरन्त यह पता चलता है कि यह सूत्र काफी व्यापक नही है। एक ओर तो छोटी लडकी का अपने पिता के प्रति बाल्यकालीन प्रशसाभाव ऐसा आम अनुभव है और इतना अधिक पाया जाता है कि यदि यहा 'उपघातज' शब्द का प्रयोग करें तो वह निरर्थक हो जाता है, दूसरी ओर, केस के इतिहास से पता चलता है कि इस पहले यौन बन्धन को रोगी ने उस समय बिना कोई बाहरी लक्षण प्रकट किए बिलकुल हानि रहित ढग से पार कर लिया और वह कई वर्षो बाद ही मनोग्रस्तता-रोग के रूप में प्रकट हुआ।

इस प्रकार हम देखते है कि स्नायु-रोग में बहुत-सी उलझनें, बडी विविधता और अनेक निर्धारक कारक है। पर हमारा विचार है कि उपघात सबधी दृष्टिकोण को मिथ्या मानकर छोडना जरूरी नही होगा, और कि यह दूसरी जगह ही ठीक तरह जच जाएगा और इसका समन्वय करना होगा।

यहा फिर हमें अपना पहले वाला रास्ता छोडना होगा। इस समय हम इससे बहुत आगे नही पहुच सकते और इसको सन्तोषजनक रीति मे आगे चलाने से पहले हमें बहुत कुछ सीखना पडेगा, पर उपघातो से बद्धता के विषय को छोडने से पहले यह समझ लेना चाहिए कि यह घटना स्नायु-रोगो के अलावा और बहुत-से क्षेत्रो में व्यक्त होती है, प्रत्येक स्नायु-रोग में ऐसी बद्धता होती है, पर प्रत्येक बद्धता से स्नायु-रोग नही सूचित होता, या प्रत्येक बद्धता का स्नायु-रोग से सम्बन्ध होना आवश्यक नही,या प्रत्येक बद्धता स्नायु-रोग में ही नही पैदा होती। दु ख किसी भूत-

१ Assimilation

काल की चीज़ पर भाववद्धता का मूल रूप[1] और आदर्श उदाहरण है और स्नायु-रोगों की तरह इसमें भी वर्तमान और भविष्य से पूर्ण विच्छेद की अवस्था हो जाती है। पर साधारण आदमी भी दुःख और स्नायु-रोग में स्पष्ट भेद करता है। दूसरी ओर, ऐसे स्नायु-रोग रोग भी हैं जिन्हे दुःख के अस्वस्थ रूप कहा जा सकता है।

ऐसा भी होता है कि किसी उपघातज अनुभव से, जिसने व्यक्ति के जीवन के सारे ढाचे को जड से हिला दिया हो, उसका जीवन पूर्णतया स्थिर हो गया हो और इस तरह उसने वर्तमान और भविष्य में सारी दिलचस्पी छोड दी हो और वह स्थायी रूप से भूतकाल के चिन्तन मे ही डूबा रहता हो। पर ऐसे दुःखी लोगो का स्नायु-रोगी बन जाना आवश्यक नही। इसलिए एक विशेषता स्नायु-रोगियो में सदा होने पर भी, और इसके अर्थपूर्ण होने पर भी, इसका स्नायु-रोग में उचित से अधिक महत्व नही समझना चाहिए।

अब हमारे विश्लेषण से निकले दूसरे निष्कर्ष पर विचार कीजिए। इस निष्कर्ष पर हमें बाद में कोई मर्यादा लगाने की आवश्यकता नही होगी। पहली रोगिणी से हमने उसके अर्थहीन मनोग्रस्तता-कार्य की, और इसके सिलसिले से वह जिन घनिष्ठ स्मृतियो को याद करती थी, उनकी बात सुनी है। हमने दोनो के सम्बन्ध पर भी विचार किया और स्मृति के साथ इसके सम्बन्ध-सूत्र को देखकर इस मनोग्रस्तता-कार्य का प्रयोजन भी अनुमान से निकाला। पर एक बात को हमने पूरी तरह उपेक्षित कर दिया, जब कि इस बात पर अधिक से अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। जब तक रोगिणी यह कार्य करती रही, तब तक वह यह नही जानती थी कि इसका पिछले अनुभव से किसी भी तरह सम्बन्ध है। दोनो बातो का सम्बन्ध-सूत्र छिपा हुआ था। वह यह बिलकुल सच्चा उत्तर दे सकती थी कि मैं यह नहीं जानती कि किस आवेग के वशीभूत होकर ऐसा करती हू। तब एकाएक ऐसा हुआ कि इलाज के प्रभाव से उसे यह सम्बन्ध-सूत्र पता चल गया, और वह इसे कह सकी। पर तब भी उसे यह पता नहीं था कि वह क्रिया करने में उसका क्या प्रयोजन था—इसका प्रयोजन भूतकाल की कष्टकारी घटना को सुधारना और अपने प्रिय पति को अपनी नजरो में ऊचा उठाना था। उसे यह समझने में और मेरे सामने स्वीकार करने मे बहुत समय और प्रयास लगाना पडा कि उसके मनोग्रस्तता-कार्य के पीछे ऐसा प्रेरक भाव ही क्रियाशील हो सकता था।

दुःखदायी सुहागरात के बाद वाले सवेरे के दृश्य से सम्बन्ध, और अपने पति के प्रति रोगिणी की अपनी कोमल भावना, ये दोनो बातें मिलकर मनोग्रस्तता-कार्य का 'अर्थ' कही गई हैं। पर इस अर्थ के दोनो पहलू उससे छिपे हुए थे। जब तक वह यह कार्य करती रही, तब तक उसे न तो अपने काम का 'कहां से' समझ में

1 Prototype

आया और न किधर। इसलिए उसके भीतर ऐसे मानसिक प्रक्रम क्रिया कर रहे थे, जिनका परिणाम वह मनोग्रस्तता-कार्य था। वह उनके प्रभाव से सामान्य रीति से परिचित थी, पर इस परिणाम का मानसिक पूर्व इतिहास उसकी चेतना के ज्ञान में नही आया था। वह सम्मोहन (हिप्नोटिजम) से प्रभावित उस आश्रय या माध्यम[1] की तरह ही व्यवहार कर रही थी, जिसे बर्नहीम ने उसके जागने से पाच मिनट बाद छतरी खोलने का आदेश दिया था पर जिसे यह कुछ पता नही था कि वह ऐसा क्यो कर रहा था। जब हम **अचेतन मानसिक प्रक्रमों** के अस्तित्व की बात कहते है, तब हमारे मन में इसी तरह की घटना होती है, हम ससार में सबको यह चुनौती दे सकते है कि वे इस मामले की अधिक सही वैज्ञानिक व्याख्या पेश करें। तब हम खुशी से अपना यह अनुमान वापस ले लेंगे कि अचेतन मानसिक प्रक्रमो का अस्तित्व है, पर जब तक कोई ऐसी व्याख्या नही पेश करता, तब तक हम इस अनुमान पर दृढ रहेंगे, और जब कोई यह आक्षेप करेगा कि वैज्ञानिक अर्थ में अचेतन का कोई यथार्थ अस्तित्व नही है,यह तो एक कामचलाऊ कल्पनामात्र है, तब हम उसके कथन को अस्वीकार ही कर सकते हैं। यह अयथार्थ और अवास्तविक है, पर फिर भी मनोग्रस्तता-कार्य जैसी यथार्थ और दृष्टिगोचर चीज़ पैदा कर सकता है।

दूसरी रोगिणी में भी मूल रूप से वही चीज़ पाई जाती है। उसने यह नियम बना लिया है कि गोल बडा तकिया चारपाई के पिछले हिस्से को न छुए और वह इस नियम का पालन करती है पर वह यह नही जानती कि यह नियम कहा से पैदा हुआ, इसका क्या अर्थ है या यह किस बल पर चलता है। वह इसके प्रति उदासीन है, या इससे सघर्ष करती है, या इसपर क्रोध करती है, या इसे पराजित करने का सकल्प करती है—इस बात का विशेष महत्व नही, पर यह नियम पाला जाता है। इसका पालन उसे अवश्य करना होगा। वह व्यर्थ ही अपने आप से पूछती है कि क्यो करना होगा? इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि मनोग्रस्तता-रोग के ये लक्षण, ये मनोबिम्ब और ये आवेग, जिनके बारे में कोई आदमी यह नही जानता कि ये कहा पैदा होते हैं, और जो उन सारे प्रभावो का ऐसा प्रबल प्रतिरोध सहते है और फिर भी बने रहते है, जिन्हें वैसे प्रकृत मानसिक जीवन सहन नही कर सकता, स्वय रोगियो पर भी यह असर डालते हैं कि जैसे वे किसी दूसरे लोक मे आए हुए सर्वशक्तिमान् देवता है, या अमर सत्ताए हैं, जो मर्त्य जगत् के आवर्त-चक्र में आकर मिल गई है। इन लक्षणो से मानसिक व्यापार के एक विशेष क्षेत्र का स्पष्टतम सकेत मिलता है, जो शेष सब व्यापारो से विच्छिन्न है। उनसे मन में अचेतन की सत्ता के प्रश्न पर विश्वास करने का असदिग्ध मार्ग दिखाई देता

---

१ Subject

है, और इसी कारण मनश्चिकित्सा, जो सिर्फ चेतना के मनोविज्ञान को मानती है, इन लक्षणो के विषय में इसके सिवा और कुछ नही कर सकती कि उन्हे एक विशेष तरह के 'पतन' के चिह्न बना दे। स्वभावत मनोग्रस्तता वाले मनोबिम्ब और आवेग स्वय उससे अधिक अचेतन नही होते जितना मनोग्रस्तता-कार्यो का करना। यदि वे चेतना में न घुस गए होते तो रोग-लक्षण न बने होते, पर विश्लेपण से उनके जो मानसिक पूर्व इतिहास प्रकट हुए, निर्वचन के बाद वे जिन सम्बन्धो से बधे, वे कम से कम तब तक अचेतन है, जब हम विश्लेपण के कार्य द्वारा रोगी को उनसे चेतन, अर्थात् सज्ञान बनाते है।

इसके अलावा, अब इस बात पर भी विचार कीजिए कि इन दो केसो में स्थापित तथ्यो की प्रत्येक स्नायु-रोग के प्रत्येक लक्षण मे पुष्टि होती है, कि लक्षणो का अर्थ सदा और सर्वत्र रोगी को अज्ञात होता है, कि विश्लेपण सदा यह प्रकट करता है कि ये लक्षण उन अचेतन मानसिक प्रक्रमो से पैदा होते है जो अ`क अनुकूल अवस्थाओ मे चेतन भी हो सकते है। तब आपको यह बात समझ में आएगी कि मनोविश्लेपण मे हम मन के अचेतन भाग को छोडकर नही चल सकते, और हमें इसके साथ उसी तरह व्यवहार करने का अभ्यास है, जैसे किसी वास्तविक और मूर्त चीज से। शायद आप यह भी अनुभव कर सकेंगे कि वे लोग इस विषय मे राय बनाने में कितने अक्षम है, जो अचेतन को एक शब्दमात्र के रूप मे जानते है, जिन्होने कभी स्वप्नो का विश्लेपण या निर्वचन या स्नायविक लक्षणो का उनके अर्थ और आशय मे रूपान्तर या अनुवाद नही किया। आपके ध्यान मे इसे अच्छी तरह से बैठाने के लिए मै इसका साराश फिर दोहराऊंगा। यह तथ्य कि विश्लेपण तथा निर्वचन द्वारा स्नायविक लक्षणो का अर्थ जानना सम्भव है, अचेतन मानसिक प्रक्रमो के अस्तित्व का, या यदि आप यो कहना चाहें तो उनका अस्तित्व मानने की आवश्यकता का अकाट्य प्रमाण है।

पर इतनी ही बात नही है। ब्रायर की दूसरी खोज से, जिसका सारा श्रेय उस अकेले को है और जिसका महत्व मुझे पहली खोज से भी अधिक दूरगामी मालूम होता है, अचेतन और स्नायु-रोगियो के लक्षणो के आपसी सम्बन्ध के बारे में और भी ज्ञान प्राप्त हुआ। लक्षण का अर्थ ही सदा अचेतन नही होता, उन दोनो में स्थानापन्नता के ढग का सम्बन्ध-सूत्र भी होता है। लक्षण का अस्तित्व इस अचेतन व्यापार के कारण ही हो सकता है। मेरा आशय आप जल्दी ही समझ जाएगे। ब्रायर की तरह मैं भी यह बात मानता हू जब कभी हम कोई लक्षण देखते है, तभी हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि रोगी के मन में सुनिश्चित अचेतन व्यापार मौजूद है, जिनमें लक्षण का अर्थ निहित है। विलोमत, यह अर्थ पहले अवश्य अचेतन होना चाहिए, तब ही इससे कोई लक्षण पैदा हो सकता है। लक्षण चेतन प्रक्रमो से नहीं पैदा होता। ज्यो ही लक्षण पैदा करने वाले अचेतन प्रक्रमो

को चेतन बना दिया जाएगा, त्योही लक्षण लुप्त हो जाएगे। आप तुरन्त समझ जाएगे कि यह चिकित्सा का एक नया रास्ता है, जिससे लक्षणो को हटाया जा सकता है। इसी उपाय से ब्रायर ने अपने रोगी को सचमुच अच्छा कर दिया, अर्थात् उसे उसके लक्षणो से मुक्त कर दिया। उसने उन अचेतन प्रक्रमो को, जिनमें उसके लक्षणो का अर्थ मौजूद था, उसकी चेतना में लाने का एक तरीका निकाला और लक्षण लुप्त हो गए।

ब्रायर की यह खोज किसी कल्पना या चिन्तन का परिणाम नही थी, बल्कि एक प्रेक्षण का परिणाम थी, जो रोगी के सहयोग के कारण सम्भव हो सका। अब आप इसे समझाने के लिए इसकी किसी ऐसी ही अपनी पूर्व परिचित चीज से तुलना करने की कोशिश करके अपने दिमाग को परेशान न करें, आपको इसे एक मौलिक रूप से नया तथ्य मानना चाहिए, जिसके द्वारा और बहुत-सी बातो की व्याख्या की जाती है। इसलिए मुझे यह बात दूसरे शब्दो में पेश करने की अनुमति दीजिए।

लक्षण किसी दूसरी चीज का, जो अन्दर छिपी रहती है, स्थानापन्न होता है। प्रकृत दशाओ में कुछ मानसिक प्रक्रम तबतक परिवर्धित होते रहते है जबतक व्यक्ति सचेत रूप से उन्हें न जानता हो। वह उन्हे सचेत रूप से नही जान पाया है, और इसके बदले इन प्रक्रमो से, जिसमें किसी तरह रुकावट और बाधा पडी है, और जिन्हे अचेतन रहना पडा है, वह लक्षण पैदा हो गया है। इस प्रकार एक तरह का विनिमय या अदला-बदला हो गया है। यदि हम अपनी चिकित्सा शैली द्वारा इस प्रक्रम को उलटा करने में सफल हो जाए तो हम उस लक्षण को दूर कर सकते है।

ब्रायर की खोज अब भी मनोविश्लेषण चिकित्सा की बुनियाद है। यह कथन कि लक्षणो का अचेतन पूर्वइतिहास चेतन बना दिए जाने पर लक्षण लुप्त हो जाते हैं, बाद की सब गवेषणाओ से सच्चा प्रमाणित हुआ है, यद्यपि इस कथन का व्यवहार में लाने का यत्न करते हुए बडी असाधारण और अप्रत्याशित उलझनें सामने आती है। हमारी चिकित्सा-शैली अचेतन घटना को चेतन घटना में रूपान्तरित करके अपना कार्य करती है, और अपने कार्य में वही तक सफल होती है जहातक वह यह रूपान्तर कर सके।

अब जरा एक दूसरी तरफ चलना है, क्योकि कही आप इस कल्पना में न डूब जाए कि यह चिकित्सा सम्बन्धी परिणाम बहुत आसानी से हासिल हो जाता है। अबतक हम जिन निष्कर्षो पर पहुचे है, उनके अनुसार, स्नायु-रोग एक तरह के अज्ञान का, उन मानसिक प्रक्रमो को, जिनका ज्ञान होना चाहिए, न जानने का, परिणाम है। यह बात सुकरात के उस प्रसिद्ध सिद्धान्त से बहुत मिलती-जुलती है जिसके अनुसार पाप भी अज्ञान का परिणाम है। अब, विश्लेषण में ऐसा होता है कि अनुभवी विश्लेषक प्राय बहुत आसानी से यह अनुमान कर लेता है कि किसी

विशेष रोगी में अचेतन रूप से मौजूद भावनाए कौन-सी है। इसलिए रोगी को अपना ज्ञान देकर और इस तरह उसका अज्ञान हर करके उसका इलाज करना कोई कठिन काम नही होता। लक्षण के अचेतन अर्थ का एक पहलू तो इस तरह आसानी मे हल हो सकता है, यद्यपि यह सच है कि इसका दूसरा पहलू, अर्थात् लक्षण तथा रोगी के जीवन के पिछले अनुभवो का सम्बन्ध, इस प्रकार नही जाना जा सकता, क्योकि विश्लेषक नही जानता कि रोगी को क्या अनुभव हुए है, इसलिए उसे तब तक प्रतीक्षा करनी पडती है जब तक रोगी उन्हे याद न कर ले और उसे न बता दे। पर बहुत-से उदाहरणो में इसके स्थान पर भी एक दूसरा उपाय किया जा सकता है। आप रोगी के मित्रो और रिश्तेदारो से उसके पिछले जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते है। प्राय उन्हे यह पता होता है कि उपघात के ढग की, अर्थात् मन को चोट पहुचाने वाली कौन-सी घटनाएं हुई है। शायद वे कुछ ऐसी घटनाए भी बतला सकें, जिनका रोगी को ज्ञान नही है, क्योकि वे उसके बहुत बचपन मे हुई थी। ऐसा मालूम होने लगता है कि दोनो उपायो को मिलाकर रोगियो के रोगजनक अज्ञान को बहुत जल्दी और बिना अधिक परेशानी के दूर किया जा सकता है।

काश कि ऐसा हो सकता! हमने ऐसी खोजें की है जिनके होने से पहले हमें जरा भी यह सम्भावना नही थी कि जानने और जानने में भेद होता है। दोनो ज्ञान सदा एक ही चीज नही होते। ज्ञान अनेक प्रकार का होता है, और सब प्रकारो का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समान मूल्य नही होता। चिकित्सक का जानना और रोगी का जानना, एक ही चीज नही है, और इन दोनो का एक ही प्रभाव नही होता। जब डाक्टर रोगी को अपना ज्ञान प्रकट करता है तब उसका प्रभाव होता है। नही, ऐसा कहना सही नही। इसका प्रभाव यह नही होता कि लक्षण लुप्त हो जाएं, पर इसका एक और प्रभाव होता है—इससे विश्लेषण गतिमान् हो जाता है, और इसका पहला परिणाम प्राय. जोरदार निषेध होता है। रोगी को कुछ ऐसी चीज, अर्थात् अपने लक्षण का अर्थ, ज्ञात हुआ है जो इसे पहले ज्ञात नही था, और तब भी वह पहले की तरह कुछ नही जानता। इस तरह हम देखते है कि अज्ञान एक से अधिक प्रकार का होता है। यह समझने के लिए कि इन दोनो में किस बात का अन्तर है, मनोवैज्ञानिक मामलो की गहरी पैठ और सूझ-बूझ होनी चाहिए। पर यह कथन तब भी सच रहता है कि लक्षणो के अर्थ का ज्ञान हो जाने पर वे लुप्त हो जाते है। इसकी आवश्यक शर्त यह है कि इस ज्ञान का आधार रोगी का आन्तरिक परिवर्तन होना चाहिए, और यह परिवर्तन इस उद्देश्य से किए गए मानसिक व्यापार द्वारा ही हो सकता है। यहा हमारे सामने ऐसी समस्याए आ गई है जो शीघ्र ही बढने-बढते लक्षण-निर्माण की गतिकी[1] (या गति विज्ञान) का रूप धारण कर

---

१ Dynamics

लेंगी ।

अब मुझे सचमुच रुक जाना चाहिए, और आपसे यह पूछना चाहिए कि जो बातें मैं कह रहा हू, वे बहुत अधिक अस्पष्ट और उलझनदार तो नही है ? और क्या मै इतनी सारी शर्तें और मर्यादाए लगाकर, विचार-श्रृखलाए बनाकर और फिर उन्हे छोडकर आपके मन में गडबड-घुटाला तो नही पैदा कर रहा ? यदि ऐसा होगा तो मुझे बडा दु ख होगा । मुझे सत्य की हानि करके सरलीकरण करना एकदम नापसन्द है । मुझे इस विषय के अनेक पहलुओ और जटिलता का पूरा चित्र आपके सामने रखने की इच्छा है, और मै यह भी मानता हू कि प्रत्येक प्रश्न के बारे में जितना आप इस समय पचा सकते है, उससे अधिक बताने से कोई हानि नही होगी । मैं जानता हू कि प्रत्येक श्रोता और प्रत्येक पाठक जो कुछ सुनता-पढता है, उसे अपने मन में अपने ढग से सजा लेता है, उसे सक्षिप्त करता है, उसे सरल करता है, और उसमें से वह चीज़ निकाल लेता है जो वह याद रखना चाहता है। कुछ सीमाओ में यह बात सच है कि हम जितने अधिक से शुरू करेंगे, अन्त में उतना ही अधिक हमारे पास रहेगा । इसलिए मुझे आशा है कि विस्तार के बावजूद आपने लक्षणो के अर्थ, अचेतन, और उन दोनो के सम्बन्ध के बारे में मेरे कथन का साराश समझ लिया है । शायद आपने यह भी समझ लिया है कि आगे हम दो दिशाओ में बढेंगे—एक तो यह जानने की दिशा में कि लोग रोगी कैसे हो जाते हैं, उनका जीवन के प्रति विशिष्ट स्वाभाविक रुख, जो चिकित्सा-क्षेत्र की एक समस्या है, कैसे बन जाता है, और दूसरे, उनमें स्नायु-रोग की अवस्थाओ में से अस्वस्थ लक्षणो का परिवर्धन कैसे हो जाता है, जोकि मानसिक गतिकी समस्या है । इन दोनो समस्याओ का कोई न कोई मिलन-बिन्दु अवश्य होना चाहिए ।

आज मै इस विषय मे और कुछ नही कह सकूगा, पर क्योकि अभी हमारा समय पूरा नही हुआ इसीलिए मै आपका ध्यान अपने दो विश्लेषणो की एक और विशेषता की ओर खीचना चाहता हू, वह है **स्मृति-व्यवधान या स्मृति-नाश (एमनेशिया)**—इसका पूरा महत्व भी आगे चलकर स्पष्ट होगा । आप देख चुके है कि मनोविश्लेषण के इलाज का कार्य इस सक्षिप्त सूत्र में आ जाता है—अचेतन की प्रत्येक रोगजनक बात चेतन मे स्थानान्तरित कर दी जाए । अब शायद आपको यह सुनकर आश्चर्य हो कि इसके स्थान पर एक और सूत्र रखा जा सकता है रोगी की स्मृति के सब अवकाशो, अर्थात् खाली स्थानो, को भर दिया जाए। उसके एमनेशिया अर्थात स्मृति-व्यवधान दूर कर दिए जाए। यह बात भी वही है जिसका मतलब यह है कि लक्षणो के परिवर्धन और स्मृति-व्यवधानो मे मौजूद महत्वपूर्ण सम्बन्ध-सूत्र पहचाना जाए । यदि आप पहली रोगिणी के उदाहरण पर विचार करें तो आपको स्मृति-व्यवधान एमनेशिया के बारे में यह विचार उचित नही मालूम होगा । रोगी उस दृश्य को नही भूला है जिससे मनोग्रस्तता-कार्य पैदा हुआ । इसके

विपरीत, यह उसकी स्मृति में सजीव है, इसी तरह उसके लक्षण के निर्माण की कोई और भी वात भूली हुई नही है। दूसरे उदाहरण में, जिसमे लडकी मनोग्रस्तता के काम-काज करती है, स्थिति विलकुल ऐसी है, यद्यपि वह इतनी स्पष्ट नही है। वह भी अपने पहले के दिनो के व्यवहार को असल में भूली नही थी। यह तथ्य था कि उसने अपने माता-पिता के सोने के कमरे और अपने सोने के कमरे के वीच का दरवाजा खुला रखने का आग्रह किया था, और कि उसने अपनी माता को अपने माता-पिता के विस्तर से हटा लिया था। उसे यह वात विलकुल स्पष्ट रूप से ज्ञात थी, यद्यपि उसे इसमें सकोच और अनिच्छा अनुभव होती थी। इसमें विशेष उल्लेखनीय वात यह है कि यद्यपि पहली रोगिणी ने अपना मनोग्रस्तता-कार्य असख्य वार किया था, पर उसे सुहागरात के वाद वाले दृश्य से इसकी समानता का ध्यान **एकबारगी** नही आया, और जव उससे अपने मनोग्रस्तता-कार्य का मूल खोजने के लिए सीधे तौर से कहा गया, तव भी उसे यह वात ध्यान नही आई। यही वात उस लडकी के वारे मे भी है, जिसके सामने न केवल अपना निश्चित काम वल्कि उसे पैदा करनेवाली स्थिति भी हर सायकाल उसी रूप मे आती थी। दोनो मे से किसी भी उदाहरण मे स्मृति-व्यवधान या एमनेशिया वस्तुत नही था, पर वह सम्वन्ध-सूत्र टूट गया था जो जैसे का तैसा रहना चाहिए था, और जिसे उन वातो का स्मरण कराना चाहिए था। मनोग्रस्तता-रोग के लिए स्मृति का इस तरह गड-वड हो जाना काफी है। हिस्टीरिया में यह दूसरी तरह का होता है। हिस्टीरिया रोग में प्राय वहुत वडे पैमाने पर स्मृति-व्यवधान होते हैं। साधारणतया हिस्टीरिया के प्रत्येक लक्षण का विश्लेपण करने पर पिछले सस्कारो की एक पूरी की पूरी शृखला मिलती है, जिसके वारे मे उनके लौट आने पर यह कहा जा सकता है कि वह अव तक विलकुल भूली हुई थी। यह शृखला एक ओर तो वचपन के विलकुल आरम्भिक दिनो तक पहुचती है, और इसीलिए हिस्टीरिक एमनेशिया, अर्थात् हिस्टीरिया का स्मृति-व्यवधान उस वाल्यकालीन स्मृति-व्यवधान का सीधा विस्तार दिखाई देता है, जो हमारे मानसिक जीवन के शुरू के सस्कारो को हम सवसे छिपाए रखते हैं। दूसरी ओर हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि रोगी को वहुत हाल के अनुभव भी भूल जाते हैं, और विशेष रूप से वे उत्तेजक कारण, जिन्होने रोग को जन्म दिया या उसे वढाया था, स्मृति-व्यवधान मे पूरी तरह विलुप्त न होने पर भी कम से कम अशत तो लुप्त हो ही जाते हैं। हाल की स्मृति के ऐसे किसी भी पूर्ण चित्र में से महत्वपूर्ण वातें सदा लुप्त हो जाती हैं, या उनके स्थान पर जाली वातें आ जाती हैं। वार-वार प्राय: सदा यह हुआ कि विश्लेपण पूरा होने से कुछ ही पहले हाल के अनुभवो की वे स्मृतिया ऊपर आ जाती हैं, जो सारे समय भीतर रुकी रही थीं, और जिन्होने सिलसिले में वहुत-से ध्यान खींचने वाले व्यवधान यानी खाली स्थान छोड रखे थे।

प्रतिरोध और दमन*

अब हमें स्नायु-रोगो को समझने की दिशा में बढने के लिए और तथ्यो की आवश्यकता है। हमारे पास ही दो प्रेक्षण मौजूद है। दोनो बडे ध्यान देने योग्य है और शुरू में बडे आश्चर्यजनक थे। आप हमारे पिछले साल किए गए कार्य से उन दोनो के लिए नि सन्देह तैयार हो चुके है।

पहला जब हम किसी रोगी के लक्षणो का इलाज करने का कार्य अपने ऊपर लेते है, तब वह इलाज के सारे समय हमारा जोरदार और लगातार विरोध करता है। यह ऐसी असाधारण बात है कि हम इसमें आपका बहुत विश्वास होने की आशा नही करते। सबसे अच्छी बात यह है कि रोगी के रिश्तेदारो से इसके बारे में कुछ न कहा जाए, क्योकि वे सदा यह समझते है कि हमने इलाज को लम्बा खीचने के लिए या इलाज के व्यर्थ हो जाने पर यह बहाना तैयार कर रखा है। रोगी में भी इस प्रतिरोध के सब प्रकट रूप दिखाई देते है, यद्यपि वह इन्हे इस रूप में नही पहचानता, और हम उसे यह तथ्य अनुभव करा दें, तब समझिए कि एक बहुत बडी बाधा पार कर ली। यह सोचना कि रोगी, जिसके लक्षण उसे और उसके रिश्तेदारो को इतना कष्ट दे रहे है, और जो उनसे छूटने के लिए समय, धन और परिश्रम का इतना त्याग और आत्मविजय करने को तैयार है, वह अपने रोग को दूर करने के लिए प्रस्तुत सहायता का प्रतिरोध करे—यह बात कितनी असम्भाव्य लगती है, पर तो भी यह सच है, और यदि इस असम्भाव्यता के आधार पर हमारी निन्दा की जाए तो हम यही जवाब दे सकते है कि यह कोई अनोखी या बेमिसाल बात नही है, क्योकि भयकर दात-दर्द से पीडित जो आदमी दात-डाक्टर के पास जाता है, वह भी डाक्टर के जम्बूर निकालने पर उसको पकडकर रोकने की कोशिश करता है।

रोगियो में दिखाई देनेवाला यह प्रतिरोध बडे विविध रूपो वाला और अत्य-

* Resistance and Repression

निकाल भगाया है। स्त्रियो में यह प्रतिभा होती है कि वे विश्लेषक पर किए गए एक कोमल, कामुकता से अकित, स्थानान्तरण द्वारा प्रतिरोध कायम रख सकती हैं। जब यह आकर्षण एक विशेष तीव्रता पर पहुच जाता है, तब इलाज की असली परिस्थिति में सारी दिलचस्पी उड जाती है, और साथ ही इलाज आरम्भ करने के समय की गई सब प्रतिज्ञाए भी उड जाती हैं। चाहे कितनी भी नर्मी से आप उस भाव को तिरस्कृत करें, पर उसके परिणामस्वरूप पैदा होनेवाली अनिवार्य ईर्ष्या और वैमनस्य से चिकित्सक के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध को अवश्य हानि पहुचेगी, और इस तरह विश्लेषण में प्रयुक्त एक अत्यन्त शक्तिशाली प्रेरक बल प्रभावहीन हो जाएगा।

इस तरह के प्रतिरोधो की सकीर्ण भाव से निन्दा या तिरस्कार नही करना चाहिए। उनमें रोगी के पिछले जीवन की इतनी सारी सबसे अधिक महत्वपूर्ण सामग्री होती है और वे इतने निश्चायक तरीके से उसे वापस ले आते है कि यदि उन्हे ठीक-ठीक उपयोग मे लाने के लिए कौशलपूर्ण विधि का सही ढग से प्रयोग किया जाए तो वे विश्लेषण के लिए बहुत अधिक सहायक सिद्ध होते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह सामग्री पहले सदा प्रतिरोध का कार्य करती है, और ऐसे रूप में सामने आती है जो इलाज का विरोधी होता है। यह कहा जा सकता है कि वे चरित्र के गुण हैं, अहकार की व्यक्तिगत अभिव्यक्तिया या रुख हैं जो प्रस्तुत परिवर्तनो का विरोध करने के लिए इस तरह इकट्ठे हो जाते हैं। तब यह पता चलता है कि स्नायु-रोग की दशाओ के प्रसग में, और इसकी आवश्यकताओ के विरोध में प्रतिक्रिया के रूप में ये चरित्र-गुण कैसे परिवर्धित हुए हैं, और इस चरित्र में वे विशेषताए दिखाई देती हैं जो अन्यथा न दिखाई देती, या कम से कम इतने स्पष्ट रूप से न दिखाई देती अर्थात् जिन्हें हम गुण कह सकते हैं। आपको यह धारणा नही बनानी चाहिए कि हम इन प्रतिरोधो को ऐसा अकल्पित खतरा मानते है, जो हमारे विश्लेषण के प्रभाव को कोई हानि नहीं पहुचा सकता है। नही, हम जानते है कि ये प्रतिरोध अवश्य प्रकट होगे, बल्कि हम तब असन्तोष अनुभव करते हैं जब उन्हें काफी सुनिश्चित रूप से उद्बुद्ध न कर सके, और रोगी को उनका इस रूप में ज्ञान न करा सकें। सच तो यह है कि हम अन्त में यह समझे हैं कि इन प्रतिरोधो को दूर करना विश्लेषण का आवश्यक कार्य है, और इसे करने पर ही यह निश्चित होता है कि हमने रोगी के लिए कुछ सफलता प्राप्त की है।

इनके अलावा, आपको यह भी ध्यान रखना चाहिए कि रोगी इलाज के दिनो में पैदा होनेवाली सब आकस्मिक घटनाओ का प्रयोग इलाज में बाधा डालने में करता है। अपने मिलने-जुलने वालो के क्षेत्र में, जिसे भी वह प्रामाणिक मान सकता है, उसकी ही विरुद्ध राय को, किसी भी आकस्मिक शारीरिक रोग को, या स्नायु-रोग को उलझाने वाली किसी भी बीमारी को, वह इलाज में बाधा डालने में प्रयुक्त

करता है। सच तो यह है कि वह अपनी दशा मे होने वाले प्रत्येक सुधार को भी अपने प्रयत्न शिथिल करने के लिए एक प्रेरक कारण में परिवर्तित कर लेता है। इसी तरह आपको उन प्रतिरोधो के रूपो और तरीको की एक तस्वीर, चाहे वह अधूरी ही हो, प्राप्त हो गई, जो प्रत्येक विश्लेषण के बीच में आते हैं, और जिन्हे दूर करना पडता है। मैंने इस प्रश्न पर इतने विस्तार से रोशनी इसलिए डाली है क्योकि मै अभी आपको यह बतलाने वाला हू कि स्नायु-रोगो के बारे में हमारी गतिकीय अवधारणा हमारे उन प्रतिरोधो के अनुभव पर ही आधारित है, जो स्नायु-रोगी अपने लक्षणो के इलाज के विरोध में पेश करते है। ब्रायर और मै, दोनो, पहले सम्मोहन, अर्थात् हिप्नोटिक, विधि से मानसिक चिकित्सा का कार्य करते थे। ब्रायर के पहले रोगी का इलाज सम्मोहनीय आदेशवश्यता[1] अर्थात् सम्मोहनावस्था में दिए जानेवाले आदेश की अधीनता की अवस्था में ही किया गया था। पहले मैंने उसका अनुकरण किया। मै मानता हू कि उस समय मेरा कार्य बहुत आसानी से और मजे से आगे बढता था, और उसमें समय भी कम लगता था। पर उसके परिणाम मन-माने और अस्थायी होते थे। इसलिए मैंने अन्त में सम्मोहन छोड दिया और तब मैंने समझा कि इन मनोविकारो की गतिकी को तबतक नही समझा जा सकता जब तक सम्मोहन का प्रयोग होगा। इस अवस्था में प्रतिरोधो का अस्तित्व ही डाक्टर की नजर से छिपा रहता है। सम्मोहन प्रतिरोधो को पीछे धकेल देता है और विश्लेपण कार्य के लिए कुछ क्षेत्र मुक्त कर देता है, पर इस क्षेत्र की सीमाओ पर उन प्रतिरोधो को रोक देता है, इसलिए वे अजेय रहते हैं। इसका परिणाम वैसा ही होता है जैसा मनोग्रस्तता-रोगी के सदेह का। इसलिए यह कहना उचित होगा कि सच्चा मनोविश्लेपण तभी आरम्भ हुआ, जब सम्मोहन का सहारा छोड दिया गया।

यदि इन प्रतिरोधो को कायम करने का इतना अधिक महत्व है, तो जब हम यह मानते हो कि सतर्कता और सदेह मौजूद हैं, तब निश्चित ही इन्हे पूरी तरह अपना प्रभाव दिखाने का मौका देना समझदारी की बात होगी। शायद स्नायु-रोग के ऐसे उदाहरण मिल जाए जिनमें साहचर्य असल में दूसरे कारणो से विफल होते ह, शायद हमारे सिद्धान्तो के विरोध में पेश की गई दलीलें अधिक गम्भीरता से सुनने योग्य हो, और हमारा रोगी के बौद्धिक आक्षेपो को प्रतिरोध कहकर इतनी आसानी से उडा देना गलत हो। मै आपको इतना ही विश्वास दिला सकता हूं कि इस मामले मे हमारा निर्णय जल्दबाजी मे किया हुआ नहीं है। हमें इन आलोचक रोगियो को प्रतिरोध के ऊपरी तल पर आने से पहले भी, और इनके दूर हो जाने पर भी, देखने का मौका मिला है। इलाज के समय प्रतिरोध की तीव्रता लगातार बदलती रहती

---

१. Hypnotic suggestibility

है। जब नया विषय शुरू होता है, तब यह सदा बढती है। इसपर विचार होने के दिनो में यह अधिकतम हो जाती है, और इस विषय पर विचार खतम हो जाने पर यह भी खतम हो जाती है। यदि कोई टेक्निकल गलती न कर दी गई हो तो ऐसा कभी नही होता कि कोई रोगी जितना अधिक से अधिक प्रतिरोध कर सकता है, वह सारा एक ही बार सामने आ जाए। इस प्रकार, हम सुनिश्चित रूप से यह जान सकते हैं कि वही आदमी विश्लेषण काल में बार-बार अपने आलोचनात्मक आक्षेप उठाएगा, और फिर उन्हें छोड देगा। जब कभी हम कोई ऐसी अचेतन सामग्री, जो उसके लिए खास तौर से कष्टदायक है, उसकी चेतना में लाने वाले होते हैं, तब वह बहुत कडा आलोचक हो जाता है, चाहे वह पहले बहुत कुछ समझ और स्वीकार कर चुका हो। तो भी वह सारी जानकारी अब लुप्त हो गई मालूम होती है। हर सूरत में विरोध करने की धारणा से प्रेरित होकर वह ऐसा व्यवहार कर सकता है मानो उसमें मानसिक विकलता हो, जो 'भाव-मूढता'[1] का एक रूप है। यदि उसे इस नए प्रतिरोध को दूर करने मे सफलतापूर्वक मदद दी जा सके तो उसे अपनी अंतर्दृष्टि और समझ फिर प्राप्त हो जाती है। उसका आलोचना का गुण स्वतत्र रूप से कार्य नही कर रहा है, और इसलिए इसका वैसा मान नही किया जा सकता जैसा इसके स्वतत्र रूप से कार्य करने पर किया जाता। यह उसकी मनोविकारीय अभिवृत्तियो[2] के लिए सेवक मात्र है, और इसका सचालन उसके प्रतिरोध से होता है। जब उसे कोई चीज नापसद होती है, तब वह बडी निपुणता से उसके विरोध में दलीलें दे सकता है, पर जब कोई चीज उसके मन के अनुकूल होती है तब वह बिलकुल अर्धविश्वासी हो सकता है। हम सब शायद बहुत कुछ ऐसे ही हैं। जिस व्यक्ति का विश्लेषण हो रहा है, उसमें बुद्धि की भाव-जीवन पर यह निर्भरता बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, क्योकि विश्लेषण में वह बडे सख्त दबाव में होता है।

इस तथ्य का, कि रोगी अपने लक्षण से छुटकारा पाने और अपने मानसिक प्रक्रम के फिर सामान्य रूप से कार्य करने लगने के विरुद्ध इतना जोरदार सघर्ष करता है, क्या कारण बताया जा सकता है? हम कहते हैं कि हमे यहा शक्तिशाली बलो के अवशेष कार्य करते दिखाई देते हैं जो अवस्था में कोई भी परिवर्तन करने का विरोध करते हैं। वे अवश्य वही बल हैं जिन्होने शुरू मे वह अवस्था पैदा की थी। लक्षणो के निर्माण में कुछ प्रक्रम अवश्य रहा होगा, जिसकी, उन्हे दूर करने के अपने अनुभव मे, हम पुन रचना कर सकते हैं, जैसा कि ब्रायर के प्रेक्षणो से हम पहले से जानते हैं। किसी लक्षण के अस्तित्व से यह नतीजा निकलता है कि कोई मानसिक प्रक्रम प्रकृत रीति से पूरा नहीं किया जा सका जिससे कि यह चेतन हो

---

१ Emotional stupidity २ Affective attitudes

सकना। लक्षण उसका स्थानापन्न है जो पूरा नही हो सका। अब हम जानते है कि जिन बलो के क्रियाशील होने का हमें सदेह है, वे कहा हो सकते हैं। प्रस्तुत मानसिक प्रक्रम को चेतना मे घुसने से रोकने के लिए प्रबल प्रयास किया गया होगा, और परिणामत यह अचेतन रहा है। अचेतन रहने के कारण इसमें लक्षण रचने की शक्ति है। वही प्रबल प्रयास विश्लेषण द्वारा इलाज के समय फिर क्रियाशील हो रहा है जो अचेतन को चेतन में लाने की कोशिश कर रहा है। इसे हम प्रतिरोधो के रूप में देखते है। प्रतिरोधो से प्रदर्शित होने वाले रोगजनक प्रक्रम को हम **दमन** कहते हैं।

अब **दमन** के इस प्रक्रम की अपनी धारणा को अधिक यथार्थ बनाना आवश्यक है। यह लक्षणो के परिवर्धन की आवश्यक आरम्भिक शर्त है। पर इसके अलावा कुछ और भी है—एक ऐसी चीज है जिसके मुकाबले की दूसरी चीज़ नही। नमूने के लिए, एक आवेग, अर्थात् अपने को क्रिया में परिवर्तित करने के लिए यत्नशील मानसिक प्रक्रम को लीजिए हम जानते हैं कि यह 'प्रत्याख्यान'[1] या 'तिरस्कण'[2] द्वारा अस्वीकृत किया जा सकता है। तब इसके पास प्रस्तुत ऊर्जा वापस लौटा ली जाती है। यह शक्तिहीन हो जाता है, पर स्मृति के रूप में बना रह सकता है। इस प्रश्न पर फैसला करने का सारा प्रक्रम'अहम्'के पूर्ण सज्ञान[3]मे होता है,पर जब वह आवेग **दमन** के अधीन होता है, तब स्थिति बहुत भिन्न होती है. तब इसकी ऊर्जा कायम रहती है और इसकी कोई स्मृति पीछे नही रहती। दमन का प्रक्रम अहम् के सज्ञान बिना ही पूरा हो जाता है, इसलिए इस तुलना से हम दमन के स्वरूप के कुछ अधिक निकट नही पहुचते।

मैं आपके सामने वे सैद्धान्तिक अवधारण ही पेश करूगा जो **दमन** शब्द का अधिक सुनिश्चित अर्थ स्थापित करने मे उपयोगी सिद्ध हुए है। इसके लिए, पहले यह आवश्यक है कि हम 'अचेतन' शब्द के शुद्ध वर्णनात्मक अर्थ से आगे चलकर इसके व्यवस्थित या वैज्ञानिक अर्थ पर पहुचे, अर्थात् हम किसी मानसिक प्रक्रम की चेतनता या अचेतनता को इसका एक गुण मात्र समझें, और आवश्यक नही कि यह उसका एकमात्र गुण हो। मान ले, कि इस तरह का एक प्रक्रम अचेतन रहा है, तो इसका चेतना से बाहर रह जाना इस बात का चिह्नमात्र हो सकता है कि इसकी क्या गति हुई और आवश्यक नही कि यह इसकी गति या भाग्य ही हो। इस भाग्य की अधिक ठोस धारणा बनाने के लिए, मान लें कि प्रत्येक मानसिक प्रक्रम—इसमे एक अपवाद है जिसकी चर्चा मै बाद में करूंगा—पहले एक अचेतन अवस्था या कला[4] में रहता है, और इसमे से सिर्फ परिवर्धित होकर चेतन कला में आ जाता

१ Repudiation   २. Condemnation   ३ Cognizance
४ Phase.

है—बहुत कुछ वैसे ही जैसे फोटो पहले नेगेटिव है और फिर पोज़िटिव प्रिंट के द्वारा चित्र बन जाता है। पर हर नेगेटिव का पोजिटिव नही बनाया जाता, और इसी तरह यह आवश्यक नही कि प्रत्येक अचेतन मानसिक प्रक्रम चेतन बने। इसे इस तरह ठीक ढग से कहा जा सकता है प्रत्येक प्रक्रम पहले अचेतन मानसिक सस्थिति में रहता है। इस सस्थान से यह कुछ अवस्थाओ में आगे बढकर चेतन सस्थान में आ जाता है।

इन सस्थानो का सबसे स्थूल अवधारण ही हमें सबसे अधिक सुविधाजनक लगेगा और वह अवकाशीय[१] अवधारण है। इसलिए अचेतन सस्थान की तुलना एक बडे पूर्वकक्ष[२] अर्थात् बडे कमरे में पहुचाने वाले छोटे कमरे से की जा सकती है, जिसमें अनेक प्रकार के मानसिक उत्तेजन, मनुष्यो की तरह, एक दूसरे के ऊपर भरे पडे हैं। इससे लगा हुआ एक दूसरा छोटा कमरा एक तरह का स्वागत-कक्ष है जिसमें चेतना का निवास है, पर इन दोनो के बीच की देहली पर एक पहरेदार का काम करने वाला व्यक्ति खडा है जो इन विविध मानसिक उत्तेजनो की परीक्षा करता है, उन्हें सेन्सर करता है, अर्थात् उनमें काट-छाट करता है और जब वह उन्हे नापसन्द करता है तब उन्हें स्वागत-कक्ष में जाने से रोक देता है। आप तुरन्त समझ जाएगे कि यदि पहरेदार किसी एक आवेग को देहली पर लौटा देता है, अथवा इसके एक बार स्वागत-कक्ष में घुस जाने के बाद इसे बाहर निकालता है, तो इससे बहुत फर्क नही पडता। यह तो उसकी जागरूकता की मात्रा और पहचानने की तत्परता का ही प्रश्न है। अब इस रूपक के द्वारा हम अपनी शब्दावली और बढा सकते हैं। अचेतन या पूर्वकक्ष में मौजूद उत्तेजन चेतना को दिखाई नही देते क्योकि वह दूसरे कमरे में है। इस प्रकार, शुरू में वे अचेतन रहते है। जब वे जोर लगाकर देहली में पहुच गए हैं और चौकीदार द्वारा वापस लौटा दिए गए हैं, तब वे **'चेतन होने में असमर्थ'** हैं, तब हम उन्हें **दमित** कहते हैं, पर जो उत्तेजन देहली के पार जाने दिए जाते हैं, उनका भी चेतन हो जाना आवश्यक नही। वे तभी चेतन हो सकते हैं, यदि वे चेतना की दृष्टि आकर्षित कर सकें। इसलिए इस दूसरे कक्ष को **पूर्वचेतन[3] सस्थान** कहना उपयुक्त होगा। इस प्रकार चेतन होने के प्रक्रम का अपना शुद्ध वर्णनात्मक अर्थ बना रहता है। जब किसी आवेग को दमित आवेग कहते हैं, तब इसका अर्थ यह होता है कि वह अचेतन सस्थान में से निकलने में असमर्थ है क्योकि चौकीदार उसे पूर्वचेतन में प्रवेश नही करने देता। चौकीदार वही है जिसे हम दमन को शिथिल करने का, विश्लेषण द्वारा, यत्न करते हुए प्रति-रोध के रूप में जान चुके हैं।

मैं अच्छी तरह जानता हू कि आप यह कहेंगे कि ये अवधारण जितने स्थूल

---

१ Spatial २ Ante-room ३ Preconscious

है, उतने ही कल्पित है, और वैज्ञानिक प्रतिपादन मे इन्हे विलकुल स्थान नही दिया जा सकता। मै जानता हू कि वे स्थूल है। इतना ही नही, मै यह भी जानता हू कि वे गलत है, और यदि मै गलती नही करता तो हमारे पास उनसे अच्छे स्थानापन्न भी तैयार है। मै नही जानता कि तव आप उन्हें इतना कल्पित समझते रहेगे या नही। इस समय तो वे वात समझने मे वडे सहायक है, जैसे विद्युत् की धारा में तैरते हुए ऐम्पीयर के 'वितनू', अर्थात् वहुत छोटे-छोटे मनुष्य, और जहा तक उनसे वात समझने मे मदद मिलती है, वहा तक वे तिरस्कारयोग्य नही। फिर भी मैं आपको यह विश्वास दिलाना चाहता हू कि स्थूल परिकल्पिनाए--दो कमरे, दोनो के वीच की देहली पर चौकीदार, और दूसरे कमरे के अन्त में दर्शक के रूप में चेतना-वास्तविक यथार्थता को वहुत दूर तक निर्दिष्ट करते है। मै समझता हू कि आप यह भी स्वीकार करेगे कि हमारे रखे हुए नाम अचेतन, पूर्वअचेतन और चेतन दूसरे नामो की अपेक्षा, जो सुझाए गए है या प्रयोग में आ गए है, उदाहरण के लिए, अवचेतन (सवकान्शस), अन्तर्चेतन (इन्टरकान्शस), सहचेतन (को-कान्शस) आदि अधिक तर्कसगत है।

यदि आप इसे स्वीकार करते है तो फिर आपका यह कहना मेरे लिए वहुत अधिक महत्वपूर्ण होगा कि मानसिक उपकरण की जैसी रचना मैने स्नायविक लक्षण की व्याख्या के लिए मानी है, वह सर्वत्र लागू होनी चाहिए, और उसे सामान्य कार्य-व्यापार पर भी प्रकाश डालना चाहिए। आपका यह कहना वेशक विलकुल सही है। हम इस समय इस निष्कर्ष पर अधिक विचार नही कर सकते, पर यदि हमे रोग की दशाओ के अध्ययन से सामान्य मानसिक कार्य-व्यापार के, जो अवतक एक रहस्य रहा है, भीतर की झाकी मिलने की सम्भावना दिखाई देती हो तो लक्षण-परिवर्धन के मनोविज्ञान मे हमारी दिलचस्पी निश्चित ही वहुत अधिक वढ जाएगी।

इसके अलावा, क्या आप यह नही समझते कि इन दोनो सस्थानो की इन अवधारणाओ का और इनके तथा चेतना के आपसी सम्वन्ध का आधार क्या है?— अचेतन और पूर्व चेतन के वीच में मौजूद चौकीदार वह सेंसरशिप के अलावा और कुछ नही है जिसे हमने प्रत्यक्ष स्वप्न के रूप को प्रभावित करते देखा था। दिन के अनुभवो का अवशेष ही, जिसे हमने स्वप्न को उद्दीपित करने वाला उद्दीपन वताया था, वह पूर्वचेतन सामग्री है जो रात में सोते समय अचेतन और दमित इच्छाओ तथा उत्तेजनो से प्रभावित हुई है, और वे इस प्रकार उनके साहचर्य से उनकी ऊर्जा के द्वारा गुप्त स्वप्न का निर्माण कर सके है। अचेतन सस्थान के आधिपत्य ने इस सामग्री का—सघनन और विस्थापन द्वारा—इस तरह से विगदित या प्रभावित किया है जैसे प्रकृत मानसिक जीवन, अर्थात् पूर्वचेतन सस्थान, में नही हुआ करता, या वहुत ही कम होता है। उनके कार्य-व्यापार की रीति का

है—बहुत कुछ वैसे ही जैसे फोटो पहले नेगेटिव है और फिर पोजिटिव प्रिंट के द्वारा चित्र बन जाता है। पर हर नेगेटिव का पोजिटिव नही बनाया जाता, और इसी तरह यह आवश्यक नही कि प्रत्येक अचेतन मानसिक प्रक्रम चेतन बने। इसे इस तरह ठीक ढग से कहा जा सकता है प्रत्येक प्रक्रम पहले अचेतन मानसिक सस्थिति में रहता है। इस सस्थान से यह कुछ अवस्थाओ में आगे बढकर चेतन सस्थान में आ जाता है।

इन सस्थानो का सबसे स्थूल अवधारण ही हमें सबसे अधिक सुविधाजनक लगेगा और वह अवकाशीय[१] अवधारण है। इसलिए अचेतन सस्थान की तुलना एक बडे पूर्वकक्ष[२] अर्थात् बडे कमरे में पहुचाने वाले छोटे कमरे से की जा सकती है, जिसमें अनेक प्रकार के मानसिक उत्तेजन, मनुष्यो की तरह, एक दूसरे के ऊपर भरे पडे हैं। इससे लगा हुआ एक दूसरा छोटा कमरा एक तरह का स्वागत-कक्ष है जिसमें चेतना का निवास है, पर इन दोनो के बीच की देहली पर एक पहरेदार का काम करने वाला व्यक्ति खडा है जो इन विविध मानसिक उत्तेजनो की परीक्षा करता है, उन्हे सेन्सर करता है, अर्थात् उनमें काट-छाट करता है और जब वह उन्हें नापसन्द करता है तब उन्हें स्वागत-कक्ष में जाने से रोक देता है। आप तुरन्त समझ जाएगे कि यदि पहरेदार किसी एक आवेग को देहली पर लौटा देता है, अथवा इसके एक बार स्वागत-कक्ष में घुस जाने के बाद इसे बाहर निकालता है, तो इससे बहुत फर्क नही पडता। यह तो उसकी जागरूकता की मात्रा और पहचानने की तत्परता का ही प्रश्न है। अब इस रूपक के द्वारा हम अपनी शब्दावली और बढ़ा सकते हैं। अचेतन या पूर्वकक्ष में मौजूद उत्तेजन चेतना को दिखाई नही देते क्योकि वह दूसरे कमरे में है। इस प्रकार, शुरू में वे अचेतन रहते हैं। जब वे जोर लगाकर देहली में पहुच गए हैं और चौकीदार द्वारा वापस लौटा दिए गए हैं, तब वे **'चेतन होने में असमर्थ'** हैं, तब हम उन्हे **दमित** कहते हैं, पर जो उत्तेजन देहली के पार जाने दिए जाते हैं, उनका भी चेतन हो जाना आवश्यक नही। वे तभी चेतन हो सकते हैं, यदि वे चेतना की दृष्टि आकर्षित कर सकें। इसलिए इस दूसरे कक्ष को **पूर्वचेतन[3] सस्थान** कहना उपयुक्त होगा। इस प्रकार चेतन होने के प्रक्रम का अपना शुद्ध वर्णनात्मक अर्थ बना रहता है। जब किसी आवेग को दमित आवेग कहते हैं, तब इसका अर्थ यह होता है कि वह अचेतन सस्थान में से निकलने में असमर्थ है क्योकि चौकीदार उसे पूर्वचेतन में प्रवेश नही करने देता। चौकीदार वही है जिसे हम दमन को शिथिल करने का, विश्लेषण द्वारा, यत्न करते हुए प्रतिरोध के रूप में जान चुके हैं।

मैं अच्छी तरह जानता हू कि आप यह कहेंगे कि ये अवधारण जितने स्थूल

---

१ Spatial २ Ante-room ३ Preconscious

विश्लेपण से हम रोगी के यौन अनुभवो और अभिलाषाओ पर पहुचते है, और हर बार इस बात की पुष्टि होती है कि लक्षण से वही प्रयोजन सिद्ध होता था। यह प्रयोजन यौन इच्छाओ की परितुष्टि प्रकट हुआ—ये लक्षण रोगी के लिए यौन परितुष्टि का प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वे यथार्थ रूप मे प्राप्त न होने वाली सन्तुष्टि के स्थानापन्न हैं।

हमारे पहले रोगी के मनोग्रस्तता-कार्य पर विचार कीजिए। इस स्त्री को अपने अत्यन्त प्रिय पति के बिना रहना पडता है। पति की त्रुटियो और कमियो के कारण वह उसके जीवन में हिस्सेदार नही बन सकती। उसे उसके प्रति निष्ठा-वान् रहना पडता है। वह उसके स्थान में और किसीको नही ला सकती। उसका मनोग्रस्तता-लक्षण उसे वह चीज देता है जिसकी उसे इतनी अभिलाषा है; वह उसके पति को ऊचा उठाता है, उसकी कमियो का, और सबसे बढकर, उसकी नपुसकता का निषेध और शोधन करता है। यह लक्षण मूलत: एक इच्छा-पूर्ति है और इस दृष्टि से बिलकुल स्वप्न की तरह है। इसके अलावा, यह कामुक इच्छा-पूर्ति है, जो कि हर स्वप्न नही होता। दूसरी रोगिणी के उदाहरण में आप देख सकते हैं कि उसके काम-काज का ध्येय माता-पिता के मैथुन को रोकना या उनकी दूसरी सतान पैदा होने मे रुकावट डालना है। सम्भवत आपने यह भी समझ लिया है कि यह लक्षण उसे उसकी माता के स्थान में रखना चाहता है। इसलिए यह भी यौन-सतुष्टि की रुकावटो का निवारण और रोगिणी की अपनी यौन इच्छाओ की पूर्ति है। इसके उदाहरण में बताई गई उलझनो के बारे में मै आगे कहूंगा।

मै यह नही चाहता कि इन कथनो के सब जगह लागू हो सकने के बारे में बाद में कुछ शर्ते या मर्यादाए लगाऊ, और इसलिए आपसे यह बात समझ लेने के लिए कहता हू कि दमन, लक्षण-निमार्ण और लक्षण-निर्वचन के बारे में मैने अभी जो कुछ कहा है, वह स्नायु-रोग के तीन प्ररूपो के अध्ययन से ज्ञात हुआ है, और फिल-हाल वह इन तीन प्ररूपो पर ही लागू हो सकता है, अर्थात **चिन्ता-हिस्टीरिया, कन्वर्शन-हिस्टीरिया,** और **मनोग्रस्तता-रोग**। ये तीन विकार ही, जिन्हे मिलाकर हम **स्थानान्तरण स्नायु-रोग**[1] के समूह में रखा करते है, मनोविश्लेपण चिकित्सा के लिए खुला हुआ क्षेत्र है। अन्य स्नायु-रोगो का मनोविश्लेपण की दृष्टि से इतनी बारीकी से अध्ययन नही हुआ। इस उपेक्षा का कारण नि सन्देह यह रहा है कि उनमें से एक समूह पर चिकित्सा का कोई प्रभाव नही पड़ सकता। आपको यह नही भूलना चाहिए कि मनोविश्लेपण अभी बहुत नया विज्ञान है, और इसके अध्ययन के लिए बहुत समय और परिश्रम की आवश्यकता है, और कुछ समय पहले इस तरह चिकित्सा करने वाला सिर्फ एक आदमी था। पर सब दिशाओ में हो रहे प्रयत्न से

१. Transference neuroses.

यह अन्तर ही हमें उन दोनो सस्थानो का भेद बताता है। चेतना से सम्बन्ध, जो पूर्वचेतन का स्थायी रूप है, यह सकेत करता है कि कोई दिया हुआ प्रक्रम दोनो सस्थानो में से किसका है। स्वप्न देखना रोगात्मक घटना नही है। प्रत्येक स्वस्थ मनुष्य को सोते हुए स्वप्न आ सकता है। मानसिक उपकरण की रचना से, जिसमें स्वप्नो और स्नायविक लक्षणो, इन दोनो का स्पष्टीकरण होता है, सबद्ध प्रत्येक अनुमान प्रकृत मानसिक जीवन पर भी अवश्य लागू होता है, इसमें कोई सन्देह नही।

फिलहाल दमन के बारे में हम इतना ही कहना चाहते हैं। इसके अलावा, यह एक आवश्यक पूर्वावस्थामात्र है, लक्षण-निर्माण की पूर्वावस्था या पूर्व आवश्यकता मात्र है। हम जानते हैं कि लक्षण किसी और प्रक्रम का, जो दमन द्वारा रोक दिया गया है, स्थानापन्न है; पर दमन को मान लेने के बाद भी हमे इस स्थानापन्न-निर्माण को पूरी तरह समझने के लिए काफी आगे बढना होगा। स्वय दमन-समस्या के भी कुछ और पहलू हैं, जिनसे कुछ प्रश्न पैदा होते हैं, जिनका उत्तर देना अवश्यक है किस तरह के मानसिक उत्तेजनो का दमन होता है, कौन-से बल दमनकारी हैं और उनके प्रेरक या प्रवर्तक कारण क्या हैं ? अब तक हमें इस प्रश्न से सम्बधित जानकारी सिर्फ एक बात पर प्राप्त हुई। प्रतिरोध की समस्या पर विचार करते हुए हमने यह देखा था कि इसके पीछे कार्य करने वाले बल पह-चानयोग्य या गुप्त अहम् से या चरित्र-गुणो से पैदा होते ह। इसलिए इन्ही बलो ने दमन किया है, कम से कम उसमें कुछ हिस्सा लिया है। इस समय हम इससे अधिक कुछ नही जानते।

मैंने आपको जिस दूसरे प्रेक्षण के लिए तैयार किया था, वह अब हमारा सहा-यक होगा। विश्लेपण के द्वारा हम सदा स्नायविक लक्षण के पीछे मौजूद प्रयोजन का पता लगा सकते हैं, पर यह आपके लिए कोई नई बात नही है। इसकी ओर स्नायु-रोग में दो उदाहरणो में मै पहले ही सकेत कर चुका हू। पर उन दो उदाहरणो से क्या सूचित होता है ? इस बात को दिखाने वाले सैकडो उदाहरण होने चाहिए। पर मैं आपकी यह माग नही मान सकता, इसलिए आपको व्यक्तिगत अनुभव या विश्वास का ही सहारा लेना होगा, और इस मामले में आपका विश्वास सब मनो-विश्लेपको की सर्वसम्मत गवाही पर भरोसा कर सकता है।

आपको याद होगा कि जिन दो उदाहरणो के लक्षण पर हमने विस्तार से विचार किया था, उनसे रोगी के यौन जीवन के सबसे भीतरी रहस्यो का पता चला था। इसके अलावा, पहले उदाहरण में प्रस्तुत लक्षण का प्रयोजन या प्रवृत्ति विशेप रूप से स्पष्ट थी। शायद दूसरे उदाहरण में यह कुछ सीमा तक एक दूसरी बात से ढकी हुई थी जिसका जिक्र बाद में किया जाएगा। अब इन दो उदाहरणो में जो बात प्रकट हुई है, वही विश्लेपण के लिए प्रस्तुत हर उदाहरण में प्रकट होती है। हर बार

ी नही होती। हम इस बात को और बढा-
जन यौन सन्तुष्टि और इससे बचना होता
ृति का अस्तिमूलक या पहला रूप प्रधान
ाला त्यागी रूप प्रधान होता है। ये लक्षण
ोनो का प्रयोजन बहुत अच्छी तरह पूरा
वयव मे, जिसका उल्लेख करने का अभी
र या ध्रुवत्व का सबसे अधिक उपयुक्त
 आगे देखेंगे, दो एक दूसरे पर क्रिया कर
मझौते का परिणाम होते हैं, वे उसे भी
हे, और उसे भी निरूपित करते हैं जिसने
योग दिया है। लक्षण में इन दो कारको
में हो सकता है, पर ऐसा बहुत ही कम
ो। हिस्टीरिया में एक लक्षण में इन दो
मनोग्रस्तता-रोग में दोनो भाग प्राय.
होता है, और उसमे दो क्रमिक क्रियाए
करती है।

ना आसान नही होगा। जब आप लक्षण-
रते हैं, तब सम्भवत. आपकी पहली राय
अवधारण को अधिक से अधिक विस्तृत
करते हैं। आप यह भी अवश्य कहेंगे कि
ार्थ बात सामने नही आती, कि प्राय.
 किसी यौन ग्रन्थि से पैदा होनेवाली
मत रहते हैं। इसके अलावा, आप यह
रूप शैशवकालीन और अनुचित रूप
मिलता-जुलता होता है, या उन गन्दी
ापन में बहुत पहले निषिद्ध की गई थी,
न पर आश्चर्य करेंगे कि कोई व्यक्ति
है जिन्हे क्रूर या भयकर क्षुधाओ की
नाविक या अप्राकृत कहा जा सकता
पर हम तब तक एक मत नहीं हो
र पूरा विचार न कर लिया हो और
ोन प्रवृत्ति कहना उचित है।

अव हम उन अस्वस्थ अवस्थाओ को समझने के अधिक निकट पहुचते जा रहे है जो स्थानान्तरण स्नायु-रोग नही है। मुझे आशा है कि मै अब भी आपको यह वता सकूगा कि इस नई सामग्री से अपना ताल-मेल बैठाने के लिए हमारी परिकल्पनाओ और निष्कर्पो को किस तरह प्रभावित होना पडा, और यह दिखला सकूगा कि इन विस्तृत अध्ययनो से कोई परस्पर विरोध सामने नही आया, वल्कि हमारे ज्ञान का वहुत अच्छा एकीकरण ही हुआ। तो, जो कुछ कहा गया है, वह सिर्फ तीन स्थानान्तरण स्नायु-रोगो पर लागू होता है, और अब मै एक और जानकारी दूगा जो लक्षणो की सार्थकता पर और रोशनी डालती है। यह रोग जिन स्थितियो में पैदा हुआ, उनकी तुलनात्मक परीक्षा करके निम्नलिखित परिणाम निकलता है, जिसे इस सूत्र के रूप में रखा जा सकता है, अर्थात् ये व्यक्ति उस प्रवचन[1] (विफलता या कुठा[2])से रोगी हुए जो उन्हे उस समय सहनी थी जव यथार्थ या वास्तविकता ने उन्हे अपनी यौन इच्छाओ की परितुष्टि से रोका। आप समझ रहे होगे कि ये दोनो निष्कर्प कितनी सुन्दरता से एक दूसरे के पूरक वन जाते है। अव लक्षणो की व्याख्या हम इस तरह करते है कि वे जीवन में, अतृप्त इच्छाओ की स्थानापन्न परितुष्टिया हैं।

इस कथन पर नि स्सदेह सव तरह की आपत्तिया उठाई जा सकती है कि स्नायविक लक्षण यौन परितुष्टियो के स्थानापन्न है। उनमें से दो की मैं यहा चर्चा करूगा। यदि आप में से किसीने वहुत-से स्नायु-रोगियो का विश्लेपण किया है तो वह शायद सिर हिलाकर यह कहेगा "कुछ उदाहरणो में यह वात विलकुल लागू नही होती। उनमें तो यह प्रतीत होता है कि लक्षणो का प्रयोजन विलकुल उलटा, अर्थात् यौन परितुष्टि से दूर रहने या उसे खत्म करने का होता है।" मै आपके निर्वचन पर आपत्ति नही करता। मनोविश्लेपण में स्थितिया हमारी कल्पना की अपेक्षा वहुत अधिक उलझी हुई होती है, यदि वे सरल रूप में होती तो शायद मनोविश्लेपण को उन्हे पुन सामने लाने की आवश्यकता ही न होती। हमारी दूसरी रोगिणी के काम-काज की कुछ वातें ऐसी ही साधुता की और यौन सतुष्टि की विरोधी दिखाई देती है, उदाहरण के लिए, रात के समय दृढीकरण या खडा होने को रोकने के जादुई प्रयोजन के लिए उसका घडियो को हटा देना, या गमलो और गुलदस्तो को गिरने से रोकने की कोशिश करना, जिसका अर्थ है अपने कौमार्य या अक्षतयोनित्व की रक्षा करना। उसके विस्तर पर लेटने पर किए जाने वाले कृत्यो में, और जिन केसो का मैने विश्लेपण किया है, उनमें यह निपेधात्मक रूप काफी अधिक प्रमुख था। सारा काम-काज भी यौन स्मृतियो और प्रलोभन से अपनी रक्षा करने वाले नियमो के रूप में होता था। पर मनोविश्लेपण से वहुत पहले यह पता लग

१ Privation २ Frustration

चुका है कि विपरीत बाते परस्पर विरोधी नही होती। हम इस बात को और बढा-कर यह कह सकते हैं कि लक्षण का प्रयोजन यौन सन्तुष्टि और इससे बचना होता है, हिस्टीरिया मे कुल मिलाकर, इच्छा-पूर्ति का अस्तिमूलक या पहला रूप प्रधान होता है, और मनोग्रस्तता-रोग मे नास्तिवाला त्यागी रूप प्रधान होता है। ये लक्षण यौन परितुष्टि, और उसके विरोध, इन दोनो का प्रयोजन बहुत अच्छी तरह पूरा कर सकते हैं, क्योंकि उनके तत्र के एक अवयव में, जिसका उल्लेख करने का अभी हमें मौका नही मिला है, इस दो-पहलूपन या ध्रुवत्व का सबसे अधिक उपयुक्त आधार होता है। असल में वे, जैसा कि हम आगे देखेंगे, दो एक दूसरे पर क्रिया कर रही विरोधी प्रकृतियो के **मध्यमार्ग या समझौते** का परिणाम होते हैं, वे उसे भी निरूपित करते हैं जिसका दमन किया गया है, और उसे भी निरूपित करते हैं जिसने दमन किया है और उन्हे पैदा करने में सहयोग दिया है। लक्षण में इन दो कारको में से किसी एक का निरूपण प्रधान रूप में हो सकता है, पर ऐसा बहुत ही कम होता है कि उनमें से एक सर्वथा नदारद हो। हिस्टीरिया में एक लक्षण मे इन दो प्रवृत्तियो का प्राय सहयोग हो जाता है। मनोग्रस्तता-रोग में दोनो भाग प्राय. अलग-अलग रहते हैं। तब लक्षण दोहरा होता है, और उसमे दो क्रमिक क्रियाए होती हैं जो एक दूसरे को उदासीन या रद्द करती हैं।

एक दूसरी कठिनाई को हल करना इतना आसान नही होगा। जब आप लक्षण-निर्वचनो की एक पूरी श्रेणी पर विचार करते हैं, तब सम्भवत. आपकी पहली राय यह होगी कि यौन स्थानापन्न परितुष्टि के अवधारण को अधिक से अधिक विस्तृत करने पर ही वे लक्षण उसके अन्तर्गत आ सकते हैं। आप यह भी अवश्य कहेगे कि इन लक्षणो से परितुष्टि के बारे में कोई यथार्थ बात सामने नही आती, कि प्राय वे किसी सवेदन को पुनरुज्जीवित करने या किसी यौन ग्रन्थि से पैदा होनेवाली कल्पना-सृष्टि का निर्माण करने तक ही सीमित रहते हैं। इसके अलावा, आप यह भी कहेगे कि प्राय· यौन परितुष्टि का दृश्य रूप शैशवकालीन और अनुचित रूप जैसा होता है। शायद वह हस्तमैथुन-कार्य से मिलता-जुलता होता है, या उन गन्दी आदतो की याद दिलानेवाला होना है जो बचपन में बहुत पहले निषिद्ध की गई थी, और छोड दी गई थी, और फिर आप इस बात पर आश्चर्य करेंगे कि कोई व्यक्ति उन बातो को भी यौन परितुष्टियो में गिनता है जिन्हे क्रूर या भयंकर क्षुधाओं की तृप्ति ही कहा जा सकता है, या जिन्हें अस्वाभाविक या अप्राकृत कहा जा सकता है। सच बात यह है कि इन पीछेवाली बातो पर हम तब तक एक मत नही हो सकते, जब तक हमने मनुष्य की यौन प्रवृत्ति पर पूरा विचार न कर लिया हो और यह तय न कर लिया हो कि किस प्रवृत्ति को यौन प्रवृत्ति कहना उचित है।

मनुष्य का यौन जीवन

आपके मन में निश्चित रूप से यही बात आती होगी कि 'यौन' (या कामात्मक)शब्द के अर्थ पर कोई सन्देह नही हो सकता। नि सन्देह, इसका सबसे पहला अर्थ है 'अनुचित', अर्थात् जिसकी चर्चा नही करनी चाहिए। मुझे एक प्रसिद्ध मनश्चिकित्सक के कुछ छात्रो के विषय में एक कहानी सुनाई गई है इन छात्रो ने एक बार अपने गुरु को यह निश्चय कराने की कोशिश की कि हिस्टीरिया रोगी के लक्षण बहुत बार यौन बातो को निरूपित करते है। इस उद्देश्य से वे उसे हिस्टीरिया वाली एक स्त्री के पलग के पास ले गए जिसके दौरे प्रसव के असदिग्ध अनुकरण थे। पर वह बोला "लेकिन प्रसव में यौन कही नही है।" निश्चय जानिए कि प्रसव सदा अनुचित नही होता।

मैं समझ रहा हू कि आप ऐसे गम्भीर मामलो पर मेरे मना करने को अच्छा नही समझते। पर यह सिर्फ मजाक नही है। गम्भीरता से सोचने पर हम देखते है कि यह बताना आसान नही कि यौन शब्द के अन्तर्गत क्या-क्या बातें आती है। शायद इसकी यही परिभाषा ठीक हो सकती है कि दोनो लिङ्गो के अन्तर या भेद से सम्बन्धित प्रत्येक बात यौन बात है। पर आप यह कहेंगे कि यह बहुत व्यापक, अनिश्चित परिभाषा हुई। यदि आप मैथुन या सम्भोग-कार्य को केन्द्रबिन्दु मान ले तो शायद आप यौन का अर्थ यह करेंगे कि प्रत्येक वह बात जो विपरीत लिङ्ग वाले के शरीर (और विशेष रूप से मैथुन के अगो) से सुखदायक परिपुष्टि प्राप्त करने से सम्बन्ध रखती है, बहुत सकुचित अर्थ में, वह प्रत्येक बात यौन बात है, जिसका लक्ष्य जननेन्द्रियो का मिलन और मैथुन कार्य की परिपूर्ति है। पर यह परिभाषा करते हुए आपने यौन तथा अनुचित को करीब-करीब एक ही मान लिया है, और इस अवस्था में प्रसव का यौन प्रवृत्ति (काम) से सचमुच कुछ भी सम्बन्ध नही रहेगा। फिर यदि आप प्रजनन के कार्य को यौनवृत्ति का सारतत्व मानते है तो हस्तमैथुन या चुम्बन जैसी बहुत सारी बातें, जिनका उद्देश्य प्रजनन नही होता, पर फिर भी निसन्देह यौन प्रवृत्तिया है, इससे बाहर रह जाएगी। पर हम पहले

देख चुके हैं कि परिभाषा करने की कोशिश से सदा कठिनाइया पैदा होती है। इसलिए इस मामले में हमें कोई अच्छी परिभाषा करने की कोशिश छोड ही देनी चाहिए। हम यह मान सकते है कि 'यौन' (या कामात्मक) अवधारणा बनते हुए कोई ऐसी बात हुई है जिसके परिणामस्वरूप, एच सिलवरर के शब्दो में, 'व्याप्ति दोष' हो गया है। सच बात तो यह है कि यौन का अर्थ हम अच्छी तरह जानते हैं।

जनसाधारण की दृष्टि से, जो सामान्य जीवन में सब व्यावहारिक प्रयोजनो के लिए काफी है, यौन वह चीज है जिसमें लिङ्ग-भेद, आनन्दजनक उत्तेजना और परितुष्टि, प्रजनन-कार्य, अनुचित की धारणा और छिपाने की आवश्यकता सम्बन्धी सब बातें इकट्ठी आ जाती हैं, पर विज्ञान के लिए अब इतना ही काफी नही है। कारण कि परिश्रम से की गई गवेषणाओ से (जो आत्मत्याग से पोषित आत्मसंयम की भावना से ही हो सकती है) यह प्रकट हुआ है कि मनुष्य जाति में ऐसे वर्ग भी हैं जिनका यौन जीवन प्रचलित यौन जीवन से बहुत अधिक भिन्न है। इन 'विकृतों'[1] के एक समूह ने, मानो अपने जीवन-क्रम में से लिंगो के भेद को निकाल बाहर कर दिया है। इन लोगो में अपने समान लिंग के व्यक्ति से ही यौन इच्छा पैदा हो सकती है। उनके लिए दूसरे लिंग का (विशेष रूप से दूसरे लिंग वाले की जननेन्द्रिय का) जरा भी यौन आकर्षण नही है, और कुछ पराकाष्ठा वाले उदाहरणो में वह उनकी घृणा की वस्तु हो सकती है। इस प्रकार, उन्होने प्रजनन के प्रक्रम को बिलकुल छोड दिया है। ये व्यक्ति समकामी या समलिंग कामी[2] कहलाते हैं। प्राय, (पर सदा नही) वे ऐसे नर-नारी होते हैं जो बौद्धिक दृष्टि से और आचार की दृष्टि से मानसिक वृद्धि और परिवर्धन के बहुत ऊचे स्तर पर पहुच चुके हैं, और उनमे एक यही अजीब विशेषता होती है। अपने वैज्ञानिक प्रवक्ताओ के जरिये वे यह दावा करते हैं कि हम मानव जाति की एक विशेष किस्म 'तीसरा लिंग' है जिसे शेष दो लिंगो के बराबर ही अधिकार हैं। शायद हम आगे इन दोनो की समीक्षा करे। वे नि सन्देह मनुष्य जाति का 'श्रेष्ठ अश' नही है, जैसा कि वे खुशी से मानते हैं। उनमें भी कम से कम उतने ही घटिया और बेकार लोग है जितने दूसरे प्रकार की यौन प्रवृत्ति वालो में।

ये विकृत लोग अपनी अभिलाषाओ के आलम्बनो मे प्राय वही लक्ष्य पूरे करना चाहते हैं जो प्रकृत लोग अपनी अभिलाषाओ के आलम्बनो से करते हैं। पर इनके पीछे अप्रकृत प्ररूपो की एक लम्बी श्रेणी है जिनमें काम-चेष्टाए ऐसी वस्तुओ से अधिकाधिक दूर होती जाती हैं जो किसी बुद्धियुक्त प्राणी को आकर्षक प्रतीत होती हैं। उनकी विविधता और विचित्रता की दृष्टि से इन प्ररूपो की तुलना उन विकट जीवो से की जा सकती है जिन्हे पी० ब्रायडगाल ने सेंट एन्थनी के प्रलोभन

---

१. Perverts २ Homosexual or Inverts

को निरूपित करने के लिए चित्रित किया है, या उन बुड्ढे देवताओ और उपासको के लम्बे जलूस से की जा सकती है जो गस्ताव फ्लावेयर ने अपने धार्मिक प्रायश्चित्त करने वाले पात्र के सामने से गुजरता दिखाया है। इनकी तुलना और किसी चीज से नही की जा सकती। इस अव्यवस्थित जमघट को कुछ समझना है, तो इसका वर्गीकरण आवश्यक है। हम उन्हे दो भागो में बाटते हैं पहले वे जिनमें **काम का आलम्बन** बदल गया है, जैसा कि समकामियो में हुआ, और दूसरे वे जिनमें सबसे मुख्य बात यह हुई है कि **काम का उद्देश्य** बदल गया है। पहले समूह में वे लोग आते है जिन्होने जननेन्द्रियो के परस्पर मिलन को छोड दिया है, और जिन्होने काम-क्रिया के एक साथी में जननेन्द्रियो के स्थान पर कोई और अग या शरीर का भाग (योनि के स्थान पर मुख या गुदा) को रख लिया है, और इसमें होने वाली शारीरिक कठिनाइयो और विरक्ति के निवारण को भुला दिया है। इनके बाद, वे लोग है जिन्होने जननेन्द्रियो को आलम्बन तो बनाया हुआ है, पर उनके मैथुन सम्बन्धी कार्य के कारण नही, बल्कि उन दूसरे कार्यों के कारण जिनमें वे शरीर की दृष्टि से, या उनकी ससक्तता, अर्थात् सबसे अधिक पास होने, के कारण शामिल होती है। इन लोगो को देखने से यह पता चलता है कि मल-विसर्जन, अर्थात् टट्टी-पेशाव के कार्य जिन्हे बच्चे के पालन-पोपण के समय गन्दा या अशिष्ट मान लिया जाता है, सम्पूर्ण यौन दिलचस्पी आकर्पित करने में समर्थ बने रहते है। कुछ और लोग ऐसे है जिन्होने जननेन्द्रियो को अपना आलम्बन बनाना पूरी तरह छोड दिया है, और इसके बदले शरीर के किसी दूसरे भाग को अपनी इच्छा का आलम्बन बना लिया है, जैसे स्त्री की छाती, पैर या बालो की लट। कुछ लोग ऐसे है जिनके लिए शरीर का हिस्सा भी निरर्थक है, और कोई कपडे का टुकडा या जूता या अन्दर पहनने का कपडा उनकी सब इच्छाओ की परितुष्टि कर देता है। ये लोग जडासक्त[1] कहलाते है। आगे चलकर वे लोग आते है, जो सारे आलम्बन की कामना करते है, पर इन लोगो की कामना बडे असाधारण या अजीब रूप ग्रहण कर लेती है, यहा तक कि वे इसे चेष्टाहीन लाश के रूप में ही हासिल करना चाहते है, और अपनी अपराधी मनोग्रस्तियो से प्रेरित होकर इससे एकात्मता कायम करना, और इस तरह इसका भोग करना चाहते है, पर इन भयकर बातो का इतना ही वर्णन काफी है।

दूसरे समूह में सबसे मुख्य वे विकृत लोग है जिनकी यौन इच्छाओ का उद्देश्य वह कार्य करना होता है जो सामान्यत सिर्फ आरम्भिक या तैयारी का कार्य है। ये वे लोग है जिन्हें दूसरे व्यक्ति के बहुत गोपनीय कार्यो को या अगो को देखने और छूने या ताकते रहने से परितुष्टि मिलती है, या वे लोग है जो अपने शरीरो के

---

१ Fetichists

उन भागो को, जिन्हें ढके रखना चाहिए, इस धुंधली आशा में उघाडते हैं कि दूसरा व्यक्ति भी ऐसा ही कार्य करेगा, और उन्हें आनन्दित करेगा। इसके बाद वे अजीब पीडकतोष[1] (सैडिस्ट) अर्थात् पीडा पहुंचाकर परितुष्टि हासिल करने वाले लोग आते हैं, जिनकी सारी अनुराग-भावना का एक ही उद्देश्य होता है, कि अपने आलम्बन को पीड़ा और कष्ट पहुचाया जाए। यह भावना हलके रूप में दूसरे को अपमानित करने की प्रवृत्ति के रूप में दिखाई देती है, और उग्र रूप में सख्त शारीरिक चोट पहुचाने का रूप ग्रहण करती है। इसके बाद पीडिततोष[2] (मैसोकिस्ट) लोग आते हैं—ये मानो पीडकतोषो के पूरक हैं—जिनकी एकमात्र यह लालसा रहती है कि अपने प्रेम को आलम्बन के हाथो वास्तविक रूप मे या प्रतीक रूप मे अपमान और पीडा सहें। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनमें इस तरह की कई अप्रकृत विशेषताए मिली-जुली होती हैं। अन्त में हम देखते हैं कि इनमें से प्रत्येक समूह को आगे फिर और उपसमूहो मे बाटा जा सकता है वे लोग जो अपनी यौन सन्तुष्टि यथार्थ रूप में करना चाहते हैं, और वे लोग जो अपने मनो में कल्पना करके ही सन्तुष्ट हो जाते हैं—उन्हें यथार्थ आलम्बन की आवश्यकता नही होती बल्कि वे इसके स्थान पर कल्पित आलम्बन बना लेते हैं।

इसमें ज़रा भी संदेह नही है कि पागलपन के ये असाधारण और भयकर व्यवहार सचमुच इन लोगो के काम-व्यापार होते हैं। न केवल वे स्वय इन्हें ऐसा मानते हैं क्योंकि वे आलम्बन के स्थानापन्न रूप को स्वीकार करते हैं, बल्कि हमें भी यह मानना पडता है कि उनका उनके जीवन में वही कार्य होता है जो हमारे जीवनो में प्रकृत यौन सन्तुष्टि का। उसमें वे उतने ही और प्राय उससे भी अधिक त्याग करते हैं। यह स्थूलरूप मे भी और सूक्ष्म रूप में भी पता लगाया जा सकता है कि ये अप्रकृतताए कहा आकर प्रकृत में विलीन हो जाती हैं, और कहा वे उससे अलग होती हैं। यह बात भी आपके ध्यान मे अवश्य आएगी कि किसी यौन व्यापार से अनिवार्यत. सम्बद्ध अनौचित्य का गुण भी इसके रूपो में मौजूद है। उनमें से अधिकतर में यह इतने तीव्र रूप में है कि कलक बन जाता है।

तो, यौन सन्तुष्टि के इन व्यापक रूपो के बारे में हमारा क्या रुख होना चाहिए? इनपर गुस्सा करने मे और व्यक्तिगत विरक्ति प्रकट करने मे, तथा यह बताने से कि ये कामनाए हममें नही हैं, स्पष्टत. हमारी गाडी बहुत दूर नही जा सकती। विचारणीय प्रश्न यह नही है। आखिरकार घटनाओ के अन्य क्षेत्रो की तरह यह भी एक घटना-क्षेत्र है। यह बहाना बनाकर कि ऐसा बहुत कम होता है, इससे मुह मोडने और भागने की कोशिश का आसानी से जवाब दिया जा सकता है। इसके विपरीत, ये घटनाएं काफी अधिक लोगो मे और काफी व्यापक क्षेत्र में

---

1. Sadists 2. Masochists.

प्ररूप वे हैं जो विकृत उद्देश्यवाली यौन प्रवृत्तियो के एक समूह, अर्थात् पीडकतोष समूह, की अनुचित शक्ति के कारण पैदा होते हैं। मनोग्रस्तता-रोग की सरचना के अनुसार ही ये लक्षण मुख्यत इन इच्छाओ से बचाव का काम करते हैं, अथवा वे सन्तुष्टि और अस्वीकृति के बीच मौजूद द्वद्व को प्रकट करते हैं। पर सन्तुष्टि भी चुप नही बैठी रहती । यह जानती है कि रोगी के व्यवहार में चक्करदार रास्ता पकडकर और विशेष रूप से अपने को स्वय यत्रणा देकर कैसे अपने को आगे बढाया जाए । इस स्नायु-रोग के और रूप बहुत अधिक 'चिता' और सोचते रहना है, इनसे उन कार्यो का, जो प्रकृत रूप में यौन सन्तुष्टि की तैयारी के कार्य ह, अतिरजित कामुकीकरण[1] प्रकट होता है जैसे देखने की, छूने की, और अन्दर की बात जानने की इच्छा। इसी कारण इस रोग में स्पर्श के भय और मनोग्रस्तीय 'धोने' का इतना अधिक महत्व हो जाता है। मनोग्रस्तता-क्रियाओ का बहुत बडा भाग हस्तमैथुन की प्रच्छन्न रूप में पुनरावृत्ति और रूप-भेद होता है और यह स्वीकार किया जाता है कि यौन कल्पनाओ की जो विविध उडानें है, उन सबमें एक यही कार्य एक समान मौजूद रहता है।

काम-विकृति और स्नायु-रोग का सम्बन्ध अधिक विस्तार से दिखाना कुछ भी कठिन नही है, पर मैं समझता हू कि मैंने अपने प्रयोजनो के लिए काफी कह दिया है। पर लक्षणो के निर्वचन में विकृत काम-प्रवृत्तियो के बारे में इतनी जानकारी हो जाने के बाद हमें मनुष्य जाति में उसकी बारबारता और तीव्रता को बहुत अधिक महत्व देने से बचना चाहिए। आपने सुना है कि प्रकृत यौन सन्तुष्टि की कुठा से स्नायु-रोग पैदा हो सकता है। वास्तविक जीवन में इस कुठा के कारण आवश्यकता यौन उत्तेजन के अप्रकृत रास्ते अपनाने को मजबूर हो जाती है। बाद में आप समझ सकेंगे कि यह कैसे होता है, कम से कम आप इतना तो समझ ही जाएगे कि इस तरह के एक साथ अवरोध से विकृत आवेगो का बल बढ जाएगा और अब वे तब की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हो जाएगे जबकि वास्तविक रूप में प्रकृत यौन-सन्तुष्टि में कोई रुकावट न होती। प्रसगत , ऐसी ही बात व्यक्त काम-विकृतियो में भी दिखाई देगी। बहुत-से उदाहरणो में वे नैसर्गिक काम-वृत्ति की प्रकृत सतुष्टि में अनुचित रूप से बडी कठिनाइयो के कारण पैदा या सक्रिय होती है, और ये कठिनाइया अस्थायी दशाओ या स्थायी सस्थाओ से पैदा होती है। दूसरे उदाहरणो में विकृत प्रवृत्तिया निश्चित रूप से ऐसी अवस्थाओ से बिलकुल स्वतन्त्र होती हैं। ऐसा लगता है मानो वे सम्बन्धित व्यक्ति के लिए स्वाभाविक यौन जीवन है।

शायद आप थोडी देर के लिए यह समझ रहे होंगे कि इन सब बातो से प्रकृत और विकृत यौन वृत्ति के सम्बन्ध स्पष्ट होने के बजाय और अस्पष्ट होने लगते हैं,

---

1 Sexualization

पर यह बात मन में रखिए। यदि यह बात सही है कि यौन सन्तुष्टि के मार्ग की वास्तविक बाधाएं या इसके विषय में कुण्ठा उन लोगों में विकृत प्रवृत्तियो को ऊपर के तल पर ले आती है जिनमें अन्यथा ऐसी कोई प्रवृत्ति न दिखाई देती, तो हमें यह निष्कर्ष मानना ही होगा कि इन लोगो मे कोई ऐसी चीज है जो उन काम-विकृतियो को अपनाने को तयार है, या आप कहना चाहे तो ये प्रवृत्तिया उनमें गुप्त रूप मे अवश्य मौजूद है। इस प्रकार मैंने जिन दो नए प्रेक्षणो की बात कही थी, उनमें से दूसरे पर हम आ जाते है। मनोविश्लेषण की जाच-पडताल से यह पता चला है कि बच्चो के यौन जीवन की पडताल करना आवश्यक है, क्योकि लक्षणो के विषय मे जो सस्मरण और साहचर्य सामने आते है, वे सदा शैशव के आरम्भिक वर्षो पर लौटा ले जाते है। जो बात हमने इस तरह खोजी थी, उसके एक-एक अश की पुष्टि बालको के प्रत्यक्ष प्रेक्षण से हो चुकी है। इस प्रकार यह पता चला है कि सब विकृत यौन प्रवृत्तियो का मूल बचपन मे मिलता है। बालको में वे सब विकृत प्रवृत्तिया ग्रहण करने का झुकाव होता है और वे अपनी अपरिपक्वता के अनुसार अलग-अलग मात्रा मे उन सबके वशीभूत होते है, और उन्हे अपनाते है। सक्षेप में, **विकृत यौन प्रवृत्ति** शैशवीय यौन प्रवृत्ति ही है जो अब अधिक बडे रूप मे और अपने घटक-अवयवो में खण्डित होती है।

अब आप काम-विकृतियो को बिलकुल दूसरे ही ढग से देखेंगे और मनुष्य जाति के जीवन में उनके सम्बन्ध की उपेक्षा नही करेंगे। पर इन आश्चर्यकारक और अजीब बातो के ज्ञान से आपमे कितनी परेशानी के भाव पैदा होगे! शुरू में निश्चित रूप से आप प्रत्येक बात का निषेध करना चाहेंगे। इस तथ्य का कि बालको मे यौन जीवन कही जा सकने योग्य कोई चीज होती है, हमारे प्रेक्षणो की यथार्थता का और बालको के व्यवहार मे उस चीज़ के साथ, जो बाद के वर्षो में विकृति कहलाती है, कोई सम्बन्ध देखने के हमारे दावे के औचित्य का आप विरोध करेंगे। सबसे पहले तो मै आपके विरोध के प्रेरक कारण आपके सामने रखूगा, और इसके बाद अपने प्रेक्षणो का साराश पेश करूगा। यह कहना या समझना कि बालको का कोई यौन जीवन नही होता, अर्थात् उनमें यौन उत्तेजना, एक तरह की यौन आवश्यकताए और सन्तुष्टि नही होती और उनमें ये बाते बारह और चौदह वर्ष की आयु के बीच एकाएक आ जाती है, और दृष्टियो के अलावा जैविकीय दृष्टि से भी वैसा ही असम्भाव्य, बल्कि बेहूदा होगा, जैसे यह कल्पना करना कि वे बिना जननेन्द्रियो के पैदा होते है और तरुणावस्था मे उनमे जननेन्द्रिया फूटने लगती है। उनमे इस समय असल मे जो चीज़ पैदा होती है वह है प्रजनन सम्बन्धी कार्य, जो उस समय शरीर और मन में मौजूद सामग्री का अपने प्रयोजनो के लिए उपयोग कर लेता है। आप यौन प्रवृत्ति और प्रजनन को एक दूसरे से मिला रहे है और इस तरह आप यौन प्रवृत्ति, काम-विकृतियो और स्नायु-रोगो को समझने

का रास्ता स्वय बन्द कर रहे है। इसके अलावा, इस भूल में एक अर्थ भी है। कहने में अजीव मालूम होता है, पर इसका मूल कारण यह है कि आप सब कभी बालक रहे है, और बालकपन में आप शिक्षा के प्रभाव में रहे है। क्योंकि शिक्षा का एक सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य यह भी है कि वह नैसर्गिक यौन प्रवृत्ति को, जब वह प्रजनन सम्बन्धी कार्य के रूप में विकसित हो जाती है तब, सयत करे, सीमित करे, और व्यक्ति के नियत्रण में रखे (व्यक्ति का नियत्रण और समाज की आवश्यकता एक ही बात है)। इसलिए समाज अपने हित को देखते हुए बालक के पूर्ण परिवर्धन को तबतक के लिए टाल देता है, जबतक कि वह बौद्धिक परिपक्वता की एक निश्चित स्थिति पर न पहुच जाए, क्योंकि नैसर्गिक यौन प्रवृत्ति के पूर्ण रूप में क्रियाशील हो जाने पर शिक्षणीयता अर्थात् शिक्षा-प्राप्ति की योग्यता प्राय खत्म हो जाती है। यदि ऐसा न किया जाए तो निसर्ग-वृत्ति सब रुकावटो को और परिश्रम से खडे किए गए सभ्यता के ढाचे को तोड-फोडकर फेंक देगी। इसे सयत करने का काम आसान भी नही है। इस दिशा में सफलता प्राय बहुत कम होती है, पर कभी-कभी बहुत अधिक भी होती है। मूलत समाज का प्रेरक भाव आर्थिक है क्योंकि इसके पास इतने साधन नही है कि यह अपने सदस्यो के विना परिश्रम किए उनके जीवन का भरण-पोषण कर सके, इसलिए उसे यह यत्न करना पडता है कि इन सदस्यो की सख्या अधिक न बढ सके और उनकी शक्ति यौन व्यापारो से हटकर अपने कार्य पर लगी रहे—इसलिए जीवन-धारण के लिए होने वाला नित्य और आदिकाल से चला आता हुआ सघर्ष आज तक चल रहा है।

अनुभव से शिक्षको को यह पता चला होगा कि अगली पीढी की यौन इच्छा को ढालने का कार्य तभी सफल हो सकता है जब तूफान फटने तक प्रतीक्षा करने के बजाय शुरू में ही उसपर असर डाला जाए और तरुणावस्था से पहले ही बालको के यौन जीवन में दखल दिया जाए। इसलिए बालक के प्राय सब शैशवीय यौन व्यापारो पर रोक लगा दी जाती है, या उन्हे अरुचिकर बना दिया जाता है। आदर्श यह रहा है कि बालक के जीवन को निष्काम या कामहीन बना दिया जाए और धीरे-धीरे इसका यह नतीजा हुआ है कि हम इसे वास्तव में निष्काम मानने लगे है और विज्ञान भी इसे ऐसा ही बताता है। इसलिए प्रतिष्ठित विश्वासो और लक्ष्यो से कोई विरोध न होने देने के लिए बालको के यौन व्यापार से आख मीच ली जाती है—और यह कोई छोटी सफलता नही है—और उधर विज्ञान इसकी दूसरे ढग से व्याख्या करके सन्तुष्ट हो जाता है। छोटे बालक को शुद्ध और निर्दोष माना जाता है। जो इससे भिन्न बात कहे उनको मनुष्य जाति की कोमलतम और पवित्रतम भावनाओ पर अविश्वास करने वाला कहा जाता है।

सिर्फ बालक इस रूढ प्रथा में कोई हिस्सा नही लेते। वे बडी चतुराई से अपनी पशु-प्रकृति पर जमे रहते है और आग्रहपूर्वक यह प्रदर्शित करते है कि 'शुद्धता'

उन्हें अभी सीखनी है। कैसी विचित्र बात है कि जो लोग बालकों में काम-प्रवृत्ति होने का निषेध करते हैं, वे ही इसको रोकने के लिए होने वाले शिक्षणात्मक उपायों को शिथिल करने का सबसे अधिक विरोध करते हैं। बच्चों में कोई भी 'दूषित प्रवृत्ति', जिसके होने का वे निषेध करते हैं, दीखने पर वे ही उसके लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था करते हैं। इसके अलावा, सिद्धान्त-विचार की दृष्टि से यह बात बड़े महत्व की है कि जीवन का जो समय निष्काम बालकपन सम्बन्धी संस्कार का सबसे प्रबल खण्डन करता है, अर्थात् पांच या छः वर्ष की आयु तक का समय, वह वही समय है जो अधिकतर लोगों में विस्मृति के पर्दे में छिपा रहता है। यह विस्मृति विश्लेषण द्वारा पूरी तरह हटाई जा सकती है, पर विश्लेषण से पहले भी उसके अन्दर प्रवेश होता था, और बालकपन के कुछ स्वप्न कायम रहते थे।

अब मैं आपको बालक के वे यौन व्यापार बताऊंगा जो सबसे अधिक स्पष्ट रूप से पहचाने जा सकते हैं। यह अधिक अच्छा होगा कि मैं पहले आपको लिबिडो या राग या काम-क्षुधा का परिचय दे दूं। लिबिडो या राग बिलकुल क्षुधा की तरह है। यह वह बल है जिसके द्वारा नैसर्गिक यौन वृत्ति वैसे ही अपनी अभिव्यक्ति करती है जैसे पोषण की निसर्ग-वृत्ति भूख के द्वारा अपनी अभिव्यक्ति करती है। यौन उत्तेजन और सन्तुष्टि आदि अन्य शब्दों की कोई परिभाषा देने की आवश्यकता नहीं। निर्वचन को शिशु के यौन व्यापारों के विषय में बहुत कुछ करने योग्य काम मिलता है, जैसा कि आप आसानी से समझ जाएंगे, और निःसन्देह आपको आक्षेप करने के लिए भी कारण दिखाई देगा। यह निर्वचन किसी लक्षण से पीछे की ओर चलते हुए मनोविश्लेषणात्मक जांच के आधार पर बना हुआ है। शिशु के प्रथम यौन उत्तेजन जीवन के लिए महत्वपूर्ण दूसरे कार्यों के सिलसिले में प्रकट होते हैं। इसकी मुख्य दिलचस्पी, जैसा कि आप जानते हैं, पोषण प्राप्त करने से सम्बन्ध रखती है। जब वह बिलकुल सन्तुष्ट होकर छाती पर पड़ा सोता है, तब उसके चेहरे पर पूर्ण परितृप्ति होती है, जो बाद के जीवन में शुक्रपात[1] के अनुभव के बाद फिर दिखाई देगी। यह बात निष्कर्ष निकालने के लिए काफी नहीं है, पर हम देखते हैं कि शिशु पोषण पाने के लिए आवश्यक क्रिया वास्तव में पोषण न पाते हुए भी करता रहना चाहता है। इसलिए इसका कारण भूख नहीं है। हम इस क्रिया को सुख के लिए चूसना कहते हैं' (स्तन का निप्पल चूसने रहना बच्चों को अच्छा मालूम होता है), और जब शिशु ऐसा करता है तब फिर वह वही आनन्दपूर्ण परितृप्ति प्रकट करता हुआ सो जाता है—इस तरह हम देखते हैं कि चूसने की क्रिया अपने आप में सन्तुष्टि देने के लिए काफी है। धीरे-धीरे उसे ऐसी आदत पड़ जाती है कि वह इस तरह निप्पल चूसे बिना नहीं सोता। बुडापेस्ट

---

1. Sexual orgasm

के निवासी और बच्चो का इलाज करने वाले वयोवृद्ध डाक्टर लिन्डनर ने सबसे पहले इस प्रतिक्रिया को यौन प्रकृति का बताया था। बच्चो की देखभाल करने वाली नर्से तथा और लोग इस चूसने के बारे में यही विचार रखते मालूम होते हैं। उन्हे इसमें सन्देह नही कि इसका एकमात्र प्रयोजन इससे प्राप्त होने वाला सुख ही है। वे इसे बच्चो की 'शैतानी' समझते हैं, और यदि बच्चा इसे खुद नही छोड देता तो वे उसकी यह आदत छुडाने के लिए सख्त उपाय बरतते हैं, और इस तरह हमें पता चला कि शिशु सुख-प्राप्ति से भिन्न कोई उद्देश्य न होते हुए कुछ क्रियाए करता है। हम मानते हैं कि सबसे पहले यह सुख पोषण-ग्रहण के समय प्राप्त होता है, पर शिशु पोषण से अलग भी इसका सुख-भोग करना जल्दी ही सीख जाता है। इससे प्राप्त परितुष्टि सिर्फ मुख और होठो के क्षेत्र से सम्बन्धित होती है। इसलिए इन क्षेत्रो को हम **कामजनक क्षेत्र** कहते हैं, और इस चूसने से उत्पन्न सुख को **यौन-सुख** बताते हैं पर इस शब्द के प्रयोग के औचित्य के बारे में अभी हमें विचार करना है।

यदि बालक अपने मन की बात कह सकता तो वह अवश्य यह मानता कि माता की छाती चूसने का कार्य जीवन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। उसका यह कहना गलत नही होता, क्योकि इस कार्य से जीवन की दो सबसे बडी आवश्यकताओ की एक साथ पूर्ति हो जाती है। फिर, मनोविश्लेपण से पता चलता है, और उससे आश्चर्य भी होता है कि इस कार्य का कितना अधिक मानसिक महत्व सारे जीवन में बना रहता है। पोपण के लिए स्तन चूसने से ही सारे यौन जीवन का परिवर्धन होता है। यह बाद में मिलने वाली प्रत्येक यौन सन्तुष्टि का अलभ्य मूर्त रूप है और आवश्यकता के समय कल्पना प्राय इसी पर लौटकर पहुचती है। चूसने की इच्छा में माता की छाती के लिए इच्छा भी शामिल है, और इसलिए माता की छाती यौन इच्छा का पहला **आलम्बन** है, जो आलम्बन बाद में बनते हैं, उनके निर्धारण में इस प्रथम आलम्बन का कितना महत्व होता है, यह रूपान्तरण और स्थानापन्नता द्वारा मानसिक जीवन के बहुत दूरवर्ती क्षेत्रो पर कितना प्रभाव डालता है, इसकी पूरी-पूरी धारणा आपको कराने में मैं असमर्थ हू, पर सबसे पहले जब बालक सुख के लिए चूसता है, तब इस आलम्बन को छोडकर इसके स्थान पर वह अपने शरीर के एक हिस्से का प्रयोग करता है। यह अपने अगूठे या अपनी जीभ को चूसता है। इस प्रकार यह सुख-प्राप्ति के प्रयोजन के लिए अपने आपको बाहरी दुनिया की सहमति से स्वतत्र कर लेता है, और उत्तेजन के क्षेत्र में शरीर के एक दूसरे हिस्से को लाकर, और इस तरह उसका विस्तार करके अपने सुख तीव्र कर लेता है। सब कामजनक क्षेत्र बराबर सुख नही दे सकते, इसलिए जब शिशु, जैसा कि लिन्डनर ने कहा है, अपने शरीर को टटोलता हुआ अपनी जननेन्द्रियो से विशेष रूप से उत्तेजन योग्य क्षेत्र का पता लगा लेता है, और इस तरह सुखार्थ चूसने से

स्वरति का रास्ता ढूंढ लेता है, तब यह एक महत्वपूर्ण अनुभव होता है।

सुखार्थ चूसने के स्वरूप के बारे में इस विचार ने शैशवीय यौन प्रवृत्ति की दो निश्चायक विशेषताओं की ओर हमारा ध्यान खींचा है। ये प्रबल शारीरिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के सिलसिले में सामने आती हैं और आत्मकामित[1] व्यवहार करती हैं, अर्थात् ये अपने शरीर में ही अपने आलम्बन खोजती हैं और प्राप्त करती हैं। जो बात पोषण-ग्रहण करने के बारे में बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, वही कुछ दूर तक मल-त्याग के प्रक्रम में भी होती है। हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि शिशुओं को पेशाब और आंतों का मल निकालने में सुख अनुभव होता है और वे बहुत शीघ्र इन क्रियाओं को इस तरह करने की कोशिश करते हैं जिसमें इन कामजनक क्षेत्रों में इन क्रियाओं के साथ होने वाले झिल्लियों के उत्तेजन से उन्हें यथासम्भव अधिक से अधिक परितुष्टि मिल सके। जैसा कि लो एन्ड्रियास ने बताया है, किसी अन्त प्रेरणा से प्रेरित होकर बाहरी दुनिया सबसे पहले इस जगह रुकावट के रूप में सामने आती है। वह बालक की सुख की इच्छा का विरोध करने वाले बल के रूप में उसके सामने आती है—यही उसे बाद के जीवन में अनुभव होने वाले बाहरी और भीतरी द्वन्द्वों का पहला संकेत मिलता है। जब वह स्वयं चाहे तब मल-त्याग न करे, बल्कि दूसरे लोगों द्वारा नियत समय पर ही मल-त्याग करे। उसे सुख के इन स्रोतों को छोड़ने की प्रेरणा देने के लिए उससे कहा जाता है कि इन कार्यों से सम्बन्धित हर बात 'बुरी' या 'अनुचित' है और उसे छिपाना चाहिए। इस प्रकार, उसे पहली बार दूसरों की दृष्टि में अपना मान पाने के लिए अपना सुख छोड़ने को कहा जाता है। मल-त्याग के प्रति उसका अपना रुख शुरू से बड़ा भिन्न होता है। अपने खुद के मल से उसमें कोई घृणा पैदा नहीं होती। वह उसे अपने शरीर के हिस्से की तरह मानता है, और छोड़ना नहीं चाहता। वह उसका उपयोग अपने प्रिय लोगों को अपने चिह्न की सबसे पहली 'भेंट' देने में करता है। शिक्षा के द्वारा इन प्रवृत्तियों से हटा दिए जाने पर भी वह अपनी 'भेंटों' और अपने 'धन' को उतना ही महत्व देता रहता है। पेशाब करने की अपनी सफलता उसे विशेष अभिमान की बात मालूम होती है।

मैं जानता हूं कि कुछ समय से आप मुझे रोकने के लिए यह कहने को उतावले हो रहे हैं : "ये बेहूदी बातें बन्द करो! आंतों की गति से बच्चे भी सुखदायक यौन तृप्ति करते हैं! मल भी कीमती वस्तु है और गुदा एक तरह की जननेन्द्रिय है! हम इन बातों पर विश्वास नहीं करते, पर हम यह समझ गए हैं कि बालकों के डाक्टरों और शिक्षा-शास्त्रियों ने मनोविश्लेषण और इसके निष्कर्षों को क्यों इस तरह बलपूर्वक अस्वीकार किया है।" जरा भी नहीं। आप इस समय यह बात

---

१. Auto-erotically.

भूल गए है कि मै आपको शैशवीय यौन जीवन के वास्तविक तथ्यो और यौन विकृतियो के वास्तविक तथ्यो के बीच सम्बन्ध दिखाने की कोशिश कर रहा हू। आप यह क्यो भूल जाते है कि बहुत-से समकामी और विषमकामी[1] वयस्को में गुदा सचमुच उसी प्रयोग में आती है, जिसमें मैथुन के समय योनि-मार्ग काम आता है ? और ऐसे बहुत-से लोग है जो आतो से मल-त्याग के समय अनुभव होनेवाले सुखदायी सम्वेदनो को सारे जीवन कायम रखते है और उन्हे काफी महत्वपूर्ण मानते है। जब बालक कुछ बडे हो जाएगे और इन बातो के बारे में बोल सकेंगे तब आपको उनसे ही यह पता चल जाएगा कि मल-त्याग के काम में उनकी कितनी दिलचस्पी है और दूसरो को यह कार्य करते हुए देखकर उन्हे कितना सुख मिलता है। यदि आपने उन्हे पहले बाकायदा डरा दिया है तो वे बहुत अच्छी तरह समझ जाएगे कि उन्हे इन बातो के बारे में नही बोलना चाहिए। अन्य जिन बातो पर आप विश्वास नही करना चाहते, उनके लिए मै आपका ध्यान विश्लेषण में प्रकट हुए साक्ष्य तथा बालको के प्रत्यक्ष प्रेक्षण की ओर खीचना चाहता हू और आपसे कहता हू कि इन सब बातो को न देखने या किसी भिन्न रूप में देखने में बुद्धि पर बलात्कार करना ही होगा, और मुझे आपके इस विचार से भी कुछ अरुचि नही है कि बालको के यौन व्यापारो और यौन विकृतियो का सम्बन्ध विशेष रूप से प्रभावोत्पादक है। यह तो क्रम-विधान की बात है कि उनमें यह सम्बन्ध होना चाहिए, क्योकि यदि बालक में जरा भी यौन जीवन होता है तो वह विकृत प्रकार का ही होना चाहिए क्योकि थोडे-से अस्पष्ट सकेतो के अलावा उसमें उन सब बातो का अभाव होता है जो यौन प्रवृत्ति को प्रजनन कार्य में बदल देती है। इसके अलावा, सब काम-विकृतियो की यह एक सामान्य विशेषता है कि उनमें उद्देश्य प्रजनन नही रहता। असल में, इसी कसौटी से हम यह फैसला करते है कि कोई यौन व्यापार विकृत है, अर्थात् यदि यह अपने प्रजनन के उद्देश्य को छोडकर चलता है और स्वतन्त्र रूप मे परितुष्टि प्राप्त करना चाहता है तो यह विकृत है। इसलिए आप समझ जाएगे कि यौन जीवन के परिवर्धन में खाई और मोड बिन्दु उस स्थान पर है, जहा यह प्रजनन के प्रयोजनो के अधीन होता है। इस परिवर्तन से पहले होने वाली प्रत्येक चेष्टा को, जो इसके अनुरूप नही चलती, और सिर्फ परितुष्टि-प्राप्ति का साधन बनती है, 'काम-विकृति' के असम्मानित नाम से पुकारा जाता है, और इस रूप में उसको नफरत की निगाह से देखा जाता है।

तो, शैशवीय यौन प्रवृत्ति का सक्षिप्त वर्णन आगे बढाया जाए। जो बात मैंने आपसे दो शारीरिक सस्थानो के बारे में कही है, उसके बारे में अन्य सस्थानो की इसी तरह सूक्ष्म परीक्षा करके बात को बढाया जा सकता है। बच्चो के यौन

---

१ Heterosexual

जीवन में सिर्फ उन घटक-निसर्ग-वृत्तियों[1] की एक शृंखला के सिर्फ वे व्यापार होते हैं जो एक दूसरे से स्वतन्त्र रहते हुए कुछ उसके अपने शरीर मे और कुछ पहले ही से किसी बाहरी आलम्बन मे परितुष्टि पाना चाहते हैं। इन शारीरिक सस्थानो के अगो में शीघ्र ही पहला स्थान जननेन्द्रिय सस्थान[2] का हो जाता है, ऐसे लोग भी होते है जिनमे किसी अन्य जननेन्द्रिय या आलम्बन की मदद के बिना, अपनी ही जननेन्द्रिय में सुखदायक परितुष्टि, शैशव के दूध चूसने के समय की आदतन स्वय रति से शुरू होकर तरुणावस्था में होनेवाली आवश्यकता से उत्पन्न स्वय रति तक, बिना व्यवधान के जारी रहती है और उसके बाद भी अनिश्चित काल तक कायम रहती है। प्रसगत स्वय रति का विषय इतने से खत्म नही हो गया। इसमें अनेक दृष्टिकोणो से विचार किया जा सकता है।

इस चर्चा को मै बहुत नही बढाना चाहता, पर फिर भी, बच्चो में जो यौन कुतूहल होता है, उसकी कुछ बात अवश्य कहना चाहता हू। बाल्य यौन वृत्ति की यह इतनी बडी विशेषता है और स्नायु-रोग के लक्षण-निर्माण के लिए इतनी महत्वपूर्ण है कि इसे छोडा नही जा सकता। शैशवीय यौन कुतूहल बहुत छोटी उम्र में, कभी-कभी तीसरे वर्ष से भी पहले, शुरू हो जाता है। यह लिंगो के भेद से सम्बन्ध नही रखता। बालको के लिए इसका कोई अर्थ नही है, क्योकि वे, कम से कम लडके तो, दोनो लिंगो मे वही पुरुष-जननेन्द्रिय समझते हैं। यदि फिर कोई लडका अपनी छोटी बहन या साथ खेलने वाली लडकी की योनि देख ले तो वह तुरन्त अपनी इन्द्रियो के साक्ष्य का निषेध करना चाहता है, क्योकि वह यह धारणा नही बना सकता कि कोई उसकी तरह का मनुष्य प्राणी उसके सबसे महत्वपूर्ण गुण से रहित भी हो सकता है। बाद मे इससे जो सभवताएं या किए जा सकने वाले कार्य उसके सामने आते हैं, उन्हे देखकर वह भयभीत हो जाता है। उसे अपने इस छोटे-से अग पर बहुत ध्यान देते देखकर पहले जो धमकियां दी गई थी, उनका प्रभाव उसे अब अनुभव होने लगता है। उस पर बधियाकरण ग्रन्थि का आधिपत्य हो जाता है, जो उसके स्वस्थ रहने पर उसके चरित्र-निर्माण में, रोगी होने पर उसके स्नायु-रोग के निर्माण मे और यदि उसका मनोविश्लेषण द्वारा इलाज किया जाता है तो उसके प्रतिरोधों के निर्माण मे इतना महत्वपूर्ण कार्य करती है। हम जानते है कि छोटी लडकियां बडे दृष्टिगोचर शिश्न के अभाव मे अपने में भारी कमी अनुभव करती हैं, और लडको मे इसके होने पर ईर्ष्या रखती हैं, इसी मूल से अन्ततः पुरुष होने की इच्छा पैदा होती है, जो किसी स्त्रियोचित परिवर्तन के साथ ठीक समजन न होने के कारण बाद में स्नायु-रोग में फिर आ जाती है। इसके अलावा, लडकी की भगनासा बालकपन में हर प्रकार से शिश्न के तुल्य होती है। यह विशेष उत्तेज-

---

१ Component-instincts २ Genitalia

नीयता का क्षेत्र है, जिससे आत्मकामीय सन्तुष्टि प्राप्त होती है। नारीत्व में सक्रमण होने के समय बहुत कुछ परिणाम इस बात पर निर्भर है कि यह सवेदिता, बहुत पहले और पूरी तरह, भगनासा से हटाकर योनि-मुख पर पहुचा दी गई या नही। जो नारिया यौन दृष्टि से सवेदनशून्य कहलाती है, उनमें भगनासा दृढता से इस सवेदिता या सवेदनशीलता को कायम रखती है।

बालको की यौन दिलचस्पी प्रथमत जन्म की समस्या के प्रति होती है—थेबन स्फिक्स[1] के पीछे भी यही समस्या है। यह कुतूहल अधिकतर दूसरे बालक के आने के अहकारमूलक भय से पैदा होता है। बालको को इसका जो यह प्रचलित उत्तर दे दिया जाता है कि चिडिया बच्चे दे जाती है, उसपर छोटे बालक भी, जितना हम समझते है, उससे बहुत अधिक अविश्वास करते है। बडे आदमियो द्वारा ठगे जाने और झूठ द्वारा बहलाए जाने की भावना से उनमें अलग रहने और स्वतत्र होने का भाव पैदा होता है। पर बालक आप इस समस्या को हल नही कर सकता। उसकी अपरिवर्धित यौन रचना समझने की क्षमता की निश्चित सीमाए बना देती है। पहले वह यह कल्पना करता है कि भोजन के साथ कोई विशेष वस्तु मिलाकर बालक बनाए जाते है। वह यह भी नही जानता कि बच्चे सिर्फ स्त्रियो के हो सकते है। बाद में उसे इसका पता चलता है और वह भोजन से बच्चे बनाए जाने का विचार छोड देता है, यद्यपि परियो की कहानियो में यह कायम रहता है। कुछ समय बाद वह जल्दी ही यह देख लेता है कि बच्चे बनाने में पिता का अवश्य कुछ कार्य है, पर वह नही जान पाता कि यह कार्य क्या है। यदि वह अचानक मैथुन-कार्य देख ले तो वह यह समझता है कि यह स्त्री को दबाने का यत्न है, जैसे कुश्ती में होता है—सम्भोग का पीडकतोष वाला अवधारण, पर शुरू में वह इस कार्य का सम्बन्ध बच्चो के सर्जन से नही जोडता, यदि वह माता के बिस्तर या पेटीकोट पर खून का निशान देख लेता है तो वह इसे पिता द्वारा पहुचाई गई चोट का प्रमाण समझता है। कुछ और बडा होने पर वह सम्भवत यह अनुमान करता है कि पुरुष के लिंग का बच्चे पैदा करने में सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा होता है, पर शरीर के इस अग का पेशाब करने के अलावा और कोई कार्य वह नही समझ सकता।

सभी बच्चे शुरू मे यह विश्वास करते है कि बच्चे का जन्म आत में से होता है, अर्थात् शिशु मल की तरह पैदा होता है। यह विचार तभी छूटता है, जब गुदा के क्षेत्र मे उसकी सारी दिलचस्पी हटा दी गई हो, और इसके बाद वह यह कल्पना करने लगता है कि नाभि का छिद्र या दोनो स्तनो के बीच के क्षेत्र से बच्चे का

---

१. स्फिक्स ग्रीक पौराणिक कथाओ का एक दानव है, वह यात्रियों से पहेलिया पूछता था और जो उन्हें हल नहीं कर पाते थे, उनका गला घोट देता था।
—अनुवादक

जन्म होता है। कुछ-कुछ ऐसे तरीके से कुतूहली बालक यौन वृत्ति सम्बन्धी तथ्यो की कुछ जानकारी हासिल करता है बशर्ते कि वह अज्ञान के कारण गलत रास्ते पर न चला जाए। वह तथ्यो को नजरन्दाज करता रहता है, और अन्त में उसे प्राय तरुणावस्था से पहले के दिनो में उनका अधूरा और भद्दा वृत्तान्त पता चलता है जिससे उसमें प्राय उपघातज प्रभाव पैदा होता है।

अब, सम्भवत आपने सुना होगा कि 'यौन' या 'काम सम्बन्धी' शब्द के अर्थ का मनोविश्लेषण ने अकारण फैलाव कर डाला है, जिससे स्नायु-रोगो के यौन उद्गम और लक्षणो के यौन अर्थ के बारे में इसकी मान्यताए खडी हो सके। अब आप स्वय यह फैसला कर सकते है कि यह फैलाव उचित है या नही। हमने 'यौनवृत्ति' या 'कामुकता' के अवधारण का अर्थ विस्तृत कर दिया है, पर इतना ही विस्तृत किया है कि इससे विकृत व्यक्तियो और बालको के यौन जीवन को इसके अन्तर्गत लाया जा सके, अर्थात् हमने इसे इसके अर्थ का सही दायरा फिर प्राप्त करा दिया। मनोविश्लेषण के बाहर जिस चीज़ को यौन वृत्ति या कामुकता कहा जाता है, वह सिर्फ उस सीमित यौन जीवन पर लागू होती है जो प्रजनन कार्य के लिए प्रयुक्त होता है, और प्रकृत कहलाता है।

ही कोई ऐसी काम-विकृति हो जो प्रकृत व्यक्ति के यौन जीवन में न मिलती हो। सबसे पहले चुम्बन को ही विकृत यौन कार्य कहा जा सकता है, क्योकि इसमें दो कामजनक मुख-क्षेत्रो का मिलन होता है, दो जननेन्द्रियो का नही, पर इसे कोई विकृत नही कहता । इसके विपरीत, नाटक में इसे दिखाया जा सकता है क्योकि इसे मैथुन-कार्य का एक परिष्कृत सकेत माना जाता है । फिर भी चुम्वन ऐसी चीज़ है जो आसानी से पूर्ण काम-विकृति वन सकता है, अर्थात् तब जब यह इतनी तीव्रता में होता है कि सुखोत्तेजना और शुक्रक्षरण इसके साथ ही हो जाते है, जो कि कोई असामान्य वात नही है । फिर आप देखेंगे कि एक व्यक्ति में आलम्बन को ताकना और उसे हाथ से स्पर्श करना यौन सुख के लिए अनिवार्य होता है, जबकि दूसरा, यौन उत्तेजन की पराकाष्ठा आने पर काटता है या चिऊटी भरता है, किसी तीसरे प्रेमी में आलम्बन के शरीर का जननेन्द्रिय क्षेत्र के अलावा कोई और क्षेत्र अधिकतम उत्तेजना पैदा करता है, और इस तरह इनके अनन्त भेद हो सकते हैं । इस तरह की किसी एक विलक्षणता वाले लोगो को प्रकृतो की श्रेणी में से निकलना और विकृतो में शामिल करना बिलकुल वेतुका है। इसके विपरीत, यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है कि काम-विकृति का आवश्यक तत्व यौन उद्देश्य से आगे वढ जाना, जननेन्द्रियो के स्थान पर और अगो को ले आना, और आलम्बन में भिन्नताए हो जाना नही है, वल्कि सिर्फ यह है कि व्यक्ति इन विपथनो या मार्ग-भ्रष्टताओ पर कितनी **अनन्यता**[1] से कायम रहता है, और इस तरह प्रजनन का प्रक्रम कहाने वाले मैथुन-कार्य को सर्वथा दूर कर देता है। जहा विकृत काम-चेष्टाए प्रकृत मैथुन कार्य की पूर्ति को तीव्र करने, या वहा तक पहुचाने के लिए की जाती है, वहा वे वास्तव में विकृत नही हैं । जिस तरह के तथ्य अभी वताए गए ह, उनसे स्वभावत प्रकृत और विकृत यौन प्रवृत्ति के वीच की खाई वहुत अधिक पटने लगती है । इससे सीधा यह अनुमान निकलता है कि प्रकृत यौन प्रवृत्ति किसी अपने से पहले मौजूद प्रवृत्ति में से पैदा हुई है, और इसके लिए इस वस्तु के कुछ अशो को वेकार समझकर छोड दिया गया, और कुछ और अश इसमें जोड दिए गए, जिससे इन्हे एक नए उद्देश्य, अर्थात् प्रजनन के उद्देश्य का साधन वनाया जा सके ।

इस प्रकार विकृतियो के वारे में हमें जो दृष्टिकोण प्राप्त हुआ है, उसका उपयोग करके अव हम शैशवीय यौन प्रवृत्ति की समस्या पर अधिक स्पष्ट पृष्ठभूमि में अधिक गहरा विचार कर सकते हैं । पर इससे पहले मैं इन दोनो के एक महत्वपूर्ण अन्तर की ओर आपका ध्यान खीचना चाहता हू । साधारणतया विकृत यौन प्रवृत्ति वहुत अधिक सघन होती है, इसका सारा व्यापार एक—और अधिकतर सिर्फ एक—उद्देश्य की ओर होता है, कोई एक ही घटक-आवेग सर्वोपरि होता

1 Exclusiveness

है—यह या तो वही होना है जो दिखाई दे रहा है, या इसने दूसरो को अपने ही प्रयोजनो मे लगा लिया है। इस दृष्टि से विकृत और प्रकृत यौन प्रवृत्ति के बीच इसके सिवाय और कोई अन्तर नही कि प्रधान घटक-आवेग और इसलिए यौन-उद्देश्य भिन्न हैं। वे दोनो ही एक सुसगठित क्रूर शासन है, फर्क यही है कि इनमें से एक में शासक वश ने सारी सत्ता हथिया ली है, और दूसरे मे दूसरे ने। इसके विपरीत, शैशवीय यौन प्रवृत्ति मे इस सघनता और सगठन का मुख्यत अभाव होता है। इसके घटक-आवेग भी उतने ही प्रबल होते हैं। उनमे से प्रत्येक स्वतत्र रूप से अपने ही सुख के लिए प्रयत्न करता है। (बालकपन मे) इस सघनता का अभाव और (वयस्कता मे) इसका अस्तित्व, ये दोनो बाते इस तथ्य के साथ बिलकुल मेल खाती हैं कि प्रकृत और विकृत दोनो यौन प्रवृत्तिया एक ही स्रोत, अर्थात् शैशवीय यौन प्रवृत्ति से पैदा होती हैं। सच तो यह है कि काम-विकृति के ऐसे उदाहरण भी हैं जो शैशवीय यौन प्रवृत्ति से इस दृष्टि से और भी मेल खाते हैं कि बहुत-सी घटक-निसर्ग-वृत्तिया और उनके उद्देश्य एक दूसरे से स्वतन्त्र रहते हुए, उनमें परिवर्धित हो जाते हैं या स्थायी बन जाते हैं। इन उदाहरणो को यौन जीवन की विकृति के बजाय शैशवीयता[1] कहना अधिक सही है।

इतना जानने के बाद अब हमे एक सुझाव पर विचार करना चाहिए, जो हमारे सामने अवश्य पेश किया जाएगा। कहा जाएगा : "बालकपन की उन अनिश्चित अभिव्यक्तियो को, जिनमें से बाद के यौन जीवन का परिवर्धन हुआ और जिसे आप स्वय अनिश्चित मानते हैं, पहले से यौन प्रवृत्ति या प्रकटन बताने के लिए आपने क्यो कमर कस ली है? आप उनका कायिकी की दृष्टि से वर्णन करके, और सिर्फ इतना कहकर ही क्यो सन्तुष्ट नही हो जाते कि खाली चूसने और मल रोकने जैसे व्यापार छोटे बच्चो मे पहले ही देखे जा सकते हैं, जिससे प्रकट होता है कि वे अपने अंगों से सुख प्राप्त करते हैं? इस तरह आपको शिशुओ में भी यौन जीवन का अस्तित्व नही मानना पड़ेगा जो हमारी भावनाओ के लिए इतना अरुचिकर है।" इसका मैं यही उत्तर दे सकता हू कि मुझे शरीर के अगो मे उत्पन्न सुख के विरुद्ध कुछ नही कहना है। मै यह जानता हू कि मैथुन या लैंगिक ऐक्य का सर्वोपरि सुख भी एक शारीरिक सुख ही है, जो जननेन्द्रिय की चेष्टा से पैदा होता है। पर क्या आप मुझे बता सकते हैं कि यह शारीरिक सुख, जो शुरू में निष्काम होता है, कब यौन रूप प्राप्त करता है?—परिवर्धन की अन्तिम कलाओ में तो इसका यौन रूप असन्दिग्ध रूप से होता है। क्या हम इन 'अग-सुख' के बारे में यौन प्रवृत्ति की अपेक्षा अधिक जानते हैं? आप कहेंगे कि इसमें यौन रूप तब आ जाता है जब जननेन्द्रिया अपना कार्य करने लगती हैं, यौन प्रवृत्ति या कामुकता का अर्थ सिर्फ 'जननेन्द्रिय

---

1. Infantilism.

से सम्वद्ध' है । आप विकृतियो की रुकावट को भी यह कहकर पार कर जाएगे कि उनमें से अधिकतर में जननेन्द्रियो का सुखोत्तेजन होता है, यद्यपि वह जननेन्द्रियो के ऐक्य के अलावा दूसरे उपायो से पैदा किया जाता है। यदि आप यौन प्रवृत्ति की आवश्यक विशेपताओ में से प्रजनन से इसके सम्वन्ध को निकाल दें, क्योकि विकृतियो के होने के कारण यह विचार सत्य नही सिद्ध होता, और इसके बदले जननेन्द्रियो की चेष्टा पर अधिक बल दें तो सचमुच आप बहुत अधिक अच्छी स्थिति में होगे । पर तब हममें बहुत अधिक मतभेद नही रहेगा । मामला सिर्फ यह रह जाएगा कि—जननेन्द्रिय **बनाम** दूसरे अग । अब आपके पास अधिक मात्रा में मिलने वाले ऐसे साक्ष्य का क्या उत्तर है कि परितुष्टि के प्रयोजन के लिए जननेन्द्रियो के स्थान पर, जैसा कि सामान्य चुम्बन में होता है या आवारा जीवन के विकृत कर्मो या हिस्टीरिया के लक्षणो में होता है, अन्य अग आ जाते हैं । इस स्नायु-रोग में प्राय ऐसा होता है कि उद्दीपन घटनाए, सवेदन, स्नायु-उद्दीपन[1] और खडा होने या दृढीकरण के प्रक्रम भी, जो असल में जननेन्द्रिय से सम्वन्ध रखते हैं, अपना स्थान छोडकर शरीर के दूसरे दूर के क्षेत्रो पर पहुच जाते हैं (उदाहरण के लिए उनका नीचे से ऊपर सिर और चेहरे पर विस्थापन हो जाता है) । इस प्रकार आप देखेंगे कि जिन बातो को आप यौन प्रवृत्ति की आवश्यक विशेपताए बताते हैं उनमें से कुछ भी नही बचा और आपको मेरा अनुसरण करके 'यौन' या 'कामुक' के अन्तर्गत बिलकुल बचपन के उन व्यापारो को भी रखना होगा जिनका उद्देश्य 'अग-सुख' होता है।

अब मैं अपने दृष्टिकोण की समर्थक दो और बातें पेश करूगा । जैसा कि आप जानते हैं, हम बिलकुल बचपन की उन सदिग्ध और अनिर्देश्य चेष्टाओ को, जो सुख के लिए की जाती हैं, यौन या कामुक कहते हैं, क्योकि लक्षणो का विश्लेषण करते हुए हम ऐसी सामग्री से उन तक पहुचते हैं जिसके यौन होने से इन्कार नही किया जा सकता । हम मानते हैं कि इतनी ही बात से उनका भी यौन हो जाना आवश्यक नही, पर एक वैसा ही उदाहरण लीजिए । मान लीजिए कि दो द्विबीज पत्री पादपो[2]—सेव और मटर—को उनके बीज से परिवर्धन देखने का कोई तरीका नही है, पर इन दोनो में ही पूर्ण परिवर्धित पादप से पीछे की ओर चलते हुए दो बीज पत्रो वाले प्रथम नवोद्भिज[3] तक इसका परिवर्धन[4] देखा जा सकता है । इन दोनो बीज पत्रो में कोई फर्क नही है। दोनो पादपो में वे एक-से लगते हैं। क्या इससे मैं यह निष्कर्ष निकाल लू कि वे वास्तव में एक-से हैं और सेव के पेड और मटर के पौदे में जो भेद दिखाई देते हैं, वे पादप के बाद के परिवर्धन में पैदा होते हैं, अथवा, क्या जैविकीय दृष्टि से यह मानना अधिक ठीक नही है कि यह अन्तर नवोद्भिजो

---

१ Innervation २ Dicotyledonous plants ३ Seedling
४ Development

में पहले ही मौजूद है यद्यपि मैं उसे बीज-पत्रो मे नही देख सकता ? यही बात हम तब करते है जब शिशु की सुखकर चेष्टाओ को यौन बताते हैं। प्रत्येक अग-सुख को यौन या कामुक कहा जा सकता है या नही, अथवा यौन सुख के अलावा कोई और भी ऐसा सुख है या नही, जो इस नाम से न पुकारा जा सकता हो ?—इस प्रश्न का विवेचन मैं यहा नही कर सकता। अग-सुख और इसके लिए आवश्यक दशाओ के बारे मे मैं बहुत कम जानता हू और मुझे जरा भी आश्चर्य नही है कि विश्लेषण के पीछे की ओर चलने के कारण मैं अन्त में ऐसे कारको पर पहुचता हू जिनका इस समय सुनिश्चित वर्गीकरण सम्भव नही।

एक बात और। अब तक आपको अपनी इस स्थापना के लिए कि बच्चे यौन दृष्टि से शुद्ध होते हैं, कोई खास चीज़ नही मिली, चाहे आप मुझसे यह मनवा ले कि शिशु की चेष्टाओ को यौन या कामुक न माना जाता तो अच्छा रहता। कारण कि तीसरे वर्ष से तो बच्चे में यौन जीवन शुरू हो जाने के बारे में कोई सदेह ही नही है। इस समय जननेन्द्रियो मे उत्तेजन के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं। शायद शिशु-हस्तमैथुन का अर्थात जननेन्द्रियो से परितुष्टि पाने का एक सभवत अनिवार्य समय है। अब यौन जीवन के मानसिक और सामाजिक पहलुओ की उपेक्षा नही की जा सकती आलम्बन का चुनाव, विशेष व्यक्तियो मे अनुराग, और एक या दूसरे लिंग वाले में प्रीति तथा ईर्ष्या, मनोविश्लेषण के समय से पहले भी निष्पक्ष प्रेक्षको ने स्वतत्र रूप से कार्य करते हुए निश्चायक रूप से सिद्ध कर दी थी। हर कोई प्रेक्षक, जो अपनी आखो का प्रयोग करे, इनकी पुष्टि कर सकता है। आप कहेगे कि हमने अनुराग जल्दी पैदा हो जाने में कभी सदेह नही किया। हमने तो सिर्फ इस बात पर सदेह किया है कि यह अनुराग 'यौन' प्रकार का है। तीन और आठ वर्षों के बीच की आयु वाले बालक निश्चित रूप से अनुराग के यौन तत्व को छिपाना सीख जाते है, पर फिर भी, यदि आप ध्यान से देखें तो आपको इस अनुराग के 'ऐन्द्रिक' प्रकार का होने की काफी गवाही मिल जाएगी, और यदि तब भी कोई बात आपके ध्यान में आने से रह जाएगी तो उसकी पूर्ति विश्लेषण की जाच-पडताल से बहुत अच्छी तरह हो जाएगी। जीवन के इस काल मे यौन उद्देश्य उसी समय पैदा होने वाले यौन कुतूहल से, जिसका कुछ वर्णन मैंने किया है, बहुत नजदीकी सम्बन्ध रखते हैं। इनमें से कुछ उद्देश्यो का विकृत स्वरूप बालक के अप्रौढ शरीर का स्वाभाविक परिणाम है, जिसे अभी सम्भोग के उद्देश्य या लक्ष्य का पता नही चला है।

छठे या आठवें वर्ष से आगे यौन परिवर्धन में स्थिरता या ह्रास दिखाई देता है—बहुत ऊचे सांस्कृतिक स्तर वाले बालकों में इसे गुप्तता-काल कहना उचित होगा, पर यह गुप्तता-काल नही भी आ सकता है, और यह भी आवश्यक नही कि सारे क्षेत्र में यौन चेष्टाओ और यौन दिलचस्पियो में व्याघात हो। तब गुप्तता-

काल से पहले होने वाले अधिकतर मानसिक अनुभव और उत्तेजन शैशवीय स्मृति-व्यवधान या स्मृति-नाश से, जिसपर पहले विचार किया जा चुका है, पराजित हो जाते हैं, जो हमारे आरम्भिक बचपन को हमसे छिपा लेता है, और हमें इसके लिए अपरिचित बना देता है। प्रत्येक मनोविश्लेषण का कार्य है कि वह जीवन के इस भूले हुए काम को स्मृति में लाए। यह कल्पना बलात् होती है कि इस काल के यौन जीवन के आरम्भिक अश ही इस भूलने के प्रेरक कारण होते हैं, अर्थात् यह विस्मरण दमन का परिणाम होता है। तीसरे वर्ष से बालको के यौन जीवन में वयस्को के यौन जीवन से बहुत समानता दिखाई देती है। इसमें वयस्को के यौन जीवन से, जैसा कि हम पहले ही जानते हैं, यह भिन्नता होती है कि इसमें जननेन्द्रियो की प्रधानता वाले स्थायी सगठन का अभाव होता है, विकृत प्रकार के अनिवार्य रूप होते हैं और सारे आवेग में तीव्रता की बहुत कमी होती है। पर यौन परिवर्धन की, या जिसे हम आगे **राग-परिवर्धन** या **लिबिडो-परिवर्धन** कहेंगे, उसकी वे कलाए, जो सिद्धान्तत सबसे अधिक दिलचस्पी की हैं, इस काल से पहले होती हैं। यह परिवर्धन इतनी तेज़ गति से होता है कि शायद सिर्फ प्रत्यक्ष प्रेक्षण से इसके जल्दी-जल्दी बदलते हुए रूपो का निर्धारण करने में कभी सफलता नही हो सकती। स्नायु-रोगो की मनोविश्लेषण द्वारा जाच से इतनी दूर पीछे तक जाना और राग-परिवर्धन की और भी पहले वाली कलाओ को खोजना सम्भव हुआ है। निश्चित ही ये कलाए सैद्धान्तिक निर्मिति मात्र हैं, पर मनोविश्लेषण के अभ्यास से आप देखेंगे कि वे आवश्यक और मूल्यवान् निर्मितिया हैं। आप शीघ्र ही समझ जाएगे कि यह कैसे होता है कि रोग की दशाओ में हम वे घटनाए देख लेते हैं जिन्हें प्रकृत दशाओ में निश्चित रूप से उपेक्षित कर देते हैं।

इस प्रकार अब हम यह बता सकते हैं कि जननेन्द्रिय क्षेत्र की प्रधानता से पहले बालक का यौन जीवन कौन-कौन-से रूप लेता है। इस प्रधानता की तैयारी शुरू के शैशव काल में, गुप्तता-काल से पहले, होती है, और तरुणावस्था में स्थायी रूप से सगठित हो जाती है। इस आरम्भिक काल में एक ढीला-ढाला सगठन होता है जिसे हम **प्राग् जननेन्द्रिय**[1] कहेंगे, क्योकि इस काल में सबसे अधिक प्रमुख जननेन्द्रियो की घटक-निसर्ग-वृत्तिया नही होती, बल्कि **पीडकतोषीय** और **गुदीय** निसर्ग-वृत्तिया होती हैं। अभी पुल्लिग और स्त्रीलिग के भेद का कोई महत्व नही होता। इसके बजाय **सक्रिय** और **निष्क्रिय** का विभेद होता है, जिसे यौन ध्रुवत्व का पूर्ण रूप कहा जा सकता है, जिसके साथ बाद में यह जुड भी जाता है। इस काल में हमें जननेन्द्रिय कला के दृष्टिकोण से देखने पर जो चीज पुल्लिग प्रतीत होती है, वह आधिपत्य[2] के आवेग की अभिव्यक्ति सिद्ध होती है, जो आसानी से

---

१. Pre-genital २ Mastery

क्रूरता में परिवर्तित हो जाती है। निष्क्रिय उद्देश्य वाले आवेगों का सम्बन्ध गुदा के कामजनक क्षेत्र से होता है, जो इस समय बहुत महत्वपूर्ण होता है। दर्शनेच्छा और कुतूहल के आवेग बड़े प्रबल और सक्रिय होते हैं। जननेन्द्रिय यौन जीवन में वास्तव में इतना ही हिस्सा लेती है कि वह पेशाब विसर्जित करती है। इस काल में घटक-निसर्ग-वृत्तियों को आलम्बनों की कमी नही होती, पर आवश्यक नही कि ये सब आलम्बन एक आलम्बन मे शामिल हो। पीडकतोपीय-गुदीय सगटन जननेन्द्रिय क्षेत्र की प्रधानता की कला से ठीक पहले वाली अवस्था होती है। बारीकी से अध्ययन करने पर पता चलता है कि इसका कितना अश बाद के अन्तिम ढाचे में, जैसे का तैसा कायम रहता है और किन मार्गों से ये घटक-निसर्ग-वृत्तिया नए **जननेन्द्रिय संगठन** के हित-साधन के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। राग-परिवर्धन की पीडकतोपीय-गुदीय कला के पीछे हमे परिवर्धन की उससे भी आदिम अवस्था की झाकी मिलती है, जिसमें कामजनक मुखक्षेत्र का कार्य मुख्य होता है। आप यह अनुमान कर सकते है कि (सिर्फ सुख के लिए) चूसने का यौन व्यापार इस अवस्था से ही सम्बन्ध रखता है, और आप उन प्राचीन मिस्रवासियों की समझ की प्रशंसा करेंगे जिन्होंने होरस देवता को भी मुख मे उगली डाले हुए चित्रित किया है। अब्राहम ने हाल में ही अपना गवेषण कार्य प्रकाशित किया है, जिसमें यह दिखाया गया है कि परिवर्धन की इस आदिम **मुखीय** अर्थात् मुख सम्बन्धी कला के अवशेष बाद के वर्षों के यौन जीवन में भी बचे रहते हैं।

मै अच्छी तरह कल्पना कर सकता हू कि यौन सगठन के बारे में यह जानकारी आपको ज्ञानवर्धक के बजाय कष्टदायक लगी होगी। शायद मैं फिर बहुत विस्तार मे चला गया, पर जरा धीरज रखिए। जो कुछ अभी बताया गया है, वह बाद में अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। इस समय आप यह बात ध्यान में रखिए कि यौन जीवन—जिसे हम **राग-कार्य**[1] या लिबिडो-कार्य कहते हैं—अपने अन्तिम रूप में ही पहली बार नहीं पैदा होता, और न वह अपने सबसे पहले वाले रूपो के मार्गों पर फैल जाता है, बल्कि उत्तरोत्तर कलाओं की एक श्रेणी में से गुजरता है जो एक दूसरे से भिन्न होती है। सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इसमें उसी तरह बहुत-से परिवर्तन होते हैं जैसे कीडे (कैटरपिलर) से तितली बनने में। इस परिवर्धन का मोड़-बिन्दु है **सब यौन घटक-निसर्ग-वृत्तियों का जननेन्द्रिय क्षेत्र की प्रधानता के अधीन हो जाना**, और इसके साथ-साथ, यौन प्रवृत्ति या कामुकता को प्रजनन कार्य के हित-साधन में नियुक्त कर लेना। कहा जा सकता है कि इससे पहले यौन-जीवन असम[2] या स्वच्छन्द होता है—अकेले घटक-आवेगों की स्वतन्त्र चेष्टाए अलग-अलग अंग-सुख (शरीर के किसी अग से सुख) पाने का यत्न करती है। इन

---

1 Libido function 2. Disparate

अराजकता को **प्राग्** जननेन्द्रिय 'सगठनो' की कोशिशो द्वारा सुधारा जाता है, इन सगठनो से पहले मुख्य कला पीडकतोषीय-गुदीय कला है और उससे पहले मुख वाली कला है जो शायद सबसे आदिम है। इसके अलावा, और अनेक प्रक्रम, जिनके बारे में अभी विशेष जानकारी नही है, सगठन की एक अवस्था से उससे ऊपर वाली अगली अवस्था में सक्रमण कराते है। राग या लिबिडो के परिवर्धन की इतनी सारी अवस्थाओ की यह लम्बी यात्रा स्नायु-रोगो को समझने में किस तरह सहायक है, यह हम आगे चलकर देखेंगे।

आज हम इस परिवर्धन के दूसरे पहलू, अर्थात् यौन घटक-आवेगो का **आलम्बन** से सम्बन्ध, पर कुछ विचार करेंगे या यो कहिए कि हम इस परिवर्धन की सरसरी झाकी देखेंगे जिससे हम बाद में मिलने वाले इसके परिणाम पर अधिक अच्छी तरह विचार कर सकें। यौन निसर्ग-वृत्ति के कुछ घटक-आवेगो का बिलकुल शुरू से कोई आलम्बन होता है और वे इसे कसकर पकडे रहते है ये आवेग है आधिपत्य (पीडकतोप), देखना (दर्शनेच्छा) और कुतूहल। दूसरे आवेगो का, जो शरीर के खास कामजनक क्षेत्रो से अधिक साफ तौर से सम्बन्धित होते है शुरू में सिर्फ तबतक एक आलम्बन होता है जबतक वे अ-यौन कार्यो पर निर्भर रहते है, और जब वे इनसे अलग हो जाते है तब वे उसे छोड देते है। इस प्रकार, यौन निसर्ग-वृत्ति के मुखीय घटक का पहला आलम्बन माता का स्तन है, जो शिशु की पोपण की जरूरत पूरी करता है। 'चूसने के लिए चूसने' के कार्य में काम-घटक, जो पोषण के लिए चूसते हुए भी परितुष्ट होता था, स्वतत्र हो जाता है, बाहरी व्यक्ति में रहने वाले आलम्बन को छोड देता है, और इसके स्थान पर शिशु के अपने शरीर के एक हिस्से को अपना आलम्बन बना लेता है। मुखीय आवेग **आत्मकामुक** बन जाता है, जैसे कि गुदीय और दूसरे कामजनक आवेग शुरू से होते है। आगे के परिवर्धन को अधिक से अधिक सक्षेप में रखा जाए तो उसके दो लक्ष्य होते है पहला, आत्मकामुकता को छोडना, शिशु के अपने शरीर मे प्राप्त आलम्बन को फिर त्याग कर बाहरी आलम्बन ग्रहण करना, और दूसरा, पृथक् आवेगो के बहुत-से आलम्बनो को इकट्ठा मिला देना और उनके स्थान पर सिर्फ एक आलम्बन ग्रहण करना। स्वभावत यह बात तभी हो सकती है यदि वह अकेला आलम्बन भी अपने आप में पूरा हो, और उसका भी आश्रय के शरीर की तरह शरीर हो, ऐसा करने के लिए यह भी आवश्यक है कि आत्मकामुक आवेग-उत्तेजनो के कुछ हिस्से को बेकार मानकर छोड दिया जाए।

आलम्बन जिन प्रक्रमो मे प्राप्त किया जाता है, वे कुछ उलझनदार है और उनका अभी तक अच्छा खुलासा नही हो सका। हमारे प्रयोजन के लिए इस बात पर बल दिया जा मकता है कि जब बचपन के वर्षो में, गुप्तताकाल से पहले, प्रक्रम एक निश्चित स्थान पर पहुच जाता है, तब अपनाया गया आलम्बन मुखीय

मुख्य-आवेग के प्रथम आलम्बन से, जिसे बालक ने उससे निर्भरता का सम्बन्ध होने के कारण अपनाया था, प्राय: अभिन्न सिद्ध होता है, अर्थात् यह माता होती है, यद्यपि माता का स्तन नहीं। माता को हम पहला **प्रेम-आलम्बन** कहते हैं। 'प्रेम' हम तब कहते हैं जब यौन आवेगों के मानसिक पहलू पर बल देते हैं, और आवेगों के आधारभूत शारीरिक या 'ऐन्द्रिक' पहलू की आवश्यकताओं को छोड़ देते हैं, या जरा देर के लिए भूल जाना चाहते हैं। जिस समय माता प्रेम-आलम्बन बन जाती है, लगभग उसी समय बालक में दमन की मानसिक प्रक्रिया शुरू हो चुकी होती है और उसके यौन उद्देश्यों के कुछ हिस्से का ज्ञान उससे छीन लिया जाता है। प्रेम आलम्बन के लिए इस प्रकार माता को चुनने के साथ वे सब बातें जुड़ी हुई हैं जो **ओडिपस ग्रन्थि** या मातृप्रणय-ग्रन्थि[1] के नाम से पुकारी जाती हैं, जिनका स्नायु-रोगों की मनोविश्लेषणीय व्याख्या में इतना अधिक महत्व हो गया है और शायद मनोविश्लेषण का विरोध पैदा करने में भी जिसका इतना ही महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है।

एक छोटी-सी घटना है जो इस युद्ध के दिनों में हुई थी। मनोविश्लेषण का एक कट्टर अनुयायी पोलैंड के मोर्चे पर डाक्टर के रूप में काम कर रहा था। उसके दूसरे सहयोगियों का यह देखकर उसकी ओर ध्यान खिंचा कि कई बार वह किसी-किसी रोगी पर अप्रत्याशित प्रभाव डाल देता था। पूछने पर उसने माना कि मैं मनोविश्लेषण की विधियों का प्रयोग करता हूं और वह अपने सहयोगियों को अपना ज्ञान देने को तैयार हो गया। इस प्रकार, उसके दल के चिकित्सक अधिकारी, उसके सहयोगी और अफसर, हर सायंकाल मनोविश्लेषण के रहस्यों को समझने के लिए इकट्ठे होने लगे। कुछ समय तक सब ठीक चलता रहा, पर जब उसने अपने श्रोताओं को ओडिपस ग्रन्थि का परिचय दिया, तब एक बड़ा अफसर खड़ा हो गया, और उसने कहा कि 'मैं इन सब बातों को नहीं मानता, और बहादुर लोगों को, जो परिवारों के पिता हैं और अपने देश की खातिर लड़ रहे हैं, ऐसी बातों पर व्याख्यान देना नीच कार्य है,' और उसने व्याख्यान जारी रहने पर रोक लगा दी। इस प्रकार उसका अन्त हो गया, विश्लेषक को मोर्चे के दूसरे हिस्से पर भेज दिया गया। पर मेरी राय में, यदि जर्मन सेना की विजय विज्ञान की ऐसी दलबन्दी पर निर्भर है तो उसका भविष्य अच्छा नहीं और ऐसी किसी दलबन्दी से जर्मन विज्ञान समृद्ध नहीं होगा।

अब आप यह जानने के लिए अधीर होंगे कि इस भयानक ओडिपस ग्रन्थि में क्या-क्या बात आती है। राजा ओडिपस की ओर पुराणों में जो कथा आती है, उससे आप परिचित होंगे—ओडिपस के विषय में यह भविष्यवाणी की गई थी कि

---

1 Oedipus complex

वह अपने पिता को मारेगा और अपनी माता से विवाह करेगा। उसने इन भविष्य-वाणियो को झूठा सिद्ध करने की भरसक कोशिश की, और जब उसे यह पता चला कि उसने अज्ञान में ये दोनो अपराध कर लिए है, तब दण्ड के रूप में उसने अपने आपको अन्धा कर लिया। इसीलिए इसे ओडिपस ग्रन्थि कहा जाता है। मै समझता हू कि सोफोक्लीज ने इस कहानी से जो दुखान्त नाटक बनाया है, उसका गहरा प्रभाव आपने स्वय अनुभव किया होगा। इस यूनानी कवि की रचना में ओडिपस के कार्य का, जो बहुत पहले किया जा चुका था, क्रमश उद्घाटन किया गया है, और पूछताछ के प्रसग को बडी कुशलता से लम्बा करके, और उसे लगातार नए साक्ष्य से पुष्ट करके धीरे-धीरे सामने रखा गया है, इस प्रकार, यह कुछ-कुछ मनोविश्लेषण के तरीके जैसा है। सवाद में, भ्रम में पडी हुई माता-पत्नी जोकास्टा इस पूछताछ को जारी रखने का विरोध करती है। वह कहती है कि स्वप्नो में बहुत-से लोगो ने अपनी माताओ से सम्भोग किया है, पर स्वप्नो का कोई महत्व नही है। हमारे लिए स्वप्नो का बहुत महत्व है, विशेष रूप से प्ररूपिक स्वप्नो का, जो बहुत-से लोगो को आते है। हमें कुछ भी सन्देह नही कि जोकास्टा जिस स्वप्न की बात कहती है, उसका पौराणिक आख्यान की भयकर कहानी से गहरा सम्बन्ध है।

यह आश्चर्य की बात है कि सोफोक्लीज के दुखान्त नाटक से उसके श्रोताओ में रोषपूर्ण विरोध नही पैदा होता। उनमें यह प्रतिक्रिया पैदा होना अधिक उचित होता, जो कि उस मन्द बुद्धि सैनिक डाक्टर में पैदा हुई थी, क्योकि मूलत यह अनैतिक नाटक है। यह सामाजिक नियम के प्रति मनुष्य की जिम्मेदारी को दूर कर देता है, और यह दिखलाता है कि दैवी बलो के विधान से यह अपराध होता है, और मनुष्य की नैतिक निसर्ग-वृत्ति, जो इस अपराध से उसकी रक्षा करती, शक्तिहीन हो जाती है। यह मानना आसान है कि पौराणिक आख्यान की कथा में भाग्य और देवताओ को दोष देने का आशय मौजूद रहा होगा, बुद्धिवादी यूरीपिडीज की रचना में, जो दैवी शक्तियो का विरोधी था, यह चीज सम्भवत ऐसा दोषारोपण बन जाती, पर धर्मप्राण सोफोक्लीज के साथ ऐसे आशय का प्रश्न ही नही पैदा होता। उसकी धार्मिक भावना देवताओ की इच्छा के पालन को सबसे ऊची नैतिकता बताती है, यहा तक कि जब वे अपराध का विधान करें, तब भी, और इस तरह वह इस दोष का भागी नही बनाया जा सकता। मै यह नही समझता कि उस नाटक का यह सदेश भी उसकी एक अच्छाई है, पर इससे उसके प्रभाव में कमी भी नहीं होती। इससे श्रोता उदासीन बना रहता है। वह इसपर कोई प्रतिक्रिया नहीं करता, बल्कि स्वय पौराणिक कथा के गूढ अर्थ और वस्तु पर इस तरह प्रतिक्रिया करता है, मानो आत्मविश्लेषण करके उसने अपने भीतर ओडिपस ग्रन्थि का पता लगा लिया है, और यह मान लिया है कि देवताओ की इच्छा और भविष्य-

वाणी मेरे ही अचेतन का गरिमा से ढका हुआ रूप है, मानो उसे यह याद आ गया है कि उसमें अपने पिता को खत्म कर देने और उनकी जगह अपनी माता से विवाह करने की इच्छा थी, और उसे इस विचार से घृणा करनी चाहिए। कवि के शब्दों का उसे यह अर्थ प्रतीत होता है "आप व्यर्थ ही अपने को दोषी होने से इन्कार करते हैं, आप व्यर्थ ही यह बताते हैं कि आपने इन बुराइयों से बचने की कितनी कोशिश की, इसलिए आप अपराधी हैं, क्योंकि आप उन्हें दूर नहीं कर सके, वे अब भी अचेतन रूप में आपके भीतर मौजूद हैं।" और इसमें मनोवैज्ञानिक सत्य है। यद्यपि मनुष्य ने अपनी दूषित इच्छाओं का दमन करके उन्हें अपने अचेतन में भेज दिया है और तब वह खुशी से अपने मन में कहता है कि अब मैं उनके लिए उत्तरदायी नहीं, तो भी उसे इस रूप में अपनी जिम्मेदारी महसूस करनी पड़ती है कि उसके हृदय में एक ऐसी अपराध-भावना है जिसकी उसे कोई बुनियाद नहीं दिखाई देती।

इस बात में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि स्नायु-रोगियों को प्रायः तंग करने वाली अपराध-भावना के सबसे महत्वपूर्ण स्रोतों में से एक ओडिपस ग्रन्थि है। इसके अतिरिक्त एक और बात है. मैंने १९१३ में **टौटेम अंड टेबू** (Totem und Tabu) शीर्षक एक अध्ययन प्रकाशित किया था, जिसमें धर्म और नैतिकता के प्राचीनतम रूपों का परिचय था। उसमें मैंने यह आशंका प्रकट की थी कि शायद सारी मनुष्य जाति की अपराध-भावना, जो सारे धर्म और नैतिकता का मूल स्रोत है, इतिहास के आरम्भ में ओडिपस ग्रन्थि के द्वारा ही प्राप्त की गई होगी। मैं इस विषय में आपको बहुत कुछ बताना चाहता हूं, पर अच्छा यह होगा कि न बताऊं। इस विषय को एक बार शुरू करके छोड़ देना कठिन है, और अब हमें फिर व्यष्टि मनोविज्ञान पर लौट आना चाहिए।

तो गुप्तता-काल से पहले वाले आलम्बन-चुनाव के काल में बालकों के सीधे प्रेक्षण से ओडिपस ग्रन्थि के बारे में हमें क्या पता चलता है? आसानी से दीख जाता है कि वह, जहां शिशु पुरुष अपनी सारी की सारी माता को अपने लिए ही चाहता है, अपने पिता को इसमें बाधक देखता है, जब पिता को उसका आलिंगन करते देखता है, तब बेचैन हो जाता है और जब पिता बाहर चला जाता है या अनुपस्थित होता है, तब वह अपना सन्तोष जाहिर करता है। वह अपनी भावनाएं सीधे तौर से शब्दों में प्रायः प्रकट करता है, अपनी माता से वचन देता है कि मैं तेरे साथ विवाह करूंगा, ओडिपस के कृत्यों की तुलना में यह बात कुछ बड़ी नहीं प्रतीत होगी, पर तथ्य की दृष्टि से यह काफी है, दोनों का सार एक ही है। बहुत बार प्रेक्षण में यह देखकर पहेली-सी लगने लगती है कि इस काल में वही बालक किसी समय पिता के लिए बड़ा अनुराग प्रदर्शित करेगा, पर भावना की ऐसी विषम, या ठीक-ठीक कहा जाए तो उभयक[1] एक जगह मौजूद अर्थात् विपरीत भावनाओं

[1] Ambivalent

की अवस्थाए, जो वयस्को में सघर्ष पैदा कर देंगी, बालको में बहुत समय तक एक साथ आराम से रह सकती है, जैसे कि वे बाद में अचेतन में स्थायी रूप से इकट्ठी रहती है। यह आक्षेप किया जा सकता है कि छोटे बच्चे का व्यवहार अहकार से प्रेरित है, और उसमें कामुकता-ग्रथि का अवधारण उचित नही। माता बालक की सब आवश्यकताओ का ध्यान रखती है, और परिणामत बच्चे का हित इस बात में है कि वह और किसीकी ओर ध्यान न दे। यह भी बिलकुल सही है, पर शीघ्र ही यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी निर्भरता की स्थितियो की तरह इसमें भी अहकारमूलक हितो से सिर्फ वह अवसर प्रस्तुत होता है, जिससे कामुकता-आवेग लाभ उठाते है। जब छोटा बालक अपनी माता के बारे मे बिलकुल खुले आम यौन कुतूहल प्रकट करता है, रात मे उसके साथ सोना चाहता है, उसके कपडे बदलते समय उसी कमरे में रहने का आग्रह करता है, और उससे शारीरिक काम-चेष्टाओ की भी कोशिश करता है, जिन्हें माता प्राय देखती है और हसते हुए औरो को सुनाती है, तब उसके प्रति इस आसक्ति का कामुकरूप असदिग्धरूप से सिद्ध हो जाता है। इसके अतिरिक्त, यह नही भूलना चाहिए कि इस तरह छोटी पुत्री की आवश्यकताए पूरी करके भी माता यही परिणाम पैदा करती है, और प्राय पिता लडके के लिए उतनी ही तकलीफ उठाने में माता के साथ उत्साह से होड करता है, पर उसकी नजरो में वही महत्व पाने में असफल रहता है, जो माता को प्राप्त है। सक्षेप में, लिंग-पसन्दगी वाली बात कितनी भी आलोचनाओ द्वारा वस्तुस्थिति में से हटाई नही जा सकती। लडके की अहकारमूलक दिलचस्पी की दृष्टि से,यह कोरी मूर्खता होगी कि वह अपनी सेवा सिर्फ एक व्यक्ति के बजाए दोनो व्यक्तियो से कराने को तैयार न हो।

जैसा कि आप देखते है, मैने लडके के अपने पिता और माता से सम्बन्ध का ही वर्णन किया है। आवश्यक उलट-फेर के साथ ठीक यही बात छोटी लडकियो मे चलती है। पिता से प्रेमपूर्ण अनुराग, अनावश्यक माता को हटाने और उसका स्थान ग्रहण करने की आवश्यकता, तरुणावस्था में होने वाले हाव-भावो और लीला का शुरू में ही प्रदर्शन—ये सब बातें मिलकर छोटी लडकी का विशेष रूप से मोहक चित्र बना देती है, और हम इसकी गम्भीरता और इस स्थिति से बाद मे पैदा हो सकने वाले गम्भीर परिणामो को भूल जाते है। यह बात और कह दी जाए कि बहुत बार बालक में ओडिपस ग्रन्थि पैदा करने मे स्वय माता-पिता का ही सबसे निश्चायक प्रभाव पडता है। वे स्वय, एक से अधिक बालक होने पर, लिंग-आकर्षण से प्रभावित होते है—पिता अपनी छोटी लडकी के प्रति असदिग्ध रूप में प्यार प्रदर्शित करता है और माता पुत्र के प्रति, पर इस बात से भी शैशवीय ओडिपस ग्रथि की स्वयस्फूर्तता पर गम्भीर आक्षेप नही आता। जब और बच्चे हो जाते है, तब ओडिपस ग्रथि विस्तृत हो जाती है, और वह परिवार-ग्रथि बन

जाती है। अहंकारमूलक दिलचस्पियों को लगने वाले आघात से नया बल पाकर यह इन नए बच्चों के प्रति अरुचि की भावना और फिर उनसे छुटकारा पाने की निःसंकोच इच्छा पैदा करती है। ये घृणा की भावनाएं साधारणतया जनकीय ग्रंथि[1] से सम्बन्धित घृणा-भावनाओं की अपेक्षा अधिक खुले आम प्रकट की जाती हैं। यदि यह इच्छा पूरी हो जाए और कुछ समय बाद परिवार में अनचाही वृद्धि मृत्यु के कारण हट जाए, तो बाद के विश्लेषण में पता चलेगा कि बालक के लिए इस मृत्यु का भी कितना अर्थ था, यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि इसकी याद उसे बनी रहे। दूसरे शिशु के पैदा हो जाने के कारण पहले बालक को मजबूरन दूसरे स्थान पर हटना पडता है, और अब पहली बार वह माता से प्रायः पूरी तरह अलग हो जाता है। इसलिए इस तरह अपने अलग कर दिए जाने को माफ कर देना उसके लिए बडा कठिन है। उसमें वैसी ही भावनाएं पैदा हो जाती हैं जिन्हें वयस्कों में हम 'गहरी कटुता की भावना' कहते हैं, और प्रायः वे अस्थायी वैमनस्य का आधार बन जाती हैं। यह पहले ही बताया जा चुका है कि यौन कुतूहल और इसके बाद की सब बातों का प्रायः इन अनुभवों से सम्बन्ध होता है। जब ये नए भाई और बहन बडे होते हैं तब उनके प्रति बालक के रुख में बहुत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो जाते हैं। लडका अपनी निष्ठाहीन माता के स्थान पर अपनी बहन को प्रेम आलम्बन बना सकता है, जहां एक छोटी बहन को आकृष्ट करने वाले कई भाई होते हैं, वहां बालकपन में ही विरोधपूर्ण प्रतिस्पर्धा पैदा हो जाती है, जो बाद के जीवन में बडे महत्त्व की सिद्ध होती है। छोटी लडकी अपने से बडे भाई को पिता का स्थानापन्न बना लेती है, क्योंकि पिता अब उससे बचपन के जैसा प्यार नहीं करता, या वह किसी छोटी बहन को उस शिशु का स्थानापन्न बना लेती है जो वह अपने पिता से पाना चाहती थी, पर न पा सकी।

यह और इसी तरह की अन्य बहुत-सी बातें बालकों के सीधे प्रेक्षणों से और बचपन की स्पष्ट स्मृतियों पर विचार करने से बिना विश्लेषण के दिखाई देती हैं। आप इनसे, और बातों के अलावा, यह अनुमान भी कर सकते हैं कि भाइयों और बहनों के क्रम में बालक की जो स्थिति है, वह उनके बाद के जीवन के लिए बहुत अधिक अर्थपूर्ण है, जिस पर प्रत्येक जीवन-चरित्र में विचार करना चाहिए, पर इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आसानी से प्राप्त होनेवाली इन ज्ञानवर्धक बातों को सुनकर आप निषिद्ध सम्भोग[2] का निषेध होने के कारणों के वैज्ञानिक सिद्धान्तों को याद करके मुस्करा पडेंगे। इनके लिए क्या-क्या उपाय नहीं सोचे गए? हमें बताया जाता है कि एक परिवार में विपरीत लिङ्ग के सदस्यों में यौन आकर्षण इसलिए हट जाता है कि वे बिलकुल बचपन से इकट्ठे रहते हैं, या अन्तरभिजनन

---

1 Parental complex 2 Incest

के विरुद्ध जैविकीय प्रवृत्ति जैसी प्रवृत्ति के कारण मन में निषिद्ध सम्भोग का भय होता है। इस तरह सोचते हुए यह बिलकुल भुला दिया जाता है कि यदि निषिद्ध सम्भोग के प्रलोभन के विरुद्ध कोई विश्वसनीय प्राकृतिक रुकावटें होती तो कानून और रूढि में ऐसे प्रबल निषेधो की आवश्यकता न रहती। सचाई बिलकुल इसके विपरीत है। मनुष्य जाति में आलम्बन का पहला चुनाव सदा निषिद्ध सम्भोगवाला ही होता है। पुरुषो के लिए वह माता और बहन होती है, और इस चली आनेवाली शैशवीय प्रवृत्ति को कार्यरूप में परिणत होने से रोकने के लिए बहुत कठोर निषेधो की आवश्यकता होती है। आज जो जगली और आदिम जातिया मौजूद है, उनमें निषिद्ध सम्भोग विषयक निषेध हमारे यहा से बहुत अधिक कठोर है। थियोडोर-रीक ने हाल में ही एक बहुत उत्तम पुस्तक में यह बताया है कि तरुणावस्था या प्रौढता पर जगली लोगो में होनेवाले कर्मकाण्ड का, जो द्वितीय जन्म को निरूपित करता है, अर्थ है माता के प्रति बालक की निषिद्ध सभोगात्मक आसक्ति को शिथिल कर देना और पिता के साथ उसका फिर मेल-मिलाप करा देना।

पौराणिक साहित्य से पता चलता है कि जिस निषिद्ध सम्भोग से मनुष्य इतनी घृणा प्रदर्शित करते है, उसकी उन्होने अपने देवताओ को बिना विचारे छूट दे रखी है, और प्राचीन इतिहास से आपको पता चलेगा कि बहन के साथ निषिद्ध सम्भोगात्मक विवाह राजाओ (मिस्र के फारो, और पेरू के इनका) के लिए धार्मिक कर्तव्य बताया गया था। इसलिए यह एक तरह का विशेषाधिकार था जो आम लोगो को नही दिया गया था।

ओडिपस का एक अपराध था माता के साथ निषिद्ध सम्भोग और दूसरा था पिता की हत्या। प्रसगत , टोटेमवाद, जो मनुष्य जाति की पहली सामाजिक-धार्मिक सस्था है, उन्हे सबसे बडा अपराध मानता है। अब बालको के प्रत्यक्ष प्रेक्षण को छोडकर वयस्क स्नायु-रोगियो की मनोविश्लेषण सम्बन्धी जाच की ओर आइए। विश्लेषण से ओडिपस ग्रन्थि के बारे में और क्या जानकारी मिलती है? यह बताया जाता है कि ग्रन्थि ठीक उसी रूप में प्रकट होती है जिस रूप में वह पौराणिक कथा में बताई गई है। यह पता चलता है कि इन स्नायु-रोगियो में से प्रत्येक व्यक्ति या तो स्वय ओडिपस था, और या ग्रन्थि से उत्पन्न प्रतिक्रिया में 'हैमलेट' बन गया था, जो एक ही बात है। सचाई यह है कि विश्लेषण से ओडिपस ग्रन्थि का जो चित्र सामने आता है, वह शैशवीय रेखाचित्र का बडा और गहरा सस्करण ही होता है, अब पिता से घृणा और उसके मर जाने की इच्छा धुधला सकेतमात्र नही रहती। माता के प्रति अनुराग मुखर हो जाता है, जिसका उद्देश्य उसे अपनी स्त्री बनाना होना है। क्या भावनाओ के इस भद्देपन और तीव्रता का कारण सचमुच बच्चे की नासमझी की उम्र को बताया जा सकता है, अथवा क्या विश्लेषण एक नया कारक पेश करके हमें धोखे में डाल रहा है? इन दोनो में से एक का भी पता लगाना

कठिन नही। जब कभी कोई व्यक्ति भूतकाल का वर्णन करता है, चाहे वह इतिहास-कार्य ही हो, तब हमे उन सब बातो को भी देखना पडता है, जिन्हे वह ऐसा आशय न रखते हुए भी, वर्तमान और बीच के कालो मे भूतकाल में डाल देता है, और इस तरह उसे मिथ्या बना देता है। स्नायु-रोगी के मामले मे यह भी सदिग्ध है कि यह प्रतिवर्तन[1] सर्वथा बिना आशय के होता है। आगे चलकर हम देखेंगे कि इसके लिए भी प्रेरक कारण होते है, और हमें 'प्रतीपगामी[2] कल्पना-निर्माण' के सारे विषय पर खोज करनी चाहिए, जो सुदूर भूतकाल तक जाता है। हमें यह भी शीघ्र ही पता चल जाता है कि पिता के विरुद्ध घृणा बाद के कालो में पैदा हुए कई प्रेरक कारणो से और जीवन के अन्य सम्बन्धो से पुष्ट हुई है, और माता के प्रति यौन इच्छाए ऐसे रूपो मे ढल गई हैं जो अब तक बच्चे के लिए अपरिचित होते। पर यदि हम सारी ओडिपस ग्रन्थि की व्याख्या 'प्रतिगामी कल्पना-निर्माण' से और जीवन के बाद के काल में पैदा होनेवाले प्रेरको से करने की कोशिश करेंगे, तो वह निष्फल होगी। शैशवकाल का नाभिक[3], और इसमें जो कुछ अभिवृद्धि हुई हो, वह जैसे के तैसे बने रहते हैं, जिसकी पुष्टि बालको के प्रत्यक्ष प्रेक्षण से होती है।

अब हमारे लिए वह चिकित्सा सम्बन्धी तथ्य सबमे अधिक व्यावहारिक महत्व का हो जाता है जो विश्लेषण द्वारा सिद्ध ओडिपस ग्रन्थि के रूप के पीछे से हमारे सामने आता है। हमे पता चलता है कि प्रौढता के समय जब यौन निसर्ग-वृत्ति सबसे पहले अपनी आवश्यकताए पूरी ताकत से पेश करती है, तब पुरानी परिचित निषिद्ध सम्भोगात्मक वस्तु राग या लिबिडो से ढके हुए रूप में पुनः ग्रहण की जाती है, मानो शैशव काल का आलम्बन-चुनाव खेल में किया गया एक विनोदात्मक यत्न था, पर इसने प्रौढता के आलम्बन-चुनाव के लिए दिशा निश्चित कर दी। इस समय ओडिपस ग्रन्थि की दिशा में या इसके विरोध में भावना का बडा तीव्र प्रवाह सक्रिय हो जाता है, पर क्योंकि उन भावनाओं की मानसिक पूर्वावस्थाए असह्य हो गई हैं, इसलिए ये भावनाए अधिकाशत चेतन के बाहर ही रहती हैं। प्रौढता या तरुणावस्था के समय से मनुष्य को जनकों से अपने आपको स्वतन्त्र करने के भारी काम मे लगाना पडता है, और इस आसक्ति को छोड देने के बाद ही उसका बालकपन खतम हो सकता है, और इस प्रकार वह सामाजिक समुदाय का सदस्य बन सकता है। पुत्र के लिए यह कार्य है कि वह अपनी रागात्मक अभिलाषाओं को अपनी माता से हटा ले, जिससे वह उनका उपयोग यथार्थ रूप मे एक बाहरी प्रेम-आलम्बन की खोज मे कर सके; और दूसरे, यदि वह अपने पिता का विरोधी रहा है, तो उसके साथ मेल कर ले, या यदि शैशव काल के विद्रोह की प्रतिक्रिया के रूप में वह उसके अधीन हो गया है, या उसका गायनमान बन गया है, तो उसके आधिपत्य से अपने को मुक्त कर ले। ये कार्य प्रत्येक पुरुष के लिए है,

1. Retroversion 2 Retrogressive. 3. Nucleus

के विरुद्ध जैविकीय प्रवृत्ति जैसी प्रवृत्ति के कारण मन में निषिद्ध सम्भोग का भय होता है। इस तरह सोचते हुए यह बिलकुल भुला दिया जाता है कि यदि निषिद्ध सम्भोग के प्रलोभन के विरुद्ध कोई विश्वसनीय प्राकृतिक रुकावटें होती तो कानून और रूढि में ऐसे प्रबल निषेधो की आवश्यकता न रहती। सचाई बिलकुल इसके विपरीत है। मनुष्य जाति में आलम्बन का पहला चुनाव सदा निषिद्ध सम्भोगवाला ही होता है। पुरुषो के लिए वह माता और बहन होती है, और इस चली आनेवाली शैशवीय प्रवृत्ति को कार्यरूप में परिणत होने से रोकने के लिए बहुत कठोर निषेधो की आवश्यकता होती है। आज जो जगली और आदिम जातिया मौजूद हैं, उनमें निषिद्ध सम्भोग विषयक निषेध हमारे यहा से बहुत अधिक कठोर हैं। थियोडोर-रीक ने हाल में ही एक बहुत उत्तम पुस्तक में यह बताया है कि तरुणावस्था या प्रौढता पर जगली लोगो में होनेवाले कर्मकाण्ड का, जो द्वितीय जन्म को निरूपित करता है, अर्थ है माता के प्रति बालक की निषिद्धसभोगात्मक आसक्ति को शिथिल कर देना और पिता के साथ उसका फिर मेल-मिलाप करा देना।

पौराणिक साहित्य से पता चलता है कि जिस निषिद्ध सम्भोग से मनुष्य इतनी घृणा प्रदर्शित करते हैं, उसकी उन्होने अपने देवताओ को विना विचारे छूट दे रखी है, और प्राचीन इतिहास से आपको पता चलेगा कि बहन के साथ निषिद्ध सम्भोगात्मक विवाह राजाओ (मिस्र के फारो, और पेरू के इनका) के लिए धार्मिक कर्तव्य बताया गया था। इसलिए यह एक तरह का विशेषाधिकार था जो आम लोगो को नही दिया गया था।

ओडिपस का एक अपराध था माता के साथ निषिद्ध सम्भोग और दूसरा था पिता की हत्या। प्रसगत , टौटेमवाद, जो मनुष्य जाति की पहली सामाजिक-धार्मिक सस्था है, उन्हें सबसे बडा अपराध मानता है। अब बालको के प्रत्यक्ष प्रेक्षण को छोडकर वयस्क स्नायु-रोगियो की मनोविश्लेषण सम्बन्धी जाच की ओर आइए। विश्लेषण से ओडिपस ग्रन्थि के बारे में और क्या जानकारी मिलती है? यह बताया जाता है कि ग्रन्थि ठीक उसी रूप में प्रकट होती है जिस रूप में वह पौराणिक कथा में बताई गई है। यह पता चलता है कि इन स्नायु-रोगियो में से प्रत्येक व्यक्ति या तो स्वय ओडिपस था, और या ग्रन्थि से उत्पन्न प्रतिक्रिया में 'हैमलेट' बन गया था, जो एक ही बात है। सचाई यह है कि विश्लेषण से ओडिपस ग्रन्थि का जो चित्र सामने आता है, वह शैशवीय रेखाचित्र का बडा और गहरा सस्करण ही होता है, अब पिता से घृणा और उसके मर जाने की इच्छा धुधला सकेतमात्र नही रहती। माता के प्रति अनुराग मुखर हो जाता है, जिसका उद्देश्य उसे अपनी स्त्री बनाना होता है। क्या भावनाओ के इस भद्देपन और तीव्रता का कारण सचमुच बच्चे की नासमझी की उम्र को बताया जा सकता है, अथवा क्या विश्लेषण एक नया कारक पेश करके हमें धोखे में डाल रहा है? इन दोनो में से एक का भी पता लगाना

कठिन नहीं। जब कभी कोई व्यक्ति भूतकाल का वर्णन करता है, चाहे वह इतिहास-कार्य ही हो, तब हमें उन सब बातों को भी देखना पड़ता है, जिन्हें वह ऐसा आशय न रखते हुए भी, वर्तमान और बीच के कालों से भूतकाल में डाल देता है, और इस तरह उसे मिथ्या बना देता है। स्नायु-रोगी के मामले में यह भी संदिग्ध है कि यह प्रतिवर्तन[1] सर्वथा बिना आशय के होता है। आगे चलकर हम देखेंगे कि इसके लिए भी प्रेरक कारण होते हैं, और हमें 'प्रतीपगामी[2] कल्पना-निर्माण' के सारे विषय पर खोज करनी चाहिए, जो सुदूर भूतकाल तक जाता है। हमें यह भी शीघ्र ही पता चल जाता है कि पिता के विरुद्ध घृणा बाद के कालों में पैदा हुए कई प्रेरक कारणों से और जीवन के अन्य सम्बन्धों से पुष्ट हुई है, और माता के प्रति यौन इच्छाएं ऐसे रूपों में ढल गई हैं जो अब तक बच्चे के लिए अपरिचित होते। पर यदि हम सारी ओडिपस ग्रन्थि की व्याख्या 'प्रतिगामी कल्पना-निर्माण' से और जीवन के बाद के काल में पैदा होनेवाले प्रेरकों से करने की कोशिश करेंगे, तो वह निष्फल होगी। शैशवकाल का नाभिक[3], और इसमें जो कुछ अभिवृद्धि हुई हो, वह जैसे के तैसे बने रहते हैं, जिसकी पुष्टि बालकों के प्रत्यक्ष प्रेक्षण से होती है।

अब हमारे लिए वह चिकित्सा सम्बन्धी तथ्य सबसे अधिक व्यावहारिक महत्व का हो जाता है जो विश्लेषण द्वारा सिद्ध ओडिपस ग्रन्थि के रूप के पीछे से हमारे सामने आता है। हमें पता चलता है कि प्रौढ़ता के समय जब यौन निसर्ग-वृत्ति सबसे पहले अपनी आवश्यकताएं पूरी ताकत से पेश करती है, तब पुरानी परिचित निषिद्ध सम्भोगात्मक वस्तु राग या लिबिडो से ढके हुए रूप में पुनः ग्रहण की जाती है, मानो शैशव काल का आलम्बन-चुनाव खेल में किया गया एक विनोदात्मक यत्न था, पर इसने प्रौढ़ता के आलम्बन-चुनाव के लिए दिशा निश्चित कर दी। इस समय ओडिपस ग्रन्थि की दिशा में या इसके विरोध में भावना का बड़ा तीव्र प्रवाह सक्रिय हो जाता है, पर क्योंकि उन भावनाओं की मानसिक पूर्वावस्थाएं असह्य हो गई हैं, इसलिए ये भावनाएं अधिकांशतः चेतन के बाहर ही रहती हैं। प्रौढ़ता या तरुणावस्था के समय से मनुष्य को जनकों से अपने आपको स्वतन्त्र करने के भारी काम में लगाना पड़ता है, और इस आसक्ति को छोड़ देने के बाद ही उसका बालकपन खत्म हो सकता है, और इस प्रकार वह सामाजिक समुदाय का सदस्य बन सकता है। पुत्र के लिए यह कार्य है कि वह अपनी रागात्मक अभिलाषाओं को अपनी माता से हटा ले, जिससे वह उनका उपयोग यथार्थ रूप में एक बाहरी प्रेम-आलम्बन की खोज में कर सके, और दूसरे, यदि वह अपने पिता का विरोधी रहा है, तो उसके साथ मेल कर ले, या यदि शैशवकाल के विद्रोह की प्रतिक्रिया के रूप में वह उसके अधीन हो गया है, या उसका साधनमात्र बन गया है, तो उसके आधिपत्य से अपने को मुक्त कर ले। ये कार्य प्रत्येक पुरुष के लिए हैं,

---

१. Retroversion २. Retrogressive. ३ Nucleus

पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि वे आदर्श रूप में बहुत कम उदाहरणो में पूर्ण किए जाते हैं, अर्थात् ऐसा बहुत कम होता है कि वे मनोवैज्ञानिक और सामाजिक दृष्टि से सन्तोषजनक रीति से हल हो जाए। पर स्नायु-रोगियो में जनको से यह अलगाव बिलकुल भी नही हो पाता। पुत्र सारे जीवन अपने पिता की अधीनता में रहता है, और अपने राग को किसी नए यौन आलम्बन पर स्थानान्तरित करने में असमर्थ होता है। इससे उलटे सम्बन्ध में यही अवस्था पुत्री की होती है। इस अर्थ मे ओडिपस ग्रन्थि को स्नायु-रोगो का साररूप समझना उचित ही है।

आप कल्पना कर सकते है कि मै ओडिपस ग्रन्थि के साथ सम्बद्ध बहुत सारे सम्बन्ध-सूत्रो की, जो व्यवहार और सिद्धान्त की दृष्टि से बडे महत्व के है, कितनी अधूरी रूपरेखा दे रहा हू। मै इसके परिणमनो[1] (या विभिन्न रूपो) और सम्भव अपवर्तनो[2] की जरा भी चर्चा नही करूगा। इसके जरा दूर के परिणमनो में से सिर्फ एक की चर्चा करना चाहता हू, जिससे यह सिद्ध होता है कि इसने साहित्य-सृजन को बहुत ही अधिक प्रभावित किया है। औटो रैंक ने एक बहुत मूल्यवान गवेषण कार्य में यह दिखाया है कि सब युगो के नाटक-लेखको ने अपनी सामग्री मुख्यत ओडिपस तथा निषिद्ध सम्भोग-ग्रन्थि और इसके परिणमनो तथा छिपे हुए रूपो से ली है। यह कह देना भी उचित होगा कि मनोविश्लेपण के समय से बहुत पहले ओडिपस के दोनो दण्डनीय अपराध असयत निसर्ग-वृत्ति की सच्ची अभिव्यक्तिया माने जाते थे। एन्साइक्लोपीडिया-लेखक डिडेरो की प्रतियो में आपको वह प्रसिद्ध सवाद **ल नेव्यू द रामो** (Le neveu de Rameau) मिलेगा, जिसका गेटे जैसे साहित्यकार ने जर्मन भाषा में अनुवाद किया था। उसमें आपको ये विलक्षण शब्द पढने को मिलेंगे "यदि इस छोटे-से जगली का बल चले, यदि उसकी विमूढता प्रतिरूप मे मौजूद हो, और यदि उसमें दुधमुहे बच्चे जितनी भी समझ हो और साथ ही तीस वर्ष के युवक बराबर प्रबल वासनावेश भी हो तो वह अपने पिता की गर्दन मरोड देगा और अपनी माता से सभोग करेगा।"

एक चीज और है जिसे मै नही छोड सकता। ओडिपस की माता-पत्नी से हमें स्वप्नो का स्मरण आएगा। क्या आपको स्वप्न-विश्लेपणो के परिणाम अभी याद है? किस तरह स्वप्न-निर्माण करने वाली इच्छाए प्राय विकृत और निषिद्ध-सम्भोगात्मक सिद्ध हुई थी या उनमें निकट के और प्रिय सम्बन्धियो के प्रति अनाशकित शत्रुता दिखाई दी थी? तब हमने भावना के इन दूषित प्रयत्नो के स्रोत को बिना व्याख्या किए छोड दिया था। अब आप स्वय इस प्रश्न का उत्तर दे सकते है। वे राग या लिबिडो के विन्यास[3] और आलम्बनो पर राग का आच्छादन[4] है, जो बिलकुल बचपन के काल से सम्बन्ध रखते है, और बहुत समय से चेतन जीवन

---

१ Variations २ Inversions ३ Dispositions ४ Investments

में त्यागे जा चुके हैं, पर जो रात में अब भी अपनी मौजूदगी सिद्ध कर देते है, और एक अर्थ में, कार्य करने मे समर्थ हैं। पर क्योकि इस तरह विकृत निषिद्ध सम्भोगात्मक हत्या वाले स्वप्न सब लोगो को आते हैं, और सिर्फ स्नायु-रोगियो को नही आते, इसलिए हम यह अनुमान कर सकते हैं कि जो लोग आज प्रकृत है, वे ओडिपस ग्रन्थि की विकृतियो और आलम्बन-आच्छादनो मे से गुजर चुके है, और यह ही प्रकृत परिवर्धन का रास्ता है। इतनी ही बात है कि जो चीज हमे प्रकृत लोगो के स्वप्न-विश्लेषणो मे भी प्रकट होती दिखाई देती है, वह स्नायु-रोगियो में बडे अतिरंजित रूप में होती है, और यह भी एक कारण है जिससे हमने स्नायविक लक्षणो पर विचार करने से पहले स्वप्नो का अध्ययन करना उचित समझा था।

परिवर्धन और प्रतिगमन के अनेक पहलू : *कारणता

जैस कि हम देख चुके है राग-कार्य प्रकृत कहलाने वाली रीति से प्रजनन-कार्य का सहायक बनने से पहले एक लम्बे परिवर्धन में से गुजरता है। अब मै स्नायु-रोगो के कार्य-कारण-सम्बन्ध में इस तथ्य का महत्व बताऊगा।

मै समझता हू कि यह मान्यता साधारण रोग-विज्ञान के सिद्धान्तो के अनुसार ही है कि ऐसे परिवर्धन में दो खतरे रहते है पहला **निरोध**[1] का और दूसरा **प्रतिगमन**[2] का। कहने का मतलब यह कि जैविकीय प्रक्रमो में परिणमन या भिन्नता होने की व्यापक प्रवृत्ति के कारण यह आवश्यक है कि इन सब प्रारम्भिक कलाओ को उतनी ही सफलता से पार नही किया जा सकेगा और उतने ही पूर्णरूप से उनसे आगे वृद्धि नही हो सकेगी। कार्य के कुछ हिस्से इन आरम्भिक अवस्थाओ में स्थायी रूप से अवरुद्ध हो जाएगे, जिसका परिणाम यह होगा कि साधारण परिवर्धन के साथ थोडा-सा निरुद्ध परिवर्धन भी चलता जाएगा।

दूसरे क्षेत्रो मे इन प्रक्रमो जैसे प्रक्रम खोजने चाहिए। जब कोई सारी की सारी जाति अपने वासस्थान को छोडकर नए देश की खोज में निकलती थी, जैसा कि मानव इतिहास के आरम्भिक काल में बहुत होता था, तब वे सबके सब लोग निश्चित ही नई मजिल पर नही पहुचते थे। और कारणो से होनेवाली हानियो के अलावा, सदा ऐसा भी अवश्य हुआ होगा कि देश छोडने वाले लोगो के छोटे-छोटे समूह या टोलिया रास्ते में रुक गई होगी, और पडावो पर ही बस गई होगी, जब कि शेष लोग आगे चलते गए होगे। या एक और अधिक पास का-सा दृश्य लीजिए। आप जानते है कि ऊचे स्तन्यपायियो में वीर्य-ग्रथिया, जो शुरू में उदर-विवर में बहुत नीचे होती है, गर्भाशय के अन्दर होने वाले परिवर्धन के एक निश्चित काल पर मच-

---

* Aetiology [1] Inhibition [2] Regression

लन करने लगती है, जिससे वे श्रोणि[1] के सिरे की त्वचा के लगभग नीचे आ जाती है। कुछ नरों में यह देखा जाता है कि अंगों की इस जोड़ी में से एक श्रोणि-विवर मे रह गई है, या इसने इग्वाइनल कैनाल (वक्षण नाली) मे, जिसमे से इन दोनो को गुजर कर आना था, एक ने अपना स्थायी स्थान बना लिया है, अथवा यह होता है कि नाली जो प्रकृत रूप मे वीर्य-ग्रन्थियो के इसमें से गुजर जाने के बाद बन्द हो जानी चाहिए, बन्द नही हुई है। जब छात्रावस्था में बी० ब्रुक की देख-रेख में वैज्ञानिक गवेषणा का पहला काम कर रहा था, तब मै एक छोटी मछली की, जो अभी बड़े आद्य या अति प्राचीन रूप में थी, मेरु-रज्जु (स्पाइनल कौर्ड) मे पृष्ठीय स्नायु-मूलों (डौर्सल नर्व-रूट्स) के उद्गम पर कार्य कर रहा था। मैंने देखा कि इन मूलो के स्नायु-तंतु भूरे द्रव्य (ग्रे मैटर) के पश्च सींग (पोस्टीरियर हार्न) पैदा होते थे—यह अवस्था अब दूसरे पृष्ठवंशियो (वर्टेब्रेट्स) में नहीं पाई जाती, पर कुछ ही समय बाद मैंने देखा कि वैसी ही स्नायु-कोशिकाएं (नर्व-सेल्स) पश्च मूलों की तथा-कथित स्पाइनल गैंगलियोन (मेरु-प्रगंड) की सारी लम्बाई पर भूरे द्रव्य से बाहर भी मौजूद थी, जिससे मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि हरे गैंगलियोन की कोशिकाएं स्नायु-मूलों के साथ-साथ मेरु-रज्जु (स्पाइनल कौर्ड) से बाहर चली गई हैं। विकासात्मक परिवर्धन (एवोल्यूशनरी डेवलपमेंट) से भी यह बात मालूम होती है, पर इस छोटी-सी मछली में सारे रास्ते पर वे कोशिकाएं मौजूद थी, जो रास्ते मे रुद्ध[2] हो गई थी। बारीकी से विचार करने पर आपको तुरन्त पता चल जाएगा कि इन तुलनाओं में कहां-कहां कमजोरियां हैं। इसलिए मैं सिर्फ इतना कहता हूं कि हमारी राय में यह हो सकता है कि प्रत्येक पृथक यौन-आवेग के एकाकी अंश परिवर्धन की किसी आरम्भिक अवस्था में रहे हों, जबकि उसी समय इनके दूसरे अंश अपने अन्तिम उद्देश्य पर पहुंच गए हों। इससे आपको पता चलेगा कि ऐसे प्रत्येक आवेग को हम जीवन के आरम्भ मे निरन्तर बहती हुई धारा मानते हैं, और हमने इसके प्रवाह को कृत्रिम रूप से, पृथक, क्रमिक तथा अग्रगामी गचलनों मे कुछ सीमा तक विभाजित कर दिया है। आपकी यह धारणा नही है कि इन मान्यताओं का और स्पष्टीकरण होना चाहिए, पर अधिक स्पष्टीकरण की कोशिश से हम अपने विषय मे बहुत बाहर चले जाएंगे; इस समय हम आरम्भिक अवस्था में घटक-आवेग में होनेवाले इस रोध या रुकावट को (आवेग की) बद्धता कहेंगे।

क्रमिक अवस्थाओं मे होने वाले परिवर्धन में इस तरह का जो दूसरा खतरा है, उसे हम प्रतिगमन कहते हैं। ऐसा भी होता है कि जो अंश आगे बढ़ चुके हैं, वे पीछे की ओर लौटकर इन पहले वाली अवस्थाओं में आ जाते हैं। आवेग को

---

1 Pelvic 2. Arrested

इस तरह **प्रतिगमन करने** का मौका तब मिलेगा जब इसके बाद वाले और अधिक परिवर्धित रूप में होने वाले कार्य पर शक्तिशाली बाहरी रुकावटें आएगी जो इसे अपने सन्तुष्टि के उद्देश्य पर पहुचने से रोक देंगी । बद्धता और प्रतिगमन एक दूसरे से स्वतन्त्र नही होते। परिवर्धन के मार्ग मे बद्धताए जितनी सबल होगी, उतनी ही आसानी से कार्य बाहरी रुकावटो से पराजित हो जाएगा, और वह प्रतिगमन करके उन बद्धताओ पर आ जाएगा, अर्थात् परिवर्धित कार्य अपने मार्ग की बाहरी रुकावटो का प्रतिरोध करने में उतना ही असमर्थ होगा। यदि आप अपना देश छोड़कर जाने वाली किसी जाति पर विचार करे, जिसके बहुत-से लोग रास्ते के पडावो पर रह गए है, तो आप देखेंगे कि आगे जाने वाले लोग जब पराजित हो जाएगे, या उन्हे जब बहुत बलवान-शत्रु से मुकाबला पडेगा, तब वे स्वभावत लौटकर इन पडावो पर आश्रय लेंगे और फिर वे अपने में से जितने अधिक लागो को पीछे छोड गए होगे, उनके उतनी ही जल्दी पराजित होने का खतरा रहेगा।

स्नायु-रोगो को समझने के लिए यह आवश्यक है कि आप बद्धता और प्रतिगमन का यह सम्बन्ध ध्यान मे रखें। इस प्रकार आपको एक ऐसा निश्चित आधार मिल जाएगा जिसपर खडे रहकर आप स्नायु-रोगो के कारण-कार्य-प्रक्रम या उनकी कारणता का पता लगा सकेंगे, जिस पर हम शीघ्र ही विचार करेंगे।

फिलहाल हम प्रतिगमन के प्रश्न पर विचार करेंगे। राग या लिबिडो के परिवर्धन के बारे में जो कुछ कहा जा चुका है, उसे सुन लेने के बाद आप दो प्रकार के प्रतिगमन की कल्पना कर सकते है राग से आच्छादित प्रथम आलम्बनो पर लौट आना, जिनके विपय में हम यह जानते है कि उनका रूप निपिद्ध सम्भोगात्मक होता है, और सारे यौन सगठन का पहले वाली अवस्थाओ में लौट आना। स्थानान्तरण स्नायु-रोगो में ये दोनो प्रकार के प्रतिगमन होते हैं, और उनके तत्र में ये महत्वपूर्ण कार्य पूरा करते है, विशेप रूप से, राग या लिविडो के प्रथम निपिद्ध सम्भोगात्मक आलम्वनो पर वापसी एक ऐसी विशेषता है जो स्नायु-रोगियो में बिलकुल नियमित रूप से पाई जाती है। यदि स्नायु-रोगो के एक दूसरे समूह—जिसे स्वरतिक[1] कहते है, अर्थात् वे स्नायु-रोग जिनमें अपने शरीर के अगो से यौन परितुष्टि की जाती है—पर भी विचार किया जाए तो राग के प्रतिगमन के बारे में और बहुत कुछ कहना होगा। पर इस समय हमारा ऐसा विचार नही है। इन रोगो से राग-कार्य के परिवर्धन प्रक्रमो के बारे में ऐसे निष्कर्ष निकलते है, जिनका अभी हमने उल्लेख नही किया, और प्रतिगमन के नए प्ररूप भी सामने आते हैं, जो उनमे सजग होते है। पर मैं समझता हू कि यहा यह चेतावनी दे देना उचित होगा कि आप प्रतिगमन और दमन में स्पष्ट रूप से विवेक करें, और एक के स्थान पर दूसरे को न

---

१ Narcissistic

समझ लें, और इन दोनो प्रक्रमो के संबध के बारे मे आपके मन में स्पष्ट धारणाएं बनाने में मैं आपकी सहायता करूंगा। आपको याद होगा कि **दमन** वह प्रक्रम है जिसके द्वारा चेतन होने में समर्थ (अर्थात् पूर्वचेतन संस्थान में रहने वाला) मानसिक कार्य अचेतन बना दिया जाता है, और अचेतन संस्थान में धकेल दिया जाता है, और तब भी **दमन** कहलाता है जब अचेतन मानसिक कार्य को साथवाले पूर्व चेतन संस्थान में बिलकुल नही घुसने दिया जाता, बल्कि सेंसरशिप द्वारा देहली पर से पीछे लौटा दिया जाता है। इसलिए '**दमन**' के अवधारण का यौन प्रवृत्ति या कामुकता से कोई सम्बन्ध-सूत्र नही है। कृपा करके इस बात को सावधानी से गाठ बाध लीजिए। यह शुद्ध रूप से एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रम को सूचित करता है, और इसे **स्थान-वृत्तीय प्रकम**[1] कहना और भी अधिक ठीक होगा, जिसका अर्थ यह है कि यह उन अवकाशीय सम्बन्धो से वास्ता रखता है जिनको हम मन के भीतर मानते हैं और यदि सिद्धान्त-निर्माण में इन स्थूल सादृश्य-कल्पनाओ को छोड दिया जाए तो हम यह कहेंगे कि दमन शब्द का सम्बन्ध पृथक् मनोधात्वीय[2] संस्थानो में से सिर्फ मानसिक उपकरणो की संरचना से सम्बन्ध रखता है।

ऊपर प्रस्तुत की गई तुलनाओ से पता चला कि 'प्रतिगमन' शब्द का प्रयोग अब तक उसके सामान्य अर्थ में नही किया जा रहा था, बल्कि एक संकुचित अर्थ में किया जा रहा था। अगर आप इसका व्यापक अर्थ---अर्थात् साधारणतया परिवर्धन की ऊंची अवस्था से नीची अवस्था में लौट आना—लें, तब दमन भी प्रतिगमन के अन्तर्गत आ जाता है, क्योंकि यह भी कहा जा सकता है किसी मानसिक कार्य का, परिवर्धन की पहले वाली और निचली मंजिल पर प्रतिवर्तन, अर्थात् लौट आना, भी दमन है। फर्क सिर्फ इतना है कि दमन में इस प्रतिगमन की दिशा का हमारे लिए कोई महत्व नही है, क्योंकि हम इसे गतिकीय अर्थ में उस समय दमन भी कहते है, जब कोई मानसिक प्रक्रम निचली अचेतन अवस्था से चलने से पहले रोक दिया जाता है। इस प्रकार दमन एक स्थानवृत्तीय गतिकीय अवधारण है जबकि प्रतिगमन शुद्धरूप से वर्णनात्मक अवधारण है। पर अब तक जिस चीज़ को हमने 'प्रतिगमन' कहा है और बद्धता के साथ जिसके सम्बन्ध पर विचार किया है वह परिवर्धन में अपने पहले वाले पडावो पर **राग या लिबिडो** की वापसी को ही सूचित करना था, अर्थात् ऐसी चीज को सूचित करता था जो सारत: दमन से बिलकुल भिन्न और उससे बिलकुल स्वतंत्र है। राग के प्रतिगमन को हम शुद्धरूप से मनोधात्वीय प्रक्रम भी नहीं कह सकते, न हम यह जानते हैं कि मानसिक उपकरण में इसका स्थान कहा निर्दिष्ट करें, क्योंकि यद्यपि यह मानसिक जीवन पर बडा प्रबल

---

1 Topographical process २. Psychical

प्रभाव डाल सकता है, तो भी इसमें मस्तिष्क-क्षेत्रीय[1] कारक सबसे अधिक प्रमुख होता है।

इस तरह का विचार कुछ शुष्क-सा हो जाता है। इसलिए उसकी अधिक सजीव धारणा प्राप्त करने के लिए उसके कुछ रोग सम्बन्धी दृष्टान्त लिए जाए। आप जानते हैं कि स्थानान्तरण स्नायु-रोगो के समूह में मुख्यत हिस्टीरिया और मनोग्रस्तता-रोग आते हैं। हिस्टीरिया में राग का प्राथमिक निषिद्ध सम्भोगात्मक यौन आलम्बनो पर प्रतिगमन तो निस्सदेह सदा मिलता है, पर यौन सगठन की इससे पहली वाली मजिल पर इसका प्रतिगमन नही होता, या बहुत ही थोडा होता है। परिणामत हिस्टीरिया के तत्र में मुख्य कार्य दमन द्वारा किया जाता है। अब तक इस स्नायु-रोग की जो निश्चित जानकारी मिल चुकी है, उसके आधार पर स्थिति इस तरह बयान की जा सकती है जननेन्द्रिय क्षेत्र की प्रधानता में घटक-आवेगो का सायुज्यन[2] (अर्थात् मिलकर बिलकुल एक बन जाना) हो चुका है, पर इस एक्य के परिणामो का पूर्व चेतन सस्थान की, जिसके साथ चेतना जुडी हुई है, दिशा से प्रतिरोध होता है। इसलिए जननेन्द्रिय सगठन अचेतन के लिए तो ठीक बैठता है, पर पूर्व चेतन के लिए नही और पूर्व चेतन द्वारा इस अस्वीकृति के परिणामस्वरूप ऐसा चित्र बनता है जो जननेन्द्रिय क्षेत्र की प्रधानता से पहले वाली स्थिति से कुछ मिलता-जुलता है, पर असल में, यह बिलकुल भिन्न होता है। राग के दो प्रकार के प्रतिगमनो में से, जो प्रतिगमन यौन सगठन की पहले वाली कला पर होता है, वह अधिक महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि हिस्टीरिया में यह प्रतिगमन नही होता, और अभी हमारा स्नायु-रोगो का सारा अवधारण मुख्यत हिस्टीरिया के अध्ययन के द्वारा ही चल रहा है, जो समय की दृष्टि से पहले हुआ था, इसलिए राग-प्रतिगमन का महत्व दमन के महत्व से बहुत पीछे समझा जा सका। मुझे निश्चय है कि जब हम हिस्टीरिया और मनोग्रस्तता-रोग के अलावा अन्य स्व-रतिक स्नायु-रोगो पर भी विचार करेंगे, तब हमारे दृष्टिकोण और अधिक विस्तृत और परिवर्तित हो जाएगे।

दूसरी ओर, मनोग्रस्तता-रोग में राग का, पीडकतोपीय-गुदीय सगठन से पहले वाली अवस्था पर प्रतिगमन सबसे अधिक ध्यान खीचने वाला कारक है, और इसीसे यह निश्चित होता है कि लक्षण कौन-सा रूप ग्रहण करेंगे। तब प्रेम करने का आवेग अपने को अवश्य पीडातोपीय आवेग के नीचे छिपा लेगा। यह मनोग्रस्त विचार कि 'मैं तुम्हारी हत्या कर देना चाहता हू' (कुछ ऊपर चढे हुए अवयवो को अलग कर देने पर, जो असल में आकस्मिक नही होते, बल्कि इसके साथ अपरिहार्य रूप मे होते हैं) यही अर्थ सूचित करता है कि 'मैं तुम्हारे साथ प्रेम का आनद

---

१ Organic factor २ Fusion

लेना चाहता हू ।' इसके साथ जब आप यह विचार भी करते है कि उसी समय प्राथमिक आलम्बनो पर प्रतिगमन भी शुरू हो गया है, जिससे यह आवेग, सबसे निकट वाले और सबसे अधिक प्रिय व्यक्तियो से सम्बन्धित होता है, तब आप यह कल्पना कर सकते हैं कि इन मनोग्रस्त विचारो से रोगी में कितना भय पैदा होता होगा और साथ ही वे उसके चेतन के ज्ञान को कितने अकारण और अव्याख्येय मालूम होते होगे। पर इस स्नायु-रोग के क्रिया-विन्यास मे दमन का भी हिस्सा होता है और बहुत बडा हिस्सा होता है, पर उसे इस तरह के सरसरी तौर से किए जा रहे सर्वे में पेश नही किया जा सकता। बिना दमन के राग का प्रतिगमन कभी भी स्नायु-रोग पैदा नही करेगा—वह तो काम-विकृति में परिणत हो जाएगा। इससे आप समझ जाएगे कि दमन वह प्रक्रम है, जो स्नायु-रोगो का विशेष रूप से विवेक कराता है, और जिससे उन्हे सबसे अधिक अच्छी तरह पहचाना जा सकता है। परन्तु शायद मुझे किसी समय आपको यह बताने का मौका मिले कि काम-विकृतियो के क्षेत्र के बारे में हम क्या जानते हैं, और तब आप देखेंगे कि वहा भी गाडी उतनी आसानी से नही चलती, जितनी कि हम अपनी निर्मितियो मे कल्पित कर लेना चाहते हैं।

मुझे आशा है कि राग की बद्धता और प्रतिगमन के इस विवरण को आप तब आसानी से स्वीकार कर लेंगे जब आप यह समझेंगे कि यह स्नायु-रोगो की कारणता के अध्ययन की तैयारी है। अब तक मैंने आपको इस विषय में सिर्फ एक बात बताई है, और वह यह कि लोग स्नायु-रोग से तब पीडित होते हैं जब राग की सन्तुष्टि की सम्भाव्यता उनसे दूर कर दी जाए—अर्थात् वे 'कुंठा' या विफलता के परिणामस्वरूप रोगी होते हैं—और उनके लक्षण वास्तव में लुप्त सन्तुष्टि के स्थानापन्न हैं। इसका यह अर्थ नही है कि राग की सन्तुष्टि की प्रत्येक कुंठा प्रत्येक व्यक्ति को स्नायु-रोगी बना देती है। इसका इतना ही अर्थ है कि स्नायु-रोग के जितने उदाहरणो की जाच-पडताल की गई उन सबमें कुंठा का कारक प्रदर्शित किया जा सका। इसलिए इस कथन का विलोम सही नही है। आप अवश्य समझ गए होंगे कि इस कथन का आशय स्नायु-रोगो की कारणता का सारा रहस्य प्रकट करना नहीं है, बल्कि इसमे एक महत्वपूर्ण और सदा वर्तमान दशा पर ही बल दिया गया है।

अब इस बात पर आगे विचार करते हुए हम यह नहीं समझ पाते कि पहले कुंठा या विफलता के स्वरूप से शुरू करें या इससे प्रभावित व्यक्ति के अपने गुण से। ऐसा बहुत कम होता है कि यह कुंठा सर्वांगव्यापी और सर्वथा पूर्ण हो। सम्भवत: रोगजनक प्रभाव पैदा करने के लिए यह सन्तुष्टि के उसी रूप पर चोट करेगी जिसे वह व्यक्ति चाहता है, जो सन्तुष्टि वह प्राप्त कर सकता है। साधारणतया ऐसे बहुत-से तरीके हैं जिनसे रागात्मक सन्तुष्टियों के अभाव को, बिना रोगी हुए,

सहन किया जा सकता है। सबसे बडी बात यह है कि हम ऐसे लोगो को जानते है जो बिना किसी हानि के ऐसा निग्रह कर सकते है। वे उस समय खुश नही होते। वे असन्तुष्ट लालसा का कष्ट पाते है, पर वे बीमार नही पडते। इसलिए हमें यह निष्कर्ष निकालना पडता है कि यौन आवेग-उत्तेजनो में मानो निराली 'सुघट्यता'[१] अर्थात् लचीलापन होता है। उनमें से एक के स्थान पर दूसरा आ सकता है। यदि उनमें से एक की सन्तुष्टि वास्तव में नही हो सकती, तो दूसरे की सन्तुष्टि से पूर्ण भरपाई हो जाती है। वे तरल में भरी हुई सचार-नालियो के जाल की तरह एक दूसरे से सम्बन्धित होते है, और यह अवस्था जननेन्द्रिय की प्रधानता के अधीन रहने के बावजूद होती है—यह अवस्था ऐसी है जिसे आसानी से प्रतिबिंब के रूप में नही लाया जा सकता। इसके अलावा, यौन प्रवृत्ति की घटक-निसर्ग-वृत्तियो में और उस सयुक्त यौन आवेग में, जिसकी वे घटक होती है, अपना आलम्बन बदलने की बडी क्षमता होती है, इसे देकर दूसरा लेने, अर्थात् अधिक सुलभ आलम्बन ग्रहण करने की बडी क्षमता होती है। विस्थापन की यह क्षमता और स्थानापन्न को स्वीकार करने की तत्परता से कुठा के प्रभाव का एक प्रबल प्रतिप्रभाव अवश्य पैदा हो जाएगा। अभाव से पैदा होने वाली बीमारी से बचाने वाले इन प्रक्रमो में से एक प्रक्रम सस्कृति के परिवर्धन में एक विशेष महत्व प्राप्त कर चुका है—वह है यौन आवेग द्वारा घटक-आवेग की परितुष्टि रूप या प्रजनन की प्रासगिक परितुष्टि रूप, पहले गृहीत उद्देश्य का त्याग और एक नए उद्देश्य का ग्रहण—यह नया उद्देश्य प्रजनन-विज्ञान की दृष्टि से, पहले से सम्बन्धित तो है, पर इसे अब यौन या कामुक नही माना जा सकता, बल्कि इसके स्वरूप को सामाजिक कहना चाहिए। इस प्रक्रम को हम **उदात्तीकरण**[२] कहते है, और ऐसा कहकर हम साधारण प्रचलित मानदण्ड का ही समर्थन करते है, जो सामाजिक उद्देश्य को यौन (अन्तत स्वार्थपूर्ण) उद्देश्यो से ऊचा मानता है। प्रसगत, उदात्तीकरण यौन-आवेगो और दूसरे अ-यौन या निष्कर्ष-आवेगो के बीच मौजूद सम्बन्ध-सूत्रो की सिर्फ एक विशेष अवस्था है। इसपर हम एक और सिलसिले में विचार करेंगे।

अब आपके मन में यह धारणा होगी कि हमने सन्तुष्टि के अभाव को सहन करने के इतने सारे साधन मानकर इसे एक बहुत छोटी वस्तु बना दिया है, पर नही, यह बात नही है। इसमें इसकी रोगजनक शक्ति कायम रहती है। इसको सम्भालने के साधन सदा काफी नही होते। औसत मनुष्य अपने ऊपर असन्तुष्ट राग की जो मात्रा ले सकता है वह सीमित है। राग की सुघट्यता और स्वतत्र चलिष्णुता[३] हम सबमें पूरी-पूरी कायम नही रह पाती और उदात्तीकरण राग के कुछ ही अश को विसर्जित[४] कर सकता है। और इसके अलावा, तथ्य यह है कि

---

१ Plasticity २ Sublimation ३ Mobility ४ Discharge

बहुत-से लोगो में उदात्तीकरण की क्षमता बहुत ही कम होती है। इन परिसीमाओं में से सबसे महत्वपूर्ण परिसीमा स्पष्टत वह है जो राग की चलिष्णुता के बारे में है, क्योंकि वह मनुष्य को ऐसे उद्देश्यों और आलम्बनों की प्राप्ति तक सीमित कर देती है जिनकी संख्या बहुत ही थोडी है। जरा सोचिए कि राग के अधूरे परिवर्धन के पीछे, संगठन की पहले वाली कलाओं और आलम्बन-चुनाव के प्ररूपों पर बहुत विस्तृत (और कभी-कभी संख्या में भी बहुत अधिक) राग-बद्धताए रह जाती हैं जो अधिकतर वस्तु-जगत में सन्तुष्ट नही हो सकती। तब आप रागबद्धता को रोग पैदा करने मे कुंठा के साथ मिलकर कार्य करने वाला दूसरा शक्तिशाली कारक स्वीकार करेंगे। हम इसे विन्यास की दृष्टि से, संक्षिप्त करके, यह कह सकते हैं कि स्नायु-रोगो की कारणता में रागबद्धता भीतरी पूर्वप्रवृत्ति वाले कारक[1] को निरूपित करती है और कुंठा या विफलता बाहरी आकस्मिक कारक को।

मै यहा आपको यह चेतावनी दे दू कि इस बिलकुल अनावश्यक विवाद में आप कोई पक्ष न लें। वैज्ञानिक मामलो में आम तौर से लोग सत्य का एक पक्ष पकड लेते है, और इसी को सम्पूर्ण सत्य मानने लगते है और फिर सत्य के अंश के पक्ष में रहकर शेष सारे अंश के बारे मे जो स्वयं उतना ही सत्य होता है, विवाद किया करते हैं। इस तरह एक से अधिक टोली मनोविश्लेषण-आन्दोलन से पहले ही अलग हो चुकी है। उनमें से एक सिर्फ अहंकारमूलक आवेगो को मानती है, और यौन आवेगो का निषेध करती है। दूसरी टोली जीवन में हुए वास्तविक कार्यों का ही प्रभाव मानती है, और मनुष्य के पिछले जीवन का प्रभाव नही मानती। इसी तरह औरो के अलग-अलग विचार हैं। अब यहा एक और विवादग्रस्त प्रश्न है स्नायु-रोग बहिर्जात[2] रोग हैं या अन्तर्जात[3] ?—एक विशेष प्रकार की शारीरिक रचना का अनिवार्य परिणाम है या व्यक्ति के जीवन की कुछ हानिकारक (उपघातीय) घटनाओं से पैदा होते हैं ? खासतौर से, क्या वे राग की बद्धता और शेष यौन रचना के कारण पैदा होते हैं, या कुंठा अथवा विफलता के दबाव से होते हैं ? यह विवाद मुझे वैसा ही मालूम होता है जैसा यह विवाद कि बालक पिता के जनन-कार्य से पैदा होता है, या माता के गर्भधारण से। आप यही उत्तर देंगे, जो कि उचित है, कि दोनो अवस्थाए समान रूप से आवश्यक हैं। स्नायु-रोगो की आधारभूत अवस्थाएं भी, यदि बिलकुल वैसी नही तो भी उनसे मिलती-जुलती हैं। कारण-कार्य की दृष्टि से स्नायविक रोग के रोगी एक श्रेणी में आते हैं, जिसमें दो कारक—यौन रचना—और अनुभूत घटनाए; अथवा यदि आप इस तरह कहना चाहे, तो राग की बद्धता और कुंठा इस प्रकार निरूपित होती है कि जहा उनमें से एक की प्रधानता होती है, वहां दूसरा कारक उसी अनुपात में कम प्रभुत्व होता है। इस श्रेणी या शृंखला के एक सिरे

1 Predisposition 2 Exogenous 3. Endogenous

पर वे चरम रोगी हैं जिनके बारे में यह कहा जा सकता है ये लोग अपने विषम राग-परिवर्धन के कारण अवश्य रोगी होते, चाहे कुछ भी होता, चाहे वे कुछ भी अनुभव करते, चाहे जीवन उनके लिए कितना ही सुखद रहा होता। दूसरे सिरे पर वे रोगी हैं, जिनके लिए बिलकुल विपरीत राय बनेगी—यदि जीवन में उनपर अमुक-अमुक बोझ न पड़े होते तो वे अवश्य रोग से बच गए होते। इस श्रेणी या शृखला के मध्यवर्ती रोगो में रोगानुकूलता-कारक (यौन रचना) जीवन की हानिकर घटनाओ से कभी कम और कभी अधिक मात्रा में मिला रहता है। यदि उन्हें जीवन में अमुक-अमुक अनुभवो में से न गुजरना पड़ता तो उनकी यौन रचना से उन्हे स्नायु-रोग नही पैदा हुआ होता, और यदि राग की रचना दूसरे ढग से हुई होती तो जीवन के उतार-चढावो का उनपर उपघातज प्रभाव न पडा होता। इस शृखला में शायद मै यह स्वीकार कर सकता हू कि पूर्वप्रवृत्ति वाले कारक का प्रभाव कुछ अधिक होता है, पर यह बात भी इस बात पर निर्भर है कि स्नायु-रोग की सीमा-रेखा आप कहा खीचते हैं।

अब मेरा यह सुझाव है कि इस तरह की श्रेणी को हम **पूरक श्रेणी**[1] का नाम दें। साथ ही आपको पहले ही यह भी बता देना चाहता हू कि हमें इस तरह की और भी श्रेणिया निश्चित करने का मौका पड़ेगा।

राग कुछ विशेष धाराओ और विशेष आलम्बनो से इतनी दृढता से जुडा रहता है, कि राग का **लगाव** या **आसक्तता**[2] स्वतत्र कारक प्रतीत होती है, जो अलग-अलग मनुष्य में अलग-अलग होता है, और उसकी मात्रा किस-किस बात से निर्धारित होती है, यह हमें बिलकुल पता नही। पर स्नायु-रोगो की कारणता में अब हम इसके महत्व को हीन नही मान सकते। साथ ही हमें दोनो वस्तुओ के नजदीकी सम्बन्ध को बहुत बडी चीज भी नही समझना चाहिए। राग का ऐसा ही लगाव (या आसक्तता)——अज्ञात कारणो से——अनेक अवस्थाओ में प्रकृत लोगो में होता है, और उन व्यक्तियो में एक निर्णायक कारक के रूप में मिलता है जो एक अर्थ में स्नायु-रोगियो के बिलकुल उलटे, अर्थात् विकृत व्यक्ति होते हैं। मनो-विश्लेषण के जमाने से बहुत पहले यह ज्ञात हो चुका था कि ऐसे व्यक्तियो के पूर्व-वृत्त[3], अर्थात् पिछले इतिहास में प्राय एक बहुत बचपन का सस्कार मिलता है, जो एक अप्रकृत निसर्ग वृत्तीय प्रवृत्ति या आलम्बन-चुनाव से सबधित होता है, और अब उस व्यक्ति का राग सारे जीवन उस सस्कार से जुडा रहता है (बिनेट)। प्राय यह कहना कठिन होता है कि यह सस्कार राग पर इतनी तीव्र आकर्षण शक्ति कैसे लगा सका। मैं अपने देखे हुए इस तरह के एक पुरुष रोगी का वर्णन करूगा, जिसके लिए स्त्री की जननेन्द्रियो और अन्य सब आकर्षणो का अब कोई अर्थ नही

---

१ Complemental Series २ Adhesiveness. ३ Anamnesis

रहा है। उसमे दुर्धर्ष यौन उत्तेजना एक विशेष रूपवाले जूते से ढके हुए पैर द्वारा ही पैदा की जा सकती है, वह अपने छठे वर्ष की एक घटना याद कर सकता है, जिसने उसमें राग की यह बद्धता पैदा कर दी है। वह अपनी शिक्षिका के पास स्टूल पर बैठा था और शिक्षिका उसे अंग्रेजी पढा रही थी। वह सीधी-सादी बडी उमर की झुरियो वाली बूढी धाय थी, जिसकी आखें पानीदार नीली थी, और नाक चपटी थी; उस दिन उसके पाव में चोट लग गई थी और इसलिए उसने इसे मखमली स्लीपर मे गद्दे पर रखा था और टाग बहुत अच्छी तरह ढक रखी थी। बाद में तरुणावस्था मे प्रकृत यौन व्यापार के, डरते-डरते किए गए, एक प्रयत्न के बाद उस शिक्षिका के पाव जैसा एक पतला उभरी नसो वाला पाव उसका एकमात्र यौन आलम्बन हो गया, और यदि किसी व्यक्ति की अन्य बातें भी उसे अंग्रेज शिक्षिका जैसी स्त्री का स्मरण करा देती तो वह पुरुष बेबस होकर आकर्षित हो जाता था। पर राग की इस बद्धता ने उसे स्नायविक न बनाकर विकृत बना दिया। हम कहेंगे कि वह पाव जडासक्त बन गया। इस प्रकार आप देखते हैं कि स्नायु-रोग के कारणो में राग की अत्यधिक और साथ ही समय से पूर्व, बद्धता एक अपरिहार्य कारण है। तो भी, इसके प्रभाव का विस्तार स्नायु-रोगो की सीमा से बहुत आगे निकल जाता है। यह अवस्था अपने आप मे उसी तरह निश्चायक अवस्था नही है, जैसे कि पहले बताई हुई कुंठा या विफलता।

इस प्रकार स्नायु-रोगो के कारणो की समस्या और अधिक उलझ गई मालूम होती है। तथ्य तो यह है कि मनोविश्लेषण सम्बन्धी जाच-पडताल हमारा एक और कारक से परिचय कराती है, जिसपर हमने अपनी कारण-शृंखला मे विचार नही किया है, और जो ऐसे व्यक्ति में बहुत अच्छी तरह देखा जा सकता है, जिसका पहले का अच्छा स्वास्थ्य स्नायु-रोग हो जाने के कारण एकाएक बिगड गया हो। इन लोगो मे परस्पर विरोधी इच्छाओ या मानसिक द्वन्द्व के चिह्न सदा पाए जाते हैं। व्यक्तित्व का एक पक्ष कुछ इच्छाए रखता है, और दूसरा भाग उनके खिलाफ संघर्ष करता है और उन्हें मार्ग बनाता है। इस तरह के द्वन्द्व के बिना कोई स्नायु-रोग नही होता। हो सकता है कि आपको इसमे कोई विशेष बात न दिखाई दे। आप जानते है कि हम सबके मानसिक जीवन में सदा द्वन्द्व होते रहते हैं, जिनका फैसला करना पडता है। इसलिए ऐसा प्रतीत होगा कि कुछ विशेष दशाए होने पर ही यह द्वन्द्व रोगजनक हो सकता है। हम पूछ सकते हैं कि वे दशाए कौन-सी है? इन रोगजनक द्वन्द्वो में मन के कौन-कौन-से बल हिस्सा लेते हैं और द्वन्द्वो का अन्य कारणो से क्या सम्बन्ध होता है।

मैं इन प्रश्नो का उत्तर दे सकता हूं जो सन्तोषजनक होंगे, पर शायद संक्षिप्त हास्यास्पद होंगे। यह द्वन्द्व कुंठा या विफलता से पैदा होता है, क्योंकि असन्तुष्ट राग को दूसरे रास्ते और दूसरे आलम्बन तलाश करने की प्रेरणा मिलती है। तो,

निश्चित सवादिता होती है। सच तो यह है कि इस सवादिता मे होने वाला विक्षोभ एक रोगजनक कारक बन सकता है। हमारे लिए यह प्रश्न अधिक महत्व-पूर्ण है कि जब राग अपना परिवर्धन होते हुए किसी पहले वाले बिन्दु, अर्थात् स्थान, पर प्रबल बद्धता कर चुका है, तब अहम् कैसे व्यवहार करता है। हो सकता है कि अहम् ने बद्धता की यौन-स्वीकृति दे दी हो और तब वह उस सीमा तक विकृत होगा, या शैशवीय होगा, जो दोनों एक ही बात हैं। पर यह भी हो सकता है कि यह राग के इस सयोजन से अपने आपको उदासीन रखे, जिसका परिणाम यह होगा कि जहा राग **बद्ध** होता है, वहा अहम् **दमन** का कार्य शुरू कर देता है।

इस प्रकार, हम इस नतीजे पर पहुचते हैं कि स्नायु-रोगो की कारणता में जो तीसरा कारक **द्वन्द्व-वश्यता** है, वह अहम् के परिवर्धन से उतना ही जुडा हुआ है, जितना राग के परिवर्धन से, इस प्रकार स्नायु-रोगो के कारणो के विषय में हमारी अन्तर्दृष्टि विस्तृत हो जाती है। सबसे पहले प्रवचन[1] की सबसे साधारण सामान्य दशा है। इसके बाद राग की बद्धता है (जो इसे विशेष धाराओ में जाने को मजबूर करती है), और तीसरी **द्वन्द्व-वश्यता**—यह द्वन्द्व उस विशेष प्रकार के रागात्मक उत्तेजनो को अस्वीकार करने पर अहम् के परिवर्धन से पैदा होता है। इस-लिए यह चीज उतनी अस्पष्ट और जटिल नही है, जितनी शायद आपने मेरे विवरण के समय समझी हो। फिर भी अभी इसकी समाप्ति नही हुई। अभी कुछ और भी बात बतानी है, और जो कुछ हम पहले जानते हैं, उसकी और भी चीर-फाड करनी है।

द्वन्द्व की प्रवृत्ति पर, और उसके साथ-साथ स्नायु-रोग की कारणता पर अहम् के परिवर्धन का प्रभाव स्पष्ट करने के लिए मैं एक उदाहरण दूगा, जो बिलकुल काल्पनिक होते हुए भी, किसी भी दृष्टि से असम्भाव्य नही है। मैं इसे नेस्ट्राय के प्रहसन वाला नाम देता हू, अर्थात् **ऑन दि ग्राउन्ड फ्लोर एंड इन दि मैन्शन** (निचली मजिल में और अटारी पर)। कल्पना कीजिए कि कोई चौकीदार किसी मकान की निचली मजिल में रहता है और मालिक जो धनी और सम्भ्रात व्यक्ति है, ऊपर रहता है। उन दोनो के बच्चे हैं, और हम यह मान लेते हैं कि मालिक की छोटी लडकी को सामाजिक दृष्टि से हीन चौकीदार के बच्चे से खेलने की खुली छूट है। तब बहुत आसानी से ऐसा हो सकता है कि उनके खेल 'शैतानी' के हो जाते हैं, अर्थात् उनका रूप यौन रूप हो जाता है वे 'पिता और माता' का खेल खेलते हैं, एक दूसरे को अन्तरग कार्य करते समय देखते हैं, और एक दूसरे की जननेन्द्रियो को उद्दीप्त करते हैं। हो सकता है कि इसमें चौकीदार की लडकी ने मोहिनी डाली हो क्योंकि अपनी आयु पाच या छ वर्ष होने पर भी वह यौन विषयो में अधिक

---

१ Privation

जानकारी प्राप्त कर चुकी है। उनके बहुत थोडी देर साथ रहने पर भी इन घटनाओ से दोनो बच्चो में कुछ यौन उत्तेजन पैदा हो जाएगे जो उनका खेल बद हो जाने के बाद कुछ वर्ष तक हस्तमैथुन के रूप में प्रकट होगे। यहा तक दोनो में समानता है, पर अन्तिम परिणाम दोनो मे बहुत भिन्न होगा। चौकीदार की लडकी शायद मासिक धर्म शुरू होने तक हस्तमैथुन करती रहेगी, और फिर बिना दिक्कत के इसे छोड देगी। कुछ वर्ष बाद वह एक प्रेमी खोज लेगी और शायद एक बालक को जन्म देगी, जीवन के आगे बढने का कोई रास्ता ढूढेगी, शायद कोई प्रसिद्ध अभिनेत्री बन जाएगी, और अन्त मे अभिजात कुलीन वर्ग मे आ जाएगी। हो सकता है कि उसकी जीवन-यात्रा इतनी सफल न हो, पर अपरिपक्व अवस्था की यौन चेष्टाओ से उसे कोई हानि नही होगी, वह स्नायु-रोग से मुक्त रहेगी, और अपना जीवन सुख से बिता सकेगी। दूसरी बालिका में परिणाम बहुत भिन्न होगा। छोटी आयु में ही उसमे यह भावना पैदा हो जाएगी कि मैंने बुरा काम किया है। कुछ ही समय बाद वह हस्तमैथुन छोड देगी, यद्यपि उसे इसके लिए शायद बडा सघर्ष करना पडेगा। पर फिर भी उसमे दबी हुई उदासी की भावना हृदय में बनी रहेगी। जब बाद मे तरुणावस्था आने पर उसे सम्भोग के बारे मे कुछ पता चलेगा, तब वह अजीब डर के साथ इससे दूर भागेगी और अनजान बनी रहना चाहेगी। सम्भवत उसे फिर हस्तमैथुन करने के लिए एक प्रबल आवेग पैदा होगा, जो वह किसीको बताने का साहस नही करेगी। जब वह किसी पुरुष की पत्नी बनेगी, तब उसमें स्नायु-रोग पैदा हो जाएगा और उसे विवाह के सुख और जीवन के आनन्द से वचित कर देगा। अगर विश्लेषण द्वारा इस स्नायु-रोग का रहस्य उघाडा जा सकेगा, तो यह पता चलेगा कि इस अच्छी तरह पालित-पोषित बुद्धिमती आदर्श-प्रिय लडकी ने अपनी इच्छाओ का पूरी तरह दमन कर दिया है, पर उसकी यौन इच्छाए अचेतन रूप से उन थोडे-से छोटे-छोटे अनुभवो से जुडी हुई हैं, जो उसे बालकपन मे अपनी सहेली के साथ हुए थे।

दोनो के सामान्य अनुभवो के बावजूद इन दोनो की अन्तिम अवस्थाओ में जो भेद पैदा हुए हैं, वे इस कारण पैदा हुए हैं कि एक लडकी मे अहम् ने उस परिवर्धन को बनाए रखा जो दूसरी में नही है। चौकीदार की लडकी को बाद की आयु मे भी यौन चेष्टा वैसी ही स्वाभाविक और हानिरहित मालूम हुई, जैसी बचपन में। मालिक की लडकी 'अच्छे ढग से पाली-पोसी गई', और उसने अपने शिक्षण के मानदंड अपना लिए। इस प्रकार, उद्दीपित होकर उसके अहम् ने स्त्री की शुद्धता और वासना के अभाव के आदर्श अपना लिए जो यौन कार्यों से असगत थे। उसके बौद्धिक प्रशिक्षण ने उसके इस नारी-कार्य को उसकी ही दृष्टि में हीन बना दिया जिसके लिए वह बनाई गई है। उसके अहम् मे जो यह ऊंचा नैतिक और बौद्धिक परिवर्धन हुआ है, उसने उसका और उसकी यौन प्रवृत्ति की माग-

श्यकताओ का द्वन्द्व करा दिया है ।

आज मै राग के परिवर्धन के एक और पहलू की चर्चा करूगा, क्योकि एक तो यह हमें कुछ विस्तृत भूमि पर ले आता है और दूसरे, हम अहम् वृत्तियो और यौन वृत्तियो में जो स्पष्ट भेदक रेखा खीचा करते है, पर जो फौरन समझ में नही आती, उसका औचित्य सिद्ध करने के लिए यह बहुत उपयुक्त रहेगा। अहम् में और राग में हुए दो परिवर्धनो पर विचार करते हुए हमें एक पहलू पर अवश्य बल देना होगा, जिसकी ओर अब तक कोई ध्यान नही दिया गया। वे दोनो मूलत वशागत गुण है । सारी मनुष्य जाति ने प्रागैतिहासिक युगो से चले आते हुए बडे दीर्घकाल में जो विकास किया है, वे उसकी सक्षिप्त पुनरावृत्तिया है । मै समझता हू कि राग के परिवर्धन में यह जातिचरितीय उद्गम[1] आसानी से दिखाई पड जाता है । यह देखिए कि किस तरह प्राणियो के एक वर्ग में जननेन्द्रिय यत्र का मुख से बहुत नजदीकी सम्बन्ध होता है। और दूसरे में वह मल-त्याग-व्यवस्था से अलग नही दिखाई देता । तीसरे में वह चरता[2] के अगो का हिस्सा है। इन तथ्यो का मजेदार वर्णन डब्ल्यू० बोलस्खे की मूल्यवान पुस्तक में मिलेगा । प्राणियो में सब तरह की काम-विकृतिया मिलती है, और यह कहा जा सकता है कि वे उस रूप में स्थिर हो गई है, जो उनके यौन सगठन ने ग्रहण कर लिया है पर मनुष्य में वह जातिचरितीय इस कारण कुछ अस्पष्ट हो गया है कि जो बात मूलत वशागत है, वह फिर भी नए सिरे से अलग-अलग सीखनी पडती है । सम्भवत इसका कारण यह है कि जिन परिस्थितियो में इसे शुरू में सीखना पडा था, वही आज भी है, और प्रत्येक व्यक्ति पर वे अपना प्रभाव डालती है । मेरा यह कहना है कि जहा उन्होने शुरू में एक नई अनुक्रिया की सृष्टि की थी, वहा अब वे एक पूर्व प्रवृत्ति को उद्दीपित करते है। इसके अलावा, इसमें सन्देह नही किया जा सकता कि प्रत्येक मनुष्य में नियत परिवर्धन के मार्ग को बाहर से आने वाले वर्तमान सस्कारो से परिवर्तित किया जा सकता है, पर जिस शक्ति ने मनुष्य जाति पर यह परिवर्धन थोपा है, और जो आज भी इसे उसी मार्ग पर रखने के लिए अपना दबाव डाल रही है, वह हमें ज्ञात है । यह वही कुठा या विफलता है जो वास्तविकता के अभाव में होती है, या यदि हम इसका दूसरा असली नाम दे तो यह **आवश्यकता** या जीवन-सघर्ष है । आवश्यकता बडी सख्त मालकिन रही है, और उसने हमें बहुत कुछ सिखाया है। स्नायु-रोगी उसके वे बालक है जिनपर इस सख्ती का बुरा प्रभाव पडा है, पर यह खतरा तो हर दिशा में अवश्य रहता है । प्रसगत जीवन कायम रखने के लिए होने वाले सघर्ष को विकास का एक प्रवर्तक बल मानने के लिए यह आवश्यक नही कि यदि 'भीतरी विकासात्मक वृत्तिया' मौजूद दिखाई दें तो उनके महत्व को कम समझा जाए ।

१ Phylogenetic origin २ Organs of motility

अब यह बात ध्यान देने योग्य है कि वास्तविक जीवन की आवश्यकता से सामना होने पर यौन वृत्तियो और आत्मसंरक्षण की वृत्तियो का व्यवहार एक-सा नही होता। आत्मसंरक्षण की निसर्ग-वृत्तिया और उनके साथ जुडी हुई और सब वृत्तिया अधिक आसानी से टल जाती है। वे वास्तविकता के आदेशो पर आवश्यकता के अनुकूल बनना और अपने परिवर्धन को उसके अनुकूल बना लेना जल्दी ही सीख जाती है। यह बात समझ में आती है, क्योकि उन्हे अपने अभीष्ट आलम्बन और किसी साधन से नही प्राप्त हो सकते, और इन आलम्बनो के बिना मनुष्य अवश्य नष्ट हो जाएगा। यौन वृत्तिया उतनी आसानी से नही टलती, क्योकि शुरू में उन्हे आलम्बनो का अभाव नही पता चलता, वे दूसरे शारीरिक कार्य के साथ मानो पराश्रयी[1] रूप में जुडी हुई है, और साथ ही उन्हे अपने ही शरीर मे आत्म-कामिता द्वारा भी परितुष्ट किया जा सकता है। इसलिए वे पहले वास्तविक आवश्यकता के शिक्षणकारी प्रभाव से अलग-थलग हो जाती है, और बहुत-से लोगो में किसी न किसी दृष्टि से दृढ, और दूसरे के प्रभाव से प्रभावित न होने का यह गुण जिसे हम 'अतर्कसगतता' कहते है, सारे जीवन बना रहता है। इसके अलावा, साधारणतया तरुण व्यक्ति की शिक्षित किए जाने की योग्यता उस समय खत्म हो जाती है जब यौन इच्छा अपनी अन्तिम शक्ति से उफन पडती है। शिक्षक इस बात को जानते है, और इसके अनुसार ही कार्य करते है, पर शायद वे अब भी मनोविश्लेषण के परिणामो की ओर कान देने को तैयार हो जाए और शिक्षा मे अधिक बल बचपन के आरम्भिक वर्षो, अर्थात् दूध पीने से आगे के दिनो, पर दे। वह छोटा-सा मनुष्य-प्राणी प्राय अपने चौथे या पाचवें वर्ष में पूर्णरूप से तैयार हो चुका होता है, और आगे के वर्षो में तो वह जो कुछ उसके भीतर है, उसे क्रमश. बाहर प्रदर्शित करता है।

निसर्ग-वृत्तियो के दो समूहो के इस अन्तर का पूरा आशय ग्रहण करने के लिए हमें थोडा-सा प्रसगान्तर करना होगा, और उनमें के एक पहलू को इनके अन्दर लेना होगा, जिन्हें आर्थिक पहलू कहना उचित है, यहा हम मनोविश्लेषण के सबसे अधिक महत्वपूर्ण, पर बदकिस्मती से सबसे अधिक धुधले, क्षेत्रो में से एक क्षेत्र मे प्रवेश करते है। हम यह प्रश्न पूछ सकते है कि मनोयत्र के कार्य करने मे कोई मुख्य प्रयोजन दिखाई देता है या नही, और इसका पहला उत्तर इस तरह दिया जा सकता है कि यह प्रयोजन सुख-प्राप्ति की दिशा में होना है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी सारी मनोधात्वीय चेष्टा सुख पाने और दुःख से बचने से जुटी हुई है, अर्थात् यह सुख सिद्धान्त[2] से स्वत. नियमित है। अब हम सबसे पहले यही जानना चाहेंगे कि किन अवस्थाओ में सुख और दुःख पैदा होते है पर यही हम रुक जाते है। हम

१ Parasite २ Pleasure-principle

इतना ही कह सकते है कि सुख मनोयत्र में मौजूद उद्दीपन की मात्रा घटाने, हलका करने या हटाने से **किसी रूप में** सम्वन्धित है, और दु ख में यह उद्दीपन वढ जाता है। मनुष्य जो तीव्रतम सुख, अर्थात् सम्भोग-सुख पा सकता है, उसपर विचार करने से इस बात में कोई सन्देह नही रहता। इस प्रकार के सुखात्मक प्रक्रम मानसिक उत्तेजन और ऊर्जा की मात्राओ के वितरण से सम्विन्धत हैं। इसलिए हम इस तरह के विचारो को **आर्थिक** विचारणा कहते है। मालूम होता है कि मनोयत्र के कार्यो का वर्णन, सुख-प्राप्ति पर विना बल दिए, हम एक और तरीके से और अधिक व्यापक रूप से कर सकते हैं। हम कह सकते हैं कि मनोयत्र अतिरिक्त उद्दीपनो के ढेरो, अर्थात् ऊर्जा की मात्राओ को, नियत्रित और विसर्जित करने का प्रयोजन सिद्ध करता है। यह विलकुल स्पष्ट है कि यौन प्रवृत्तिया अपने परिवर्धन के आरम्भ से अन्त तक परितुष्टि के लक्ष्य की ओर चलती हैं। वे सारे समय, बिना किसी परिवर्तन के, यह प्राथमिक कार्य भी करती रहती हैं। पहले दूसरा समूह अर्थात् अहम् वृत्तिया भी यही कार्य करती हैं। पर अपनी मालकिन, आवश्यकता, के आदेश से वे जल्दी ही सुख-सिद्धान्त के स्थान पर उसके किसी रूप-भेद को लाना सीख लेती ह। उनके लिए दु ख से बचने का काम लगभग उतने ही महत्व का होता है जितना सुख पाने का काम। अहम् को पता चल जाता है कि अनिवार्यत उसे तत्काल सन्तुष्टि से वचित रहना होगा, परितुष्टि वाद के लिए मुलतवी करनी होगी, कुछ दु ख सहन करना सीखना होगा, और सुख के कुछ स्रोतो को विलकुल छोड देना होगा। इस प्रकार अभ्यास हो जाने पर अहम् 'तर्कसगत' हो जाता है। अब वह सुख-सिद्धात से नियत्रित नही रहता, वल्कि **यथार्यता-सिद्धान्त** पर चलता है। पर यह भी मूलत सुख खोजता है, यद्यपि यह देर से मिलने वाला और पहले से कम सुख तथा ऐसा सुख खोजना है, जो इसके तथ्य को समझ लेने के कारण और इसका यथार्थता से सम्बन्ध होने के कारण मिलना निश्चित है। सुख-सिद्धान्त से यथार्थता-सिद्धान्त में सक्रमण अहम् के परिवर्धन में एक महत्वपूर्ण प्रगति है। हम पहले ही जानते है कि इस अवस्था में यौन वृत्तिया देर से और अनिच्छा से चलती है। अब हम यह जानने का यत्न करेंगे कि वाह्य यथार्थता को इतने हलके हाथ से पकडकर मनुष्य की यौनवृत्ति के सन्तुष्ट होने मे उसके लिए क्या-क्या दुष्परिणाम होते है, और अन्त में इस सिलसिले में एक वात और। यदि मनुष्य जाति में अहम् का विकास भी राग के विकास की तरह हुआ है तो आपको यह सुनकर आश्चर्य नही होगा कि 'अहम् प्रतिगमन' भी होते हैं और आप यह जानना चाहेंगे कि अहम् के, लौटकर परिवर्धन की पहले वाली अवस्थाओ में पहुचने का स्नायु-रोगो पर क्या प्रभाव पडता है।

लक्षण-निर्माण के मार्ग

जनसाधारण की दृष्टि में लक्षण ही रोग का सारभाग है, और उनके लिए इलाज का अर्थ है—लक्षणों का हट जाना, पर चिकित्सा-विज्ञान में लक्षणों और रोग में भेद करना बहुत महत्वपूर्ण है, और यह बताना भी महत्वपूर्ण है कि लक्षणों का हट जाना और रोग का हट जाना एक ही बात नहीं। परन्तु लक्षणों के हट जाने के बाद रोग का जो एकमात्र मूर्त अंश रह जाता है, वह है नए लक्षणों का निर्माण करने की क्षमता। इसलिए थोड़ी देर के लिए हम जनसाधारण का ही दृष्टिकोण मान लें और लक्षणों की बुनियाद के ज्ञान को रोग विषयक जानकारी का समानार्थक समझ लें।

लक्षण ऐसे व्यापार या चेष्टाएं हैं जो, सारे जीवन की दृष्टि से, हानिकारक या हीनतम रूप में बेकार हैं। यहां यह ध्यान रखिए कि हम मानसिक (या मनोघातुजनक) लक्षणों और मानसिक रोगों पर विचार कर रहे हैं, लक्षणों से ग्रस्त व्यक्ति बार-बार यह शिकायत करता है कि वे मुझे बुरे लगते हैं या मुझे उनसे परेशानी और तकलीफ होती है। उनसे मुख्य हानि यह होती है कि उनमें बहुत-सी मानसिक ऊर्जा खर्च होती है, और इनके अलावा, उनसे संघर्ष करने में भी ऊर्जा खर्च होती है। जब लक्षण अधिक फैल जाते हैं तब दोनों प्रयासों में इतनी अधिक ऊर्जा खर्च हो जाती है कि व्यक्ति के पास अपनी कुल मानसिक ऊर्जा की गम्भीर कमी हो जाती है, जो उसे जीवन के सब महत्वपूर्ण कार्यों में असमर्थ कर देती है। यह परिणाम मुख्यतः इस बात पर निर्भर है कि इस तरह ऊर्जा की कितनी मात्रा खर्च हुई है। इसलिए आप देखेंगे कि 'बीमारी' सारतः एक क्रियात्मक या प्रायोगिक अवधारणा है, पर यदि आप इस मामले पर सिद्धान्त की दृष्टि से विचार करें और मात्रा के प्रश्न को छोड़ दें तो आप आसानी से यह कह सकते हैं कि हम सब लोग रोगी अर्थात् स्नायु-रोगी हैं क्योंकि लक्षण-निर्माण के लिए जो अवस्थाएं आवश्यक हैं वे प्रकृत व्यक्तियों में भी दिखाई जा सकती हैं।

स्नायविक लक्षणो के बारे में हम यह जानते हैं कि वे उस द्वद्व का परिणाम है जो राग की सन्तुष्टि का नया रूप तलाश करने पर पैदा होता है। दो शक्तिया, जो एक दूसरे के विरोध में खडी है, लक्षण में फिर आकर मिल जाती हैं, और लक्षण-निर्माण में निहित **समझौते या मध्यमार्ग** द्वारा सामजस्य कर लेती हैं। इसी कारण लक्षण में इतने प्रतिरोध का सामर्थ्य है। इसे दोनो ओर से सहारा मिलता है। हम यह भी जानते हैं कि द्वद्व करने वाले दो पहलवानो में एक वह असन्तुष्ट राग है जो यथार्थता से कुठित हो गया है और जिसे अब सन्तुष्टि के लिए दूसरा मार्ग खोजना पडा है। यदि यथार्थता तब भी अडी रहे जबकि राग निषिद्ध आलम्बन के स्थान पर दूसरा आलम्बन पकडने को तैयार है, तो तब अन्त में राग को प्रतिगमन का मार्ग पकडने तथा जिन सगठनो को यह पहले पार कर आया है, उनमें से किसी एक से, या जो आलम्बन इसने पहले छोड दिए थे, उनमें से किसी एक से सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए मजबूर होना पडेगा। राग को वे बद्धताए प्रतिआगमन के मार्ग पर खीचती हैं जो यह अपने परिवर्धन में इन स्थानो पर अपने पीछे छोड आया है।

अब काम-विकृति का रास्ता स्नायु-रोग के रास्ते से बिलकुल अलग हो जाता है। यदि इन प्रतिगमनो पर अहम् कोई प्रतिषेध नही लागू करता तो स्नायु-रोग नही पैदा होता। राग यथार्थ सन्तुष्टि प्राप्त कर लेता है, यद्यपि वह प्रकृत सतुष्टि नही होती, पर यदि अहम्, जो न केवल चेतना को, बल्कि कर्म-स्नायु के उद्दीपन[1] द्वारो को भी नियन्त्रित करता है, और इस प्रकार मानसिक आवेगो की वस्तुत सतुष्टि को नियन्त्रित करता है, इन प्रतिगमनो से सहमत नही है, तो द्वद्व शुरू हो जाता है। राग जैसे चारो ओर से घिर जाता है और उसे ऐसा रास्ता ढूढना है जिससे वह सुख-सिद्धात की माग के अनुसार कैथेक्सिस, अर्थात् ऊर्जा के आवेश (या चार्ज) को बाहर कर सके यह अहम् से बचने और दूर रहने की कोशिश करेगा। परिवर्धन के मार्ग पर, जिसपर अब प्रतिगमन हो रहा है, मौजूद बद्धताए—जिनसे अहम् ने पहले दमन द्वारा अपने को बचा लिया था, ऐसे पलायन-मार्ग के रूप में दिखाई देती हैं। पीछे की ओर जाते हुए इन दमित स्थानो को पुन ऊर्जाविष्ट करते हुए राग अहम् और उसके नियमो से अपने आपको दूर हटा लेता है, पर वह अहम् के प्रभाव मे प्राप्त सारे प्रशिक्षण को भी त्याग देता है। यह तब तक विनीत था जब तक सन्तुष्टि नजर आ रही थी, बाहरी और भीतरी कुठा के दोहरे दबाव मे यह अ-नियम्य बन जाता है और पुराने सुखमय दिनो की ओर मुडकर देखने लगता है। यह इनका परमावश्यक अपरिवर्तनीय गुण है। अब राग अपना ऊर्जावेश या कैथेक्सिस जिन मनोबिंबो पर ले जाता है वे अचेतन सस्थान के होते हैं, और

---

१ Motor innervation

उस संस्थान के सूचक विशेष प्रक्रमो के अधीन कार्य करते है, अर्थात् उनका सघनन और विस्थापन हो सकता है। इस प्रकार ऐसी अवस्थाए बन जाती हैं जो स्वप्न-निर्माण की अवस्थाओ से बिलकुल मेल खाती हैं, जैसे गुप्त स्वप्न, जो पहले विचारो से अचेतन में बनता है और किसी अचेतन इच्छा-कल्पना की पूर्ति होता है, किसी (पूर्व) चेतन चेष्टा से मिलता है जो इसकी काट-छाट करती है, और अपनी राय के अनुसार व्यक्त स्वप्न में एक मध्यमार्गी या समझौते वाले रूप का निर्माण होने देती है। उसी प्रकार उन मनोबिंब को, जिससे राग चेतन में जुड़ा रहता है, (राग-निरूपक)[1] पूर्व चेतन अहम् की शक्ति से फिर सघर्ष करना पडता है। अहम् में इसका विरोध प्रति आवेश (एन्टी-कैथेक्सिस) बनकर इसके पीछे आता है, और इसे अभिव्यक्ति का ऐसा रूप अपनाने को मजबूर करता है जिसमे साथ ही साथ विरोध करनेवाले बल भी अपने आपको अभिव्यक्ति कर सकें। इस प्रकार तब लक्षण अचेतन रागात्मक इच्छा-पूर्ति के अनेक प्रकार से विपर्यस्त व्युत्पन्न के रूप में, एक ऐसे चतुराई से चुने गए सदिग्ध अर्थ के रूप में, जिसके दो बिलकुल परस्पर विरोधी अर्थ होते है, जन्म लेता है। स्वप्न-निर्माण और लक्षण-निर्माण में सिर्फ इस अंतिम बात में अतर है, क्योंकि स्वप्न-निर्माण मे पूर्व चेतन का प्रयोजन सिर्फ इतना है कि नीद की रक्षा की जाए, और ऐसी कोई बात चेतना मे न घुसने दी जाए जो इसे बिगाडे। यह अचेतन इच्छा-आवेग के सामने 'नहीं, इसके विपरीत' का प्रतिषेधक नोटिस लगाने का आग्रह नही करता। यह अधिक सहिष्णु हो सकता है क्योंकि सोता हुआ मनुष्य कम खतरनाक स्थिति मे रहता है। इच्छा को वास्तव में पूरी होने से रोकने के लिए नीद की अवस्था ही काफी है।

आप देखते है कि द्वन्द्व की स्थिति में राग का यह पलायन बद्धनाओ के अस्तित्व के कारण सम्भव हो पाता है। इन बद्धनाओ पर मौजूद (राग का) प्रतिगामी आवेश दमनो से दूर रहता हुआ आगे बढ़ जाता है, और राग का विसर्जन (डिस-चार्ज) या सन्तुष्टि—हो जाती है, जिसमें तब भी समझौते या मध्य मार्ग की अवस्थाएं बनाए रखनी पड़ती हैं। अचेतन और पुरानी बद्धनाओ का लम्बा रास्ता पकडकर राग अन्त में वास्तविक सन्तुष्टि पाने में सफल हो जाता है, यद्यपि यह सन्तुष्टि निश्चित रूप से बड़े सीमित प्रकार की होती है, और इसे इस रूप में पहचानना कठिन होता है। इस नतीजे के बारे में दो बातें और कहना है। प्रथम तो आपने इस बात पर ध्यान दिया होगा कि एक ओर तो राग और अचेतन तथा दूसरी ओर, अहम, चेतना और यथार्थता में कितना नज़दीकी सम्बन्ध दिखाई देता है, हालाकि शुरू में इनमें कोई ऐसे सम्बन्ध नहीं थे; और दूसरे, यह याद रखिए कि मैंने इस विषय में जो कुछ कहा है और मुझे जो कुछ कहना है, वह सिर्फ

---

[1] Libido representatives

हिस्टीरिया-स्नायु-रोग से सम्बन्धित है।

राग को दमनो का घेरा तोडकर निकलने के लिए जिन बद्धताओ की आवश्यकता है, वे उसे कहा मिलती है? वे उसे शैशवीय कामुक चेष्टाओ और अनुभवो में और बालकपन की घटक-प्रवृत्तियो और आलम्बनो में, जो अब त्याग दिए गए है, मिलती है, इसलिए राग मुड़कर वही पहुचता है। बालकपन का महत्व दोहरा है एक तरफ तो,जन्म के कारण नियत निसर्ग-वृत्ति-विन्यास या नैसर्गिक पूर्व प्रवृत्ति सबसे पहले उस समय प्रकट होती है, और दूसरी ओर, अन्य निसर्ग-वृत्तिया तभी बाहरी प्रभावो और अनुभव की गई आकस्मिक घटनाओ से उद्बुद्ध और सक्रिय हो जाती है। मेरी राय में हमारा यह युग्मभुजिता[1] स्थापित करना बिलकुल उचित है। इस बात पर निश्चय ही कोई आपत्ति नही की जाएगी कि जन्मजात पूर्व प्रवृत्ति अभिव्यक्त होती है,पर विश्लेषण सम्बन्धी प्रेक्षण हमें यह मानने के लिए भी मजबूर करता है कि बालकपन के सर्वथा आकस्मिक अनुभव भी राग की बद्धनाए पैदा कर सकते है। मुझे इसमें सिद्धान्त की दृष्टि से कोई कठिनाई नही मालूम होती। शरीर-रचनागत पूर्व प्रवृत्तिया निश्चित रूपसे किसी पुराने पुरखे के अनुभवो की अनुप्रभाव[2] होती है। वे भी किसी समय अर्जित की गई है, अर्थात् बाहर से प्राप्त की गई है। ऐसे अर्जित गुण न होते तो आनुवशिकता कोई चीज न होती, और क्या यह बात समझ में आ सकती है कि जो गुण आगे सचरित होगे,उनका अर्जन उस पीढी में एकाएक बन्द हो जाए जिसपर आज प्रेक्षण किया जा रहा है? पर शैशवीय अनुभवो के महत्व की पूरी तरह उपेक्षा करके, जैसा कि आमतौर से किया जाता है, पैतृक अनुभवो या वयस्क जीवन के अनुभवो को ही सब कुछ न समझ लेना चाहिए। इसके विपरीत, उनका महत्व खासतौर से समझना चाहिए। वे इस कारण और भी परिणाम पैदा करने में समर्थ है कि वे अधूरे परिवर्धन के समय होते है और इसी कारण उनका उपघातकारी प्रभाव होने की सम्भावना है। रौक्स तथा दूसरे वैज्ञानिको ने परिवर्धन के तन्त्र पर जो अनुसधान किया है, उससे पता चला है कि विभाजन के समय भ्रूणीय कोशिका-सहति में सुई चुभाने से परिवर्धन में गम्भीर गडबडिया पैदा हो जाती है। वही चोट किसी लारवा या पूर्णवर्धित प्राणी के लिए हानि रहित होगी।

इसलिए वयस्क की राग-बद्धता को, जिसे हमने स्नायु-रोगो के कारण बताते हुए शारीरिक कारक का निरूपक कहा है, अब दो और भागो में बाटा जा सकता है वशागत पूर्व प्रवृत्ति और बचपन के शुरू में अर्जित पूर्व प्रवृत्ति। क्योंकि विद्यार्थी को रेखाचित्र के रूप में बात सदा आसानी से समझ में आती है, इसलिए इन सम्बन्धो को मै इन तरह रखता हू

---

१ Dichotomy २ After-effect

आनुवंशिक यौन रचना में बहुत तरह की पूर्व प्रवृत्तियां दिखाई देती है, और किसीमें कोई घटक-आवेग और किसीमें कोई और घटक-आवेग, अकेला या दूसरो के साथ मिला हुआ, विशेष रूप से प्रबल होता है। यौन रचना और शैशवीय अनुभव मिलकर एक और पूरक श्रेणी बनाते है, जो बिलकुल वैसी ही होती है जैसी वयस्क की पूर्व प्रवृत्ति और आकस्मिक अनुभवो से बनने वाली पहली पूरक श्रेणी बताई गई है। प्रत्येक श्रेणी में वैसे ही चरम रोगी मिलते है और सम्बन्धित कारकों में वैसी ही कोटियां और सम्बन्ध मिलते हैं। यहां यह विचार करना उचित होगा कि राग-प्रतिगमन के दो प्रकारो में से जो प्रकार अधिक विशिष्ट है, अर्थात् जो प्रकार यौन संगठन की पहले वाली अवस्थाओं पर लौट आता है, वह आनुवंशिक शरीर सम्बन्धी कारक से ही प्रधानतः निर्धारित होता है या नहीं, पर सबसे अच्छा यह होगा कि इस प्रश्न का उत्तर तब तक के लिए टाल दिया जाए जब तक स्नायु-रोगों के अधिक विस्तृत रूपों पर विचार न कर लिया जाए।

अब ज़रा इस तथ्य की ओर ध्यान दीजिए कि मनोविश्लेषण की जांच से प्रकट होता है कि स्नायु-रोगियों का राग अपने शैशवीय यौन अनुभवो से जुड़ा रहता है। इस जानकारी को देखते हुए ये अनुभव मनुष्य जाति के जीवनों और बीमारियों के लिए बहुत ही अधिक महत्त्वपूर्ण है। विश्लेषण के इलाज वाले अंश के लिए भी इनका उतना ही महत्त्व है, पर एक और दृष्टिकोण से देखा जाए तो आसानी से पता चल जाएगा कि यहां एक गलतफ़हमी का खतरा है, जो हमें इस भ्रम में डाल सकती है कि हम जीवन को उसी दृष्टिकोण से देखने लगें जो स्नायु-रोगियों की स्थिति से बनता है। यह सोचने पर शैशवीय अनुभवों का महत्त्व घट जाता है कि राग-प्रतिगमन करके उनपर तब लौटता है जब उसे उसकी बाद की स्थितियों से खदेड़ा जाता है। इससे हम बिलकुल विपरीत नतीजे पर पहुंचेंगे, अर्थात् राग-अनुभवों का उस समय कोई महत्त्व नहीं था जब वे हुए, और उन्हें यह महत्त्व बाद में प्रतिगमन द्वारा ही प्राप्त हुआ। आपको याद होगा कि हमने ईडिपस ग्रन्थि पर विचार करते हुए पहले पर ऐसे ही विकल्प की विवेचना की थी।

हिस्टीरिया-स्नायु-रोग से सम्बन्धित है।

राग को दमनो का घेरा तोडकर निकलने के लिए जिन बद्धताओ की आवश्यकता है, वे उसे कहा मिलती हैं? वे उसे शैशवीय कामुक चेष्टाओ और अनुभवों में और बालकपन की घटक-प्रवृत्तियो और आलम्बनो में, जो अब त्याग दिए गए हैं, मिलती हैं, इसलिए राग मुड़कर वही पहुचता है। बालकपन का महत्व दोहरा है एक तरफ तो,जन्म के कारण नियत निसर्ग-वृत्ति-विन्यास या नैसर्गिक पूर्व प्रवृत्ति सबसे पहले उस समय प्रकट होती है, और दूसरी ओर, अन्य निसर्ग-वृत्तिया तभी बाहरी प्रभावो और अनुभव की गई आकस्मिक घटनाओ से उद्बुद्ध और सक्रिय हो जाती हैं। मेरी राय में हमारा यह युग्मभुजिता[1] स्थापित करना बिलकुल उचित है। इस बात पर निश्चय ही कोई आपत्ति नही की जाएगी कि जन्मजात पूर्व प्रवृत्ति अभिव्यक्त होती है,पर विश्लेषण सम्बन्धी प्रेक्षण हमें यह मानने के लिए भी मजबूर करता है कि बालकपन के सर्वथा आकस्मिक अनुभव भी राग की बद्धनाए पैदा कर सकते हैं। मुझे इसमें सिद्धान्त की दृष्टि से कोई कठिनाई नही मालूम होती। शरीर-रचनागत पूर्व प्रवृत्तिया निश्चित रूपसे किसी पुराने पुरखे के अनुभवो की अनुप्रभाव[2] होती हैं। वे भी किसी समय अर्जित की गई हैं, अर्थात् बाहर से प्राप्त की गई हैं। ऐसे अर्जित गुण न होते तो आनुवंशिकता कोई चीज न होती, और क्या यह बात समझ में आ सकती है कि जो गुण आगे संचरित होंगे,उनका अर्जन उस पीढी में एकाएक बन्द हो जाए जिसपर आज प्रेक्षण किया जा रहा है? पर शैशवीय अनुभवो के महत्व की पूरी तरह उपेक्षा करके, जैसा कि आमतौर से किया जाता है, पैतृक अनुभवो या वयस्क जीवन के अनुभवो को ही सब कुछ न समझ लेना चाहिए। इसके विपरीत, उनका महत्व खासतौर से समझना चाहिए। वे इस कारण और भी परिणाम पैदा करने में समर्थ हैं कि वे अधूरे परिवर्धन के समय होते हैं और इसी कारण उनका उपघातकारी प्रभाव होने की सम्भावना है। रौक्स तथा दूसरे वैज्ञानिको ने परिवर्धन के तन्त्र पर जो अनुसधान किया है, उससे पता चला है कि विभाजन के समय भ्रूणीय कोशिका-सहति में सुई चुभाने से परिवर्धन में गम्भीर गडबडिया पैदा हो जाती हैं। वही चोट किसी लारवा या पूर्णवर्धित प्राणी के लिए हानि रहित होगी।

इसलिए वयस्क की राग-बद्धता को, जिसे हमने स्नायु-रोगो के कारण बताते हुए नैसर्गिक कारक या निरूपक कहा है, अब दो और भागो में बाटा जा सकता है वंशागत पूर्व प्रवृत्ति और बचपन के शुरू में अर्जित पूर्व प्रवृत्ति। क्योंकि विद्यार्थी तो रेखाचित्र के रूप में बात सदा आसानी से समझ में आती है, इसलिए इन सम्बन्धो को मैं इस तरह रखता हू

---

१ Dichotomy २ After-effect

आनुवंशिक यौन रचना में बहुत तरह की पूर्व प्रवृत्तिया दिखाई देती हैं,और किसीमें कोई घटक-आवेग और किसीमें कोई और घटक-आवेग, अकेला या दूसरो के साथ मिला हुआ, विशेष रूप से प्रबल होता है। यौन रचना और शैशवीय अनुभव मिलकर एक और पूरक श्रेणी बनाते हैं, जो बिलकुल वैसी ही होती है जैसी वयस्क की पूर्व प्रवृत्ति और आकस्मिक अनुभवो से बनने वाली पहली पूरक श्रेणी बताई गई है। प्रत्येक श्रेणी में वैसे ही चरम रोगी मिलते हैं और सम्बन्धित कारको में वैसी ही कोटिया और सम्बन्ध मिलते हैं। यहा यह विचार करना उचित होगा कि राग-प्रतिगमन के दो प्रकारो में से जो प्रकार अधिक विशिष्ट है, अर्थात् जो प्रकार यौन सगठन की पहले वाली अवस्थाओ पर लौट आता है, वह आनुवंशिक शरीर सम्बन्धी कारक से ही प्रधानत. निर्धारित होता है या नही, पर सबसे अच्छा यह होगा कि इस प्रश्न का उत्तर तब तक के लिए टाल दिया जाए जब तक स्नायु-रोगो के अधिक विस्तृत रूपो पर विचार न कर लिया जाए।

अब जरा इस तथ्य की ओर ध्यान दीजिए कि मनोविश्लेषण की जाच से प्रकट होता है कि स्नायु-रोगियो का राग अपने शैशवीय यौन अनुभवो से जुडा रहता है। इस जानकारी को देखते हुए ये अनुभव मनुष्य जाति के जीवनो और बीमारियो के लिए बहुत ही अधिक महत्वपूर्ण ह। विश्लेषण के इलाज वाले अश के लिए भी इनका उतना ही महत्व है, पर एक और दृष्टिकोण से देखा जाए तो आसानी से पता चल जाएगा कि यहा एक गलतफ़हमी का खतरा है, जो हमें इस भ्रम में डाल सकती है कि हम जीवन को उसी दृष्टिकोण से देखने लगें जो स्नायु-रोगियो की स्थिति से बनता है। यह सोचने पर शैशवीय अनुभवो का महत्व घट जाता है कि राग-प्रतिगमन करके उनपर तब लौटता है जब उसे उसकी बाद की स्थितियो से खदेडा जाता है। इससे हम बिलकुल विपरीत नतीजे पर पहुचेंगे, अर्थात् राग-अनुभवो का उस समय कोई महत्व नही था जब वे हुए, और उन्हें यह महत्व बाद में प्रतिगमन द्वारा ही प्राप्त हुआ। आपको याद होगा कि हमने ओडिपस ग्रन्थि पर विचार करते हुए पहले एक ऐसे ही विकल्प की विवेचना की थी।

इस प्रश्न का फैसला करना भी कठिन नही। यह कथन निस्सदेह सही है कि प्रतिगमन शैशवीय अनुभवो के रागात्मक आवेश को वहुत अधिक वढा देता है, और साथ ही उनके रोगजनक महत्व को भी वढा देता है। पर अकेले इसके आधार पर फैसला करना भ्रामक होगा। इसके साथ और वातो पर भी विचार करना होगा। प्रथम तो, प्रेक्षण से वडे असदिग्ध रूप से यह प्रकट होता है कि शैशवीय अनुभवो का अपना अलग महत्व होता है जो पहले वचपन में ही सामने आ जाता है। वालको में भी स्नायु-रोग होते हैं। उनके स्नायु-रोगो में पिछले समय की ओर विस्थापन वाली वात वहुत कम होती है, जैसा कि आवश्यक ही है, या विलकुल नही होती—रोग किसी उपघातकारी अनुभव के तुरन्त वाद शुरू हो जाता है। शैशवीय स्नायु-रोगो के अध्ययन से हम वयस्को के स्नायु-रोगो को गलत रूप में समझने के वहुत-से खतरो से वच जाते हैं, जैसे वालको के स्वप्नो से हमें वयस्को के स्वप्नो को समझने की कुजी मिल गई थी। वालको में स्नायु-रोग वहुत आम होता है, आमतौर से लोग जितना समझते हैं, यह उससे भी अधिक आम होता है। प्राय इसकी उपेक्षा कर दी जाती है। इसे दुष्ट व्यवहार या शैतानी का व्यक्त रूप समझ लिया जाता है और प्राय दवा दिया जाता है। पर आगे से पीछे की ओर देखने पर यह सदा आसानी से पहचाना जा सकता है। यह चिन्ता-हिस्टीरिया के रूप में सवसे अधिक दिखाई देता है। इसका अर्थ क्या है, यह हम आगे चलकर देखेंगे। जव वाद के जीवन में कोई स्नायु-रोग उभरता है, तव विश्लेपण से सदा यह प्रकट होता है कि यह उस शैशवीय स्नायु-रोग की सीधी शृखला है जो शायद प्रच्छन्न और आरम्भिक रूप में ही प्रकट हुआ था, पर, जैसा कि कहा जा चुका है, ऐसे रोगी भी सामने आए हैं जिनमें वालकपन की स्नायविकता विना रुके जीवन भर रोग के रूप में चलती रही। कुछ उदाहरणो में हम स्नायु-रोग की अवस्था वाले वालक का विश्लेपण करने में सचमुच सफल हुए हैं, परन्तु अधिकतर उदाहरणो में हमें वालकपन के स्नायु-रोग की भूतकाल की उस झाकी से ही सन्तुष्ट होना पडा, जो वडी उम्र में रोगी होने वाले किसी व्यक्ति से मिली—इस वडी उम्र में उचित उपाय और सावधानिया करने में उपेक्षा नही वरतनी चाहिए।

दूसरे, यह वात भी निश्चित रूप से रहस्यमय या गूढ रहेगी कि यदि वालकपन के समय में ऐसी कोई वात नही थी जो राग को आकर्षित कर सकती तो राग क्यो उस पर ही इस तरह सदा प्रतिगमन करता है। हमने परिवर्धन की कुछ अवस्थाओ पर जो वद्धता मान ली है उसकी सार्थकता तभी है, यदि हम यह मानें कि वह अपने साथ रागात्मक ऊर्जा की कुछ निश्चित मात्रा जोड लेती है। अन्त में, मैं यह कहना चाहता हू कि यहा शैशवीय अनुभवो की और वाद वाले अनुभवो की तीव्रता और रोगजनक महत्वो में एक दूसरा सम्बन्ध मौजूद है—यह सम्बन्ध भी

वैसा ही है जैसा हमने पहले वाली दो अन्य श्रेणियो मे देखा था। ऐसे रोगी मिले है जिनमें सारा कारण वालकपन के यौन अनुभव ही मालूम होते है, इन रोगियो मे इन प्रभावो या सस्कारो का निस्सदेह उपघातकारी प्रभाव हुआ था, और उनकी अनुपूर्ति करने के लिए सिर्फ़ औसत दर्जे की यौन शरीर-रचना और उसकी अप-रिपक्वता की जरूरत थी। कुछ रोगी ऐसे है जिनमें वाद के द्वन्द्व महत्वपूर्ण कारण है, और वालकपन के संस्कारो पर विश्लेपण से जो वल पडता दिखाई देता है, वह सिर्फ प्रतिगमन का फल मालूम होता है। इसलिए दो सिरे या चरम पक्ष—'निरुद्ध परिवर्धन' और 'प्रतिगमन'—होते हैं और उनके वीच मे, इन दोनो कारको के विभिन्न अनुपात में मिश्रण मिलते हैं।

यह स्थिति उन लोगो के लिए कुछ मतलव की है जो वालक के यौन परिवर्धन में जल्दी से जल्दी पठन-पाठन को लाकर स्नायु-रोगो को रोकने की आशा करते है। जव तक ध्यान मुख्यत. शैशवीय यौन अनुभवो की ओर है, तव तक आदमी हर वात को इसी तरह सोचेगा कि इस परिवर्धन की गति को मन्द करने और वालक को इस तरह के अनुभव से वचाने का उपाय करके वाद के स्नायु-रोग का पहले ही निवारण किया जाए। हम जानते है कि स्नायु-रोग पैदा करने वाली अवस्थाएं इससे अधिक उलझी हुई है और कि उन्हे सिर्फ एक कारक की ओर ध्यान देकर सामान्यत प्रभावित नही किया जा सकता। वालकपन में कडी देख-भाल इसलिए व्यर्थ हो जाती है क्योकि वह शरीर सम्वन्वी कारक के वारे में कुछ नही कर सकती। इससे भी वडी वात यह है कि कड़ी देख-भाल करना इतना आसान नहीं है, जितना शिक्षा-शास्त्री लोग समझते है, और इसमे दो नए खतरे भी है जिनको लापरवाही से उपेक्षित नही किया जा सकता। हो सकता है कि यह वहुत अविक सफल हो जाए,अर्थात् यह इतना अधिक यौन दमन करा दे जिसका परिणाम हानिकारक हो और तव वालक जीवन मे प्रवेश करने पर अपनी यौनप्रवृत्ति की उन प्रवल पुकारो का प्रतिरोध करने की शक्ति नही रखता, जो तरुणावस्था में पैदा हुआ करती हैं। इसलिए यह वहुत सदिग्ध है कि वालकपन में कहा तव स्नायु-रोग निवारक कार्य लाभदायक हो सकते हैं, और यह विचारणीय है कि क्या स्नायु-रोगो की रोकथाम करने के लिए यह अविक अच्छा नही होगा कि वास्तविकता के प्रति परिवर्तित या दूसरा रुख अपनाया जाए ?

अव फिर लक्षणो पर विचार किया जाए। वे यथार्थ रूप में न मिलने वाली सन्तुष्टि के स्थान पर एक सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। वे यह कार्य इस तरह करते है कि राग का जीवन के किसी पहले वाले समय को प्रतिगमन हो जाता है, और जीवन के उस समय से प्रतिगमन का अविच्छेद्य सम्वन्ध होता है, या राग आलम्वन-चुनाव की या सगठन की किसी पूर्ववर्ती कला में लौट जाता है। हमने कुछ समय पहले देखा था कि स्नायु-रोगी अपने पिछले जीवन के किसी काल से किसी रूप में वंधा

हुआ होता है। हम अब जानते हैं कि यह पिछला समय वह है जिसमें उसका राग सन्तुष्टि पा सकता था, जिसमें वह सुखी था। वह अपनी जीवन-कथा पर पीछे घूम-कर देखता है, किसी ऐसे काल की तलाश करता है और इसे तलाश करता ही जाता है, चाहे उसे उस काल तक लौटना पडे जब वह दुधमुहा शिशु था, और वह बाद के प्रभावो से उसके मन में इसकी जो कल्पना बनी हुई है, उसके अनुसार, या अपनी स्मृति के अनुसार उसे पाने का यत्न करता है। लक्षण किसी रूप में सन्तुष्टि का वह पहला शैशवीय तरीका फिर पैदा कर देता है, चाहे द्वन्द्व में ध्वनित काट-छाट या सेन्सरशिप द्वारा उसका रूप छिपा दिया गया हो, या चाहे वह पीडा के सवे-दना में बदल दिया गया हो, जैसा कि आम तौर पर होता है, और रोग पैदा होने तक के अनुभवो में से लिए हुए अवयवो से मिला हुआ हो। लक्षणो से जिस तरह की सन्तुष्टि मिलती है, उसका रूप ऐसा होता है कि हम पहचान नही पाते, और इसके अलावा, यह तथ्य तो है ही कि सम्बन्धित व्यक्ति को उस सन्तुष्टि का अनु-भव नही होता, और जिसे हम सन्तुष्टि कहते हैं उसे वह तकलीफ के रूप में मह-सूस करता है, और दूसरी शिकायत करता है। यह रूपान्तरण मानसिक द्वन्द्व से हुआ है जिसके दबाव से लक्षण को बनना पडा, जो चीज किसी समय सन्तुष्टि थी उससे आज उसके मन में प्रतिरोध या भय पैदा हो रहा है। इस तरह के भावना-परिवर्तन का एक सरल, पर शिक्षाप्रद, उदाहरण हम देख चुके हैं। जो बच्चा माता के स्तन से बडे आग्रह के साथ दूध चूसता था, वह कुछ वर्षो बाद दूध से प्रबल अरुचि प्रदर्शित करता है, जिसे प्रशिक्षण द्वारा कठिनाई से दूर किया जा सकता है। यदि दूध या दूध से युक्त किसी और तरह के द्रव्य के ऊपर कोई मलाई बन गई हो तो यह अरुचि इतनी तीव्र हो जाती है कि घृणा का रूप ले लेती है। हो सकता है कि यह मलाई माता के स्तन की याद की गूज उसके मन में पैदा कर देती हो, जिसके लिए कभी वह इतनी प्रबल अभिलाषा रखता था। यह सच है कि दोनो के बीच में दूध छुडाने का उपघातज अनुभव हो चुका है।

अब भी कुछ चीज ऐसी है जिससे लक्षणो की यह व्याख्या पूरी तरह ठीक नही जचती कि वे रागात्मक सन्तुष्टि के साधन हैं। हमें सन्तुष्टि के साथ प्रकृत रूप से जिन चीजो को सम्बधित करने की आदत है, उन सबकी याद दिलाने में वे बिलकुल विफल रहते हैं। वे अधिकतर आलम्बन से बिलकुल स्वतन्त्र होते हैं, और इस तरह उन्होने बाहरी यथार्थता से सम्बन्ध छोड दिया है। हम इसे यथार्थता-सिद्धान्त की अस्वीकृति और सुख-सिद्धान्त पर वापसी का परिणाम समझते हैं। पर यह बडे रूप में आत्मकामिता के एक प्रकार पर, अर्थात् उस प्रकार पर जिससे यौन प्रवृत्ति को उसकी सबसे पहली परितुष्टि प्रदान की थी, लौटना भी है। बाहरी जगत में परि-वर्तन लाने के बजाय वे शरीर में ही परिवर्तन ले आते हैं, अर्थात् बाहरी क्रिया के बजाय भीतरी क्रिया, चेष्टा के बजाय अनुकूलन—जातिचरित्रीय दृष्टिकोण से यह

भी बहुत अर्थपूर्ण प्रतिगमन है। इसे हम तब अच्छी तरह समझेंगे जब इसपर हम एक नए कारक के सिलसिले में विचार करेंगे, जो उन कारको में है जिनका विश्लेषण सम्बन्धी गवेषणा ने लक्षण-निर्माण के बारे में पता लगाया है, और जिसे हमे आगे जानना भी है। फिर हम यह देखते है कि लक्षण-निर्माण में वही अचेतन प्रक्रम क्रियाशील है जो स्वप्न-निर्माण में थे, अर्थात् सघनन और विस्थापन। स्वप्न की तरह लक्षण भी किसी चीज को पूरी हुई दिखाता है, और यह सन्तुष्टि शैशवीय प्रकार की है। पर अत्यधिक सघनन द्वारा इस सन्तुष्टि को दबाकर सिर्फ एक सवेदन बनाया जा सकता है, या अधिकतम विस्थापन द्वारा इसे सारी रागात्मक ग्रन्थि का एक बहुत ही छोटा रूप दिया जा सकता है। यह कोई आश्चर्य की बात नही कि प्राय:, हम लक्षण में वह रागात्मक सन्तुष्टि आसानी से नही पहचान पाते जिसकी हम सम्भावना करते है और जिसके इसमें होने की जाच से सदा पुष्टि हो सकती है।

मैंने संकेत किया है कि हमे अभी एक नए अवयव को जानना है। यह सचमुच बडे आश्चर्य और विस्मय में डालने वाली बात है। आप जानते है कि लक्षणो के विश्लेषण से हमें उन शैशवीय अनुभवो की जानकारी होती है जिनपर राग बद्ध है और जिनमे से लक्षण बने है। अब आश्चर्य कारक बात यह है कि शैशव के ये दृश्य सदा सच्चे नही होते। सच पूछिए तो अधिकतर दृश्य असत्य होते हैं, और कुछ उदाहरणो में तो वे ऐतिहासिक सत्य से बिलकुल उलटे होते है। आप देखेगे कि इस खोज से या तो उस विश्लेपण को गलत ठहराया जाएगा जिससे ऐसे परिणाम पैदा होते है और या उस रोगी को झूठा कहा जाएगा जिसकी गवाही पर विश्लेपण और स्नायु-रोगो को समझने का सारा यत्न हो रहा है। इसके अलावा, इसमें एक और भी बडी विस्मयजनक बात है। यदि विश्लेपण से प्रकट किए जाने वाले शैशवीय अनुभव प्रत्येक अवस्था में वास्तविक होते तो हम यह अनुभव करते कि हम मजबूत आधार पर खडे है। यदि वे सदा झूठे सिद्ध होते और रोगी की गढन्त और कल्पना सिद्ध होते तो हमें वह अस्थिर आधार छोडना पडता और किसी और तरह अपनी रक्षा करनी पडती। पर यह न वह है न यह, क्योकि जो चीज़ हमें मिलती है वह यह है कि विश्लेपण में फिर से जोडे गए या याद कराए गए बालकपन के अनुभव कभी-कभी बेशक मिथ्या होते है, पर कभी-कभी वे इतने ही निश्चित रूप से बिलकुल सत्य भी होते है, और अधिकतर उदाहरणो में झूठ और सच मिले हुए होते हैं। इस प्रकार लक्षण कभी तो सच हुए अनुभवो के पुनरुत्पादन होते हैं जिनके बारे में यह कहा जा सकता है कि उन्होने राग की बद्धता पर प्रभाव डाला, और अगले ही क्षण, वे रोगी की कल्पनाओ का पुनरुत्पादन मात्र होते हैं जिनका कार्य-कारण विचार मे कोई महत्व मानना मुश्किल है। यहा कोई रास्ता नही सूझ पडता। शायद हमें इसी तरह की

खोज से कोई राह मिल सके कि बाल्यकाल की जो थोडी-सी स्मृतिया विश्लेषण से बहुत पहले लोगो ने सचेत रूप से सरक्षित कर रखी है, वे भी इसी तरह झूठी सिद्ध हो सकती है, या कम से कम, उनमें भी सचाई और झूठ का ऐसा ही बहुत अधिक मिश्रण हो सकता है। उनमें गलती प्राय सदा साफ दीख जाती है और इस प्रकार हमें कम से कम यह तो निश्चय हुआ कि इस अकस्मात् आने वाली निराशा की जिम्मेदारी विश्लेषण पर नही, बल्कि किसी न किसी रूप में, रोगी पर ही है।

थोडा सोचने पर हम आसानी से समझ सकते है कि इस मामले में इतनी विस्मय पैदा करने वाली क्या चीज है। यह है यथार्थता को हीन या तुच्छ बना देना, यथार्थता और कल्पना के फर्क को भुला देना। हमें रोगी पर इस कारण गुस्सा आता है कि उसने मनगढन्त किस्सो से हमारा समय नष्ट किया। हमारी विचार-रीति के अनुसार गप्प और यथार्थता में आकाश-पाताल का अन्तर है और इन दोनो का मूल्य हम अलग-अलग ढग से आकते ह, यहा तक कि स्वय रोगी भी प्रकृत रूप में विचार करते हुए इसी तरह सोचता है। जब वह ऐसी सामग्री पेश करता है, जिससे हम अभिलषित स्थितियो पर पहुचते है (जो लक्षणो की तह में होती है और बालकपन के अनुभवो पर खडी होती है), तब निश्चित ही शुरू में हमें यह शक होने लगता है कि हमें यथार्थता का अध्ययन करना है या कल्पनाओं का। इस प्रश्न का फैसला बाद में कुछ सकेतो के द्वारा सम्भव हो जाता है और तब हमारे सामने इस परिणाम को रोगी को जतलाने का काम आ पडता है। यह कभी भी बिना कठिनाई के पूरा नही हो जाता। हम शुरू में उससे कहते है कि तुम अब वे कल्पनाए हमारे सामने रखोगे, जिनमें तुमने अपने बालकपन के इतिहास को छिपा रखा है, जैसे कि प्रत्येक जाति अपने भुलाए हुए आरम्भिक इतिहास के बारे में पौराणिक कथाए बना लेती है। तो, हम यह देखेंगे और इससे हमें बडा असन्तोष होगा कि इस विषय को आगे चालू रखने में उसकी दिलचस्पी एकाएक घट जाती है—वह भी तथ्य ही निकालना चाहता है, और जिसे 'कल्पना' कहा जाता है, उससे नफरत करता है। पर यदि हम कार्य का यह हिस्सा पूरा होने से पहले यह मानने की गुजाइश दे दें कि हम उसके आरम्भिक जीवन की यथार्थ घटनाओ का पता लगा रहे है, तो बाद में यह कहा जाएगा कि हमने ग़लती की, और हमें इतना विश्वासी देखकर हमारी हसी की जाएगी। उसे यह बात समझने में बहुत समय लगता है। कल्पना और यथार्थता को एक जैसा मानकर चलना होगा, और शुरू में इस बात का कोई महत्त्व नही है कि उसके जिन बालकपन के अनुभवो पर हम विचार कर रहे है, वे कल्पित है या यथार्थ, परन्तु फिर भी स्पष्टत हमारे मन की इन स्मृतियो के प्रति एकमात्र सही रुख यही हो सकता है। उनमें [illegible] यथार्थता भी है। यह तथ्य है कि इन कल्पनाओ का सृजन

रोगी ने किया है, और स्नायु-रोग के लिए यह तथ्य उतने ही महत्व का है जितने महत्व का दूसरा तथ्य—यदि उसने वस्तुतः उनमें वर्णित बातों का अनुभव किया होता। भौतिक यथार्थता के मुकाबले में इन कल्पनाओं में **मनोधात्वीय** या मानसिक यथार्थता है, और क्रमशः हम यह समझने लगते हैं **कि स्नायु-रोग की दुनिया में मनोधात्वीय या मानसिक यथार्थता ही निर्धारक कारक है।**

जो घटनाएं स्नायु-रोगी के बालकपन की कहानी में बीच-बीच में दुहराती रहती हैं, और जो सदा प्रायः हाजिर रहती हैं, उनमें से कुछ विशेष अर्थपूर्ण होती हैं, और इसलिए उनकी ओर मैं विशेष ध्यान खींचना चाहता हूं। इस तरह की घटनाओं के नमूने मैं गिनाऊंगा : माता-पिता का सम्भोग देखना, वयस्क द्वारा फुसलाया जाना और बधिया करने, अर्थात् लिंग काट लेने, की धमकी। यह समझना बड़ा ग़लत होगा कि ये घटनाएं यथार्थ रूप में कभी नहीं होतीं। इसके विपरीत, अधिक उमर वाले रिश्तेदारों की गवाही से उनकी प्रायः असंदिग्ध रूप में पुष्टि होती है। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, ऐसा बहुत बार होता है कि छोटे बालक को जो अपने शिश्न से खेलने लगा है और जिसने अभी यह नहीं सीखा है कि उसे ऐसे कामों को छिपाना चाहिए, माता-पिता या नर्स यह धमकी देती है कि उसका शिश्न या हाथ काट दिया जाएगा। पूछने पर माता-पिता प्रायः इस तथ्य को स्वीकार करेंगे, क्योंकि वे समझते हैं कि इस तरह डराना उचित था। बहुत-से लोगों को इस धमकी की स्पष्ट सचेत स्मृति होती है, विशेष रूप से यदि यह बालकपन के पिछले हिस्से में दी गई है। यदि यह धमकी माता या कोई और स्त्री देती है तो वह यह (धमकी में व्यक्त) कार्य करने का भार किसी दूसरे पर डालती है अर्थात् यह कहती है कि पिता या डाक्टर यह कार्य करेगा। बच्चों के चिकित्सक हाफमैन (फ्राकफोर्ट वाले) की प्रसिद्ध रचना **स्ट्रुवेल-पीटर** में, जिसकी लोकप्रियता का कारण यही है कि वह बालकों की यौन तथा अन्य ग्रन्थियों को समझता था, आप देखेंगे कि बधिया करने के विचार का रूप बदलकर उसके स्थान पर अंगूठा चूसते रहने की सज़ा अंगूठे काटना रख दी है। पर यह बहुत असम्भाव्य है कि बधिया या लिंगच्छेद करने की धमकी इतनी बार दी गई हो, जितना किसी स्नायु-रोगी के विश्लेषण से प्रतीत होता है। हमें इतना ही समझना चाहिए कि बालक अपनी इस जानकारी में से कि आत्मकामिक सन्तुष्टियों पर रोक है, संकेतों और निर्देशों के आधार पर इस तरह की धमकी अपने मन से गढ़ लेता है, और इस तरह की बात गढ़ने में वह स्त्री-जननेन्द्रिय को देखने पर प्राप्त संस्कार से भी प्रभावित होता है। इसी तरह यह भी असम्भव नहीं है कि उस छोटे-से बच्चे ने, जिसके बारे में यह कहा जाता है कि उसे न समझ है और न स्मृति है, अपने माता-पिता को या गरीब मजदूरों के अलावा अन्य परिवारों के दूसरे वयस्कों को सम्भोग करते देखा हो। और यह सोचना तर्कसंगत है कि इस समय प्राप्त

सस्कार को वालक **वाद में** समझ सकता है, और तभी इसपर प्रतिक्रिया कर सकता है, पर जब इस सम्भोग-कार्य का वर्णन इतनी वारीक वातें विस्तार से वताकर किया जाता है जो मुश्किल से ही देखी जा सकती थी, या जब ऐसा प्रतीत होता है, जैसा वहुत वार होता है, कि सम्भोग पीछे से किया गया है, तब इसमें कोई शक नही रहता कि यह कल्पना सम्भोग करते हुए पशुओ (कुत्तों) को देखने से पैदा हुई है, और इसका प्रेरक वल वालक की अतृप्त दर्शनेच्छा में मौजूद है। इस तरह की कल्पना का सवसे वडा चमत्कार यह है कि रोगी कहता है कि मैंने अपने जन्म से पहले माता के गर्भ में रहते हुए ही माता-पिता का सम्भोग देखा था।

फुसलाने की कल्पना विशेष दिलचस्प है, क्योंकि अधिकतर, यह कल्पना नहीं होती वल्कि वास्तविक स्मरण होती है। पर सौभाग्य से, यह उतने उदाहरणो में यथार्थ नही होती जितने में यह पहले विश्लेषण के परिणामो से प्रतीत होती थी। वयस्को की अपेक्षा उसी आयु के या कुछ अधिक आयु के वालको द्वारा फुसलाने की वात अधिक होती है, और जव लडकिया, जो अपने वालकपन की कहानी में प्राय सदा इस घटना को पेश करती है, पिता को फुसलाने वाला वतलाती हैं, तव न तो इस कथन के कल्पित होने में संदेह किया जा सकता है और न इसके पीछे क्रियाशील प्रेरक भाव में। जव फुसलाने की वात नही हुई है तव कल्पना प्रायः वचपन की आत्मकामिता वाली यौन चेष्टा को ढकने के लिए प्रयुक्त की जाती है। वालक आत्मकामिता के वारे में शर्म की भावना से वचने के लिए, कल्पना से, विलकुल शुरू के काल में किसी वाञ्छित आलम्वन की वात वना लेता है। परन्तु यह मत समझिए कि निकटतम पुरुष रिश्तेदारो द्वारा वालको का यौन दुरुपयोग पूरी तरह कल्पना-लोक की ही उडान है, अधिकतर विश्लेषको ने ऐसे रोगियो का इलाज किया होगा, जिनके साथ सचमुच ऐसी घटनाए हुई थी और जो असंदिग्ध रूप से सिद्ध की जा सकती थी। पर फिर भी वे वचपन के पिछले वर्षों की घटनाए थी और वे उनसे पहले के समय की वना दी गई थी।

इन सवसे एक ही धारणा वनती है, कि स्नायु-रोग के लिए इस तरह के वालकपन के अनुभव किसी न किसी रूप में आवश्यक हैं कि वे इनकी स्थायी सूची में आते हैं। यदि वे यथार्थ घटनाओं में मिलते हैं तो अच्छा है, पर यदि यथार्थता में से नहीं हैं तो उन्हें संकेतों में से निकालकर कल्पना द्वारा वढा लिया जाएगा। परिणाम वही है, और आज भी हमें परिणामों में कोई भिन्नता पाने में सफलता नहीं हुई, चाहे इन अनुभवों में कल्पना ने मुख्य कार्य किया हो या यथार्थता ने। यह भी उन मूल श्रेणियों में से एक है, जिनकी पहले इतनी वार चर्चा की गई है। निश्चित रूप से यह उन सवसे विचित्र है। इन कल्पनाओं की आवश्यकता और सामग्री कहा से आती है? निसर्ग-वृत्ति-स्रोतों के वारे में कोई संदेह नहीं हो सकता पर इस वात की कैसे व्याख्या की जाएगी कि समान कल्पनाएं सदा उसी वस्तु से वन जाती हैं।

इसका मेरे पास एक ही उत्तर है, और मैं यह जानता हूं कि वह आपको बड़ा साहसिक लगेगा। मेरा विश्वास है कि ये **आदिम कल्पनाएं**[1] (मैं इन्हें तथा कुछ और कल्पनाओं को भी यह नाम देना चाहता हूं) जातिचरितीय सम्पत्ति हैं। उनमें मनुष्य का अपना अनुभव जहां कहीं नाकाफी रहा, वहां वह इससे बाहर निकलकर अपने आपको अतीत के युगों के अनुभवों तक फैला लेता है। मुझे यह बिलकुल सम्भव मालूम होता है कि आज विश्लेषण में कल्पना के रूप में जो कुछ बताया जाता है— बचपन में फुसलाना, माता-पिता के मैथुन को देखकर यौन उत्तेजना का पैदा होना, लिंगच्छेद की धमकी, या स्वयं लिंगच्छेद भी वह मानव कुटुम्ब के प्रागैतिहासिक कालों में यथार्थतः था, और बालक अपनी कल्पना में अपने सच्चे व्यक्तिगत अनुभवों के खाली स्थानों के सच्चे प्रागैतिहासिक अनुभवों से पूर्तिमात्र कर देता है। हमें बार-बार यह संदेह करने का मौका आया कि मानव परिवर्धन के आद्यकालीन रूपों की सबसे अधिक जानकारी हमारे लिए स्नायु-रोगों के मनोविज्ञान में ही संचित है, हमारी गवेषणा के किसी अन्य क्षेत्र में नहीं।

अब जिन बातों पर हम विचार कर रहे हैं, उनके लिए उस मानसिक व्यापार के उद्‌गम और अर्थ पर अधिक बारीकी से विचार करने की आवश्यकता है, जिसे 'कल्पना-निर्माण' कहते हैं। साधारणतया, जैसा कि आप जानते हैं, इसे बड़ा सम्मान प्राप्त है, यद्यपि मानसिक जीवन में इसका स्थान स्पष्ट रूप से नहीं समझा गया। मैं इसके बारे में आपको इतना ही बता सकता हूं आप जानते हैं कि बाहरी आवश्यकता के प्रभाव से मनुष्य का अहम् धीरे-धीरे इस तरह प्रशिक्षित हो जाता है कि वह यथार्थता का महत्व ग्रहण कर सके और यथार्थता-सिद्धांत पर चल सके, और ऐसा करने में इसे अपनी सुख की इच्छा के न केवल यौन बल्कि और बहुत-से आलम्बन और उद्देश्य स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से त्यागने होंगे। पर सुख का त्याग मनुष्य के लिए सदा बड़ा कठिन रहा है। वह किसी न किसी तरह की क्षति-पूर्ति के बिना इसे नहीं कर पाता। इसलिए,उसने अपने वास्ते एक ऐसे मानसिक व्यापार का विकास कर लिया है जिसमें सुख के ये सब त्यागे हुए साधन और सन्तुष्टि के छोड़े हुए मार्ग अपना ऐसा अस्तित्व बनाए रख सकते हैं, जिसमें वे यथार्थता की आवश्यकताएं पूरी करने से फारिग रहते हैं, और जिसे हम 'प्रयोगशील यथार्थता'[2] का प्रयोग कहते हैं, उससे मुक्त रहते हैं। प्रत्येक लालसा शीघ्र ही अपनी पूर्ति के मनोबिंब में रूपान्तरित हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कल्पना में इच्छा-पूर्ति करने से तृप्ति होती है,यद्यपि यह ज्ञान कि यह यथार्थता नहीं है इसके द्वारा ढक नहीं जाता। इसलिए कल्पना में मनुष्य उस बाहरी जगत की पकड़ से आजादी का मजा लेता रह सकता है,जिसे असल में उसने बहुत पहले त्याग दिया है। उसने अपने आपको इस तरह का बना लिया है कि वह कभी सुखार्थी प्राणी और कभी

1. Primal phantasies 2. Testing reality.

संस्कार को बालक **बाद में** समझ सकता है, और तभी इसपर प्रतिक्रिया कर सकता है, पर जब इस सम्भोग-कार्य का वर्णन इतनी बारीक बातें विस्तार से बताकर किया जाता है जो मुश्किल से ही देखी जा सकती थी, या जब ऐसा प्रतीत होता है, जैसा बहुत बार होता है, कि सम्भोग पीछे से किया गया है, तब इसमें कोई शक नही रहता कि यह कल्पना सम्भोग करते हुए पशुओ (कुत्तो) को देखने से पैदा हुई है, और इसका प्रेरक बल बालक की अतृप्त दर्शनेच्छा में मौजूद है। इस तरह की कल्पना का सबसे बडा चमत्कार यह है कि रोगी कहता है कि मैंने अपने जन्म से पहले माता के गर्भ मे रहते हुए ही माता-पिता का सम्भोग देखा था।

फुसलाने की कल्पना विशेष दिलचस्प है, क्योंकि अधिकतर, यह कल्पना नही होती बल्कि वास्तविक स्मरण होती है। पर सौभाग्य से, यह उतने उदाहरणो में यथार्थ नही होती जितने में यह पहले विश्लेषण के परिणामो से प्रतीत होती थी। वयस्को की अपेक्षा उसी आयु के या कुछ अधिक आयु के बालको द्वारा फुसलाने की बात अधिक होती है, और जब लडकिया, जो अपने बालकपन की कहानी में प्राय सदा इस घटना को पेश करती है, पिता को फुसलाने वाला बतलाती है, तब न तो इस कथन के कल्पित होने में सदेह किया जा सकता है और न इसके पीछे क्रियाशील प्रेरक भाव में। जब फुसलाने की बात नहीं हुई है तब कल्पना प्रायः बचपन की आत्मकामिता वाली यौन चेष्टा को ढकने के लिए प्रयुक्त की जाती है। बालक आत्मकामिता के बारे में शर्म की भावना से बचने के लिए, कल्पना से, बिलकुल शुरू के काल में किसी वाछित आलम्बन की बात बना लेता है। परन्तु यह मत समझिए कि निकटतम पुरुष रिश्तेदारो द्वारा बालको का यौन दुरुपयोग पूरी तरह कल्पना-लोक की ही उडान है, अधिकतर विश्लेषको ने ऐसे रोगियो का इलाज किया होगा, जिनके साथ सचमुच ऐसी घटनाए हुई थी और जो असंदिग्ध रूप से सिद्ध की जा सकती थी। पर फिर भी वे बचपन के पिछले वर्षो की घटनाए थी और वे उनसे पहले के समय की बता दी गई थी।

इन सबसे एक ही धारणा बनती है, कि स्नायु-रोग के लिए इस तरह के बालकपन के अनुभव किसी न किसी रूप में आवश्यक है कि वे इसकी स्थायी सूची में आते है। यदि वे यथार्थ घटनाओ में मिलते है तो अच्छा है, पर यदि यथार्थता में वे नही है तो उन्हे सकेतो में से निकालकर कल्पना द्वारा बढा लिया जाएगा। परिणाम वही है, और आज भी हमें परिणामो में कोई भिन्नता पाने में सफलता नही हुई, चाहे इन अनुभवो में कल्पना ने मुख्य कार्य किया हो या यथार्थता ने। यह भी उन पूर्व शर्तो में से एक है, जिनकी पहले इतनी बार चर्चा की गई है। निश्चित रूप से यह सबसे विचित्र है। इन कल्पनाओ की आवश्यकता और सामग्री कहा से आती है? निर्गम-स्रोतो के बारे में कोई सदेह नही हो सकता पर इस बात की कैसे व्याख्या की जाएगी कि समान कल्पनाए सदा उसी वस्तु से बन जाती है।

इसका मेरे पास एक ही उत्तर है, और मैं यह जानता हू कि वह आपको वडा साहसिक लगेगा। मेरा विश्वास है कि ये **आदिम कल्पनाएं**[1] (मैं इन्हे तथा कुछ और कल्पनाओ को भी यह नाम देना चाहता हू) जातिचरितीय सम्पत्ति हैं। उनमें मनुष्य का अपना अनुभव जहा कही नाकाफी रहा, वहा वह इससे वाहर निकलकर अपने आपको अतीत के युगो के अनुभवो तक फैला लेता है। मुझे यह विलकुल सम्भव मालूम होता है कि आज विश्लेपण में कल्पना के रूप में जो कुछ वताया जाता है—वचपन में फुसलाना, माता-पिता के मैथुन को देखकर यौन उत्तेजना का पैदा होना, लिगच्छेद की धमकी, या स्वय लिगच्छेद भी वह मानव कुटुम्ब के प्रागैतिहासिक कालो में यथार्थत था, और वालक अपनी कल्पना मे अपने सच्चे व्यक्तिगत अनुभवो के खाली स्थानो के सच्चे प्रागैतिहासिक अनुभवो से पूर्तिमात्र कर देता है। हमें वार-वार यह सदेह करने का मौका आया कि मानव परिवर्धन के आद्यकालीन रूपो की सवसे अधिक जानकारी हमारे लिए स्नायु-रोगो के मनोविज्ञान में ही सचित है, हमारी गवेपणा के किसी अन्य क्षेत्र में नही।

अव जिन वातो पर हम विचार कर रहे हैं, उनके लिए उस मानसिक व्यापार के उद्गम और अर्थ पर अधिक वारीकी से विचार करने की आवश्यकता है, जिसे 'कल्पना-निर्माण' कहते हैं। साधारणतया, जैसा कि आप जानते हैं, इसे वडा सम्मान प्राप्त है, यद्यपि मानसिक जीवन में इसका स्थान स्पष्ट रूप से नही समझा गया। मै इसके वारे में आपको इतना ही वता सकता हू' आप जानते ह कि वाहरी आवश्यकता के प्रभाव से मनुष्य का अहम् धीरे-धीरे इस तरह प्रशिक्षित हो जाता है कि वह यथार्थता का महत्व ग्रहण कर सके और यथार्थता-सिद्धात पर चल सके, और ऐसा करने में इसे अपनी सुख की इच्छा के न केवल यौन वल्कि और वहुत-से आलम्वन और उद्देश्य स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से त्यागने होगे। पर सुख का त्याग मनुष्य के लिए सदा वडा कठिन रहा है। वह किसी न किसी तरह की क्षति-पूर्ति के विना इसे नही कर पाता। इसलिए,उसने अपने वास्ते एक ऐसे मानसिक व्यापार का विकास कर लिया है जिसमें सुख के ये सव त्यागे हुए साधन और सन्तुष्टि के छोडे हुए मार्ग अपना ऐसा अस्तित्व वनाए रख सकते हैं, जिसमें वे यथार्थता की आवश्यकताए पूरी करने से फारिग रहते हैं, और जिसे हम 'प्रयोगशील यथार्थता'[2] का प्रयोग कहते हैं, उससे मुक्त रहते हैं। प्रत्येक लालसा शीघ्र ही अपनी पूर्ति के मनोविव मे रूपान्तरित हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नही कि कल्पना में इच्छा-पूर्ति करने से तृप्ति होती है,यद्यपि यह ज्ञान कि यह यथार्थता नही है इसके द्वारा ढक नही जाता। इसलिए कल्पनामें मनुष्य उस वाहरी जगत की पकड़ से आजादी का मजा लेता रह सकता है,जिसे असल में उसने वहुत पहले त्याग दिया है। उसने अपने आपको इस तरह का वना लिया है कि वह कभी सुखार्थी प्राणी और कभी

१. Primal phantasies. २. Testing reality.

तर्कसगत मनुष्य बनता रहे, क्योकि यथार्थता से जो थोडी-सी सन्तुष्टि वह कर पाता है, वह उसे भूखा और अतृप्त छोड जाती है। फौन्टेन ने कहा था "सहायक निर्माणों के बिना कोई भी कार्य नही किया जाता।" कल्पना के मनोराज्य की सृष्टि में ऐसे स्थानो पर 'सरक्षित वनों' और 'प्राकृतिक वाटिकाओं' की स्थापना अच्छी तरह की जाती है,जहा खेती, यातायात या उद्योग के विस्तार के कारण धरती का असली चेहरा बडी तेजी से एक अजनबी चीज में बदलने का खतरा मौजूद है। 'सरक्षित वन' है वस्तुओ की पुरानी अवस्था को कायम रखना, जिसे और सब जगह, खेद के साथ, आवश्यकता पर बलि चढ़ा दिया गया है। वहा प्रत्येक वस्तु, यहा तक कि बेकार और हानिकारक वस्तु भी, मनचाहे तौर से बढ और फैल सकती है। कल्पना का मनोराज्य भी ऐसा ही सरक्षित वन है जिसे यथार्थतावाद की घुस-पैठ से बचाकर हरा-भरा किया गया है।

कल्पना से उत्पन्न सबसे अच्छी तरह ज्ञात सृष्टियो से हम पहले परिचय कर चुके हैं। वे दिवा-स्वप्न कहलाती हैं, और वे ऊची-ऊची बडी-बडी कामुक इच्छाओं की काल्पनिक परितुष्टि ह, और यथार्थता विनय और धीरज रखने के लिए जितनी भर्त्सना करती है, उतना ही अधिक समय उनपर लगाया जाता है। उनमें काल्पनिक सुख का सारतत्व, अर्थात् सन्तुष्टि का ऐसी अवस्था में आ जाना जिसमें वह यथार्थता की अनुमति पर निर्भर नही रहती है,असदिग्ध रूप से दिखाई देता है। हम जानते हैं कि ये दिवा-स्वप्न रात्रि-स्वप्नो के बीज और नमूने हैं। मूलत रात्रि-स्वप्न ऐसा दिवा-स्वप्न ही है जिसे मानसिक व्यापार के रात में होनेवाले रूप ने विपर्यस्त कर दिया है, और जो इस कारण बन पाता है कि निसर्ग-वृत्ति सम्बन्धी उत्तेजनो को रात में आजादी रहती है। हम पहले ही जान चुके हैं कि दिवा-स्वप्न का चेतन होना आवश्यक नही, और अचेतन दिवा-स्वप्न भी होते हैं। इसलिए ऐसे अचेतन दिवा-स्वप्नो से जिस तरह रात्रि-स्वप्न पैदा होते हैं, वैसे ही स्नायविक लक्षण भी पैदा होते हैं।

लक्षण-निर्माण में कल्पना की सार्थकता आपको नीचे की बात से स्पष्ट हो जाएगी। हमने कहा था कि राग कुठा में प्रतिगमन करके उन स्थानो को आच्छादित कर लेता है जिन्हें वह छोड चुका है, पर जिनसे फिर भी इसकी ऊर्जा के कुछ अश जुडे रह गए हैं। हम इस कथन को वापस नही लेंगे, या इसमें सशोधन नही करेंगे, पर हमें इनके बीच में एक जोडने वाली कडी रखनी होगी। राग को इन बद्धता-बिन्दुओं की ओर वापस लौटने का अपना रास्ता कैसे मिलता है? अब राग ने जिन आलम्बनों और धाराओं या प्रवाह-मार्गों को छोड दिया है, उन्हें प्रत्येक अर्थ में नहीं छोड दिया है। वे या इनसे बनी हुई वस्तुएं, कुछ तीव्रता के साथ, कल्पना के अवधारणाओं में अब भी कायम है। राग को सब दमित बद्धताओं पर लौटने का अपने लिए खुला रास्ता पाने के लिए सिर्फ इतना ही करना है कि

वह और सब तरफ से खिचकर कल्पनाओ पर आ जाए। इन कल्पनाओ ने एक तरह की सहिष्णुता का सुख पाया है। उनमें और अहम् में कितना ही स्पष्ट विरोध होने पर भी तब तक कोई द्वन्द्व नही बन सका जब तक कि एक खास अवस्था बनी रही---मात्रात्मक[1] स्वरूप की अवस्था बनी रही, जो अब, राग का प्रवाह कल्पनाओ पर आ जाने से बिगड़ गई है, या हट गई है। इस आगमन से कल्पनाओ का ऊर्जावेश या कैथेक्सिस इतना अधिक बढ जाता है कि वे अपना व्यक्तित्व दिखाने लगती है, और कार्य-सिद्धि की ओर दबाव डालने लगती हे। पर तब उनमें और अहम् में सघर्ष अवश्यम्भावी हो जाता है। यद्यपि पहले वे पूर्व चेतन या अचेतन थी, तो भी अब उनपर अहम् की ओर से दमन का प्रभाव पडता है और अचेतन की ओर से लगनेवाले आकर्षण का प्रभाव होता है। राग कल्पनाओ से, जो अब अचेतन हो गई है, अचेतन में मौजूद उनके उत्पत्ति-स्थानो की, अपने खुद के बद्धता-बिन्दुओ की, यात्रा करता है।

राग का कल्पना पर लौटना लक्षण-निर्माण के मार्ग में एक बीच का कदम है, जिसका कोई विशेष नाम देना उचित है। सी० जी० जुग ने इसे एक उपयुक्त नाम **अन्तर्मुखता**[2] दिया है, पर उसने इसका दूसरी वस्तुओ के वर्णन करने में भी अनुपयुक्त रूप से प्रयोग किया है। हम इस स्थिति पर दृढ रहेगे कि **'अन्तर्मुखता'** शब्द यथार्थ सन्तुष्टि की शक्यताओ से राग के परे हट जाने का, और उन कल्पनाओ पर, जो पहले हानिरहित मानकर सहन की जाती थी, इसके अत्यधिक सचय का वर्णन करता है। अन्तर्मुख व्यक्ति अभी स्नायु-रोगी नही होता पर वह अस्थायी दशा में होता है। स्थान बदलते हुए बलो के नए विक्षोभ से लक्षण उभर आएंगे. बशर्ते कि वे अब भी अपने दबे हुए राग के लिए कोई और रास्ता तलाश न कर लें। इस जगह अन्तर्मुखता का रोब होने पर स्नायविक सन्तुष्टि का अयथार्थ रूप और कल्पना व यथार्थता के अन्तर का तिरस्कार होना पहले ही निश्चित हो जाता है।

नि.सन्देह आपने देखा होगा कि अपने इस अन्तिम कथन में मैने कार्य-कारण-शृखला जोडते हुए एक नया कारक, अर्थात् **मात्रा** या सम्बन्धित ऊर्जाओ की राशि पेश की है। हमें इस कारक को भी सदा अपनी जाच में शामिल करना चाहिए, कारणात्मक अवस्थाओ का शुद्ध रूप से गुणात्मक[3] विश्लेपण काफी नही; या दूसरी तरह कहा जाए तो इन प्रक्रमो की शुद्ध रूप से गतिकीय अवधारणा काफी नही; उसके साथ **आर्थिक** पहलू भी आवश्यक है। हमें यह प्रत्यक्ष होता है कि दो विरोधी बलो में तब तक द्वंद्व नही छिडना, जब तक आच्छादन की मात्रा में एक विशेष तीव्रता न आ जाए, चाहे उनका अस्तित्व सूचित करने वाली अवस्थाए बहुत समय से मौजूद हो। इसी प्रकार, शरीर-रचना सम्बन्धी कारक का रोग-

१. Quantitative २. Introversion. ३. Qualitative

जनक महत्व इस बात से निर्धारित होता है कि घटक-निसर्ग-वृत्तियो में से एक उस विन्यास मे दूसरी की अपेक्षा अधिक हो। यह भी समझा जा सकता है कि विन्यास गुणात्मक दृष्टि से सब मनुष्यो में एक-सा है, और उसमें जो कुछ भेद है, वह मात्रा के कारण ही है। स्नायविक रोग को सहन करने की क्षमता में भी इस मात्रा सम्बन्धी कारक का कम महत्व नही है। अविसर्जित राग की उस राशि पर ही यह बात निर्भर है कि जिसे कोई व्यक्ति, मुक्त रूप से घूमती हुई, अपने में धारण कर सकता है, और इसका कितना बड़ा अश इसे यौन उद्देश्य से हटाकर उदात्तीकरण मे यौनेतर उद्देश्य की ओर प्रेरित कर सकता है। मानसिक व्यापार का अन्तिम लक्ष्य—जो गुणात्मक दृष्टि से यह बताया जा सकता है कि सुख पाने और दु ख से बचने का प्रयत्न करना—आर्थिक दृष्टि से यह होता है कि मानसिक उपकरण में मौजूद उत्तेजन की मात्राओ (उद्दीपन-सहतियो) के वितरण को नियत्रित किया जाए, और उसका ऐसा सचय, जो दु ख पैदा करे, रोका जाए।

स्नायु-रोगो के लक्षण-निर्माण के बारे में मुझे आपको इतना ही बताना था, पर यह बात एक बार फिर दोहरा देना चाहता हू कि मैंने आज जो कुछ कहा है, वह सिर्फ हिस्टीरिया के लक्षण-निर्माण के बारे में है। मनोग्रस्तता-रोग में बहुत अन्तर दिखाई देते हैं, यद्यपि सारभूत बातें वे ही हैं। निसर्ग-वृत्ति द्वारा सन्तुष्टि के लिए पेश की गई माग के विरुद्ध अहम् से होने वाले 'प्रति आवेश' जिनका हिस्टीरिया के सिलसिले में पहले उल्लेख किया गया है, मनोग्रस्तता-रोग मे अधिक स्पष्ट और प्रबल होते हैं और 'प्रतिक्रिया-निर्माणों' के रूप में रोग-चित्र में प्रधान होते हैं। अन्य स्नायु-रोगो मे, जिनमें लक्षण-निर्माण के तत्रो की क्षेत्र-गवेपणा[1] अभी किसी भी दिशा में पूरी नही हुई, ऐसे ही और अधिक बडे अन्तर पाए जाते हैं।

आज आपके उठने से पहले मैं जरा देर के लिए आपका ध्यान कल्पना-जीवन के ऐसे पहलू की ओर खीचना चाहता हू जो व्यापक दिलचस्पी का है। कल्पना से फिर यथार्थता में आने का सचमुच एक रास्ता है और वह है—कला। कलाकार में भी अन्तर्मुख प्रवृत्ति होती है, और थोडा और चलते ही वह स्नायु-रोगी बन सकता है। वह ऐसा व्यक्ति है जिसे बहुत प्रबल और जोर-शोर वाली निसर्ग-वृत्तीय आवश्यकताए प्रेरित करती हैं। वह सम्मान, शक्ति, धन, यश और स्त्रियो का प्रेम पाने की कामना करता है, पर उसके पास ये सन्तुष्टिया पाने के साधन नही हैं। इसलिए असन्तुष्ट लालसाओ वाले अन्य व्यक्तियो की तरह वह यथार्थ से हट जाता है, और अपनी सारी दिलचस्पी और अपना सारा राग भी कल्पना के जीवन में अपनी लालसाओ की तृप्ति पर ले जाता है, जहा से कुछ ही दूर चलने पर स्नायु-रोग आ सकता है। उसे अपना परिवर्तन करते-करते स्नायु-रोग पर पहुचने मे

[1] Field research

रोकने के लिए बहुत-से कारक इकट्ठे होते हैं। यह बात काफी प्रसिद्ध है कि अधिकतर कलाकार स्नायु-रोग के कारण अपनी क्षमताओं के आंशिक निरोध से पीड़ित होते हैं। सम्भवत. उनकी शरीर-रचना में उदात्तीकरण की प्रबल क्षमता होती है, और द्वंद्व पैदा करने या न करने के कारणरूप दमनों में कुछ लचक होती है, पर कलाकार यथार्थता की ओर लौटने का मार्ग इस तरह पा लेता है। वह अकेला ही ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसके पास कल्पना का जीवन हो। कल्पना का मध्यवर्ती लोक सारी मानव जाति में मिलती है, और हर अतृप्त आत्मा आराम और सान्त्वना के लिए इसका सहारा लेती है। पर जो लोग कलाकार नहीं हैं, वे कल्पना से बहुत सीमित आनन्द हासिल कर सकते हैं। उनके क्रूर दमनों के कारण वे उन थोड़े-से दिवा-स्वप्नों का ही आनन्द ले पाते हैं, सब कल्पनाओं का नहीं। सच्चे कलाकार के पास कुछ और भी चीज होती है। सबसे पहले तो वह अपने दिवा-स्वप्नों को इस तरह विशद करना जानता है कि उनमें से वह व्यक्तिगत अंश निकल जाए जो अपरिचित कानों को खटकता है और दूसरोंके लिए वे दिवा-स्वप्न रसनीय और रमणीय बन जाते हैं। वह यह भी जानता है कि उनमें इतना काफी परिवर्तन कैसे कर दिया जाए कि आसानी से यह पता न चल सके कि उनकी उत्पत्ति प्रतिपिद्ध स्रोतोंसे हुई है। इसके अलावा, उसमें यह रहस्यमय प्रवीणता होती है कि अपनी निजी सामग्री को इस तरह से ढाल सके कि वह उसकी कल्पना के मनोबिम्बों का ठीक-ठीक अभिव्यक्ति कर सके, और फिर,वह यह भी जानता है कि उसके कल्पना-जीवन के इस प्रतिबिम्ब से ऐसी प्रबल सुखधारा कैसे जोड़ दी जाए कि कम से कम कुछ देर केलिए यह दमनों से अधिक शक्तिशाली हो जाए और उन्हें बाहर कर दे। जब वह यह सब कुछ कर सकता है तब दूसरों के लिए, उनके अपने अचेतन सुख-स्रोतों से आराम और सान्त्वना पाने का रास्ता खोल देता है और इस तरह उनकी कृतज्ञता और प्रशंसा प्राप्त करता है, तब उसे अपनी कल्पना द्वारा वह चीज़ प्राप्त हो गई है जो पहले वह कल्पना में ही प्राप्त कर सकता था . सम्मान, शक्ति और स्त्रियों का प्रेम।

व्याख्यान | २४

साधारण स्नायविकता

पिछले व्याख्यान में हमने जिस कठिन प्रश्न पर विचार किया है, उसके बाद थोडी देर के लिए मैं उस विषय को छोड देता हू और अब कुछ समय के लिए अपने श्रोताओ की ओर ध्यान देता हू ।

मैं जानता हू कि आप असन्तुष्ट हे । आपने सोचा था कि **मनोविश्लेषण का सामान्य परिचय** बिलकुल दूसरी ही तरह की चीज होगी । आपको आशा थी कि सिद्धान्तो के बजाय जीवन के उदाहरण पेश किए जाएगे । आप मुझसे कहेंगे कि उन दो बच्चो की कहानी ने, जिनमें से एक निचली मजिल में और दूसरा ऊपर रहता था, स्नायु-रोग के कारण पर कुछ रोशनी डाली, पर वह एक मनगढ़त दृष्टात के बजाय वास्तविक तथ्य होना चाहिए था, या आप कहेंगे कि जब मैंने शुरू में आपके सामने दो लक्षणो का वर्णन किया था,(भरोसा रखिए कि वे काल्पनिक नही थे) और उनका समाधान तथा रोगियो के जीवन से उनका सम्बन्ध-सूत्र पेश किया था, तब उससे लक्षणो के अर्थ पर कुछ प्रकाश पडा था, और आपने आशा की थी कि मैं उसी तरह आगे चलता रहूगा। ऐसा करने के बजाय मैंने आपको बहुत समय लेने वाले और बडे अस्पष्ट सिद्धान्त बताए जो कभी पूरे न हुए और उनमें मैं कुछ न कुछ जोडता ही रहा । मै ऐसे अवधारणो की चर्चा करता रहा, जिनका मैंने अभी आपको परिचय नहीं दिया था । मैंने वर्णनात्मक व्याख्या छोडकर गतिकीय पहलू से व्याख्या शुरू कर दी, और फिर इसे भी छोडकर तथा-कथित आर्थिक व्याख्या शुरू कर दी । आपके लिए यह समझना कठिन कर दिया कि इनमें से कितने पारिभाषिक शब्दो का अर्थ एक ही है,और वे सिर्फ बोलने की सुविधा के लिए एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किए गए हैं। मैंने विस्तृत अवधारणाए पेश की, जैसे सुख-सिद्धान्त और यथार्थता-सिद्धात की और 'जातिचरितीय' परिवर्धन के वशागत अवशेष की, और फिर आपके सामने कोई बात स्पष्ट करने के बजाय मैंने उन्हे आपके देखते-देखते आपकी नजरो से ओझल हो जाने दिया ।

मैंने स्नायु-रोगो के अध्ययन की भूमिका उन बातो से क्यो शुरू नही की जो

आप सब स्नायविकता के बारे में जानते हैं, जिन्होने बहुत समय से आपकी दिलचस्पी जगा रखी है। या स्नायविक व्यक्तियो के खास तरह के स्वभाव, मानवीय समागम और बाहरी प्रभावो पर उनकी दुर्बोध प्रतिक्रियाओ, उनकी उत्तेजनशीलता, उनकी अविश्वसनीयता और किसी काम में सफल होने की उनकी असमर्थता से इसे क्यो शुरू नही किया ? मैंने स्नायविकता के सरल प्रतिदिन दिखाई देने वाले रूपो की व्याख्या से एक-एक कदम बढते हुए आपको उसके उग्र गूढ रूपो तक क्यो नही पहुचाया ?

सच पूछिए तो मैं इनमें से किसी भी बात से इन्कार नही करता, या यह नही कहता कि आपका कहना गलत है। मुझे अपनी प्रतिपादन-क्षमता से इतना प्रेम है कि मुझे इसकी हर कमी में एक विशेष आकर्षण दिखाई देता है। मैं स्वय यह समझता हू कि अगर मैं दूसरे तरीके से चलता तो अधिक अच्छा रहता, और सच पूछिए तो मेरा यही इरादा था। पर आदमी सदा तर्कपूर्ण योजना पर चल नही पाता। प्राय ऐसा होता है कि सामग्री में कोई ऐसी चीज आ पडती है, या प्रतिपादन-सामग्री का ही कोई ऐसा अश बीच मे आ कूदता है जो मनुष्य पर हावी हो जाता है, और उसे अपने सोचे हुए रास्ते मे हटा देता है। सुपरिचित सामग्री को सिलसिले से सजाने जैसा मामूली काम भी पूरी तरह कर्ता की इच्छा के अधीन नही रहता। यह अपने ही तरीके से बाहर आता है, और आदमी बाद में आश्चर्य भी कर सकता है कि यह ऐसा क्यो हुआ, और इससे भिन्न रूप से क्यो नही हुआ ?

सम्भवतः इसका एक कारण यह है कि मेरे मूल प्रतिपाद्य, अर्थात् मनोविश्लेषण के परिचय में, स्नायु-रोगो के विषय से सम्बन्धित अश नही समाता। मनोविश्लेषण का परिचय या भूमिका में गलतियो और स्वप्नो का अध्ययन ही आता है, स्नायु-रोग का सिद्धान्त तो स्वय मनोविश्लेषण ही है। मैं नही समझता कि इतने थोडे-से समय में मैं आपको इस तरह बहुत सघन रूप के अलावा और किसी तरह स्नायु-रोगो के सिद्धान्त की भीतरी सामग्री की कुछ जानकारी दे सकता था। इसमें मुझे लक्षणो का अर्थ और तात्पर्य, और साथ ही लक्षण-निर्माण की बाहरी और भीतरी दशाए और तन्त्र उनके उपयुक्त सिलसिले में आपके सामने पेश करने थे। यह पेश करने की कोशिश मैंने की है। मोटे रूप में मनोविश्लेषण आज जो कुछ आपके सामने रख सकता है, यह उसका सारभाग है। इसके साथ-साथ राग और उसके परिवर्धन के बारे में बहुत कुछ कहा गया है, और अहम् के बारे में भी कुछ कहा गया है। आरम्भिक व्याख्यानो से आप हमारी विधि के मुख्य सिद्धान्तो के लिए और अचेतन के तथा दमन (प्रतिरोध) के अवधारणो से सम्बन्धित मोटी बातो के लिए पहले तैयार हो चुके थे। आगे के एक व्याख्यान में आपको यह पता चलेगा कि किस जगह से मनोविश्लेषण आगे जारी रहेगा। अबतक मैंने आपसे यह बात नही छिपाई है कि हमारे सब प्रमाण स्नायविक रोगो के सिर्फ एक समूह

अर्थात् स्थानान्तरण स्नायु-रोग के अध्ययन से निकले हैं, और इसी तरह मैंने लक्षण-निर्माण के तंत्र की जाच-पडताल सिर्फ हिस्टीरिया-स्नायु-रोग की पेश की है। यद्यपि सम्भवत आपको कोई बहुत सागोपाग जानकारी नही हासिल हुई होगी, और छोटी-छोटी बात आपको याद नही रही होगी, फिर भी मुझे आशा है कि आपको मोटे तौर से यह पता चल गया है कि मनोविश्लेषण किन साधनों से कार्य करता है या किन समस्याओ पर विचार करता है, और यह कौन-से परिणाम पेश कर सकता है।

मैंने कहा था कि आप मन में यह चाहते थे कि मैंने स्नायु-रोगो का विषय स्नायु-रोगी के व्यवहार के वर्णन से और इन बातो के वर्णन से कि वह अपने रोग से किस तरह दु ख उठाता है, अपने आपको इससे किस तरह बचाता है, और किस तरह स्वय को इसके अनुकूल बना लेता है, शुरू किया होता। निश्चित ही यह बडा मनोरजक विषय है, अध्ययन करने योग्य है, और इसमें इलाज करना कुछ कठिन भी नही, तो भी इस पहलू से शुरू करने के विरुद्ध कुछ दलीलें हैं। खतरा यह है कि अचेतन को नजरन्दाज कर दिया जाएगा, राग या लिबिडो के बहुत अधिक महत्व की ओर ध्यान न दिया जाएगा, और प्रत्येक चीज वैसी ही मान ली जाएगी जैसी वह रोगी के अपने अहम् को दिखाई देती है। अब यह स्पष्ट है कि उसका अहम् विश्वसनीय और निष्पक्ष प्रमाण नही है। आखिरकार अहम् वही बल है जो अचेतन के अस्तित्व से इन्कार करता है और जिसने इसका दमन कर रखा है। तो फिर, जहा अचेतन का सम्बन्ध है, वहा हम इसकी ईमानदारी का कैसे भरोसा कर सकते हैं ? जिसका दमन किया गया है, उसमें सबसे मुख्य चीज यौन प्रवृत्ति ही है। यह बिलकुल साफ है कि हमको, इस मामले में अहम् का जो दृष्टि-कोण है उससे, उस दमित यौन प्रवृत्ति की मात्रा और उसके महत्व का कभी भी पता नही चल सकता। जैसे ही हमें दमन की प्रवृति या स्वरूप समझ में आने लगता है, वैसे ही हमसे कहा जाता है कि द्वद्व में लगे हुए दोनों पक्षो में से किसी एक को और विशेप रूप से विजयी पक्ष को अधिक महत्व न दो। हमे पहले ही यह चेतावनी दे दी जाती है कि अहम् जो कुछ हमें बताता है, उससे हम गलत रास्ते पर न चल पडें। अहम् की गवाही के अनुसार ऐसा प्रतीत होगा कि जैसे यह ही सारे समय सक्रिय बना रहा है, और लक्षण इसीकी इच्छा से और इसीके द्वारा पैदा होते हैं। हम जानते हैं कि बहुत सीमा तक इसने निष्क्रिय रहकर कार्य किया है, और इस तथ्य को यह उस समय छिपाने की कोशिश करता और अपनी शान बघारता है। यह सच है कि यह सदा अपने इस दिखावटी रूप को कायम न रख पाता—मनोग्रस्तता-रोग के लक्षणो में यह स्वीकार कर लेता है कि इसका किसी शत्रु से मुकाबला हो रहा है, जिसका यह डटकर प्रतिरोध करता है।

जो अहम् की झूठी बातो को उनके पूरे अर्थ में न लेने की चेतावनी की ओर

ध्यान नही देता, वह निश्चित ही आराम से चलता जाता है। उसे उस सारे विरोध का सामना नही करना पडेगा, जो मनोविश्लेषण को अचेतन, यौन प्रवृत्ति और अहम् के निष्क्रिय रूप पर बल देने के कारण भुगतना पडता है। वह एलफ्रेड एडलर के इस विचार से सहमत हो सकता है कि 'स्नायविक चरित' स्नायु-रोग का परिणाम न होकर कारण है, पर वह लक्षण-निर्माण की एक भी ब्यौरे की बात या एक भी स्वप्न की व्याख्या नही कर सकेगा।

आप पूछेंगे : "क्या यह नही हो सकता कि मनोविश्लेषण द्वारा प्रकट किए गए अन्य व्याख्याओ की पूरी तरह उपेक्षा किए बिना स्नायविकता और लक्षण-निर्माण में अहम् के कार्य को ठीक रूप में समझा जा सके?" मेरा उत्तर यह है : "ऐसा हो सकना चाहिए और किसी न किसी समय यह किया भी जाएगा, पर मनोविश्लेषण के करने के लिए जो काम इस समय पडा है, वह यहा से करना उपयुक्त नही है।" यह भविष्यवाणी अवश्य की जा सकती है कि किस जगह जाकर इस काम को भी उसमे शामिल कर लिया जाएगा। कुछ और स्नायु-रोग है जिन्हे हम स्वरतिक (नारसिस्सिस्टिक) स्नायु-रोग कहते है, जिनमें अहम् उन स्नायु-रोगो की अपेक्षा, जिनपर हमने पहले विचार किया है, अधिक गहरा उलझा होता है। इन रोगो की विश्लेषण द्वारा जाच करके हम अधिक निष्पक्ष और विश्वसनीय रूप से यह निश्चित कर सकते है कि स्नायु-रोगों में अहम् का कितना कार्य होता है।

परन्तु अपने स्नायु-रोग से अहम् के जो सम्बन्ध है, उनमें से एक इतना प्रमुख था कि यह शुरू से पूरी तरह समझ मे आता था। यह कभी भी अनुपस्थित नही प्रतीत होता, पर सबसे अधिक स्पष्ट रूप से यह उस रोग मे दिखाई देता है, जिसे हम उपघातज स्नायु-रोग कहते है और जिसे हम समझ नही सकेंगे। आपको यह जानना चाहिए कि स्नायु-रोग के सब विविध रूपो के कारणो और तन्त्रो में बार-बार वही कारक क्रिया करते दिखाई देते है। बात इतनी ही है कि किसी प्ररूप में कोई एक कारक और किसी प्ररूप में कोई दूसरा कारक लक्षण-निर्माण मे सबसे महत्व-पूर्ण होता है। यह बिलकुल उसी तरह की बात है जैसी किसी थियेटर कम्पनी के कार्यकर्ताओ में होती है। प्रत्येक कार्यकर्ता एक विशेष प्रकार का पार्ट लेता है—नायक का, विदूषक का, खलनायक का आदि, उनमें से प्रत्येक अपने लिए कोई एक काम चुन लेता है। इस तरह कल्पनाए, जो लक्षणो में रूपान्तरित होती है, किसी रोग में इतनी व्यक्त नहीं होती, जितनी हिस्टीरिया में। 'प्रति आवेग' (एन्टी-कैथेक्सिस) या अहम् के प्रतिक्रिया-निर्माण मनोग्रस्तता-रोग के चित्र में सबसे प्रधान होते हैं; जिस तन्त्र को स्वप्नो में 'परवर्ती विस्तन' कहा गया था, वह पैरानोइया के भ्रमो में सबसे प्रमुख होता है।

उपघातज स्नायु-रोगों में, विशेष रूप से उनमें, जो युद्ध के आतंक से पैदा होते है, एक स्वार्थपूर्ण अहम्मूलक प्रेरक भाव, रक्षा और अपने हित की दिशा में

होने वाला प्रयत्न, विशेष रूप से दिखाई देता है। शायद यह अकेला रोग को जन्म न दे सकता, पर यह रोग को अपना सहारा दे देता है, और एक बार रोग बन जाने के बाद यह उसे कायम रखता है। इस प्रवृत्ति का लक्ष्य अहम् को उन खतरो से बचाना है जो अपनी सन्निकटता से रोग पैदा करते हैं। यह तब तक इलाज भी नही होने देता जबतक कि उन खतरो का फिर पैदा न होना असम्भव न लगने लगे, या उठाए गए खतरे के बदले में कोई क्षति-पूर्ति न मिल जाए।

अहम् स्नायु-रोग और सब रूपो के जन्म और पोपण में भी इसी तरह की दिलचस्पी रखता है। हम पहले कह चुके हैं कि अहम् लक्षणो को इसलिए सहारा देता है क्योकि इसके एक पहलू से दमनकारी अहम् प्रवृत्ति को सन्तुष्टि मिलती है। इसके अलावा लक्षण-निर्माण द्वारा द्वन्द्व का समाधान सबसे अधिक सुविधाजनक और सुख-सिद्धान्त के सबसे अधिक अनुसार है, क्योकि इससे नि सदेह अहम् बहुत कठोर और कष्टदायक भीतरी श्रम से बच जाता है। सचमुच ऐसे रोगी आए हैं जिनमें स्वय डाक्टर को यह मानना पडता है कि स्नायु-रोग द्वारा द्वन्द्व का समाधान सामाजिक दृष्टि से सबसे अधिक हानिरहित और सबसे अधिक सह्य है। इसलिए यह सुनकर आश्चर्य मत कीजिए कि कभी-कभी डाक्टर स्वय उस रोग का समर्थक बन जाता है, जिसको वह दूर कर रहा है। वह जीवन की सब स्थितियों में स्वास्थ्य के बारे में कठमुल्लापन नही अपना सकता। वह जानता है कि दुनिया में स्नायु-रोग के कष्ट के अलावा **और दूसरे** कष्ट भी हैं जो वास्तविक और अटल हैं, और आवश्यकता मनुष्य से यह भी कह सकती है कि वह इन कष्टो पर अपना स्वास्थ्य कुर्बान कर दे, और डाक्टर जानता है कि एक आदमी के इस तरह कष्ट सहने से दूसरे बहुत सारे लोग असीम कष्ट से बच सकते हैं। इसलिए, यद्यपि हर स्नायु-रोगी के बारे में कहा जा सकता है कि उसने **'रोग में पलायन'** किया है, अर्थात् रोग को कष्ट कम करनेवाला समझकर उसमें पलायन किया है, पर यह मानना ही होगा कि बहुत-से रोगियो में यह पलायन पूर्णतया उचित होता है, और जिस डाक्टर ने इस हालत को समझ लिया, वह बिना कुछ कहे, और रोगी के हित का विचार करके इलाज से हाथ खीच लेगा।

पर इन अपवादो की ओर ध्यान न देकर हमें आगे विचार करना चाहिए। सामान्यतया यह दिखाई देता है कि स्नायु-रोग में पलायन करके अहम् को एक तरह का भीतरी **'रोग-लाभ'**, अर्थात् रोग के द्वारा सुविधा मिल जाती है। कुछ अवस्थाओ में मूर्त बाहरी लाभ जो यथार्थता में कभी कम और कभी अधिक महत्व का होता है, इसके साथ जुडा हुआ हो सकता है। इस तरह का आम उदाहरण लीजिए जिस स्त्री से उसका पति क्रूर व्यवहार करता है और निर्दयतापूर्वक उसका शोपण करता है, वह प्राय सदा स्नायु-रोग में शरण लेती है, बशर्ते कि उसका स्वभाव इसे ग्रहण कर सके। यह बात तब होती है जब वह स्त्री इतनी

कायर या इतनी रूढ संस्कारो वाली हो कि दूसरे मर्द के साथ गुप्त रूप से अपनी सन्तुष्टि न कर सके, वह इतनी शक्तिशाली न हो कि अपने पति से अलग होने के विरोधी सब बाहरी कारणो को चुनौती दे सके, और उससे अलग हो सके, यदि उसे अपना भरण-पोषण कर सकने या अधिक अच्छा पति पा सकने की आशा न हो, और सबसे अन्तिम बात यह है कि यदि वह अब भी यौन दृष्टि से इस क्रूर व्यक्ति के प्रति प्रबल अनुराग न रखती हो। उसका रोग अपने पति के विरुद्ध किए जा रहे द्वन्द्व में उसका ऐसा हथियार बन जाता है जिसका वह अपनी रक्षा के लिए उपयोग कर सकती है, या बदला लेने के लिए दुरुपयोग कर सकती है। वह अपने रोग की शिकायत कर सकती है, यद्यपि सम्भाव्यत उसे अपने विवाह करने की शिकायत का साहस न होगा। उसका डाक्टर उसका सहायक है। उसके पति को, जो वैसे इतना निर्दय है, उसे छुट्टी देनी पडती है, उसपर पैसा खर्च करना पडता है, उसे घर से अनुपस्थित रहने की छूट देनी पडती है, और इस प्रकार विवाह के अत्याचार से उसे स्वतन्त्रता मिलती है। जहा रोग के कारण मिलने वाली यह बाहरी या 'दुर्घटनामूलक' सुविधा जरा भी अधिक होती है, और यथार्थ जीवन में ऐसी सुविधा देने वाली स्थानापन्न वस्तु नही मिलती, वहा आप अपनी चिकित्सा द्वारा इस स्नायु-रोग का इलाज करने की बहुत आशा न रखिए।

अब आप कहेगे कि मैंने 'रोग द्वारा लाभ या सुविधा' के बारे में अभी जो कुछ कहा है, उससे उस विचार की पुष्टि होती है जिसे मैंने अभी अस्वीकार किया था, अर्थात् यह कि अहम् स्वय स्नायु-रोग को चाहता है, और इसे जन्म देता है। पर जरा ठहरिए। शायद इसका सिर्फ यह तात्पर्य है कि अहम् स्नायु-रोग को, जिसे रोकने में वह हर सूरत मे असमर्थ है, स्वीकार करके प्रसन्न होता है, और यदि उसका कुछ लाभ उठाया जा सकता है तो वह उसका अधिक से अधिक लाभ उठाता है। यह तो बात का सिर्फ एक पहलू है। जहा तक यह प्रश्न है कि रोग से सुविधा या लाभ है, वहा तक यह ठीक है कि अहम् स्नायु-रोग से दोस्ती रखकर बिलकुल खुश रहता है, पर इसके साथ होने वाले अलाभो और असुविधाओ पर भी विचार करना होगा। आम तौर से शीघ्र ही यह दीख जाता है कि स्नायु-रोग को स्वीकार करके अहम् ने नुकसान का सौदा किया है। इसने द्वन्द्व के समाधान की बहुत भारी कीमत चुकाई है। लक्षणो के कारण होने वाले कष्ट शायद उतने ही खराब हैं जितना वह द्वन्द्व था जिसके स्थान पर ये आ गए हैं, और बहुत हद तक ये उससे बहुत खराब भी हो सकते है। अहम् लक्षणो के दुःख से छूटना चाहता है, पर इसको रोग द्वारा दत्त सुविधा या रोगजनित लाभ नही छोडना चाहता, और इसमें उसे सफलता नही हो सकती। इसलिए ऐसा दिखाई देता है कि इस सारे मामले में अहम् का कर्तृत्व ऐसा नही रहा जैसा कि इसने समझा था; और हमे यह बात ध्यान में रखनी है।

यदि डाक्टर का कार्य करते हुए आपको स्नायु-रोगियो के बहुत इलाज करने

पडे तो शीघ्र ही आप यह आशा करना छोड देंगे कि जो लोग अपने रोग की बहुत अधिक शिकायत करते हैं, वे आपकी सहायता लेने को सबसे अधिक तत्पर होंगे, और सबसे कम कठिनाई पैदा करेंगे—बात इससे बिलकुल उलटी होगी। सब उदाहरणो में आप आसानी से समझ जाएगे कि जिस चीज से रोगजनित लाभ की सहायता मिलती है, वह दमनो से उत्पन्न प्रतिरोध को और ताकत देती है, और इलाज करने की दिक्कते बढा देती है, एक और तरह का रोगजनित लाभ भी है जो लक्षण के साथ पैदा होने वाले लाभ के बाद आता है। जब रोग जैसा मानसिक सगठन काफी समय से चला आता है, तब अन्त में वह एक स्वतन्त्र सत्ता का-सा स्वरूप प्राप्त करता मालूम होता है। इसमें आत्मसरक्षण की-सी निसर्ग-वृत्ति दिखाई देती है। यह मानसिक जीवन के दूसरे बलो के साथ, यहा तक कि उनके साथ भी जो बुनियादी तौर से इसके विरोधी हैं, एक तरह की सधि कर लेता है, और ऐसे मौके आते रहते हैं जिनमें यह एक बार फिर उपयोगी और समयोचित दिखाई देता है, और इस तरह इसे एक **द्वितीय कार्य या गौण कार्य** मिल जाता है, जो इसकी स्थिति को फिर मजबूत बनाता है। रोग-शास्त्र का उदाहरण लेने के बजाय हम रोजाना के जीवन का एक प्रमुख उदाहरण लेंगे। कोई समर्थ मजदूर, जो अपनी जीविका कमाता है, अपने रोजगार में होने वाली किसी दुर्घटना से अग-हीन हो जाता है। वह अब काम नही कर सकता, पर उसे मुआवज़े के रूप में थोडी-सी सहायता मिलती है, और वह यह सीख जाता है कि अपनी अगहीनता का, भिखारी बनकर, किस तरह लाभ उठाया जा सकता है। उसका नया जीवन इतना हीन दर्जे का है, तो भी वही चीज़ उसे सहारा देती है जिसने उसके पुराने जीवन को नष्ट किया है। अगर आप उसकी असमर्थता दूर कर दें तो वह कुछ समय के लिए अपनी जीविका से वचित रह जाएगा, क्योकि यह सवाल पैदा होगा कि क्या उसे अब भी उसका पहले वाला काम मिल सकेगा ? जब किसी स्नायु-रोग में इस तरह रोग का द्वितीय या गौण लाभ उठाया जाने लगता है, तब हम उसे पहले वाले की कोटि में रख सकते हैं और **दूसरा** या **गौण** रोगजनित लाभ कह सकते हैं।

मैं आपको मोटे तौर से यह सलाह देना चाहता हू कि रोगजनित लाभ के व्यावहारिक महत्व को आप बहुत तुच्छ न समझें, और साथ ही इसके सैद्धान्तिक महत्व से बहुत अधिक प्रभावित भी न हो। पहले दिए गए अपवादो के अलावा भी, इस कारक से सदा उन दृष्टान्तो का स्मरण हो आता है, जो ओबरलैंडर ने **फ्लीगैंड ब्लैंटर** में 'पशुओ में बुद्धि' के बारे में दिए हैं। एक अरब एक सीधे पहाड के एक ओर काटकर बनाए हुए सकरे रास्ते पर ऊट पर चढा जा रहा है। रास्ते के एक मोड पर एकाएक उसे अपने सामने एक शेर दिखाई देता है, जो उसपर झपटने को तैयार है। भागने का कोई रास्ता नही, एक ओर खड्ड है और दूसरी ओर सीधा पहाड, पीछे लौटना और भागना भी असम्भव है। लाचार वह हाथ-पाव छोड देता

है पर ऊंट ऐसा नही करता। वह अपने सवार सहित खड्ड मे कूद पडता है और शेर देखता रह जाता है। साधारणतया स्नायु-रोग द्वारा प्रस्तुत उपाय रोगी को अधिक लाभ नही पहुचाएगा। शायद इस कारण कि आखिरकार लक्षण-निर्माण द्वारा द्वंद्व का समाधान एक स्वत होने वाला प्रक्रम है, जो जीवन की आवश्यकताए पूरी करने के लिए अपर्याप्त सिद्ध हो सकता है, और जिसके होने मे मनुष्य को अपनी सर्वोत्तम और उच्चतम शक्तिया त्यागनी पडती हैं। यदि चुनाव का मौका हो तो अधिक सम्मान की बात यह होगी कि वह नियति से धर्मयुद्ध करता हुआ गिरे।

अपनी बात साधारण स्नायविकता से शुरू न करने का एक और भी कारण मैं आपको बताना चाहता हू। शायद आप यह समझते हो कि मैंने इस कारण ऐसा नही किया कि उस तरह स्नायु-रोगो के यौन उद्गम की गवाही पेश करना कुछ ज्यादा मुश्किल होता, पर ऐसा समझना गलत है। स्थानान्तरण स्नायु-रोगो में लक्षणो को, निर्वचन पर पहुचने से पहले, निर्वचन के लिए पेश करना पड़ता है, पर जिन्हे **असली स्नायु-रोग**[1] कहते हैं, उनके साधारण रूपो मे यौन जीवन का कारणात्मक महत्व इतना साफ दिखाई देता है कि उसकी ओर ध्यान खिच जाता है। यह बात मुझे २० वर्ष पहले पता चली थी, जब एक दिन मैं आश्चर्य से यह सोच रहा था कि स्नायु-रोगियो की परीक्षा करते हुए हम उनके यौन जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सब बातो को क्यो सदा विचार से बाहर छोड देते हैं। पर इस प्रश्न पर जाच करने से मेरे रोगियो मे मेरी लोकप्रियता कम हो गई। लेकिन बहुत थोडे-से समय में अपनी कोशिशो से मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि जहा यौन जीवन प्रकृत है, वहा कोई स्नायु-रोग—मेरा मतलब है असली स्नायु-रोग—नहीं होता। यह सच है कि इस कथन में लोगो के व्यक्तिगत अन्तरो को बिलकुल भुला दिया गया है, और इसमें यह भी दोष है कि 'प्रकृत' शब्द का सुनिश्चित अर्थ निर्धारित नही है, पर मोटे तौर पर, इसका आजतक वह महत्व कायम है। उस समय मैंने यहा तक किया कि स्नायविकता के कुछ रूपो और कुछ हानिकारक यौन अवस्थाओ मे विशिष्ट सम्बन्ध-सूत्र भी कायम किए। मुझे इसमें सन्देह नही कि यदि मेरे पास अब भी जाच की वैसी सामग्री हो तो मैं फिर वही परीक्षण कर सकता हू। मैंने बहुत बार देखा कि जो आदमी किसी तरह की अधूरी यौन सन्तुष्टि से, उदाहरण के लिए हस्तमैथुन से, आनन्द प्राप्त करता है, उसमें असली स्नायु-रोग का एक निश्चित प्ररूप होगा, और यदि वह यौन जीवन का उतना ही असन्तोषजनक कोई और तरीका अपना लेगा तो यह स्नायु-रोग भी झटपट दूसरा रूप धारण कर लेगा। उस समय मैं रोगी की अवस्था में होने वाले परिवर्तन से उनके यौन जीवन की रीति मे परिवर्तन का अनुमान कर सकता था, और मैं तब तक अपने निष्कर्षों पर अडा रहता था, जब तक अपने रोगियो से इस बात की पुष्टि नहीं करा लेता

१. Actual neuroses

था। यह सच है कि तब वे दूसरे डाक्टर ढूढने का विचार करते थे, जो उनके यौन जीवन में इतनी दिलचस्पी न रखें।

उस समय भी यह बात मेरे ध्यान में आए विना नही रही थी कि स्नायु-रोग का कारण सदा यौन जीवन ही नही दिखाई देता, ठीक है कि एक व्यक्ति किसी हानिकारक यौन अवस्था के कारण रोगी हो जाएगा, पर दूसरा आदमी इसलिए रोगी हो जाएगा कि उसकी सम्पत्ति नष्ट हो गई, या हाल में ही उसे कोई सख्त मस्तिष्क-रोग हो गया था। इन विभिन्नताओ का स्पष्टीकरण वाद में हुआ जव अहम् और राग में जो परस्पर सम्वन्ध होने का सन्देह था, वे समझ में आए। व्यक्ति तभी स्नायु-रोग से पीडित होता है जब अहम् की, राग को किसी न किसी तरह तृप्ति करने की, क्षमता नष्ट हो जाती है। अहम् जितना अधिक शक्तिशाली होगा, वह उतनी ही आसानी से यह कार्य कर लेगा। अहम् में आने वाली प्रत्येक कमजोरी का, चाहे वह किसी भी कारण से आए, वही परिणाम होगा जो राग की आवश्यकता में वढोतरी का, अर्थात् उससे स्नायु-रोग सम्भव हो जाएगा। अहम् और राग में कुछ और भी, तथा घनिष्ट, सम्वन्ध है, जिनकी मै इस समय चर्चा नही करूगा, क्योकि अपने विषय-विवेचन में अभी हम वहा नही पहुचे हैं। हमारे लिए सवसे अधिक सारभूत और सवसे अधिक शिक्षाप्रद बात यह है कि स्नायु-रोग के लक्षणो को सहारा देने वाला ऊर्जा-सचय, सदा, और चाहे वह स्नायु-रोग किसी भी परिस्थिति में पैदा हुआ हो, राग द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है, जिसका इस तरह अप्रकृत प्रयोग होने लगता है।

अब मै आपको **असली स्नायु-रोगों** के और **मनोस्नायु-रोगो**[1] के, जिसके पहले समूह (स्थानान्तरण स्नायु-रोगो) पर हम अव तक इतना विचार करते रहे, लक्षणो का निश्चायक अन्तर वताना चाहता हू। असली स्नायु-रोग और मनोस्नायु-रोग, इन दोनो में ही लक्षण रोग से चलते है, अर्थात् वे इसका उपयोग करने के अप्रकृत तरीके है, इसकी सन्तुष्टि की स्थानापन्न वस्तु हैं, पर असली स्नायु-रोग के लक्षणो—सिरदर्द, दु ख का सम्वेदन, किसी अग की सन्तापयोग्य[2] अवस्था, किसी कार्य का कमजोर हो जाना या निरोध——का मन में कोई 'अर्थ' या तात्पर्य नही होता। इतना ही नही कि वे मुख्यत शरीर में प्रकट होते हैं, जैसा कि उदाहरण के लिए, हिस्टीरिया के लक्षणो में होता है, वल्कि वे स्वय भी शुद्धत और विलकुल शारीरिक प्रक्रम है। उनका जन्म इस तरह के उलझनदार मानसिक तत्रो के विना ही होता है, जिनका हमें यहा पता चला है। इसलिए वे वास्तव में वैसे लक्षण है जैसा पहले मनोस्नायु-रोगो को वहुत समय तक समझा जाता रहा। पर फिर वे उस राग की अभिव्यक्ति कैसे हो सकते है जिसे हमने मन में कार्य करते हुए वल के

१ Psychoneuroses २ Irritable

रूप में जाना है ? असल में, इसका जवाब वडा सरल है। मैं मनोविश्लेपण पर सबसे पहले की गई आपत्तियो में से एक आपत्ति की चर्चा करता हू। यह कहा गया था कि मनोविश्लेपण के सिद्धान्तो में स्नायविक लक्षणो की सिर्फ मनोविज्ञान द्वारा व्याख्या करने की कोशिश की गई है और इसलिए इससे कोई आशा नही की जा सकती, क्योकि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो से कभी किसी भी रोग की पूरी व्याख्या नही की जा सकती। इन आलोचको ने इस वात को भुला दिया था कि यौन कार्य जैसे सिर्फ शारीरिक चीज नही है, उसी तरह सिर्फ मानसिक चीज भी नही है। यह जैसे मानसिक जीवन को प्रभावित करता है, वैसे ही शारीरिक जीवन को भी प्रभावित करता है। यह जान लेने पर कि मनोस्नायु-रोगो के लक्षण इस कार्य में होने वाले किसी गडवड के मानसिक परिणामो को प्रकट करते है, अव हमें यह देखकर आश्चर्य न होना चाहिए कि असली स्नायु-रोग यौन गडवडियो के सीधे कायिक परिणामो को निरूपित करते हैं।

चिकित्सा-शास्त्र से हमे असली स्नायु-रोगो को समझने की दिशा मे एक उपयोगी सकेत मिलता है (जिसे वहुत सारे अनुसंधानकर्ताओ ने स्वीकार किया है)। उनके लक्षण-समूह का व्यौरा और यह विशेषता कि उनका सव शारीरिक सस्थानो और कार्य पर एक साथ असर पडता है, उन रोगात्मक अवस्थाओ से असदिग्ध रूप से मिलती-जुलती है जो विजातीय टाक्सिनो के दीर्घकालीन प्रभाव से या एकाएक हट जाने से पैदा होती हैं, अर्थात् विपयुक्तता की या उस विप के अभाव की स्थितियो से असदिग्ध रूप से मिलती-जुलती हैं। विकारो के इन दोनो समूहो में वैसेडो के रोग (अर्थात् ग्रेव्'स डिजीज या एक्साफथैलमिक गायटर) जैसी अवस्थाओ से तुलना करने पर और भी अधिक सादृश्य दिखाई देते हैं—इस रोग की अवस्थाएं भी विप के प्रभाव से पैदा होती हैं, पर वाहर से प्राप्त विप से नही वल्कि उस विप से जो अन्दर के विपचन[1] से पैदा होता है। मेरी राय मे इन सादृश्यो से यह आवश्यक हो जाता है कि हम स्नायु-रोगो को यौन विपचन में होने वाले विक्षोभो का परिणाम मानें—ये विक्षोभ या तो इस कारण पैदा होते हैं कि व्यक्ति जितने यौन टाक्सिनो को दूर कर सकता है, उनसे अधिक यौन टाक्सिन पैदा हो जाते हैं। अथवा, इनका कारण वे आन्तरिक और मानसिक अवस्थाएं हैं जो इन पदार्थो को उचित रीति से दूर करने में वाधा डालती हैं। यौन इच्छा के स्वरूप के वारे मे ऐसी धारणाएं लोग आदिकाल से मानते आए हैं, प्रेम को 'मद' कहा जाता है; यह 'दवा के घूट' लेने से पैदा हो सकता है—इन धारणाओ में कार्य करने वाले साधन को कुछ सीमा तक वाहरी दुनिया पर प्रक्षेपित कर दिया गया है। यहा हमें कामजनक क्षेत्रो का स्मरण आता है और इस कथन का ध्यान आता है कि यौन

---

१. Metabolism

उत्तेजन अनेक अगो में पैदा हो सकता है। इससे आगे 'यौन विपचन' या 'कामुकता के रसायन-शास्त्र' की बात बिलकुल खोखली है, हमें इसके बारे में कुछ पता नही है, और हम यह भी तय नही कर सकते कि दो प्रकार के यौन पदार्थ माने जाए जिन्हे 'नर' या 'स्त्री' कहा जाए, या राग से पैदा होने वाले सब उद्दीपनो का कारण एक यौनटाक्सिन मानकर सतोष कर लिया जाए। हमने मनोविश्लेषण सिद्धान्त का जो भवन खडा किया है, वह वास्तव मे सिर्फ ऊपरी ढाचा है, जिसे कभी न कभी इसकी शारीरिक बुनियाद पर जमाना होगा, पर यह बुनियाद अभी हमें अज्ञात है।

विज्ञान के रूप में मनोविश्लेपण की विशेषता इसकी कार्य करने की विधिया है, इसकी वर्णित वस्तु नही। इन विधियो का जो सारभाग है, वह सभ्यता के इतिहास पर, धर्म-विज्ञान पर तथा पुराण-शास्त्र पर उसी तरह लागू किया जा सकता है, जैसे स्नायु-रोगो के अध्ययन पर। मनोविश्लेषण का लक्ष्य और सफलता मानसिक जीवन मे अचेतन की खोज ही है, और कुछ नही। असली स्नायु-रोगो की समस्या, जिसमें लक्षण सम्भाव्यत सीधे टाक्सिक, अर्थात् विष-प्रभावजनित आघात से पैदा होते है, मनोविश्लेपण के विचारणीय विषय नही। इससे उनपर कोई खास रोशनी नही पड सकती, और इसे वह काम जैविकीय तथा चिकित्सा सम्बन्धी गवेपणा के लिए ही छोड देना होगा। शायद अब आप यह बात अधिक अच्छी तरह समझ गए होगे कि मैंने अपने विपय-प्रतिपादन के लिए यह सिलसिला क्यो चुना। यदि मेरा विचार **स्नायु-रोगों के अध्ययन की भूमिका** पेश करना होता तो निस्सदेह यही ठीक होता कि मैं पहले (असली) स्नायु-रोगो के सरल रूप पेश करता और फिर उनसे चलकर राग के विक्षोभो से पैदा होने वाले अधिक उलझे हुए मनोवात्वीय विकारो पर पहुचता। पहले विजय के बारे में मुझे अनेक स्थानो से वह सामग्री जमा करनी पडती, जो उसके बारे में हम जानते है, या हम समझते है कि हम जानते है, और इन पिछले स्नायु-रोगो के बारे में विचार करते हुए इन अवस्थाओ के रहस्य को समझने के सबसे महत्वपूर्ण टेक्नीकल साधन के रूप में मनोविश्लेपण को पेश करना पडता, पर मुझे **मनोविश्लेषण की भूमिका या परिचय** देना था, और ऐसा ही मैंने कहा भी था। आपको स्नायु-रोगो के बारे में कुछ समझा देने की अपेक्षा मैंने आपको मनोविश्लेपण की एक रूपरेखा देना अधिक महत्वपूर्ण समझा, और इसलिए असली स्नायु-रोग, जिनसे मनोविश्लेपण के अध्ययन में कोई मदद नही मिलती, उचित रूप से सामने न लाया जा सका। मै यह भी समझता हू कि मेरा चुनाव आपके लिए अधिक उपयोगी था, क्योकि मनोविश्लेपण की क्रान्तिकारी स्वयसिद्धिया और दूरगामी सम्बन्ध-सूत्र इसे प्रत्येक शिक्षित की दिलचस्पी का पात्र बनाते है, पर स्नायु-रोगो का सिद्धान्त और चीजो की तरह चिकित्सा-शास्त्र का ही एक प्रकरण है।

फिर भी, आपका यह आशा करना उचित है कि हमे असली स्नायु-रोगो में कुछ दिलचस्पी होनी चाहिए। मनोस्नायु-रोगो के साथ उनके निकट सम्बन्ध के कारण भी इसकी आवश्यकता है। तो मैं आपको यह बताऊगा कि असली स्नायु-रोग के हम तीन शुद्ध रूप मानते हैं **न्यूरेस्थीनिया या स्नायु-दुर्बलता, चिन्ता-स्नायु-रोग और हाइपोकोन्ड्रिया या उदासी रोग**। इस वर्गीकरण पर भी आपत्ति उठाई गई है। ये सब शब्द निश्चित रूप से प्रयोग में आते हैं, पर उनका अर्थ अस्पष्ट और अनिश्चित है। कुछ डाक्टर ऐसे हैं जो स्नायविक रोगो की उलझनदार दुनिया में कोई भी भेद करने के विरोधी हैं, जो रोग-सत्ताओ या रोग-प्ररूपो में कोई भी विवेक करने पर आपत्ति उठाते हैं, और असली स्नायु-रोगो और मनोस्नायु-रोगो का भेद भी नही मानते। मेरी राय में वे अति करते हैं, और उन्होने जो दिशा चुनी है, वह तरक्की में सहायक नही हो सकती। ऊपर बताए गए तीन प्रकार के स्नायु-रोग बहुत बार शुद्ध रूप मे पाए जाते हैं। यह सच है कि वे अधिकतर एक दूसरे से और किसी मनोस्नायु-रोग से मिले हुए होते हैं। इस तथ्य के कारण हमे उनमें विभेद करना ही नही छोड देना चाहिए। विज्ञान में खनिज-शास्त्र के खनिजो और कच्ची धातु के अन्तर पर विचार कीजिए खनिजो का अलग-अलग वर्गीकरण किया जाता है, जिसका एक कारण यह है कि वे बहुत बार ऐसे मणियो[1] के रूप में पाए जाते हैं जो अपने आसपास की और वस्तुओ से स्पष्टतः भिन्न होते हैं, कच्ची धातु में खनिज मिले हुए होते हैं, जो अकस्मात् नही मिल गए हैं, बल्कि अपने निर्माण के समय की अवस्थाओ के अनुसार मिले हैं। स्नायु-रोगो के सिद्धान्त में स्नायु-रोगो के परिवर्धन के प्रक्रम के बारे मे हमे इतनी थोडी जानकारी है कि अपने कच्ची धातु सम्बन्धी ज्ञान की तरह हम कोई ज्ञान क्रमबद्ध नही कर सकते, पर लक्षणो के समूह में से पहचान योग्य रोग-लक्षणो को, जिनकी अलग-अलग खनिजो से तुलना की जा सकती है, पहले अलग कर लेना निश्चित ही सही दिशा में कदम उठाना है।

असली स्नायु-रोगो और मनोस्नायु-रोगो के बीच मौजूद एक ध्यान देने योग्य सम्बन्ध-सूत्र से मनोस्नायु-रोगो मे लक्षण-निर्माण के बारे में कीमती सहायता मिलती है, असली स्नायु-रोग का लक्षण बहुधा मनोस्नायु-रोग के लक्षण का नाभिक या केन्द्र और प्रारम्भिक अवस्था होता है। इस तरह का सम्बन्ध-सूत्र स्नायु-दुर्बलता और उस स्थानातरण स्नायु-रोग में, जिसे कन्वर्शन-हिस्टीरिया कहते हैं, चिन्ता-स्नायु-रोग और चिन्ता-हिस्टीरिया में बहुत स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। इतना ही नही, बल्कि यह उदासी या हाइपोकोन्ड्रिया में और पैराफ्रेनिया (डेमेन्शिया प्रिकोक्स और पैरानोइया) नामक स्नायु-रोग के रूपो में भी पाया

---

१ Crystal

जाता है, जिसपर हम आगे चलकर विचार करेंगे। उदाहरण के लिए, हिस्टीरिया वाले का सिर-दर्द या पीठ-दर्द ले लीजिए। विश्लेषण से पता चलता है कि सघनन और विस्थापन द्वारा यह एक पूरी की पूरी रागात्मक कल्पनाओ, या स्मृतियो की सारी की सारी शृखला के लिए स्थानापन्न सन्तुष्टि बन गया है, पर किसी समय यह दर्द वास्तविकता था, एक यौन टाक्सिन का प्रत्यक्ष लक्ष्य था, एक यौन उत्तेजन का शारीरिक प्रकाशन था। हम यह नही मानते कि हिस्टीरिया के सब लक्षणो में इस तरह का एक नाभिक होता है, पर बहुधा यह बात सच होती है और शरीर पर रागात्मक उत्तेजन के जो भी स्वस्थ या रोगात्मक परिणाम होते है, वे हिस्टीरिया के लक्षण-निर्माण के प्रयोजन पूरे करने के लिए विशेष रूप से अनुकूल बने हुए होते है। सम्भोग-कार्य के साथ होने वाले यौन उत्तेजन के अस्थायी चिह्न उसी तरह लक्षण-निर्माण के लिए सबसे अधिक उपयुक्त और सुविधाजनक सामग्री के रूप में मनोस्नायु-रोग को लाभ पहुचाते है।

इसी तरह का एक प्रक्रम निदान और चिकित्सा की दृष्टि से विशेष महत्व का है। उन व्यक्तियो में, जिनमें स्नायविक होने की प्रवृत्ति मौजूद रहती है, पर जिनमें अभी बडे पैमाने पर कोई स्नायु-रोग परिवर्धित नही हुआ है, आम तौर से कोई अस्वस्थ शरीरावस्था—शायद कोई प्रदाह[1] या चोट लक्षण-निर्माण के काम को चालू कर देती है। इसके परिणामस्वरूप, स्नायु-रोग यथार्थता द्वारा प्रस्तुत किए गए लक्षण पर तेजी से झपट पडता है और इसे उन अचेतन कल्पनाओ को निरूपित करने में प्रयुक्त करता है जो अभिव्यक्ति के किसी साधन की प्रतीक्षा मे चुप पडी थी। इस तरह की अवस्था मे डाक्टर पहले एक पद्धति से इलाज करेगा, फिर दूसरी से। वह या तो उस शारीरिक आधार को खत्म करने की कोशिश करेगा, जिसपर लक्षण खडा है और इसके मुखर स्नायविक विशदन के बारे में परेशान नही होगा, अथवा स्नायु-रोग का इलाज करेगा जो अवसर पाकर पैदा हो गया है, और उस शारीरिक उद्दीपन को एक ओर छोड देगा, जिसने इसे प्रेरित किया है। कभी एक रीति सफल होगी, और कभी दूसरी, और सफल रीति को ही उचित माना जाएगा। इस तरह के मिले-जुल केसो के लिए कोई व्यापक नियम नहीं बताया जा सकता।

१ Inflammation

व्याख्यान | २५

चिन्ता

मैने सामान्य स्नायविकता के वारे में अपने पिछले व्याख्यान में आपको जो कुछ वताया था, उसे आपने मेरे सव वर्णनो में सवसे अधिक अपर्याप्त और अधूरा समझा होगा। मै जानता हू कि यह ऐसा ही था, और मुझे आशा है कि आपको यह देखकर सवसे अधिक आश्चर्य हुआ होगा कि मैने चिन्ता का कोई उल्लेख नही किया, जिसकी सव स्नायविक लोग शिकायत करते है और जिसे वे अपना सवसे भयकर दुश्मन वताते हैं। चिन्ता (या त्रास अर्थात् घोर चिंता) सचमुच वडा तीव्र रूप धारण कर सकती है, और परिणामत· वडी पागलपन भरी सतर्कताओं का कारण वन सकती है, पर कम मे कम इस मामले में, मै आपको थोडे मे नही टालना चाहता था। इसके विपरीत, मैने स्नायविक चिन्ता की समस्या आपके सामने यथा-सम्भव स्पष्ट रूप से पेश करने का और उसपर वारीकी से विचार करने का निश्चय किया हुआ था।

चिन्ता (या त्रास) का वर्णन करने की कोई आवश्यकता नही, हर व्यक्ति ने किसी न किसी समय इस सवेदन को, या अधिक सही रूप मे कहा जाए तो इस भाव-दशा को स्वय अनुभव किया है। पर मेरी राय में इस वात पर काफी गम्भीर विचार नही हुआ कि स्नायविक लोग ही चिन्ता से, औरो की अपेक्षा मात्रा मे और तीव्रता मे अधिक, कष्ट क्यो पाते है? शायद यह तो स्वयसिद्ध मान लिया गया है कि उन्हे यह कष्ट होना ही चाहिए। सच पूछिए तो चिन्ता और स्नायविकता शब्द एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त कर दिए जाते है, मानो उनका एक ही अर्थ हो, परन्तु यह उचित नही। कुछ लोग चितायुक्त होते हैं, पर वे स्नायविक (नर्वस) नही होते, और इनके अलावा, ऐसे स्नायु-रोगी होते है जिनमें वहुत-से लक्षण होते हुए भी चिंतित या त्रस्त होने की कोई प्रवृत्ति नही दिखाई पडती। जो कुछ भी हो, पर एक वात निश्चित है कि चिन्ता या त्रास की समस्या वह केन्द्र-विन्दु है जो सव तरह के सवसे महत्वपूर्ण प्रश्नो को एक सिलसिले में वांध देता है। यह एक ऐसी समस्या है जिसके हल होने से हमारे सारे मानसिक जीवन पर अवश्य ही वहुत

अधिक प्रकाश पडेगा। मेरा यह दावा नही है कि मै इसका कोई त्रुटिहीन समाधान पेश कर सकता हू, पर आप यह आशा अवश्य करते होगे कि मनोविश्लेषण ने इस समस्या पर भी चिकित्सा-शास्त्र की प्रचलित रीति से भिन्न प्रकार से विचार किया होगा। चिकित्सा-शास्त्र में मुख्य बात उन शारीरीय प्रक्रमो को माना जाता है, जिनसे चितावाली अवस्था पैदा होती है। हमें पढाया जाता है कि मैडुला औब्लौगैटा, अर्थात् मस्तिष्क-पुच्छ, उद्दीपित हो जाता है, और रोगी को कहा जाता है कि तुम्हे वेगलस्नायु मे स्नायु-रोग है। मस्तिष्क-पुच्छ एक आश्चर्यकारक और सुन्दर वस्तु है। मुझे अच्छी तरह याद है कि मैंने वर्षो पूर्व इसके अध्ययन पर कितना समय और श्रम लगाया था, पर आज मुझे यह कहना पडता है कि चिन्ता के मनोवैज्ञानिक रूप को समझने के लिए, जिन स्नायु-मार्गो से उत्तेजन चलते है, उनकी जानकारी सबसे अधिक महत्वहीन है।

चिता या त्रास और स्नायविकता में अन्तर करना चाहिए। चिता को वस्तुनिष्ठ या **आलम्बननिष्ठ चिता**[1] समझना चाहिए, और स्नायविकता को स्नायविक चिता कहना चाहिए। बात यह है कि यथार्थ या वास्तविक चिता या त्रास हमें बिलकुल स्वाभाविक और बुद्धिसगत चीज प्रतीत होता है। इसे किसी बाहरी खतरे या किसी आघात के, जिसकी सम्भावना है, और जो पहले ही पता चल रहा है, ज्ञान की प्रतिक्रिया कहना चाहिए। यह पलायन के रिफ्लेक्स अर्थात् प्रतिक्षेप, के साथ जुडा है, और इसे आत्मसरक्षण की निसर्ग-वृत्ति की अभिव्यक्ति माना जा सकता है। इसके अवसर, अर्थात् वे वस्तुए और स्थितिया जिनके बारे में चिता महसूस की जाती है, स्पष्टत बाहरी दुनिया के बारे में व्यक्ति की जानकारी और शक्ति की अनुभूति की अवस्था पर बहुत दूर तक निर्भर है। हमें यह बात बिलकुल स्वाभाविक लगती है कि कोई जगली आदमी तोप या सूर्य-ग्रहण को देखकर डर जाए, पर पढा-लिखा आदमी, जो तोप को चला सकता है, और सूर्य-ग्रहण की भविष्यवाणी कर सकता है, वैसी ही स्थिति में बिलकुल भी नही डरता। कभी-कभी ज्ञान ही भय पैदा करता है, क्योकि यह खतरे को जल्दी ही प्रकट कर देता है। इस प्रकार जगली आदमी जगल में कोई पद-चिह्न देखकर आतकित हो जाएगा, पर उसका अर्थ न जानने वाले बाहरी मनुष्य के लिए उसका कोई महत्व नही है, उसके लिए इसका इतना ही अर्थ है कि कोई जगली पशु आसपास मौजूद है, और अनुभवी नाविक क्षितिज पर छोटा-सा मेघ-खण्ड देखकर चितित हो जाएगा क्योकि इसका अर्थ यह है कि तूफान आने वाला है पर मुसाफिर के लिए इस मेघ-खण्ड का कोई अर्थ नही है।

परन्तु गहराई से विचार करने पर हमें अपने इस खयाल को ऊपर से नीचे

---

१ Objective anxiety

तक बदलना होगा कि आलम्बननिष्ठ चिंता बुद्धिगत और इष्टकर या वाछनीय है। खतरे को निकट देखकर इष्टकर या वाछनीय व्यवहार तो सचमुच यही होगा कि ठण्डे दिमाग से यह सोचा जाए कि आने वाले खतरे के मुकाबले में हमारे पास कितनी ताकत है, और फिर यह फैसला किया जाए कि सफलता की सबसे अधिक आशा पलायन से है, या बचाव से, या हमले से। पर त्रास का इसमें कोई स्थान नही है। प्रत्येक कार्य उतनी ही अच्छी तरह, बल्कि उससे भी अधिक अच्छी तरह किया जा सकेगा, यदि त्रास पैदा न हो। आप यह भी देखेंगे कि जब त्रास अधिक होता है, तब वह बहुत ही अनिष्टकर हो जाता है। यह सारी क्रिया, यहा तक कि पलायन या भागने में भी असमर्थ कर देती है। खतरे की प्रतिक्रिया आमतौर से दो चीजो के मेल के रूप में होती है—भय-मनोविकार और प्रतिरक्षात्मक कार्यवाही, डरा हुआ पशु भयभीत होता है और भागता है, पर इसमे इष्टकर या वाछनीय बात भागना है, भयभीत होना नही।

इसलिए यह धारणा प्रबल हो जाती है कि चिन्ता पैदा होना कभी भी वाछनीय नही। शायद त्रास वाली स्थिति की अधिक बारीकी से छान-बीन करने पर हम इसे अच्छी तरह समझ सकेगे। इसके बारे में पहली बात खतरे के लिए 'तैयारी' है, जो पहले से अधिक तीव्र ज्ञानेन्द्रिय अवबोधन और कर्मेन्द्रिय तनाव के रूप में प्रकट होती है। यह सशक्त तैयारी स्पष्टत लाभकारक होती है। सच पूछिए तो इसके अभाव में बडे गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। तब इसके बाद, एक ओर तो कर्मेन्द्रिय की क्रिया होती है, जो प्रथमत भागने और ऊचे स्तर पर प्रतिरक्षा या बचाव की कार्यवाही के रूप में होती है, और दूसरी ओर, इसके बाद वह अवस्था पैदा होती है जिसे हम चिन्ता या त्रास का सवेदन कहते हैं। यह त्रास का परिवर्धन जितना ही क्षणिक और सकेतमात्र होता है, उतना ही यह सचित तैयारी की अवस्था मे क्रिया करने की अवस्था मे आने मे कम बाधा डालता है, और उतने ही अधिक वाछनीय रूप से सारा घटनाक्रम आगे बढता है। इसलिए **सचित तैयारी** मुझे इष्टकर या वाछनीय अंश प्रतीत होती है, और चिंता का **परिवर्धन**, या बढना, अनिष्टकर या अवाछनीय अश मालूम होता है।

मैं यहा इस विवाद में नही पडूगा कि चिंता (या त्रास)[1], भय[2] और डर[3] का आम प्रयोग में एक ही अर्थ होता है, या अलग-अलग। मेरी राय में **चिंता** स्थिति या अवस्था से सम्बन्ध रखती है, और वह वस्तु या आलम्बन की ओर ध्यान नही देती, जबकि **भय** शब्द में वस्तु या आलम्बन की ओर ध्यान जाता है, डर शब्द का तो एक विशेष अर्थ मालूम होता है, अर्थात् यह उस दशा से ही सम्बन्ध रखता है जो पहले सचित तैयारी बिना किए अप्रत्याशित रूप से आ पड़ने वाले खतरे से

---

१. Anxiety or Dread २ Fear. ३ Fright

पैदा होती है। तो, यह कहा जा सकता है कि चिंता डर से बचने का एक साधन है।

आपके ध्यान में यह बात अवश्य आई होगी कि चिन्ता शब्द के प्रयोग में कुछ अस्पष्टता रहती है। आम तौर से यह समझा जाता है कि जिसे हमने 'परिवर्धित' चिंता कहा है, उसके ज्ञान से उत्पन्न व्यक्तिनिष्ठ या आशयनिष्ठ अवस्था चिंता है। यह अवस्था एक भाव या मनोविकार कहलाती है, पर गतिकीय अर्थ में भाव[1] या मनोविकार क्या होता है? यह निश्चित ही एक सकुल चीज है। भाव में सबसे पहले तो, कुछ कर्मस्नायु-उद्दीपन या विसर्जन होते है, और फिर कुछ सवेदन होते हैं, जो स्वय दो प्रकार के होते हैं—कर्म-स्नायु द्वारा की गई क्रियाओ का अवबोधन या ज्ञान, और वे प्रत्यक्ष रूप से सुखात्मक या दु खात्मक सवेदन, जिनसे भाव में उसका 'प्रधान स्वर' पैदा होता है। पर मैं नही समझता कि यह वर्णन भाव के सारतत्व को स्पष्ट कर देना है। कुछ भावो में अधिक गहराई तक जाया जा सकता है, और यह देखा जा सकता है कि उस सारी सकुल सरचना को एक जगह बाधने वाली गाठ का स्वरूप किसी विशिष्ट, बहुत अर्थपूर्ण पूर्व अनुभव की **पुन-रावृत्ति** या दोहराने का होता है। यह अनुभव किसी सार्वत्रिक प्ररूप का बहुत आरम्भिक काल का सस्कार ही हो सकता है, जो व्यष्टि के बजाय स्पीशीज के पूर्व-इतिहास में रहा हो। अपनी बात अधिक साफ करने के लिए मै यो कह सकता हू कि भाव की अवस्था की रचना हिस्टीरिया के दौरे जैसी अर्थात् किसी सस्मरण का अवक्षेप होती है। इसलिए हिस्टीरिया के दौरे की तुलना किसी नवनिर्मित व्यष्टिगत भाव से की जा सकती है, और प्रकृत भाव की तुलना सार्वजनिक हिस्टी-रिया से, जो मनुष्यमात्र को उत्तराधिकार में मिला है, की जा सकती है।

यह मत समझिए कि भावो के विषय में मै जो कुछ बता रहा हू, वह प्रकृत मनोविज्ञान की सामान्य सम्पत्ति है। इसके विपरीत, ये अवधारण-मनोविश्लेपण की भूमि पर पैदा हुए है और ये वही देशज[2] है। मनोविज्ञान भावो के विपय में जो कुछ कहता है—उदाहरण के लिए, जेम्स लागे सिद्धान्त—वह बाह्य मनोविश्लेषको को बिलकुल समझ में नही आता, और हमारे लिए उसपर विचार करना असम्भव है। पर हम भावो के विपय में जो कुछ जानते है, वह कोई अन्तिम रूप से निर्णीत बात नही है। यह तो इस रहस्यमय क्षेत्र में अपना पैर जमाने का आधार प्राप्त करने की पहली कोशिश है। अच्छा तो, हम समझते है कि हम यह जानते है कि इस चिंता-भाव में पुनरावृत्ति के रूप में पुनरुत्पादित होने वाला यह आदि सस्कार क्या है। हम समझते हैं कि यह **जन्म** का अनुभव है—यह ऐसा अनुभव है जिसमें दु खात्मक भावनाओ का, उत्तेजन के विसर्जनो का, और शारीरिक सवेदनो का ऐसा गुफन हो जाता है कि यह उन सब अवसरो के लिए, जिनमें जीवन को खतरा

---

१ Affect २ Indigenous

होता है, एक मूल रूप बन जाता है, और फिर सदा हमारे अन्दर त्रास या 'चिंता' की अवस्था के रूप में बार-बार पुनरुत्पादित होता है। रक्त के बदलते रहने में (अर्थात भीतरी श्वसन में) रुकावट से उद्दीपन में अत्यधिक वृद्धि के कारण जन्म के समय में चिंता अनुभव हुई थी, इसलिए पहली चिंता टाक्सिक अर्थात् विषीय कारण से पैदा हुई थी। (जर्मन का) अगस्ट शब्द (चिंता) अंगुस्टीओ, अंगे—संकरा-स्थान—सास लेने में होने वाले कसाव पर बल देता है, यह कसाव उस समय एक वास्तविक स्थिति के परिणामस्वरूप पैदा हुआ था, और बाद में किसी भी भाव से इसकी प्राय: सदा पुनरावृत्ति होती है। यह बात भी बडी व्यजनापूर्ण है कि पहली चिंता-अवस्था माता से अलग होने के मौके पर हुई। स्वभावत: हम यह मानते है कि इस पहली चिंता अवस्था को पुनरुत्पादित करने की प्रवृत्ति या स्वभाव जीव-पिड में इतनी गहराई से आत्मसात् हो गया है कि असख्य पीढियो मे कोई एक मनुष्य भी चिंता-भाव से नही बच सकता, चाहे वह किवदन्तियो में आनेवाला मैकडफ ही क्यो न हो, जो अपनी माता के गर्भ से, चीरकर, असमय में ही निकाल लिया गया था, और इसलिए जिसने जन्म-काल का स्वय अनुभव नही किया। स्तन्यपायी प्राणियो के अलावा, दूसरे प्राणियो के लिए चिंता-अवस्था का मूल रूप क्या होगा, यह हम नही कह सकते। हम यह नही जानते है कि उनमें सवेदनो का वह सकुलन कौन-सा है जो हमारे भय के तुल्य है।

शायद आपको यह जानने मे दिलचस्पी होगी कि इस तरह के विचार पर हम कसे पहुचे कि जन्म चिन्ता-भाव का मूल स्रोत और मूल रूप है। इसमें परिकल्पना का कोई कार्य नही था। इसके विपरीत, मैने आम जनता के प्रतिभ ज्ञान सम्पन्न मन से एक विचार लिया। बहुत वर्ष पहले कुछ तरुण चिकित्सक, जिनमे मै भी था, भोजन के लिए मेज के इर्द-गिर्द बैठे थे, और गर्भ-चिकित्सालय का डाक्टर हमें दाइयो की हाल में हुई परीक्षा की मनोरजक बाते बता रहा था। एक परीक्षार्थी से जब यह पूछा गया कि जन्म के समय मेकोनियम (शिशु का मल) पानी मे मौजूद हो तो इसका क्या अर्थ है, तो उसने तुरन्त उत्तर दिया, "बालक डर गया है।" उसका मजाक उडाया गया, और उसे फेल कर दिया गया; पर मै मन ही मन उसके पक्ष में हो गया, और मुझे यह सन्देह होने लगा कि उस बेचारी अनपढ औरत के निर्मूल अवबोधन ने एक बहुत महत्वपूर्ण सम्बन्ध-सूत्र का उद्घाटन किया।

अब स्नायविक चिंता पर विचार कीजिए। स्नायविक व्यक्तियो की चिन्ता में कौन-कौन-सी विशेष बातें और अवस्थाएं होती है? इस विषय में बहुत कुछ वर्णन करना होगा। सबसे पहले तो उनमें एक व्यापक भय का भाव दिखाई देता है, जिसे हम 'मुक्त उडती हुई' चिंता कहते हैं, जो जरा भी उपयुक्त दीखने वाले किसी भी विचार मे अपने को जोडने को तैयार रहती है, और निर्णय पर असर

डालती है, भविष्य की आशका पैदा कर देती है और यह प्रतीक्षा करती रहती है कि उसका औचित्य सिद्ध करने वाला कोई अवसर आए। इस अवस्था को हम **'साशंक त्रास'** या सचित आशका कहते है। इस तरह की चिंता से पीडित लोग सदा सब सम्भव परिणामो में से सबसे बुरे परिणाम की कल्पना करते है, प्रत्येक आकस्मिक घटना को अपशकुन समझते है, और प्रत्येक अनिश्चितता का बुरे से बुरा अर्थ लगाते है। बुरा होने की इस तरह की आशका की प्रवृत्ति कुछ लोगो में चरित्र के गुण के रूप में होती है, जिन्हे और किसी रूप में रोगी नही कहा जा सकता, और उन्हें हम 'अतिचिन्तित', 'अतित्रस्त' या निराशावादी कहते है। पर जिस स्नायु-रोग को मैने चिन्ता-स्नायु-रोग कहा है, उसके साथ सदा साशक चिंता बहुत मात्रा में होती है। इस चिंता-स्नायु-रोग को मै 'असली स्नायु-रोगो'[1] में रखता हू।

चिन्ता के इस प्ररूप के मुकाबले में दूसरी ओर इसका एक दूसरा रूप भी है, जो मन में बहुत अधिक सीमित क्षेत्र में घिरा हुआ होता है, और कुछ निश्चित वस्तुओ और स्थितियो से जुडा हुआ रहता है। यह चिंता बडी विविध और विचित्र 'फोबिया' या 'भीतियो' की चिंता है। प्रसिद्ध अमेरिकन वैज्ञानिक स्टेनलीहाल ने हाल में इन बहुत सारी भीतियो या 'फोबिया' को बडे-बडे यूनानी नाम देने का परिश्रम किया है। वे सुनने में मिस्र के दस जिन्नो जैसे मालूम होते हैं, फर्क इतना ही है कि ये दस से बहुत अधिक है। जरा देखिए कि भीति का आलम्बन कौन-कौन-सी चीज हो सकती है अंधेरा, खुली हवा, खुले स्थान, बिल्लिया, मकडे, टिड्डे, साप, चूहे, बिजली की गरज, तेज नोक, खून, घिरी हुई जगह, भीड, एकान्त, पुलो को पार करना, धरती या समुद्र पर यात्रा इत्यादि। इस गडबडझाले को कुछ काबू में लाने के लिए हम उन्हे तीन समूहो में बाट देते हैं भय पैदा करने वाली बहुत-सी वस्तुए और स्थितिया तो हम प्रकृत या स्वस्थ लोगो के लिए भी भयानक हैं। उनका खतरे से कुछ सम्बन्ध है, और ये भीतिया या फोबिया हमें कुछ हद तक समझ में आती हैं, हालाकि उनकी तीव्रता अतिरजित मालूम होती है। उदाहरण के लिए हम में से अधिकतर लोगो को साप देखकर परे हट जाने की भावना पैदा होती है। यह कहा जा सकता है कि साप-भीति मानव जाति में सब जगह मौजूद है। चार्ल्स डारविन ने इस बात का बडा सजीव वर्णन किया है कि किस तरह वह अपनी ओर तेजी से आने वाले साप को देखकर अपने त्रास को नियन्त्रित नही कर सका, यद्यपि वह यह जानता था कि एक मोटे शीशे के भीतर वह सुरक्षित है। दूसरे समूह में वे स्थितिया है, जिनका अब भी खतरे से कुछ सम्बन्ध है, पर वह खतरा आम तौर से बहुत मामूली समझा जाता है। अधिकतर स्थिति-भीतिया इस समूह में आती है। हम जानते है कि घर में रहने के समय की अपेक्षा रेलगाडी में विनाश,

---

१ Actual neuroses

अर्थात् टक्कर, का सामना होने का अधिक मौका है। हम यह भी जानते है कि जहाज डूब सकता है और ऐसा होने पर आमतौर से आदमी डूब जाते है, पर हम इन खतरो पर सोचते नही रहते, और विना चिंता के रेल और जहाज में सफर करते है। यह भी निश्चित है कि यदि कोई पुल ऐसे समय टूट जाए जव हम उसे पार कर रहे है तो हम जलधारा में जा पडेगे। पर ऐसी घटनाए इतनी कम होती है कि हम इन्हे विचार करने योग्य खतरा नही समझते। एकात में भी खतरे है, और कुछ परिस्थितियो में हम इनसे वचना चाहते है, पर यह नही कि हम किसी भी अवस्था में क्षण भर के लिए भी इसे सहन नही कर सकते। यही वात भीड, घिरी हुई जगह, विजली की गरज आदि पर लागू होती है। इन भीतियो में हमारे लिए अपरिचित वात उनकी वस्तु उतनी नही है जितनी कि उनकी तीव्रता। किसी भीति या फोविया के साथ जो चिंता होती है, वह निश्चित रूप से अवर्णनीय होती है। और कभी-कभी हमें यह महसूस होता है कि स्नायु-रोगी उन वस्तुओ से सचमुच जरा भी नही डरते, जिनसे हमारे अन्दर कुछ परिस्थितियो में चिंता पैदा हो जाती है और जिसे वे उन्ही नामो से पुकारते है।

अव एक तीसरा समूह रह जाता है जो हमें विलकुल समझ में नही आता। जव कोई ताकतवर वयस्क आदमी अपने ही सुपरिचित नगर मे किसी सडक या चौराहे को पार करने मे डरता है, या जव कोई स्वस्थ और वयस्क स्त्री सिर्फ इस कारण प्राय. वेहोश हो जाती है कि कोई विल्ली उसके कपडे से रगडती चली गई, या कोई चूहा कमरे में से भागा, तो हमें इन घटनाओ का किसी खतरे मे सम्वन्ध कैसे दिखाई दे सकता है? पर स्पष्टत इन लोगो के लिए खतरा मौजूद है। इस तरह की (मनुष्येतर) प्राणि-भीति में यह नही कहा जा सकता कि उनके प्रति मनुष्य की घृणा अधिक तीव्र हो जाने के कारण ऐसा होता है, असल में विलकुल इसके विपरीत वात सिद्ध होती है, क्योकि ऐसे कितने ही लोग है जो, उदाहरण के लिए, विल्ली को देखकर उसे अवश्य अपनी ओर वुलाएगे, और थपथपाएंगे। चूहे से वहुत-सारी स्त्रिया डरती है, पर फिर भी यह वहुत प्रचलित पुकारने का नाम है। वहुत-सी लड़कियां, जो अपने प्रेमियो द्वारा इस नाम से पुकारे जाने पर प्रसन्न हो जाती है, उस छोटे-से सचमुच के प्राणी को देखकर भय से चिल्ला उठती है। जो आदमी सड़कें और चौराहे पार करने मे डरता है, उसके व्यवहार से हमें एक ही वात प्रतीत होती है, कि वह छोटे वालक की तरह व्यवहार कर रहा है। वालक को सीधे शब्दो में यह समझाया जाता है कि ऐसी स्थितिया खतरनाक होती है और इस आदमी की चिताएं भी तव दूर हो जाती है जव कोई और आदमी उसे खुली जगह से पार करा देता है।

चिंता के जिन दो रूपो का वर्णन हमने किया है, अर्थात् 'मुक्त उडता हुआ' सामान्य त्रास और वह त्रास जो भीतियो या फोविया से वधा हुआ है, वे एक दूसरे

से स्वतंत्र है। ऐसा नही है कि इनमें से एक कुछ आगे बढने पर दूसरा बन जाता हो। ऐसा बहुत कम होता है कि वे जुडे हुए हो, और वह भी मानो कभी सयोग-वश। साधारण भयपूर्णता के तीव्रतमरूप से भी भीति या फोबिया पैदा होना आवश्यक नही। जिन लोगो को सारे जीवन एगोरा फोबिया या खुला स्थान पार करने की भीति सताती रही है, वे निराशावादी साशक त्रास से बिलकुल मुक्त हो सकते है। बहुत-सी भीतिया, उदाहरण के लिए,खुले स्थानो का या रेलयात्रा का भय,पहली बार बाद के जीवन में ही स्पष्ट रूप से पैदा होती है, और भीतिया, जैसे अधेरे,बिजली या (मनुष्येतर)प्राणियो का भय, शुरू से मौजूद मालूम होती है। पहले प्रकार की भीतिया गम्भीर रोग की सूचक है, और दूसरे प्रकार की विलक्षणताओं की सूचक है। जिस मनुष्य में इन पीछेवाली भीतियो में से कोई विद्यमान है, उसके बारे मे यह समझा जा सकता है कि उसमें इस जैसी और भीतिया भी होगी। इतनी बात और कह दू कि हम इन सब भीतियो को **चिंता-हिस्टीरिया** के अन्तर्गत रखते है, अर्थात् हम उन्हे उस प्रसिद्ध विकार से निकट सम्बन्ध रखने वाला मानते है, जो **कन्वर्शन-हिस्टीरिया** या कायापलट-हिस्टीरिया कहलाता है।

स्नायु-रोगियो की चिंता का जो तीसरा रूप है, वह हमें उलझन में डाल देता है, चिन्ता का और जिस खतरे से डर है, उसका जरा-सा भी सम्बन्ध नही दिखाई देता। यह चिंता,उदाहरण के लिए, हिस्टीरिया में, हिस्टीरिया के लक्षणो के साथ पैदा होती है, या उत्तेजन की अनेक अवस्थाओ में पैदा होती है, जिनमें हमें यह तो आशा करनी चाहिए कि कोई भाव प्रदर्शित होगा, पर वह चिंता-भाव ही होगा यह आशा बिलकुल नही करनी चाहिए, या परिस्थितियो से कोई सम्बन्ध न रखनेवाला और हमें तथा रोगी को भी न समझ में आनेवाला एक असम्बद्ध चिंता-दौरा होता है। दूर-दूर तक देखने पर भी कोई ऐसा खतरा या मौका नजर नही आता, जिसे अतिरजित रूप देकर भी इसका कारण बताया जा सके। इसलिए इन आप से आप पैदा हो जाने वाले दौरो या आक्रमणो से यह पता चलता है कि उस सकुल दशा को जिसे हम चिंता कहते है, दो खडो में बाटा जा सकता है। सारे हमले या दौरे को एक तीव्र परिवर्धित लक्षण, कपकपी, कमजोरी, दिल की धडकन, सास बन्द होने के द्वारा निरूपित किया जा सकता है, और वह सामान्य भावना, जिसे हम चिंता कहते है, बिलकुल अनुपस्थित हो सकती है, या नजर में आने के अयोग्य हो गई हो सकती है, और फिर भी यह अवस्था की 'चिंता पर्याय' कहलाती है, वही रोगात्मक और कारणात्मक प्रामाणिकता है जो स्वय चिंता थी।

अब दो सवाल पैदा होते है क्या स्नायविक चिंता को, जिसमें खतरे का बहुत ही थोडा स्थान होता है, या बिलकुल भी स्थान नही होता, आलम्बननिष्ठ चिंता से, जो वास्तव खतरे की एक प्रतिक्रिया है, सम्बन्ध जोडना सम्भव है, और स्नायविक चिंता को किस रूप में समझा जाय? अभी तो हम इनकी आशा पर दृढ

रहेगे कि जहा चिंता है, वहा कोई ऐसी चीज भी अवश्य होनी चाहिए, जिससे व्यक्ति डरता है।

रोगियो को देखने से स्वाभाविक चिंता को समझने की दिशा मे अनेक सूत्र मिलते है, और अब मैं उनके बारे में आपसे चर्चा करूगा।

(क) यह समझना कठिन नही है कि साशंक त्रास या सामान्य भय का यौन जीवन के कुछ प्रक्रमो से, यह कहा जाए कि राग-उपयोजन, अर्थात् राग को उपयोग में लाने, की कुछ रीतियो से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस प्रकार की सबसे सरल और सबसे शिक्षाप्रद अवस्था उन लोगो में पैदा होती है, जो 'कुंठित उत्तेजन' अनुभव होने की स्थिति पैदा करते है, अर्थात् ऐसी स्थिति पैदा करते हैं जिसमें प्रबल यौन उत्तेजन नाकाफी विसर्जन अनुभव करता है, और सन्तुष्टि देनेवाली परिणति तक नही ले जाया जाता। यह अवस्था, उदाहरण के लिए, पुरुषो में सगाई हो जाने के बाद होती है, और उन स्त्रियो में होती है जिनके पतियो में काफी पुंसत्व नही होता, या जो लोग सम्भोग बहुत तेजी से, या गर्भाधान को रोकने के विचार से अधूरा करते हैं। इन अवस्थाओ में रागात्मक उत्तेजन लुप्त हो जाता है, और उसके स्थान पर चिंता आ जाती है। यह चिन्ता साशंक त्रास के रूप में होती है। और चिंता के दौरो तथा चिंता-पर्यायो के रूप में भी होती है। **अधूरा सम्भोग**[1], जो गर्भाधान से बचने के लिए किया जाता है, जब नियमित आदत बन जाता है, तब वह पुरुषो में, और स्त्रियो में और भी विशेष रूप से चिंता-स्नायु-रोग का इतना नियमित कारण होता है कि ऐसे सब रोगियो में डाक्टरो को सबसे पहले इसी कारण के होने की खोज करनी चाहिए। असंख्य उदाहरणो से पता चलता है कि जब अधूरे सम्भोग की लत छोड दी जाती है, तब चिंता-स्नायु-रोग भी जाता रहता है। जहा तक मैं जानता हू, अब वे डाक्टर भी इस बात से इन्कार नही करते, जो मनोविश्लेषण से विमुख रहते हैं, कि यौन सयम और चिंता-अवस्थाओ में कुछ सम्बन्ध मौजूद है। तो भी मैं आसानी से यह कल्पना कर सकता हू कि वे इस सम्बन्ध को उलटा रखते है, और यह विचार पेश करते हैं कि इन लोगो में भयपूर्णता की पूर्वप्रवृत्ति होती है, और इसलिए वे यौन मामलो में सतर्कता बरतते हैं। यही बात और अधिक निश्चित रूप मे उन स्त्रियो में होनेवाली प्रतिक्रियाओ में दिखाई देती है, जिनमे मैथुन-कार्य सारत निष्क्रिय होता है, और इसलिए इनका रास्ता पुरुष द्वारा किए गए आचरण से ही निश्चित होता है। किसी स्त्री में सम्भोग की इच्छा और सन्तुष्टि का सामर्थ्य जितना अधिक होगा, उतने ही अधिक निश्चित रूप में पुरुष की नपुंसकता या अधूरे सम्भोग के लक्षण प्रकट होंगे। पर जिन स्त्रियो मे उतनी संवेदनशीलता नही होती या जिनमें काम-

---

१. Coitus interruptus.

क्षुधा इतनी प्रबल नही होती, उनमें इस तरह के दुष्कर्म से बहुत कम गम्भीर परिणाम होते हैं।

यौन विरति में भी, जिसकी डाक्टर लोग आजकल इतने उत्साह से सिफारिश करते हैं, चिंता-अवस्थाओ का सिर्फ तब यही अर्थ होता है जबकि राग, जिसके सन्तोपजनक रूप से निकलने का रास्ता रोका जाता है, बहुत प्रबल हो, और उदात्तीकरण में उसका बहुत अधिक मात्रा में उपयोग न हो रहा हो। रोग पैदा होगा या नही, इसका उत्तर सदा मात्रा पर निर्भर है। रोग के अलावा भी चरित्र-निर्माण के क्षेत्र में यह आसानी से देखा जा सकता है कि यौन सयम के साथ कुछ चितातुरता और सतर्कता रहती है, जबकि निर्भयता और साहसपूर्ण भावना के साथ यौन आवश्यकताओ को बिना रुकावट सहन करने की प्रवृत्ति रहती है। सभ्यता के बहुरूपी प्रभावो से यह सम्बन्ध कितना ही बदल जाए या उलझ जाए, पर यह बात निर्विवाद है कि औसत आदमी के लिए चिंता और यौन रुकावट का नजदीकी सबध है।

मैने आपको वे सब प्रेक्षण नही बताए हैं जो राग और चिंता के इस जननात्मक सम्बन्ध-सूत्र का सकेत करते हैं। उदाहरण के लिए, जीवन के कुछ कालो, जैसे तरुणावस्था और रजोरोध की चिंता-अवस्थाओ पर होने वाले प्रभाव में राग का उत्पादन बहुत बढ जाता है। उत्तेजना की बहुत-सी अवस्थाओ में भी यौन उत्तेजन और चिंता का सम्मिश्रण प्रत्यक्ष देखा जा सकता है, और इसी तरह यौन-उत्तेजन के स्थान पर अत में चिंता का आ जाना भी स्पष्ट दिखाई देता है। इन सब बातो से दो धारणाए बनती हैं। पहली तो यह कि इसमें प्रकृत उपयोग में आने से वचित राग का सचय होता है, और दूसरी यह कि इसमें सिर्फ कायिक प्रक्रम होते हैं। यौन इच्छा से चिंता कैसे बन जाती है, यह बात इस समय स्पष्ट नही है। हम सिर्फ यह बात निश्चित रूप से पता लगा सकते हैं कि इच्छा का अभाव है, और उसके स्थान पर चिंता दिखाई पडती है।

(ख) दूसरा सूत्र मनोस्नायु-रोगो, खासकर हिस्टीरिया, के विश्लेषण से प्राप्त होता है। हम पहले कह चुके हैं कि इस रोग के लक्षणो के साथ चिंता भी प्राय होती है और अनन्वधी चिंता जीर्ण रोग के रूप में मौजूद हो सकती है, या दौरो में प्रकट हो सकती है। रोगी यह नही कह सकते कि वे किस चीज से डरते हैं। वे इनका सम्बन्ध मरना, पागल होना, चोट खाना आदि बहुत अधिक सुविधाजनक भीतियो के असदिग्ध परवर्ती विशदन से जोड लेते हैं। जब हम उस अवस्था का विश्लेषण करते हैं जिससे चिंता अथवा चिंता के साथ मौजूद लक्षण पैदा हुए, तब हम साधारणतया यह जान सकते हैं कि कौन-सा प्रकृत मानसिक प्रक्रम-मार्ग में रोक दिया गया है, जिसके स्थान पर चिंता प्रकट हुई है। दूसरे शब्दो में, इसे इस तरह कहा जा सकता है। अचेतन प्रक्रम का अर्थ हम इस तरह लगाते हैं जैसे इसका दमन नही हुआ, और यह बिना रुकावट चेतना में चला गया है। इस प्रक्रम के साथ

कोई खास भाव रहा होगा, और अब हम आश्चर्य से देखते हैं कि प्रत्येक रोगी में इस भाव के स्थान पर,जो सामान्यत' मानसिक प्रक्रम के साथ चेतना में पहुच जाता है, चिंता आ जाती है, चाहे यह पहले किसी भी प्रकार का रहा हो। इस प्रकार, जब हमारे सामने हिस्टीरिकल चिंता-दशा हो, तब उसका अचेतन सहसम्बन्धी[1] उसी तरह का कोई उत्तेजन हो सकता है, जैसे साधारण भय, लज्जा, परेशानी, या इसी तरह सम्भव है कि यह धनात्मक रागगत उत्तेजन हो, या सम्भव है कि यह कोई विरोधी और प्रचण्ड उत्तेजन हो, जैसे गुस्सा। इस प्रकार चिंता वह आम चालू सिक्का है जो सब भावो के बदले मिल सकता है या जिसके बदले सब भाव मिल सकते हैं, जब कि तत्सम्बन्धी मनोविम्बात्मक वस्तु का दमन किया गया हो।

(ग) तीसरा प्रेक्षण उन रोगियो से मिला है जिनके लक्षण मनोग्रस्तता का रूप धारण कर लेते हैं, और जिनमें चिंता से प्रभावित न होने की विशेषता दिखाई देती है। जब हम उन्हे उनके मनोग्रस्त कार्य करने से रोकते हैं, या जब वे स्वय अपने किसी मनोग्रस्त कार्य को छोडने की कोशिश करते हैं, तब एक भीषण त्रास उन्हें इस अनिवार्यता के आगे सिर झुकाने, और उस कार्य को करने के लिए मजबूर कर देता है। हम देखते हैं कि चिन्ता मनोग्रस्त कार्य के नीचे छिपी हुई थी और यह त्रास की भावना से बचने के लिए ही की जाती है। इसलिए मनोग्रस्तता-स्नायु-रोग में चिंता के स्थान पर लक्षण-निर्माण हो जाता है, यदि यह न होता तो चिन्ता पैदा हो जाती, और जब हम हिस्टीरिया पर ध्यान देते हैं, तब हमे ऐसा ही सम्बन्ध मौजूद दिखाई देता है—दमन के परिणामस्वरूप या तो शुद्ध परिवर्धित चिंता होती है या लक्षण-निर्माण के साथ चिन्ता होती है, और चिंता के बिना लक्षण-निर्माण होता है। इसलिए सूक्ष्म अर्थ में, ऐसा कहना सही मालूम होता है कि लक्षण सब के सब चिंता से बचने के लिए ही पैदा होते हैं, अन्यथा उनका परिवर्धन अवश्य होता। इस प्रकार, स्नायु-रोगो की समस्याओ में चिन्ता हमारी दिलचस्पी में सबसे आगे आ जाती है।

हमने चिंता-स्नायु-रोगो को देखकर यह नतीजा निकाला था कि राग का अपने प्रकृत उपयोजन से हटाव, जिससे चिन्ता मुक्त हो जाती है, कायिक प्रक्रमो के आधार पर हुआ है। हिस्टीरिकल और मनोग्रस्तता-स्नायु-रोगो के विश्लेपण से यह नतीजा भी निकलता है कि मन में स्थित मस्याओ की ओर से विरोध के बाद ऐसा ही हटाव और ऐसा ही परिणाम हो सकता है। इसलिए हमें स्नायविक चिन्ता के पैदा होने के बारे में इतना ही पता है। यह जरा अनिश्चित बात मालूम होती है, पर इस समय कोई और रास्ता भी नहीं है, जो हमें और आगे ले जा सके। हमने जो दूसरा कार्य उठाया था, अर्थात् स्नायविक चिंता (अप्रकृत रूप से

---

1 Correlative.

प्रयोग में आए राग) और 'आलवननिष्ठ चिता' (जो खतरे की प्रतिक्रिया की सम्वादी है) का सम्ब्रध-सूत्र स्थापित करना, उसे पूरा करना और भी कठिन मालूम होता है। आप सोचेंगे कि दोनो चीजो में कुछ सादृश्य नही हो सकता, पर फिर भी ऐसे कोई साधन नही है, जिनसे स्नायविक चिता के सवेदनो और यथार्थ चिन्ता के सवेदनो में विवेक किया जा सकता है।

अभीष्ट सम्बन्ध-सूत्र अहम् तथा राग के इतनी वार पेश किए गए वैपम्य में ढूढा जा सकता है। जैसा कि हम जानते है, चिता का परिवर्धन खतरे पर अहम् की प्रतिक्रिया और भागने की तयारी का सकेत है। इसके बाद यह कल्पना बहुत दूरारूढ नही रहती कि स्नायविक चिता में भी, अहम् अपने राग की पुकार या आवश्यकता से दूर भाग जाने की कोशिश कर रहा है, और इस भीतरी खतरे को बाहरी खतरा समझ रहा है। तब हमारी यह आशा पूरी हो जाएगी कि जहा चिता मौजूद है, वहा कोई ऐसी चीज भी अवश्य होनी चाहिए जिससे आदमी डरता है। पर यह सादृश्य और आगे भी चलता है। जैसे बाहरी खतरे से भागने की कोशिश पैदा करने वाला तनाव अपने क्षेत्र में जमे रहने, और बचाव या प्रति-रक्षा की उपयुक्त कार्यवाही करने, इन दो भागो में खडित हो जाता है। ठीक वैसे ही स्नायविक चिता के परिवर्धन से एक लक्षण-निर्माण पैदा हो जाता है, जिससे चिता 'परिसीमित' हो सकती है।

अब, इसे समझने में हमें जो कठिनाई है, वह कहीं और है—वह चिता, जो अहम् के अपने राग से बचकर भागने को सूचित करती है, फिर भी उसी राग में से पैदा हुई मानी जाती है। यह बात अस्पष्ट है, और हमें यह न भूलना चाहिए कि किसी व्यक्ति का राग मूलत उस व्यक्ति का हिस्सा है और उस व्यक्ति से इस राग का इस तरह वैपम्य नही दिखाया जा सकता जैसे कि राग कोई बाहरी चीज हो। चिता-परिवर्धन की स्थानवृत्तीय गतिकी का सवाल हमारे लिए अब भी अस्पष्ट है, अर्थात् किस-किस प्रकार की मानसिक ऊर्जाए खर्च हो रही है, और वे किस-किस स्थान से सम्बन्धित है। मै इस प्रश्न का भी उत्तर देने का वचन आपको नही देता, पर हम दो और सूत्रो को पकडकर अवश्य चलेंगे, और उनमें भी अपनी कल्पना को सहारा देने के लिए प्रत्यक्ष प्रेक्षण और विश्लेपणीय अनुसधान की फिर सहायता लेंगे। अब हम बालको में होने वाली चिता के उद्भवो पर और भीतियो या फोबिया से सम्बन्धित स्नायविक चिता के उद्गम पर विचार करेंगे।

भयपूर्णता बालको में आम तौर से पाई जाती है, और यह फैसला करना काफी कठिन है कि यह आलम्बननिष्ठ चिता है या स्नायविक चिता। सच पूछिए तो स्वय बच्चो के रुखसे इस विभेद की सार्थकता पर ही आपत्ति पैदा हो जाती है, क्योकि एक ओर तो हमें यह देखकर आश्चर्य नही होता कि बच्चे नए आद-मियो, नई वस्तुओ और स्थितियो मे डरते है—और अपने मन में हम इस प्रतिक्रिया

का वडी आसानी से यह कारण समझ लते है कि वे कमजोर और अज्ञानी है। इस प्रकार, हम वालको में आलम्बननिष्ठ चिता की प्रवल प्रवृत्ति वताते है, और यदि यह भयपूर्णता जन्मजात होती तो हम इसे व्यावहारिक ही मानते। वालक प्रागैतिहासिक मनुष्य के और आदिम मानव के व्यवहार को ही आज दोहरा रहा है, जो अपने अज्ञान और असमर्थता के कारण हरएक नई और अपरिचित चीज से और वहुत-सी परिचित चीजो से त्रास अनुभव करता है, पर इनमें से कोई भी चीज अव हमारे अन्दर भय पैदा नही करती। यदि वालको की भीतिया अशत वैसी हो, जैसी मानव-परिवर्धन के आदिम कालो में उपस्थित समझी जा सकती है, तो यह वात भी हमारी आशाओ से मेल खाएगी।

दूसरी ओर, इस वात को नजरन्दाज नही किया जा सकता कि सव वालक एक समान भयपूर्ण या डरने वाले नही होते, और जो वालक सव तरह की वस्तुओ और स्थितियो से अधिक डरते है, वे ही वाद मे स्नायु-रोगी वनते है। इसलिए स्नायविक स्वभाव का एक चिन्ह यह है कि इसमें आलम्बननिष्ठ चिता की वहुत प्रवृत्ति होती है। स्नायविकता के वजाय भयपूर्णता प्राथमिक स्थिति मालूम होती है, और हम इस नतीजे पर पहुचते है कि वालक और वाद में वयस्क अपने राग की शक्ति से त्रास सिर्फ इस कारण अनुभव करता है क्योकि वह हर चीज से डरता है। तव चिता का स्वय राग से पदा होना भी अस्वीकार कर दिया जाएगा, और यथार्थ चिता की अवस्थाओ के अनुसंधान से हम तर्क द्वारा इस विचार पर पहुचेंगे कि स्नायु-रोग का अन्तिम कारण व्यक्तिगत कमजोरी और लाचारी की चेतना है—जिसे ए० ऐडलर आत्महीनता[1] कहता है, जवकि वह वाद के जीवन मे भी कायम रह सकती हो।

यह वात इतनी सरल और तर्कयुक्त दिखाई देती है कि इसकी ओर हमारा ध्यान वरवस खिच जाता है। यह सच है कि इसके लिए हमें वह दृष्टिकोण वदलना होगा जिससे हम स्नायविकता की समस्या को देखते है। यह वात कि आत्महीनता की ये भावनाए वाद के जीवन मे कायम रहती है—और चिता तथा लक्षण-निर्माण की प्रवृत्ति भी रहती है—इतनी अच्छी तरह सिद्ध मालूम होती है कि जव किसी अपवादरूप रोगी में, जिसे हम 'स्वास्थ्य' कहते है, वह परिणामरूप में दिखाई देता है, तव और अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता पैदा होती है। वालको की भयपूर्णता को नजदीक से देखने पर क्या पता चलता है? छोटा वालक सवसे पहले अपरिचित लोगो से डरता है। स्थितियो का महत्व उनसे सम्वन्धित व्यक्तियो के कारण होता है, और आलम्वन या वस्तुएं और भी वहुत वाद में आया करती है, पर वालक इन अजनवी लोगो से इस कारण नही डरता कि वह उनमें वुरे आशय

1. Inferiority.

प्रयोग में आए राग) और 'आलबननिष्ठ चिंता' (जो खतरे की प्रतिक्रिया की सम्वादी है) का सम्बध-सूत्र स्थापित करना, उसे पूरा करना और भी कठिन मालूम होता है। आप सोचेंगे कि दोनो चीजो में कुछ सादृश्य नही हो सकता, पर फिर भी ऐसे कोई साधन नही है, जिनसे स्नायविक चिंता के सवेदनो और यथार्थ चिन्ता के सवेदनो में विवेक किया जा सकता है।

अभीष्ट सम्बन्ध-सूत्र अहम् तथा राग के इतनी बार पेश किए गए वैपम्य में ढूढा जा सकता है। जैसा कि हम जानते है, चिंता का परिवर्धन खतरे पर अहम् की प्रतिक्रिया और भागने की तयारी का सकेत है। इसके बाद यह कल्पना बहुत दूरारूढ नही रहती कि स्नायविक चिंता में भी, अहम् अपने राग की पुकार या आवश्यकता से दूर भाग जाने की कोशिश कर रहा है, और इस भीतरी खतरे को बाहरी खतरा समझ रहा है। तब हमारी यह आशा पूरी हो जाएगी कि जहा चिंता मौजूद है, वहा कोई ऐसी चीज भी अवश्य होनी चाहिए जिससे आदमी डरता है। पर यह सादृश्य और आगे भी चलता है। जैसे बाहरी खतरे से भागने की कोशिश पैदा करने वाला तनाव अपने क्षेत्र मे जमे रहने, और बचाव या प्रति-रक्षा की उपयुक्त कार्यवाही करने, इन दो भागो में खडित हो जाता है। ठीक वैसे ही स्नायविक चिंता के परिवर्धन से एक लक्षण-निर्माण पैदा हो जाता है, जिससे चिंता 'परिसीमित' हो सकती है।

अब, इसे समझने में हमें जो कठिनाई है, वह कही और है—वह चिंता, जो अहम् के अपने राग से बचकर भागने को सूचित करती है, फिर भी उसी राग में से पैदा हुई मानी जाती है। यह बात अस्पष्ट है, और हमें यह न भूलना चाहिए कि किसी व्यक्ति का राग मूलत उस व्यक्ति का हिस्सा है और उस व्यक्ति से इस राग का इस तरह वैपम्य नही दिखाया जा सकता जैसे कि राग कोई बाहरी चीज हो। चिंता-परिवर्धन की स्थानवृत्तीय गतिकी का सवाल हमारे लिए अब भी अस्पष्ट है, अर्थात् किस-किस प्रकार की मानसिक ऊर्जाए खर्च हो रही है, और वे किस-किस स्थान से सम्बन्धित है। मैं इस प्रश्न का भी उत्तर देने का वचन आपको नही देता, पर हम दो और सूत्रो को पकडकर अवश्य चलेंगे, और उनमें भी अपनी कल्पना को सहारा देने के लिए प्रत्यक्ष प्रेक्षण और विश्लेषणीय अनुसधान की फिर सहायता लेंगे। अब हम बालको में होने वाली चिंता के उद्भवो पर और भीतियो या फोबिया से सम्बन्धित स्नायविक चिंता के उद्गम पर विचार करेंगे।

भयपूर्णता बालको में आम तौर से पाई जाती है, और यह फैसला करना काफी कठिन है कि यह आलम्बननिष्ठ चिंता है या स्नायविक चिंता। सच पूछिए तो स्वय बच्चो के रुखसे इस विभेद की सार्यकता पर ही आपत्ति पैदा हो जाती है, क्योंकि एक ओर तो हमें यह देखकर आश्चर्य नही होता कि बच्चे नए आद-मियो, नई वस्तुओ और स्थितियो से डरते है—और अपने मन में हम इस प्रतिक्रिया

भयभीत कर देगा। हम उसे हर बात का अनुभव द्वारा सीखने का मौका नही देते। इसलिए उसमे यथार्थ चिंता अत में बिलकुल पूरे रूप मे प्रशिक्षण के कारण ही पैदा होती है।

अब यदि बहुत-से बालक भयपूर्णता के इस प्रशिक्षण को बहुत आसानी से सीख लेते है, और फिर उन खतरो को पहचान लेते है, जिनके बारे मे उन्हे चेतावनी नही दी गई, तो इसकी व्याख्या इस आधार पर की जा सकती है कि इन बालको की शरीर-रचना में रागात्मक आवश्यकता की, औरो की अपेक्षा अधिक मात्रा जन्म से ही होती है, अथवा उन्हे शुरू में ही राग की परितुष्टियो द्वारा बर्बाद कर दिया गया है। जो लोग बाद में स्नायविक हो जाते है, वे भी इसी तरह के बालक होते है। मतलब यह कि इसमे कोई आश्चर्य की बात नही। हम जानते है कि स्नायु-रोग के परिवर्धन के लिए सबसे अनुकूल परिस्थिति दबे हुए राग की प्रचुर मात्रा को अधिक देर तक सहन करने की असमर्थता ही है। अब आप देखते है कि यहा शरीर-रचना सम्बन्धी कारक, जिसकी उपस्थिति से हमने कभी इन्कार नही किया, अपने पूरे रूप में दिखाई देता है, हम इसका विरोध सिर्फ तभी करते है जब दूसरे लोग इसपर इतना अधिक बल देते है कि और सब कारको का निषेध हो जाए, और जब वे वहा भी शरीर-रचना सम्बन्धी कारक ले आते है, जहा वह प्रेक्षण और विश्लेषण दोनो के सम्मत विचार के अनुसार नही होता, या बहुत गौण अंश में होता है।

बालको मे होनेवाली भयपूर्णता के प्रेक्षण से निकाले गए निष्कर्षो का सारांश यह है : शिशुओ के त्रास का आलंबननिष्ठ चिंता (वास्तविक खतरे) के त्रास से कोई सम्बन्ध नही है। इनके विपरीत, इनका वयस्को की स्नायविक चिंता से नजदीकी सम्बन्ध है। यह स्नायविक चिंता की तरह अविसर्जित राग से पैदा होता है, और जो प्रेम आलम्बन इसे नही मिल पाता, उसके स्थान पर यह किसी दूसरे बाहरी आलम्बन या किसी स्थिति को ले आता है।

अब आपको यह सुनकर खुशी होगी कि भीतियो के विश्लेषण से हमने जो कुछ सीखा है, उससे कुछ और अधिक सीखा जा सकता है। उनमें भी वही बात होती है जो बालको की चिंता में—जो राग विसर्जित नहीं किया जा सकता वह लगातार देखने में 'आलंबननिष्ठ' लगनेवाली चिंता में बदलता रहता है, और इस प्रकार तुच्छ-से बाहरी खतरे को उसका प्रतिनिधि मान लिया जाता है, राग जिसकी कामना करता है। चिंता के इन दोनो रूपो में संवादिता आश्चर्यजनक नही है, क्योकि शिशुओ की भीतिया सिर्फ उन भीतियो के पूर्वरूप ही नही है जो बाद में चिंता-हिस्टीरिया में दिखाई देती है, बल्कि वे उनकी सीधी आरम्भिक अवस्था और पूर्व तैयारी होती है। हिस्टीरिया की प्रत्येक भीति का आरम्भ बालपन के किसी त्रास में ढूढा जा सकता है, जिसका वह विस्तार है, चाहे इसकी वस्तु भिन्न

देखता है, उनकी शक्ति से अपनी कमजोरी की तुलना करता है, और इस प्रकार उनका अस्तित्व सुरक्षा और अपनी दु ख से विमुक्ति के लिए खतरा समझता है। बालक के बारे में यह समझना कि वह ससार में अपने से बहुत प्रबल आक्रामक शक्ति के प्रति सन्देहशील और उससे डरा हुआ रहता है, बहुत ही घटिया सैद्धान्तिक विचार है। इसके विपरीत, बालक अजनबी शकल से इस कारण डरकर चिल्ला उठता है, क्योंकि उसे एक प्यारी और परिचित शकल, मुख्यत अपनी माता, का अभ्यास पडा हुआ है, और इसलिए वह उसकी ही आशा करता है। उसकी निराशा और लालसा ही त्रास में परिवर्तित हो जाती है—उसका राग, जो उस समय खर्च नही हो सका और जो उस समय निलम्बित या निष्क्रिय भी नही रह सकता, त्रास में बदलकर विसर्जित हो जाता है। यह भी सयोगवश नही हो सकता कि इस स्थिति में, जो बालक की चिंता का मूलरूप है, जन्म-काल की प्राथमिक चिंता-अवस्था की दशा—माता से अलगाव—फिर सामने आती है।

बालकों में स्थितियों की पहली भीतिया अधेरे और अकेलेपन से सम्बन्धित होती है। अधेरे की भीति प्राय सारे जीवन बनी रहती है। दोनो में सामान्य वस्तु—अनुपस्थित परिचारक की, अर्थात् माता की अभिलापा है। एक बार अधेरे से डरे हुए बालक को मैंने यह कहते सुना "चाची, मुझसे बात करो, मैं डरा हुआ हू।" "इससे क्या लाभ? तुम मुझे देख तो नही सकते।" जिस पर बालक ने जवाब दिया "कोई बातचीत करता रहे तो डर कम हो जाता है।" इस प्रकार अधेरे में अनुभूत लालसा अधेरे के भय में रूपान्तरित हो जाती है। बजाय इस नतीजे के कि स्नायविक चिंता आलम्बननिष्ठ चिंता का सिर्फ परवर्ती और एक विशेष रूप है, हम यह देखते हैं कि छोटे बालक में कुछ ऐसी चीज है जो वास्तविक चिंता की तरह व्यवहार करती है, और इसमें स्नायविक चिंता की एक सारभूत विशेपता, अर्थात् अविसर्जित राग से उद्गम, मौजूद है। सच्ची 'आलम्बननिष्ठ चिंता' का बहुत ही थोडा अश बालक दुनिया में प्रकट करता मालूम होता है। उन सब स्थितियो में, जो बाद में भीतियो की अवस्था बन जाती है, जैसे ऊचाइया, पानी के ऊपर बने हुए पुल, रेलगाडिया और नौकाए, बालक कोई भय प्रकट नही करता। वह जितना कम जानता है, उतना ही कम डरता है। हम यह ही चाहते हैं कि उसमें ये जीवन-सरक्षक निसर्ग-वृत्तिया जन्म से ही और अधिक होती, तब उसकी देख-भाल करने और उसे एक के बाद दूसरे खतरे के सामने पहुचने से रोकने का काम बहुत हलका हो जाता। असल में आप देखते है कि बालक शुरू में अपनी शक्तियो का बहुत अधिक अदाजा लगाता है और बिना भय के व्यवहार करता है, क्योंकि वह खतरो को नही पहचानता। वह पानी के किनारे दौडेगा, खिडकी पर चढ जाएगा, धारदार वस्तुओ से और आग से खेलेगा, अर्थात् ऐसा कोई भी काम करने लगेगा, जिससे उसे चोट लगती है, और अपने देख-भाल करने वालो को

दमन और राग का चिंता में परिवर्तन करती है, और इस तरह राग किसी वाहरी खतरे से जुड जाता है। दूसरी अवस्था मे वे सव सतर्कताए और रक्षा-साधन खडे किए जाते है जिनसे इस वाहर के खतरे से सव तरह के सम्पर्क से वचा जा सके। दमन अहम् का राग से दूर भागने का प्रयत्न है, जिसे वह खतरनाक अनुभव करता है। भीति की तुलना एक किलेवन्दी से की जा सकती है जो त्रस्त राग के लिए अव मौजूद वाहरी खतरे के मुकावले में की गई थी। भीतियो के रूप में इस प्रतिरक्षा प्रणाली की कमजोरी निस्सन्देह यह है कि यह किला, जिसकी वाहर से इतनी अच्छी तरह रक्षा की जा रही है, अन्दर के खतरे के लिए खुला रहता है। राग से खतरे का वाहर प्रक्षेपण या आरोप कभी भी वहुत सफल नही हो सकता। इसलिए अन्य स्नायु-रोगो में चिंता के परिवर्धन की सम्भावना का मुकावला करने के लिए दूसरी प्रतिरक्षा प्रणालिया अपनाई जाती है। यह स्नायु-रोगो के मनोविज्ञान का वडा मनोरजक हिस्सा है। वदकिस्मती से हम इसमें वहकर विपय से वहुत दूर चले जाएगे, साथ ही इसके लिए इस विपय के विशेप ज्ञान का मजबूत आधार भी चाहिए। मै इतना ही और कह सकता हू। मैने पहले 'प्रति आवेशो' की चर्चा की है, जो अहम् द्वारा दमन पर डाले जाते है, और जिनका दमन के कायम रहने के लिए वना रहना जरूरी है। इस 'प्रति आवेश' का ही यह काम है कि वह दमन के वाद चिंता के परिवर्धन के विरोध मे अनेक प्रकार से वचाव का कार्य करे।

अव फिर भीतियो पर आइए। मुझे आशा है कि अव आप यह समझ सकते है कि सिर्फ उनकी वस्तु की व्याख्या करने की कोशिश करना और उनके पैदा होने के स्थान के अलावा उनमें कोई दिलचस्पी न लेना कितना अधूरा काम है, अर्थात् सिर्फ यह विचार करना कि किस वस्तु या स्थिति की भीति है, यह वात कितनी अपर्याप्त है। भीति की वस्तु का वैसा ही महत्व है, जैसा व्यक्त स्वप्न की वस्तु का—यह वाहरी दिखावटी रूप है। सारे उचित रूप-भेद करके यह मानना पड़ता है कि विभिन्न भीतियो की वस्तुओ में वहुत-सी ऐसी वस्तुए पाई जाती है जो, जैसा कि स्टेनलीहाल ने वताया है, जाति-चारित्तीय आनुवशिकता के कारण त्रास की आलंवन वनने के लिए विशेपरूप से उपयुक्त है। यह वात इस तथ्य मे भी मेल खाती है कि इन त्रासकारक वस्तुओ में से वहुत-सी वस्तुओ का खतरे के साथ, प्रतीकात्मक सम्वन्ध के अलावा, और कोई भी सम्वन्ध नही होता।

इस प्रकार, हमें यह निश्चय हो जाता है कि स्नायु-रोगो के मनोविज्ञान में चिंता की समस्या विलकुल केन्द्रीय अर्थात् सवसे महत्वपूर्ण, स्थिति में है। हमारी यह एक प्रवल धारणा वन गई है कि चिंता का परिवर्धन राग के भविष्य और अचेतन सस्थान से किस तरह जुडा हुआ है। अव सिर्फ एक असम्वन्धित सूत्र, सारे ढाचे में एक खाली स्थान, रह गया है, और वह यह तथ्य है जिसपर आपत्ति करना मुश्किल ही है कि 'आत्मरक्षानिष्ठ चिंता' को अहम् की आत्मसंरक्षण विपयक निसर्ग-वृत्ति की अभिव्यक्ति माना जाए।

है और इसे भिन्न नाम से ही पुकारना होगा। दोनो अवस्थाओ का अन्तर उनके तन्त्र का अन्तर है। राग वयस्क में चिंता में परिवर्तित हो सके, इसके लिए अब इतना ही काफी नही कि राग का कुछ समय के लिए उपयोग न हो सके। वयस्क बहुत समय तक ऐसे राग को निलम्बित या निष्क्रिय बनाए रखना या विभिन्न तरीको से इसे कायम रखना सीख चुका है। पर जब राग किसी ऐसे मानसिक उत्तेजन से जुड जाता है, जिसका दमन किया गया है, तब वैसी ही अवस्थाए पैदा हो जाती हैं जैसी बालक में, जिसमें अभी चेतन और अचेतन का कोई विभेद नही होता, और शिशु-भीति की ओर प्रतिगमन मानो एक पुल बन जाता है जिससे राग को आसानी से चिंता में परिवर्तित किया जा सकता है। आपको याद होगा कि हमने दमन पर कुछ विस्तार से विचार किया है। पर उस विचार में हम सिर्फ यही तक गए कि दमन किए जाने वाले **मनोबिम्ब** का क्या होता है, और यह स्वाभाविक भी था, क्योकि इसे पहचानना और पेश करना आसान था। पर अब तक हमने इस प्रश्न पर ध्यान नही दिया कि इस मनोविम्ब से सम्बन्धित **मनोविकार या भाव** का क्या होता है, और अब पहली बार हमें यह मालूम हुआ है कि भाव तुरन्त चिंता में परिवर्तित हो जाता है—इससे कुछ मतलब नही कि यदि यह भाव अपने प्रकृत मार्ग पर चला होता तो किस विशेषता वाला होता। इसके अतिरिक्त, भाव का यह रूपान्तरण दमन के प्रक्रम का अधिक महत्वपूर्ण परिणाम है। यह बात आपके सामने प्रतिपादित करना आसान नही, क्योकि हम अचेतन भावो का अस्तित्व उसी अर्थ में नही मानते जिस अर्थ में हमने अचेतन मनोविम्बो का माना था। मनोबिम्ब कुछ दूर तक वैसे का वैसा ही रहता है, चाहे वह चेतन हो या अचेतन (अर्थात् ज्ञात हो या अज्ञात)। हम ऐसी कोई चीज निर्दिष्ट कर सकते हैं जो किसी अचेतन मनोविम्ब की सवादी हो। पर भाव एक ऐसा प्रक्रम है, जिसमें ऊर्जा का विसर्जन आवश्यक है और इसे मनोविम्ब से बिलकुल भिन्न समझना चाहिए। मानसिक प्रक्रमो के सम्बन्ध में अपनी परिकल्पनाओ की गहरी परीक्षा और स्पष्टीकरण बिना किए हम यह नही कह सकते कि अचेतन में इसका सवादी कौन है—और यह कार्य यहा नही किया जा सकता। पर फिर भी हम अपनी यह धारणा बनाए रखेंगे कि चिंता के परिवर्धन का अचेतन सस्थान से नजदीकी सम्बन्ध है।

मैंने कहा था कि दमन किए जाने वाले राग का सबसे पहला भविष्य यह होता है कि वह चिंता में बदल जाता है, या और अच्छे ढग से कहा जाए तो वह चिंता के रूप में विसर्जित हो जाता है, पर यह इसका अन्तिम परिणाम नही। स्नायु-रोगो में ऐसे प्रक्रम होते हैं जिनका उद्देश्य चिंता के परिवर्धन को रोकना होता है, और जो अनेक उपायो से ऐसा करने में सफल होते हैं, उदाहरण के लिए, भीतियो में स्नायविक प्रक्रम की दो क्रमिक अवस्थाए साफ दिखाई देती हैं। पहली अवस्था

दमन और राग का चिंता में परिवर्तन करती है, और इस तरह राग किसी वाहरी खतरे से जुड जाता है। दूसरी अवस्था मे वे सब सतर्कताए और रक्षा-साधन खड़े किए जाते हैं जिनसे इस वाहर के खतरे से सब तरह के सम्पर्क से बचा जा सके। दमन अहम् का राग से दूर भागने का प्रयत्न है, जिसे वह खतरनाक अनुभव करता है। भीति की तुलना एक किलेवन्दी से की जा सकती है जो त्रस्त राग के लिए अव मौजूद वाहरी खतरे के मुकावले में की गई थी। भीतियो के रूप में इस प्रतिरक्षा प्रणाली की कमजोरी निस्सन्देह यह है कि यह किला, जिसकी वाहर से इतनी अच्छी तरह रक्षा की जा रही है, अन्दर के खतरे के लिए खुला रहता है। राग से खतरे का वाहर प्रक्षेपण या आरोप कभी भी वहुत सफल नही हो सकता। इसलिए अन्य स्नायु-रोगो में चिंता के परिवर्धन की सम्भावना का मुकावला करने के लिए दूसरी प्रतिरक्षा प्रणालिया अपनाई जाती हैं। यह स्नायु-रोगो के मनोविज्ञान का वड़ा मनोरजक हिस्सा है। वदकिस्मती से हम इसमें वहकर विषय से वहुत दूर चले जाएंगे, साथ ही इसके लिए इस विषय के विशेष ज्ञान का मजवूत आधार भी चाहिए। मै इतना ही और कह सकता हू। मैंने पहले 'प्रति आवेशो' की चर्चा की है, जो अहम् द्वारा दमन पर डाले जाते हैं, और जिनका दमन के कायम रहने के लिए वना रहना जरूरी है। इस 'प्रति आवेश' का ही यह काम है कि वह दमन के वाद चिंता के परिवर्धन के विरोध मे अनेक प्रकार से वचाव का कार्य करे।

अव फिर भीतियो पर आइए। मुझे आशा है कि अव आप यह समझ सकते हैं कि सिर्फ उनकी वस्तु की व्याख्या करने की कोशिश करना और उनके पैदा होने के स्थान के अलावा उनमें कोई दिलचस्पी न लेना कितना अधूरा काम है, अर्थात सिर्फ यह विचार करना कि किस वस्तु या स्थिति की भीति है, यह वात कितनी अपर्याप्त है। भीति की वस्तु का वैसा ही महत्व है, जैसा व्यक्त स्वप्न की वस्तु का—यह वाहरी दिखावटी रूप है। सारे उचित रूप-भेद करके यह मानना पडता है कि विभिन्न भीतियो की वस्तुओ में वहुत-सी ऐसी वस्तुए पाई जाती हैं जो, जैसा कि स्टेनलीहाल ने वताया है, जाति-चारितीय आनुवंशिकता के कारण त्रास की आलंवन वनने के लिए विशेषरूप से उपयुक्त हैं। यह वात इस तथ्य से भी मेल खाती है कि इन त्रासकारक वस्तुओ में से वहुत-सी वस्तुओ का खतरे के साथ, प्रतीकात्मक सम्वन्ध के अलावा, और कोई भी सम्वन्ध नही होता।

इस प्रकार, हमें यह निश्चय हो जाता है कि स्नायु-रोगो के मनोविज्ञान में चिंता की समस्या विलकुल केन्द्रीय अर्थात् सवसे महत्वपूर्ण, स्थिति में है। हमारी यह एक प्रवल धारणा वन गई है कि चिंता का परिवर्धन राग के भविष्य और अचेतन सस्थान से किस तरह जुडा हुआ है। अव सिर्फ एक असम्वन्धित सूत्र, सारे ढाचे में एक खाली स्थान, रह गया है, और वह यह तथ्य है जिसपर आपत्ति करना मुश्किल ही है कि 'आलम्वननिष्ठ चिंता' को अहम् की आत्मसरक्षण विषयक निसर्ग-वृत्ति की अभिव्यक्ति माना जाए।

व्याख्यान | २६

राग का सिद्धान्त : स्वरति

हमने वार-वार, और कुछ देर पहले भी, यौन निसर्ग-वृत्ति और अहम् निसर्ग-वृत्ति के विभेद की चर्चा की है। सबसे पहले दमन से यह प्रकट हुआ कि वे किस तरह एक दूसरे का विरोध करती है, फिर किस तरह यौनवृत्तिया आभासित पराजित हो जाती है और उन्हें चक्करदार प्रतिगामी मार्गो से अपनी सन्तुष्टि करनी पड़ती है, और वहा अभेद्य परिस्थितियो में रहने से उन्हें अपनी पराजय की क्षति-पूर्ति या हर्जाना मिल जाता है। इसके वाद यह मालूम हुआ कि उन दोनो का शुरू से ही आवश्यकतारूपी मालकिन से भिन्न-भिन्न सम्बन्ध होता है, और इसलिए उनके परिवर्धन भिन्न-भिन्न होते है, और यथार्थता-सिद्धान्त के प्रति उनके भिन्न रुख हो जाते है। अन्त में हम यह मानते है कि हम यह देख सकते है कि यौन वृत्तियो का चिंता की भाव-दिशा से अहम्-निसर्ग-वृत्तियो की अपेक्षा अधिक नजदीकी सवध होता है—और यह निष्कर्ष सिर्फ एक महत्वपूर्ण वात में अब भी अधूरा मालूम होता है। इसके समर्थन में हम यह एक और उल्लेखनीय तथ्य पेश कर सकते है कि भूख या प्यास की जो दो सवसे अधिक प्राथमिक आत्मसरक्षणात्मक निसर्ग-वृत्तिया है, उनकी सन्तुष्टि के अभाव का यह परिणाम कभी नही होता कि वे चिंता में परिवर्तित हो जाए, जवकि असन्तुष्ट राग का चिंता में परिवर्तन, जैसा कि हमने वताया है, एक वहुत सुविदित और वहुत वार वैज्ञानिक रूप से प्रेक्षित क्रिया है।

यौन और अहम्-निसर्ग-वृत्तियो में विभेद करने के कारणो पर आपत्ति नही उठाई जा सकती। सच पूछिए तो मनुष्य में यौन-प्रवृत्ति का एक विशेप व्यापार के रूप में अस्तित्व होने से यह विभेद, स्वय ही मान लिया जाता है। प्रश्न सिर्फ यह रह जाता है कि इस विभेद को कितना महत्व दिया जाए। हम इसे कितना मूलगत और निर्णायक मानना चाहते है, इसका उत्तर इस वात पर निर्भर है कि यौन निसर्ग-वृत्तिया अपने शारीरिक और मानसिक व्यक्त रूपो में दूसरी निसर्ग-वृत्तियो से, जो हमने उनके मुकावले में रखी है, भिन्न रूप में जितनी दूरी तक चलती है, उसके वारे में हम क्या जानकारी प्राप्त कर सकते है, और इन अन्तरो से पैदा होने

वाले परिणाम कितने महत्वपूर्ण सिद्ध होते है। निसर्ग-वृत्तियो के दो समूहो की आधारभूत प्रकृति मे निश्चित अन्तर मानने में हमारा कोई प्रयोजन नही है, और वैसे देखा जाए तो इनमें कोई अतर समझना कठिन भी होगा। वे दोनो हमारे सामने मनुष्य की ऊर्जा के स्रोतो के वर्णन के रूप में आते है, और यह विवेचना कि वे मूलत एक है या सारत भिन्न है, और यदि वे एक है, तो वे एक दूसरे से अलग कब होते है, सिर्फ इन अवधारणो के आधार पर ही नही की जा सकती, उन्हें तो उनके आधार रूप में मौजूद जैविकीय तथ्यो के ऊपर खडा करना होगा। इस समय हमें उनके बारे में बहुत ही कम जानकारी है, और यदि हम अधिक भी जानते होते तो मनोविश्लेषण के कार्य में उनकी कोई प्रासगिकता नही थी।

स्पष्ट है कि हमे इस बात से भी कोई खास लाभ नही होगा कि हम जुग की तरह सब निसर्ग-वृत्तियो के आद्य एकत्व पर बल दें, और उनसे प्रवाहित होने वाली सब ऊर्जाओ को 'राग' या लिबिडो कहे। तब हमे लिंगी या यौन और आलिंगी या अ-यौन राग मानना होगा, क्योंकि ऐसे किसी तरीके से यौन या लैंगिक कार्य को मानसिक जीवन के क्षेत्र से हटाया नही जा सकता। पर राग शब्द यौन जीवन के नैसर्गिक बलो के लिए सुरक्षित है, और यह उचित भी है, जैसे कि हमने अब तक इसका प्रयोग किया है।

इसलिए मेरी राय में यह प्रश्न, कि यौन और आत्मसरक्षण की निसर्ग-वृत्तियो में सर्वथा औचित्यपूर्ण अतर कितनी दूर तक किया जा सकता है, मनोविश्लेषण के लिए अधिक महत्व नही रखता, और न मनोविश्लेषण इसका उत्तर देने की क्षमता रखता है। जैविकीय दृष्टिकोण से ऐसे अनेक सकेत अवश्य मिलते है कि यह अतर महत्वपूर्ण है। कारण यह कि जीवित जीव-पिंड का यौन कार्य ही एक ऐसा कार्य है, जो व्यष्टि से बाहर प्रवृत्त होता है, और अपनी स्पीशीज मे सम्बन्ध जोडता है। इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि इस कार्य के प्रयोग से व्यष्टि को सदा लाभ ही नही होता, जैसा कि उनकी अन्य चेष्टाओ से होता है, बल्कि इस कार्य में अत्यधिक सुख मिलने के कारण इसमें उसे ऐसे खतरे भी पैदा हो जाते है, जो उसके जीवन को संकट में डाल देते है, और प्राय उसपर बहुत बोझ डालते है। व्यष्टि के जीवन का कुछ अश बाद की पीढी के लिए एक स्वभाव या प्रवृत्तिरूप में सरक्षित करने के वास्ते सम्भवत बिलकुल विशिष्ट विपचक प्रक्रमो की आवश्यकता होती है, जो अन्य सब कार्यो से बिलकुल भिन्न होते है। और अन्त में, व्यष्टि जीव-पिंड, जो अपने आप को सबसे महत्वपूर्ण समझता है, और अपनी यौन प्रवृत्ति को अन्य प्रवृत्तियो की तरह अपनी निजी सन्तुष्टि का साधन समझता है, जैविकीय दृष्टिकोण से, पीढियो या सन्ततियो की एक श्रेणी में एक अवान्तर कथा या उपाख्यान की तरह ही है। यह जर्म-प्लाज़्म का, जो वास्तव में अमरत्व से सम्पन्न है, एक अल्पजीवी उपांग मात्र है, जिसकी तुलना

सक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि हमने अहम्-राग और आलम्बन-राग के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में एक विचार बनाया था, जिसे मैं प्राणि-शास्त्र के एक दृष्टान्त से स्पष्ट कर सकता हू। जीवन के सरलतम रूपो की कल्पना कीजिए, जो बहुत ही कम भिन्नित[1] जीवद्रव्यीय (प्रोटोप्लाजमिक) पदार्थों की छोटी-सी सहति होते हैं। उनमें से कुछ उभार निकलते है, जिन्हे स्यूडोपोडिया (या कूट-पाद) कहते है, जिनमें जीवद्रव्य (प्रोटोप्लाजम) बहकर आता है, पर वे अपने इन उभारो को फिर वापस खीच सकते है, और अपने आपको एक सहति बना सकते है। उभार निकालने की इस घटना की तुलना हम आलम्बनो पर राग के विकिरण से करते है, जबकि राग की अधिकतम मात्रा अभी अहम् के अन्दर ही होगी। हम यह अनुमान करते है कि प्रकृत अवस्थाओ में अहम्-राग बिना कठि-नाई के आलम्बन-राग में रूपान्तरित हो सकता है, और इसे फिर पीछे खीचकर अहम् में लीन किया जा सकता है।

इन अवधारणो की सहायता से अब मानसिक अवस्थाओ की एक पूरी की पूरी श्रेणी की व्याख्या की जा सकती है, या जरा और विनीत ढग से कहा जाए, तो प्रकृत जीवन की दशाओ का राग-सिद्धान्त की शब्दावली में वर्णन किया जा सकता है, उदाहरण के लिए 'प्रेम-अनुभूति' की अवस्था अग-रोगो[2] के, और नीद की दशाओ के प्रतिमानसिक रुख। नीद की अवस्था के बारे में हमने यह कल्पना की थी कि इसका आधार बाहरी जगत से अपने आपको हटा लेना, और सो जाने की इच्छा को प्रबल करना है। हमने देखा था कि रात का मानसिक व्यापार, जो स्वप्नो में प्रकट होता है, सोने की इच्छा का प्रयोजन पूरा करता है, और इसके अलावा, यह एकमात्र अहम्मूलक प्रेरको से नियत्रित होता है। राग-सिद्धात के प्रकाश में, हम और आगे बढकर यह कह सकते है कि नीद वह अवस्था है, जिसमें आलम्बनो के सब आच्छादन, चाहे वे रागात्मक हो या अहम्मूलक हो, त्याग दिए जाते है, और उन्हें फिर अहम् में खीच लिया जाता है। क्या इससे नीद से मिलने वाली ताजगी और आम थकावट के स्वरूप पर नई रोशनी नही पडती ? सोने वाला हर रात जिस अवस्था में चला जाता है, उसका गर्भाशय के भीतर की स्थिति के आनन्दमय एकान्त से सादृश्य इस प्रकार मानसिक पहलुओ से पुष्ट और अति स्पष्ट हो जाता है। सोने वाले में राग-वितरण की आदिम अवस्था (परम स्वरति) फिर पैदा हो जाती है, जिसमें राग और अहम्-स्वहित अब भी स्वत स्वावलम्बी 'स्व' में एक और अभिन्न होकर इकट्ठे रहते है।

यहा दो बातें कहना उचित होगा। प्रथम तो 'स्वरति' के अवधारण और 'अहकार' में कैसे विभेद किया जाए ? मेरी राय में स्वरति अहकार की रागात्मक

---

१ Differentiated २ Organic illness

पूरक है। जब कोई आदमी अहकार की बात कहता है, तब वह सम्बन्धित व्यक्ति के **स्वहितों** की ही बात सोच रहा होता है। पर स्वरति उसकी रागात्मक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से भी सम्बन्ध रखती है। इन दोनो को अलग-अलग जीवन में व्यावहारिक प्रेरक रूप में बहुत दूर तक देखा जा सकता है। कोई आदमी बिलकुल अहकारी हो सकता है और साथ ही अहकारी आलम्बनो के प्रति वहा तक प्रबल रागात्मक रूप से जुडा हुआ भी, जहा तक किसी आलम्बन से होने वाली राग-सन्तुष्टि मे उसके अहम् की आवश्यकता पूरी होती हो। तब उसका अहकार यह व्यवस्था कर लेगा कि आलम्बन के प्रति उसकी इच्छाओं से उसके अहम् को कोई चोट न पहुचे। कोई आदमी अहकारी होता हुआ प्रबल स्वरति वाला (अर्थात् आलम्बनो की कोई आवश्यकता अनुभव न करने वाला) भी हो सकता है, और उसकी स्वरति का रूप वह भी हो सकता है जिसमें सीधे यौन सन्तुष्टि की जाती है, या वे भावना के ऊंचे रूप भी हो सकते हैं जो यौन आवश्यकताओं से पैदा होते हैं, और जो आमतौर से 'प्रेम' कहलाते हैं, और जिन्हे 'कामुकता या विषय-वासना' से भिन्न समझा जाता है। इन सब स्थितियो में अहकार स्वत. स्पष्ट अचर अश होता है, और स्वरति परिवर्ती अश होता है। स्वार्थ या अहकार का उलटा शब्द परार्थ किसी आलम्बन को राग मे आच्छादित करने का वाचक नही है। इसमें आलम्बन से यौन सन्तुष्टि की इच्छा का अभाव होता है, पर जब प्रेम की दशा पूर्ण तीव्रता पर आ जाती है, तब परार्थ और किसी आलम्बन को राग से आच्छादित करना एक ही बात हो जाती है। साधारणतया यौन आलम्बन अहम् की स्वरति का एक अश अपनी ओर खीच लेता है, जो आलम्बन के यौन अति-मूल्याकन (यौन आलम्बन को बहुत अच्छा मानने) में दिखाई देता है। यदि इसमें आलम्बन के प्रति प्रेषित और प्रेमी के अहकार से उत्पन्न परार्थ को भी जोड दिया जाए तो यौन आलम्बन सर्वोच्च हो जाता है। इसने अहम् को पूरी तरह निगल लिया है।

मै समझता हू कि इन शुष्क वैज्ञानिक कल्पनाओ से आप बोझ अनुभव कर रहे होंगे। इसलिए स्वरति की अवस्था और पूर्ण तीव्र प्रेम के 'आर्थिक' वैषम्य का एक कवि-वर्णन आपके सामने पेश करता हू। यह मैं गेटे के वैस्टोस्टि्लिश डीवन (Westostliche Divan) में जुलेखा और उसके प्रेमी में हुए सम्वाद से ले रहा हू :

जुलेखा

सब सहमत है, हो वे विश्वविजेता,
दास, याकि जन-साधारण,
अपने आपे का रहना ही है धरती का सुख सच्चा
इसके रहने पर सब जीवन ग्राह्य, और
इसको रखने को है सभी त्याग स्वीकार्य।

सीधे विश्लेपण सम्बन्धी अनुभव के आधार पर नही है, वह यह है कि राग, राग ही है, और राग ही रहता है, चाहे वह आलम्बनो से युक्त हो या स्वय अहम् से युक्त हो और वह कभी भी अहम्मूलक 'स्वहितो' में रूपान्तरित नही होता और इसी तरह इसका उलटा भी समझिए । पर यह कथन यौन निसर्ग-वृत्तियो और अहम् निसर्ग-वृत्तियो के भेद को, जिसपर पहले हमने आलोचनात्मक विचार किया है, प्रकट करने का एक और तरीका है, और इस विभेद को हम और बातें खोज निकालने के उद्देश्य से तब तक मानते रहेंगे जबतक कि वह निरर्थक सिद्ध न हो ।

आपके दूसरे आक्षेप से भी एक उचित प्रश्न पैदा होता है, पर वह एक मिथ्या नुक्ते की ओर जाता है । आलम्बन-राग का वापस खिचकर अहम् में आ जाना निश्चित ही रोगजनक नही है । यह सच है कि नीद शुरू होने से पहले हर रात यह बात होती है और जागने पर उलटा प्रक्रम होता है । जीवद्रव्यीय (प्रोटोप्लाजमिक) अणुप्राणी[1] अपने उभारो को भीतर खीच लेता है, और अगली बार फिर उन्हें बाहर निकाल देता है, पर जब कोई सुनिश्चित, बडा जबरदस्त प्रक्रम राग को अपने आलम्बनो से हट आने के लिए मजबूर करता है, तब यह बिलकुल दूसरी ही बात होती है । जो राग तब स्वरति वाला बन चुका है, वह अब अपने आलम्बनो पर वापस नही लौट सकता, और राग के मुक्त सचलन के रास्ते की यह रुकावट निश्चित रूप से रोगजनक सिद्ध होती है । प्रतीत होता है कि एक निश्चित सतह से ऊपर स्वरतिक राग का सचय असह्य हो जाता है । यह कल्पना सुसगत होगी कि इसी कारण आलम्बनो को इसने अच्छादित किया, कि अहम् को अपना राग इसलिए मजबूरन आगे भेजना पडा ताकि वह इसके अतिसचय से रोगी न हो जाए । यदि हमें डेमेन्शिया प्रीकोक्स रोग पर विस्तार से विचार करना होता तो मैं आपको यह स्पष्ट बताता कि जो प्रक्रम राग को अपने आलम्बनो से अलग करता है और उसके फिर उनपर लौटने के मार्ग को रोकता है, उसका दमन के प्रक्रम से निकट सम्बन्ध है, और उसे इसका एक दूसरी ओर का हिस्सा ही समझना चाहिए । जो भी हो, पर जब आपने यह देखा कि इन प्रक्रमो को जन्म देने वाली आरम्भिक अवस्थाए, जहा तक हमें इस समय मालूम है वहा तक, दमन के प्रक्रमो से प्राय अभिन्न होती हैं, तब आपको अपना आधार कुछ परिचित भूमि पर पता चलेगा । द्वन्द्व भी वही प्रतीत होता है, और वह उन्ही दोनो बलो के बीच चल भी रहा मालूम होता है, क्योकि, उदाहरण के लिए, हिस्टीरिया के परिणाम की अपेक्षा यहा परिणाम भिन्न है । इसलिए इसका कारण स्वभाव या मनोविन्यास में कोई अन्तर ही हो सकता है । इन रोगियो में राग-परिवर्धन का दुर्बल स्थान परिवर्धन की एक दूसरी ही कला में पाया जाता है, निर्णायक बद्धता जो आपको याद होगा, लक्षण-निर्माण के प्रक्रम

---

१ Animalcule

को शुरू करती है, एक दूसरे स्थान पर, सम्भवत. प्राथमिक स्वरति की अवस्था में, होती है, जिसपर डेमेन्शिया प्रीकौक्स अन्त मे लौटता है। यह विशेष उल्लेखनीय बात है कि स्वरतिक स्नायु-रोगो के लिए हमें राग के बद्धता-बिन्दु परिवर्धन की उन कलाओ पर मानने पडते हैं, जो हिस्टीरिया या मनोग्रस्तता-रोग की कलाओ से बहुत पहले होती हैं, पर आप सुन चुके है कि स्थानान्तरण स्नायु-रोगो के अध्ययन से हम जिन अवधारणाओ पर पहुचे हैं, वे हमें स्वरतिक स्नायु-रोगो के स्पष्टीकरण में भी, जो व्यवहारतः बहुत अधिक तीव्र होते है, सहायक होती हैं। उन दोनो मे बहुत अधिक सादृश्य है। आधारत. वे एक ही वर्ग की घटनाए है। आप कल्पना कर सकते है कि इन रोगो की (जो असल में मनश्चिकित्सा का विषय है), स्थानान्तरण स्नायु-रोगो का विश्लेषण से प्राप्त ज्ञान न होने पर, व्याख्या करने की कोशिश करना कितना व्यर्थ कार्य है।

डेमेन्शिया प्रीकौक्स के लक्षणो से जो तस्वीर बनती है--और यह बहुत परिवर्ती होती है--उसका रूप राग को आलम्बनो से पीछे की ओर धकेलने से पैदा होने वाले लक्षणो और अहम् में स्वरति के रूप में इसके सचय मात्र से ही निर्धारित नही होता, अन्य घटनाए भी प्रमुख रूप से मौजूद होती है, और उनका कारण वे प्रयत्न हैं, जो राग अपने आलम्बनो पर फिर पहुचने के लिए करता है, और इसलिए जो पुन स्थापन[1] और स्वास्थ्य-लाभ के प्रयत्नो के सवादी होते हैं। असल में, ये ध्यान खीचने वाले मुखर लक्षण होते है। इनका हिस्टीरिया के लक्षणो से और कभी-कभी मनोग्रस्तता-रोग के लक्षणो से बहुत सादृश्य दिखाई देता है, पर फिर भी वे हर दृष्टि से भिन्न होते है। प्रतीत होता है कि डेमेन्शिया प्रीकौक्स में राग के, अपने आलम्बनो पर, अर्थात् अपने आलम्बनो के मनोबिंबो पर पहुचने के प्रयत्न सफल हो जाते है, और वे उनके कुछ अश को, जो छायामान होते हैं, अर्थात् उनसे जुडी हुई शाब्दिक प्रतिबिंबो या मूर्तियो, अर्थात् शब्दो को, अपने साथ मिला लेते हैं। यहा इस प्रश्न पर अधिक विचार नही किया जा सकता, पर मेरी राय मे राग की इस उलटी प्रक्रिया से हमें कुछ-कुछ यह पता चल जाता है कि चेतन मनोबिंब के बीच वास्तविक अतर क्या होता है।

अब हम ऐसी जगह पहुच गए, जहा से आगे विश्लेषण-कार्य बढाने की आशा होती है। जब हमने अहम्-राग का अवधारण बनाने का निश्चय किया था, उसके बाद हम स्वरतिक स्नायु-रोगो के रहस्य को समझने लगे हैं। हमारा लक्ष्य यह था कि इन रोगो में होने वाले गतिकीय कारको का पता लगाए और साथ ही अहम् को पूरी तरह समझकर मानसिक जीवन के बारे में अपने ज्ञान का विस्तार करें। हम अहम् के जिन मनोविज्ञान पर पहुंचना चाहते है, उसकी बुनियाद हमारे अपने

---

१. Restitution.

अवबोधनो से प्राप्त होने वाली सामग्री पर नहीं खडी की जा सकती। राग की तरह इसकी वुनियाद का आधार भी अहम् के विक्षोभो और विखडनो के विश्लेषण को ही वनाना होगा। जव हम उस अधिक वडे कार्य को कर लेंगे, तब स्थानान्तरण स्नायु-रोगो के अध्ययन से राग की गति के वारे में प्राप्त अपने मौजूदा ज्ञान के वारे में शायद कुछ भी नही सोचेंगे, पर अभी हम इसकी ओर वहुत आगे नही वढे हैं। जो विधिया स्थानान्तरण स्नायु-रोगो के लिए फायदेमन्द रही है, उनसे स्वरतिक स्नायु-रोगों का अध्ययन नही किया जा सकता। इसका कारण आपको अभी वताया जाएगा। इन रोगियो के साथ सदा यह होता है कि कुछ दूर घुस जाने के वाद सामने एक पत्थर की दीवार आ जाती है, जिसे पार नहीं किया जा सकता। आप जानते हैं कि स्थानान्तरण स्नायु-रोगो में भी इस तरह के प्रतिरोध की रुकावटें आती है, पर उन्हे थोडा-थोडा करके हटा देना सम्भव है। स्वरतिक स्नायु-रोगो मे प्रतिरोध अलघ्य होता है, हम दीवार के ऊपर से गर्दन निकालकर वहा की अवस्था की एक-दो झाकिया ही ले सकते हैं। इसलिए हमें अपनी पुरानी विधि के स्थान पर अन्य विधिया अपनानी होगी। इस समय हमें यह पता नही है कि हमें कोई और विधि प्राप्त करने में सफलता होगी या नही। इन रोगियो के पास सामग्री की कमी नही होती। वे वहुत कुछ मसाला हमारे सामने रखते हैं, यद्यपि वह हमारे प्रश्नो के उत्तर के रूप में नही होता। इस समय हम इतना ही कर सकते हैं कि जो कुछ वे कहते हैं, उसका स्थानान्तरण स्नायु-रोगो के अध्ययन से प्राप्त जानकारी के प्रकाश में अर्थ लगाए। रोग के इन दोनो रूपो में मौजूद सादृश्य इतना अधिक है कि उनसे हम विचार सन्तोषजनक रीति से शुरू कर सकते हैं। इस रीति से हमें कितनी सफलता मिलेगी, यह अभी देखना है।

हमारे आगे वढने के रास्ते में इसके अलावा और भी कठिनाइया है। स्वरतिक रोग और उनसे सम्वन्धित मनोरोग की गुत्थी स्थानान्तरण स्नायु-रोग के विश्लेपण की दीक्षा पाए हुए प्रेक्षको द्वारा ही सुलझाई जा सकती है। पर हमारे मनश्चिकित्सक मनोविश्लेषण का अध्ययन नही करते और हम मनोविश्लेपको को मनश्चिकित्सा के रोगी वहुत कम दिखाई देते हैं। हमें ऐसे मनश्चिकित्सक पैदा करने होगे जिन्होने अपने कार्य की तैयारी के रूप में मनोविश्लेपण की दीक्षा पाई हो। इस दिशा में एक प्रयत्न अमेरिका में किया जा रहा है। यहा अनेक प्रमुख मनश्चिकित्सक मनोविश्लेपण पर अपने छात्रो को व्याख्यान देते हैं, और सस्थाओ और आश्रमो के अध्यक्ष डाक्टर अपने रोगियो को इस सिद्धान्त के प्रकाश में देखने की कोशिश करते हैं। फिर भी हमें स्वरति की दीवार के ऊपर से झाकने का मौका मिला है और अव मैं आपको वे वातें वताऊगा जो मैं समझता हू कि हमने इस दिशा में नई पता लगाई हैं।

मौजूदा मनश्चिकित्सा ने वर्गीकरण करने के जो यत्न किए हैं, उनमें पैरा-

नोइआ रोग की, जो **'सिस्टेमैटिक इन्सैनिटी'**, अर्थात् व्यवस्थित पागलपन का जीर्ण[1] रूप है, स्थिति बडी अनिश्चित है; पर इसमें कोई सदेह नहीं कि डेमेन्शिया-प्रीकौक्स से उसका नजदीकी सम्बन्ध है। मैंने तो बल्कि यह प्रस्ताव किया है कि इन दोनो को मिलाकर पैराफ्रेनिया कहना चाहिए। पैरानोइआ के रूपो का वर्णन भ्रम की वस्तु के अनुसार किया जाता है, उदाहरण के लिए, महानता[2] का भ्रम, सताए जाने का भ्रम, ईर्ष्या का भ्रम, प्रेमपात्रता का भ्रम (ऐरोटामैनिया) इत्यादि। हम यह आशा नही करते कि मनश्चिकित्सा इनकी व्याख्या करने की कोशिश करेगी। उदाहरण के लिए, मैं उस प्रयत्न का उल्लेख करूंगा जो इनमें से एक लक्षण को दूसरे से निकालने या व्युत्पन्न करने के लिए बौद्धिक समीकरण[3] द्वारा किया गया था : जिस रोगी में अपने आप को सताया गया मानने की प्राथमिक प्रवृत्ति होती है, वह इससे यह निष्कर्ष निकालता है कि वह अवश्य ही बहुत महत्वपूर्ण व्यक्ति है, और इसलिए उसमें महानता का भ्रम पैदा हो जाता है। हमारे विश्लेषणीय अवधारण के साथ महानता का भ्रम आलम्बनो को आच्छादन से खींचे गए राग द्वारा अहम् के फुलाव का सीधा परिणाम होता है, और पहले वाले शुरू के शैशवीय रूप के वापस आ जाने से एक परवर्ती स्वरति आरम्भ हो जाती है। पर सताए जाने के भ्रमो के रोगियो में हमें जो चीज दिखाई दी, उन्हें पकड़कर हम कुछ दूर चल सके। प्रथम तो हमने यह देखा कि अधिकतर उदाहरणो में सताने वाला और सताए जाने वाले व्यक्ति दोनो एक ही लिंग के होते हैं। यह सच है कि इसकी हानि रहित व्याख्या की जा सकती है; पर कुछ अवस्थाओ में, जिनका बारीकी से अध्ययन किया गया, यह पता चला कि उसी लिंग का वह व्यक्ति ही, जो रोगी के प्रकृत होने पर उसे सबसे अधिक प्रिय था, रोग पैदा हो जाने के बाद सताने वाला बन गया। इससे इसका एक और परिवर्धन साहचर्य के सुविदित तरीको से सम्भव हो जाता है, जिससे एक प्रिय व्यक्ति के स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति ले आया जाता है। उदाहरण के लिए, पिता के स्थान पर मालिक या सत्तारूढ व्यक्ति ले आए जाते हैं। इन प्रेक्षणो से, जिनकी बीच-बीच में लगातार पुष्टि होती रही, हमने यह निष्कर्ष निकाला कि सताने का भ्रमोन्माद या परसिक्यूटरी पैरानोइआ के द्वारा व्यक्ति अपने आपको समकामी आवेग से, जो बहुत प्रबल हो गया है, बचाता है। अनुरागपूर्ण भावना का घृणा में परिवर्तन, जैसा कि सुविदित है, प्रेम और घृणा के आलम्बन के जीवन का गम्भीर खतरा बन सकता है, तब रागात्मक आवेगो के चिन्ता में परिवर्तन का संवादी है, जो कि दमन के प्रक्रम का नियत परिणाम होता है। इसके दृष्टांत के लिए मैं इस तरह के

---

१. Chronic. २ Grandeur. ३. Intellectual rationalization

उस रोगी का मामला पेश करता हू, जो मेरे सामने आया था। एक तरुण डाक्टर को अपने रहने की जगह से इसलिए दूर भेजना पडा, क्योकि उसने एक प्रोफ़ेसर के पुत्र के जीवन को, जो पहले उसका सबसे बडा दोस्त था, खत्म करने की धमकी दी थी। वह कहता था कि इस दोस्त में अमानुपी शक्तिया है, और मेरे प्रति बहुत बुरे इरादे हैं। हाल के वर्षो में रोगी के परिवार पर जो विपत्तिया आई थी, और उसे सार्वजनिक और निजी जीवन में जो बुरे दिन देखने पडे थे, सबके लिए वह उसे ही दोपी ठहराता था, पर इतनी ही बात नही थी। उस दुष्ट दोस्त और उसके प्रोफेसर पिता ने ही युद्ध कराया था, और रूसियो को सीमा पर बुलाया था। उसने हजारो तरह से उसके जीवन को बर्बाद किया था। हमारे रोगी का यह निश्चय था कि इस बदमाश की मौत से दुनिया की सब बुराई दूर हो जाएगी, फिर भी उसके प्रति उसका पुराना प्रेम इतना प्रबल था कि जब उसे अपने शत्रु को सामने देखकर गोली मारने का मौका आया, तब वह निष्क्रिय हो उठा। रोगी से मेरी जो थोडी बातचीत हुई, उससे यह पता चला कि इन दोनो व्यक्तियो की यह घनिष्ठ मैत्री उनके स्कूल के दिनो से चली आती थी; कम से कम एक मौके पर यह मित्रता की सीमाओ का उल्लघन कर गई थी—उन्होने एक रात इकट्ठे बिताई थी, और इस अवसर पर पूर्ण सम्भोग किया था। रोगी में स्त्रियो के प्रति कभी कोई ऐसी भावना नही पैदा हुई थी, जो उस आयु में ऐसे आकर्षक व्यक्तित्व वाले आदमी में पैदा होनी स्वाभाविक थी। उसका एक सुन्दर और अच्छे घराने की लडकी से वचनबन्ध (सगाई से पहले बातचीत तय होना) हुआ था, पर उसने इस कारण उस बन्धन को तोड दिया कि उसका प्रेमी उसके प्रति बहुत उदासीन था। वर्षो बाद उसका रोग ठीक उस समय शुरू हुआ, जबकि वह पहली बार एक स्त्री को पूर्ण यौन परितुष्टि देने में सफल हुआ था। जब इसने कृतज्ञता और प्रेम के आवेश में उसे अपनी बाहुओ में भर लिया, तब इसे एकाएक यह अनुभव हुआ कि मेरे सिर के चारो ओर तेज चाकू की धार-सी चल रही है और पीडाकारक रहस्यमय घाव हो गया है। बाद में उसने इस सम्वेदन को दिमाग को नगा करने के लिए पोस्टमार्टम, अर्थात् मरणोत्तर कार्य के समय किए जाने वाले कटाव जैसा बताया और चूकि उसका मित्र रोग-शारीर-शास्त्री, या पैथोलौजिकल एने-टोमिस्ट था, इसलिए वह धीरे-धीरे इस निष्कर्ष पर पहुचा कि उसने इस औरत को प्रलोभन के रूप में भेजा होगा। बाद में उन दूसरी बातो के विपय में उसकी आखें खुलने लगी, जिनके द्वारा उसके पुराने दोस्त ने उसे सताया था।

पर उन उदाहरणो का क्या होगा जिनमें सताने वाला सताए जाने वाले से भिन्न लिंग का है और इसलिए जिनसे इस रोग के विपय में हमारी इस व्याख्या का खण्डन होता दिखाई देता है कि यह समकामी राग से बचाव है। कुछ समय पहले मुझे इस तरह के रोगी की जाच करने का मौका मिला और ऊपर दिखाई देने

वाले विरोध या खण्डन के पीछे मुझे उसकी पुष्टि होती हुई मिली। एक नौजवान लडकी यह समझती थी कि एक आदमी, जिसके साथ वह दो बार घनिष्ठ सम्बन्ध कर चुकी थी, उसे सताता था। असल मे पहले उसका भ्रम एक स्त्री के विरुद्ध था जिसे माता का स्थानापन्न समझा जा सकता है। उस आदमी के साथ दूसरी बार मिलने के बाद ही उसने भ्रमात्मक मनोबिंब को स्त्री से पुरुष पर स्थानातरित किया। इस प्रकार इस उदाहरण मे भी यह शर्त पूरी होती है कि सताने वाला उसी लिंग का है, जिसका सताया जाने वाला है। वकील और डाक्टर से शिकायत करते हुए रोगिणी ने अपने भ्रम की पहले वाली कला की चर्चा नही की थी, और इससे पैरानोइआ के बारे मे हमारे सिद्धान्त का खण्डन होता दिखाई देता था।

आलम्बन का समकामी चुनाव आरम्भ मे, विषमकामी चुनाव की अपेक्षा, स्वरति से अधिक नजदीकी सम्बन्ध रखता है। इसलिए जब कोई प्रबल नापसन्द समकामी उत्तेजन प्रत्याख्यात अर्थात् अस्वीकृत होता है, तब उससे स्वरति पर पहुचने का रास्ता पा लेना विशेष रूप से आसान है। इन व्याख्यानो मे मुझे अब तक यह बताने का कोई मौका नही मिला कि जहा तक हम जानते है, वहा तक जीवन में प्रेम-आवेग का मार्ग जिस आधारभूत रूपरेखा पर खडा है वह क्या है और न मैं अब इस विषय पर विशेष कुछ कह सकता हू। मै सिर्फ इतनी बात आपसे कहता हू कि आलम्बन का चुनाव, जो स्वरति की अवस्था के बाद राग के परिवर्धन मे अगला कदम है, दो प्ररूपो के अनुसार आगे बढ सकता है—या तो वह **स्वरतिक प्ररूप** होता है, जिसके अनुसार स्वय अहम् के स्थान पर इसमे यथासम्भव अधिक से अधिक मिलता-जुलता कोई व्यक्ति आलम्बन के रूप में ग्रहण कर लिया जाता है, या **एनेक्लीटिक प्ररूप** (Anlehnungstypus)[1], जिसमे राग भी उन्ही व्यक्तियो को आलम्बन के रूप मे चुनता है जो जीवन में आदिम आवश्यकताओ की सन्तुष्टि करने के कारण प्रिय बन गए हैं। आलम्बन-चुनाव के स्वरतिक प्ररूप पर प्रबल राग-बद्धता भी व्यक्त समकामियो के स्वभाव का एक गुण होता है।

आपको याद होगा कि इस सत्र के अपने पहले व्याख्यान मे मैंने एक स्त्री की भ्रमात्मक ईर्ष्या का एक उदाहरण दिया था। अब जबकि हम अपने अध्ययन को प्राय समाप्त करनेवाले हैं आप निश्चित ही यह जानना चाहेंगे कि मनोविश्लेपण भ्रम की क्या व्याख्या करता है, परन्तु जितनी आप आशा करते है उनसे बहुत कम बात मैं आपको बता सकता हू। मनोग्रस्तताओ की तरह भ्रमो के भी तार्किक युक्तियो और वास्तविक अनुभव से अप्रभावित रहने की व्याख्या उस सम्बन्ध-सूत्र के

---

१ यह शब्द इस बात का निर्देश करता है कि यौन वृत्तियां अपने प्रथम आलम्बन के लिए आत्मसंरक्षण की निसर्ग-वृत्तियो पर अर्थात स्तन्य पिलाने वाली माता पर निर्भर हैं।—अंग्रेजी अनुवादक

द्वारा ही की जाएगी जो उनमें और उस अचेतन सामग्री मे होता है जो भ्रम या मनोग्रस्तता द्वारा अभिव्यक्त भी होती है और रोककर भी रखी जाती है। इन दोनो में जो अन्तर है उनका आधार इन दोनो रोगो के स्थानवृत्तीय और गतिकीय अन्तर हैं।

पैरानोइआ की तरह *मलाकोलिया अर्थात उदासी रोग* (*प्रसगत यह कह* देना अनुचित न होगा कि इस रोग के अन्तर्गत बडे भिन्न प्रकार के रोग-प्ररूप रखे गए है) की भी भीतरी रचना की कुछ झाकी प्राप्त करना सम्भव हुआ है। हमने देखा है कि ये रोगी अपने आपको जिस निर्दयता से फटकारते है, वह असल में दूसरे व्यक्ति से सम्बन्ध रखती है, अर्थात वह उस यौन आलम्बन से सम्बन्ध रखती है जो नष्ट हो गया है, या जिसे उन्होने किसी दोप के कारण पसन्द करना वन्द कर दिया है। इससे हमने यह नतीजा निकाला है कि असल में उदासी रोगी ने अपना राग आलम्बन से हटा लिया है, पर एक ऐसे प्रक्रम द्वारा, जिसे हम 'स्वरतिक अभिन्नीकरण'[1] कहेंगे। उसने अहम् के भीतर ही आलम्बन को स्थापित कर लिया है, और इसे अहम् पर प्रक्षेपित कर दिया है। मैं आपको इस प्रक्रम की वर्णनात्मक रूपरेखा ही दे सकता हू, स्थानवृत्त और गतिकी की शब्दावली में इसकी रूपरेखा नहीं पेश कर सकता। तब स्वय अहम् से इस तरह व्यवहार किया जाता है, मानो वह त्यागा हुआ आलम्वन हो। उसे बदले और आक्रमण का वह सारा व्यवहार सहना पडता है जो आलम्वन के उद्देश्य से होता है। उदासी रोगियो के आत्महत्या के आवेग भी यह मानने पर अधिक स्पष्ट हो जाते हैं कि रोगी मन जो कटुता अनुभव करता है, उसका सम्वन्ध प्रेम और घृणा के आलम्वनो से भी उसी समय और उतना ही होता है जिस समय और जितना अहम् से। दूसरे स्वरतिक विकारो की तरह उदासी रोग में भी भाव-जीवन की विशेपता, जिसे ब्लूलर के अनुसार हम **उभयकता** या ऐम्बीवैलेन्स कहते हैं, विशेप रूप से सामने आती है। इसका अर्थ यह है कि एक ही व्यक्ति के प्रति विरोधी भावनाए (अनुरागपूर्ण और शत्रुतापूर्ण) होती हैं। वदकिस्मती से मै इन व्याख्यानो में उभयता पर अधिक कुछ नही कह सका।

स्वरतिक रूप के अलावा एक हिस्टीरिया वाला रूप भी है जिसे हम बहुत समय से जानते हैं। मै चाहता था कि इन दोनो के अन्तर आपके सामने थोडे-से सुनिश्चित शब्दो में स्पष्ट किए जा सकते। मैं आपको उदासी रोग के आवर्ती[2] और चक्रीय[3] रूपो के वारे में कुछ वता सकना हू जो आपको दिलचस्प लगेगा। अनुकूल परिस्थितियो में विशद मध्यान्तरों[4], अर्थात दोप-दौरो के वीच के विना दौरे वाले

---

१ Narcissistic identification २ Periodic ३ Cyclic
४ Lucid intervals

समय में, विश्लेपण द्वारा इलाज करके इस अवस्था या इसकी विरोधी अवस्था को फिर पैदा होने से रोका जा सकता है, और मुझे इसमें दो वार सफलता मिली है। इससे हमें यह पता चलता है कि अन्य अवस्थाओ की तरह उदासी रोग और सनक या मैनिया मे, सघर्ष का एक विशेष प्रकार का समाधान चल रहा होता है, जिसकी सव पूर्व अपेक्षाएं दूसरे स्नायु-रोगो की पूर्व अपेक्षाओ से मिलती-जुलती हैं। आप कल्पना कर सकते हैं कि इस क्षेत्र में मनोविश्लेपण के लिए कितना काम करने को पडा है।

मैंने आपसे यह भी कहा था कि स्वरतिक विकारो के विश्लेषण द्वारा हमे विविध क्षमताओ और अवयवो से अहम् की वनावट और सरचना की कुछ जानकारी प्राप्त होने की भी कुछ आशा थी। हमने एक जगह इसकी ओर कदम वढाया था। प्रेक्षण के भ्रम के विश्लेपण से हम इस निष्कर्प पर पहुचे हैं कि अहम् में एक ऐसी शक्ति या क्षमता होती है, जो सदा ध्यान से देखती है, आलोचना करती है, और तुलना करती है, और इस तरह अहम् के दूसरे हिस्से के मुकावले में खड़ी हो जाती है। इसलिए हमारी राय में जव रोगी यह शिकायत करता है कि मेरे हर कदम पर कडी नज़र रखी जाती है, और मेरे विचार तक जान लिए जाते हैं और उनकी जाच की जाती है, तव वह एक ऐसी सचाई प्रकट करता है जिसे अभी सचाई के रूप मे नही समझा गया है। उसकी इतनी ही गलती है कि वह इस नापसन्द शक्ति को अपने से वाहर और अपने से अपरिचित किसी चीज में मौजूद वताता है। वह अपने अहम् मे एक ऐसी शक्ति का शासन देखता है जो उसके वास्तविक अहम् और उसके सव कार्यो को एक **अहम्-आदर्श** से नापती है और यह अहम्-आदर्श अपने परिवर्धन के काल में उसने अपने लिए स्वय पैदा किया है। हम यह भी अनुमान करते हैं कि उसने यह आदर्श प्राथमिक शैशवीय स्वरति से मिलने वाली आत्मसन्तुष्टि को फिर से प्राप्त करने के लिए किया है, जिसे तव से आज तक कितने ही आघात और आत्मपीडन सहने पडे हैं। अपनी आलोचना करने वाली इस शक्ति में हम अहम्-सेन्सरशिप या अहम्-अवीक्षक अर्थात् अन्त.करण, को देखते है; यह वही सेन्सरशिप है जो रात में स्वप्नो पर प्रयुक्त होती है, जिससे अग्राह्य इच्छा-उत्तेजनो के दमन पैदा होते है। जव देखे जा रहे होने के भ्रम में यह शक्ति विखर जाती है, तव हमें इसके उद्गम का पता चल जाता है, और हम देखते हैं कि यह माता-पिता तथा शिक्षको के प्रभाव से और वालक के सामाजिक वातावरण से पैदा हुई है, जिसमें वह इनमें से कुछ व्यक्तियों से, जो आदर्श मान लिए गए थे, अपनी अभिन्नता स्थापित कर लेता है।

स्वरति सम्बन्धी विकारो पर मनोविश्लेपण का प्रयोग करने से जो परिणाम प्राप्त हुए हैं उनमें से कुछ ये हैं। इनकी संख्या अभी अधिक नहीं है और इनमें से वहुतो की रूपरेखा में स्पष्टता नही है। यह स्पष्टता नए क्षेत्र मे तव तक नहीं आ

जब तक कुछ अधिक परिचय न हो जाए। ये सब अहम्-राग या स्वरतिक अवधारण का प्रयोग करने से ही सम्भव हुए हैं, जिनके द्वारा हम स्थानान्त-ायु-रोगो के लिए स्थापित निष्कर्षों को स्वरतिक स्नायु-रोगो पर भी लागू ते हैं। पर अब आप यह पूछेंगे कि क्या स्वरतिक स्नायु-रोगो से और मनो-सब रूपो को राग-सिद्धान्त के क्षेत्र में लाया जा सकता है? क्या सदा यह ा सकता है कि इस रोग के परिवर्धन का कारण सदा और सर्वत्र मानसिक का रागात्मक कारक ही होता है, और क्या आत्मसरक्षण की निसर्ग-वृत्तियो ि में उसी परिवर्तन का कारणो में कोई स्थान नही होता? मुझे ऐसा मालूम कि इस प्रश्न का अभी फैसला करने की कोई आवश्यकता नही, और सबसे त यह है कि अभी फैसला करने का समय नही आया। हम इसे विज्ञान के ो और अधिक उन्नति होने पर निर्णीत होने के लिए शान्तिपूर्वक छोड सकते द बाद में यह सिद्ध हो तो मुझे कुछ भी आश्चर्य नही होगा कि रोगजनक पैदा करने की क्षमता असल में रागात्मक आवेगो का एक विशेष अधिकार र इस प्रकार, राग का सिद्धान्त असली स्नायु-रोगो से लेकर व्यक्तिगत गड-उग्रतम मनोविकारो तक, सारे में सफल या सार्थक सिद्ध होगा। कारण क राग की यह विशेषता है कि वह जीवन में यथार्थता या आवश्यकता के ः चलने से इन्कार कर देता है, पर मुझे यह अत्यधिक सम्भाव्य मालूम होता ग्रहम् निसर्ग-वृत्तिया गौणरूप से इसमें आती है, और राग के रोगजनक ो या प्रभावो से उनके कार्यो में गडवडी या विक्षोभ पैदा हो सकते हैं, न ह दिखाई देता है कि यदि हमें यह मानना पडे कि उग्र मनोरोग में स्वय नेसर्ग-वृत्तिया प्रथमत विक्षिप्त होती हैं, भविष्य ही इसका फैसला करेगा— कम आपके लिए।

व जरा चिन्ता के बारे में फिर थोडा-सा विचार किया जाए, जिससे हमने ो बात अस्पष्ट छोड दी थी, उसपर प्रकाश पडे। हमने कहा था कि राग न्ता और राग का सम्बन्ध जो वैसे इतना सुनिर्दिष्ट है, इस प्राय निर्विवाद ा से वडी मुश्किल से सगत होता है कि खतरे को देखकर पैदा होने वाली नननिष्ठ चिन्ता आत्मसरक्षण की वृत्ति को प्रकट करती है, पर यह चिन्ता व अहम्-निसर्ग-वृत्ति के स्वार्थ के बजाय अहम्-राग से पैदा होता हो तो? रकार चिता की दशा सदा हानिकारक होती है। जब यह तीव्र अवस्था में आ है तब इसकी हानि की ओर ध्यान जाता है। तब यह उस क्रिया में बाधा ा है जो उस समय एकमात्र दृष्टिकर और समयोचित्त क्रिया होगी और आत्म-ा का प्रयोजन सिद्ध करेगी, चाहे यह पलायन हो या आत्मरक्षा हो। इसलिए म आलम्बननिष्ठ चिता के भावरूप घटक का कारण अहम्-राग को और ः क्रिया का कारण अहम्सरक्षक निसर्ग-वृत्तियो को बताते हैं, तो सब सैद्धा-

न्तिक कठिनाई दूर हो जाती है। आप गम्भीरतापूर्वक यह नही मान सकते कि हम इस कारण भागते हैं **क्योंकि** हम भय देखते हैं, नही, हम भय देखते हैं **और** भागते हैं, और इसका वह सामान्य आवेग है जो भय देखकर पैदा होता है। जिन लोगो को जीवन में सन्निकट खतरे का अनुभव हुआ है, वे बताते हैं कि हमे भय का अवबोधन नही हुआ। हमने सिर्फ वह क्रिया की —उदाहरण के लिए सामने से आते हुए पशु पर अपनी बन्दूक तानी—यही वे उस समय निश्चित रूप से, अधिक से अधिक, कर सकते थे।

सकती जब तक कुछ अधिक परिचय न हो जाए। ये सब अहम्-राग या स्वरतिक राग के अवधारण का प्रयोग करने से ही सम्भव हुए हैं, जिनके द्वारा हम स्थानान्त-रण स्नायु-रोगो के लिए स्थापित निष्कर्षो को स्वरतिक स्नायु-रोगो पर भी लागू कर सकते है। पर अब आप यह पूछेगे कि क्या स्वरतिक स्नायु-रोगो से और मनो-रोगो के सब रूपो को राग-सिद्धान्त के क्षेत्र मे लाया जा सकता है? क्या सदा यह देखा जा सकता है कि इस रोग के परिवर्धन का कारण सदा और सर्वत्र मानसिक जीवन का रागात्मक कारक ही होता है, और क्या आत्मसरक्षण की निसर्ग-वृत्तियो के कार्यो में उसी परिवर्तन का कारणो में कोई स्थान नही होता? मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस प्रश्न का अभी फैसला करने की कोई आवश्यकता नही, और सबसे बडी बात यह है कि अभी फैसला करने का समय नही आया। हम इसे विज्ञान के कार्य की और अधिक उन्नति होने पर निर्णीत होने के लिए शान्तिपूर्वक छोड सकते हैं। यदि बाद में यह सिद्ध हो तो मुझे कुछ भी आश्चर्य नही होगा कि रोगजनक प्रभाव पैदा करने की क्षमता असल में रागात्मक आवेगो का एक विशेष अधिकार है। और इस प्रकार, राग का सिद्धान्त असली स्नायु-रोगो से लेकर व्यक्तिगत गड-बडी के उग्रतम मनोविकारो तक, सारे में सफल या सार्थक सिद्ध होगा। कारण यह है कि राग की यह विशेषता है कि वह जीवन में यथार्थता या आवश्यकता के अनुसार चलने से इन्कार कर देता है, पर मुझे यह अत्यधिक सम्भाव्य मालूम होता है कि अहम् निसर्ग-वृत्तिया गौणरूप से इसमें आती है, और राग के रोगजनक विकारो या प्रभावो से उनके कार्यो में गडबडी या विक्षोभ पैदा हो सकते है, न मुझे यह दिखाई देता है कि यदि हमें यह मानना पडे कि उग्र मनोरोग में स्वय अहम्-निसर्ग-वृत्तिया प्रथमत विक्षिप्त होती है, भविष्य ही इसका फैसला करेगा—कम से कम आपके लिए।

अब जरा चिन्ता के बारे मे फिर थोडा-सा विचार किया जाए, जिससे हमने वहा जो बात अस्पष्ट छोड दी थी, उसपर प्रकाश पडे। हमने कहा था कि राग की चिन्ता और राग का सम्बन्ध जो वैसे इतना सुनिर्दिष्ट है, इस प्राय निर्विवाद मान्यता से बडी मुश्किल से सगत होता है कि खतरे को देखकर पैदा होने वाली आलम्बननिष्ठ चिन्ता आत्मसरक्षण की वृत्ति को प्रकट करती है, पर यह चिन्ता का भाव अहम्-निसर्ग-वृत्ति के स्वार्थ के बजाय अहम्-राग से पैदा होता हो तो? आखिरकार चिता की दशा सदा हानिकारक होती है। जब यह तीव्र अवस्था में आ जाती है तब इसकी हानि की ओर ध्यान जाता है। तब यह उस क्रिया में बाधा डालती है जो उस समय एकमात्र दृष्टिकर और समयोचित्त क्रिया होगी और आत्म-सरक्षण का प्रयोजन सिद्ध करेगी, चाहे यह पलायन हो या आत्मरक्षा हो। इसलिए यदि हम आलम्बननिष्ठ चिता के भावरूप घटक का कारण अहम्-राग को और की गई क्रिया का कारण अहम्सरक्षक निसर्ग-वृत्तियो को बताते है, तो सब सैद्धा-

जिसे हम विश्लेषण में बहुत अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं। वे भूतकाल से सम्बन्ध रखते हैं, इसलिए हम उन्हें हटा नही सकते। इसके बाद, जीवन का वह सब दुःख है जिसे हमने 'यथार्थता में कुंठा' के अन्तर्गत शामिल किया है, जिससे जीवन का सारा प्रेम का अभाव पैदा होता है—अर्थात् गरीबी, पारिवारिक झगड़े, विवाह में गलत साथी का चुनाव, प्रतिकूल सामाजिक अवस्थाएं, और व्यक्ति पर नैतिक रूढियो के नियमो की कठोरता। इन सभी में सफल इलाज की बहुत गुंजाइश है, पर इस इलाज को वियेना की दंतकथा वाले कैसर जोसेफ के ढंग पर चलना पडेगा—कैसर जोसेफ ऐसा परोपकारी निरंकुश राजा था जिसकी इच्छा के आगे लोग सिर झुका देते और कठिनाइयां दूर हो जाती। पर हम चिकित्सा में इतना परोपकार कैसे कर सकते हैं? हम गरीब लोग हैं और समाज मे हमारा कोई ऐसा प्रभाव नही, और हमें चिकित्सा करके अपनी रोजी कमानी है। इसलिए हम दूसरे डाक्टरो की तरह, जो दूसरी विधियो से चिकित्सा करते हैं, बहुत गरीब लोगो का इलाज भी नही कर सकते, और फिर हमारे इलाज में बहुत समय और मेहनत लगती है। पर शायद आप अब भी पहले पेश किए जा चुके कारको में से एक को पकडे हुए हैं, और यह समझते हैं कि उसके रास्ते हम अपना प्रभाव डाल सकते हैं। यदि समाज द्वारा लगाई गई परम्परागत रुकावटो के कारण रोगी को प्रवंचित होना पडा है तो इलाज से उसे साहस प्राप्त होगा, और उसे सीधे यह सलाह भी दी जा सकती है कि वह इन रुकावटो को न माने, और अपनी सन्तुष्टि और स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए उन आदर्शों को तिलांजलि दे दे जो बहुत आदरणीय होता हुआ भी प्रायः दुनिया में रोज ठुकराया जाता है। तो, स्वास्थ्य 'मुक्त रहन-सहन' से प्राप्त होगा। विश्लेषण पर निश्चित रूप से यह आरोप लगाया जाएगा कि यह सामान्य नैतिकता का पोषण नही करता, इसने व्यष्टि को जो कुछ दिया, वह बाकी दुनिया से छीन लिया।

पर विश्लेषण के बारे में ऐसी मिथ्या धारणा आपको किससे मिली, यह कहने की आवश्यकता नही। विश्लेषण सम्बन्धी इलाज का एक भाग यह होगा कि 'मुक्त रहन-सहन' रखो—इसका एक यह कारण तो है ही कि हम स्वयं आपसे कहते हैं कि रोगी में रागात्मक इच्छाओं और यौन दमन में भोगात्मक और निवृत्ति की प्रवृत्तियो में जबर्दस्त द्वन्द्व चल रहा है। दोनो पक्षो में से एक को मदद देकर जिता देने से यह द्वन्द्व दूर नही होगा। यह सच है कि हम देखते हैं कि स्नायु-रोगियो में निवृत्ति विजयी होती है जिसका परिणाम यह है कि अवरुद्ध यौन आवेग लक्षणो के रूप मे दिखाई देने लगे हैं। यदि इसके स्थान पर हम भोगात्मक पक्ष को जिता सकें तो कामुकता या यौन प्रवृत्ति का दमन करने वाले तिरस्कृत बलों को लक्षणो द्वारा अपनी क्षति-पूर्ति करनी पडेगी। इन दोनो में से किसी भी उपाय से भीतरी ... का अन्त करने में सफलता नहीं मिलेगी। दोनो अवस्थाओं में एक पक्ष अन-

व्याख्यान | २७

स्थानान्तरण

अब हम अपने विषय की समाप्ति पर पहुच गए है, और आपके मन में एक भाव उठ रहा होगा, जो आपको बहका सकता है पर ऐसा मौका नही आना चाहिए। सम्भवत आप सोच रहे है कि निश्चित ही ऐसा नही हो सकता कि मनोविश्लेषण की इन सब उलझन भरी पहेलियो मे से गुजरने के बाद, मै आपको मनोविश्लेषण द्वारा चिकित्सा के बारे में, जिसके आधार पर ही मनोविश्लेषण कार्य किया जा सकता है, बिना कुछ कहे विदा कर दूगा। सच तो यह है कि इसके इस पहलू को छोडना सम्भव भी नही, क्योकि इससे सम्बन्धित कुछ घटनाए आपको एक ऐसे नए तथ्य का पता देगी, जिसके ज्ञान के बिना आप उन रोगो को ठीक तरह नही समझ सकते, जिनपर हम विचार कर रहे है।

मै जानता हू कि आप यह आशा नही करते कि चिकित्सा-कार्य के लिए विश्लेषण का प्रयोग करने की विधि के निर्देश आपको दिए जाए। आप तो मोटे तौर पर यह जानना चाहते है कि मनोविश्लेषण-चिकित्सा किन साधनो से और उपायो से की जाती है,और यह जानना चाहते है कि इससे क्या सफलता होती है, सचमुच यह जानने का आपको अवश्य अधिकार है। फिर भी, मै आपको यह नही बताऊगा, मै चाहता हू कि इसका पता आप स्वय लगाए।

जरा सोचिए तो ! आप उन अवस्थाओ से लेकर, जिनसे रोग आरम्भ होता है, रोगी मन के भीतर पैदा होने वाले सब कारको तक, प्रत्येक आवश्यक बात पहले जान चुके है। इस सबमें चिकित्सा करने का रास्ता कहा है ? सबसे पहले वशगत स्वभाव है—हम प्राय इसका उल्लेख नही करते क्योकि अन्य क्षेत्रो में इसपर बहुत बल दिया जाता है, और हम इसके बारे में कोई नई बात नही जानते। पर यह न समझिए कि हम इसे कम महत्वपूर्ण समझते है। चिकित्सक के नाते हम इसकी शक्ति से सुपरिचित है। कुछ भी हो, हम इसे बदलने के लिए कुछ नही कर सकते। हमारे लिए भी यह इस समस्या का स्थिर अश है जिससे हमारे प्रयत्नो की एक सीमा बन जाती है। इसके बाद, आरम्भिक बचपन के अनुभवो का प्रभाव है,

जिसे हम विश्लेषण में बहुत अधिक महत्वपूर्ण समझते है। वे भूतकाल से सम्बन्ध रखते है, इसलिए हम उन्हे हटा नही सकते। इसके बाद, जीवन का वह सब दुःख है जिसे हमने 'यथार्थता में कुंठा' के अन्तर्गत शामिल किया है, जिससे जीवन का सारा प्रेम का अभाव पैदा होता है—अर्थात् गरीबी, पारिवारिक झगडे, विवाह मे गलत साथी का चुनाव, प्रतिकूल सामाजिक अवस्थाए, और व्यक्ति पर नैतिक रूढियो के नियमो की कठोरता। इन सभी में सफल इलाज की बहुत गुजाइश है, पर इस इलाज को वियेना की दंतकथा वाले कैसर जोसेफ के ढग पर चलना पडेगा—कैसर जोसेफ ऐसा परोपकारी निरकुश राजा था जिसकी इच्छा के आगे लोग सिर झुका देते और कठिनाइया दूर हो जाती। पर हम चिकित्सा में इतना परोपकार कैसे कर सकते है? हम गरीब लोग है और समाज मे हमारा कोई ऐसा प्रभाव नही, और हमें चिकित्सा करके अपनी रोजी कमानी है। इसलिए हम दूसरे डाक्टरो की तरह, जो दूसरी विधियो से चिकित्सा करते है, बहुत गरीब लोगो का इलाज भी नही कर सकते, और फिर हमारे इलाज मे बहुत समय और मेहनत लगती है। पर शायद आप अब भी पहले पेश किए जा चुके कारको में से एक को पकड़े हुए है, और यह समझते है कि उसके रास्ते हम अपना प्रभाव डाल सकते है। यदि समाज द्वारा लगाई गई परम्परागत रुकावटो के कारण रोगी को अवचित होना पडा है तो इलाज से उसे साहस प्राप्त होगा, और उसे सीधे यह सलाह भी दी जा सकती है कि वह इन रुकावटो को न माने, और अपनी सन्तुष्टि और स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए उस आदर्श को तिलाजलि दे दे जो बहुत आदरणीय होता हुआ भी प्राय दुनिया में रोज़ ठुकराया जाता है। तो, स्वास्थ्य 'मुक्त रहन-सहन' से प्राप्त होगा। विश्लेषण पर निश्चित रूप से यह आरोप लगाया जाएगा कि यह सामान्य नैतिकता का पोषण नही करता, इसने व्यष्टि को जो कुछ दिया, वह बाकी दुनिया से छीन लिया।

पर विश्लेषण के बारे में ऐसी मिथ्या धारणा आपको किससे मिली, यह कहने की आवश्यकता नही। विश्लेषण सम्बन्धी इलाज का एक भाग यह होगा कि 'मुक्त रहन-सहन' रखो—इसका एक यह कारण तो है ही कि हम स्वयं आपसे कहते है कि रोगी में रागात्मक इच्छाओ और यौन दमन में भोगात्मक और निवृत्ति की प्रवृत्तियों में जबर्दस्त द्वन्द्व चल रहा है। दोनो पक्षो में से एक को मदद देकर जिता देने से यह द्वन्द्व दूर नही होता। यह सच है कि हम देखते है कि स्नायु-रोगियो में निवृत्ति विजयी होती है जिसका परिणाम यह है कि अवरुद्ध यौन आवेग लक्षणो के रूप में दिखाई देने लगे है। यदि इसके स्थान पर हम भोगात्मक पक्ष को जिता सके तो कामुकता या यौन प्रवृत्ति का दमन करने वाले तिरस्कृत बलो को लक्षणो द्वारा अपनी क्षति-पूर्ति करनी पडेगी। इन दोनो में से किसी भी उपाय से भीतरी द्वन्द्व का अन्त करने में सफलता नही मिलेगी। दोनो अवस्थाओ में एक पक्ष अन-

न्तुष्ट रहेगा। बहुत कम रोगियो में यह द्वन्द्व ऐसा स्थायी होता है जिसपर डाक्टर की राय से कोई प्रभाव पड सके, और इन रोगियो को वास्तव में विश्लेषण द्वारा इलाज की आवश्यकता नही होती। जिन लोगो पर डाक्टरो का इतनी आसानी से असर पड जाता है, उन्होने इस असर के बिना ही अपने द्वन्द्व को दूर करने का रास्ता निकाल लिया होगा। आखिरकार आप जानते है कि विषय-वासनाओ से बचकर रहनेवाला कोई नौजवान जब अवैध सम्भोग का इरादा करता है या, कोई असन्तुष्ट पत्नी जो कि किसी जार में सन्तुष्टि प्राप्त करती है, तब ऐसा करने के लिए किसी डाक्टर या मनोविश्लेषक की इजाज़त की राह नही देखते।

इस सवाल पर विचार करते हुए लोग आमतौर से कठिनाई के सबसे आवश्यक अग को भूल जाते है, कि स्नायु-रोगी में होनेवाला रोगजनक द्वन्द्व और एक ही मानसिक क्षेत्र में मौजूद सब विरोधी आवेगो में होनेवाला प्रकृत सघर्ष दो भिन्न चीजें है। यह प्रकृत सघर्ष दो ऐसे बलो की कुश्ती है जिनमें से एक को मन के पूर्व-चेतन और चेतन भाग की सतह तक आने में सफलता हुई है, जबकि रोगजनक द्वन्द्व अचेतन सतह पर ही घिरा रहा है। इसी कारण, इस द्वन्द्व का किसी एक तरफ अन्तिम फैसला कभी नही होगा। परस्पर विरोधी बल एक दूसरे के सामने नही आ पाते। निर्णायक फैसला तभी हो सकता है जब वे उसी मैदान में आमने-सामने आए, और मेरी राय में, यह स्थिति ला देना ही इलाज का एकमात्र कार्य है।

इसके अलावा, निश्चित समझिए कि यदि आपका ख्याल यह है कि जीवन-सम्बन्धी आचरण के विषय में सलाह और पथ-प्रदर्शन विश्लेषण की विधि का अखड भाग है तो आप बडी गलतफहमी में है। इसके विपरीत, हम यथासम्भव उपदेशक का काम करने से बचते है। हम यही चाहते है कि रोगी अपने लिए स्वय अपने समाधान ढूढ ले। इसके लिए हम चाहते है कि वह अपने जीवन को प्रभावित करनेवाले महत्वपूर्ण निश्चय, जैसे जीवन-कार्य का चुनाव, व्यवसाय, विवाह या तलाक इलाज के दिनो में न करे, और इलाज पूरा हो जाने के बाद ही उनके बारे में तय करे। अब आपको स्वीकार कर लेना चाहिए कि आपने इससे बहुत भिन्न चीज की कल्पना की थी। थोडे-से बहुत कम आयु वाले, या बिलकुल असहाय और सबलहीन लोगो के लिए ही ऐसी सख्त पाबन्दी में रहना असम्भव है। इन व्यक्तियो के लिए हम चिकित्सक और शिक्षक दोनो बन जाते है। तब हम अपनी जिम्मेदारी को अच्छी तरह समझते है और आवश्यक सावधानी से कार्य करते है।

मैंने इस आरोप से, कि विश्लेषण वाले इलाज में स्नायु-रोगियो को 'मुक्त जीवन बिताने के लिए' उत्साहित किया जाता है, जिस उत्सुकता से अपनी सफाई पेश की है, उससे आपको भ्रम में नही पडना चाहिए, और न यह नतीजा ही निकालना चाहिए कि हम उन्हें परम्परागत रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित कर रहे है। यह बात भी हमारे प्रयोजन से उतनी ही दूर है, जितनी वह। दूसरी बात यह कि

यद्यपि यह सच है कि हम सुधारक नही, वल्कि सिर्फ प्रेक्षक हैं, पर तो भी हम आलोचक की दृष्टि से प्रेक्षण किए बिना नही रह सकते, और परम्परागत यौन नैतिकता का समर्थन करना या उन उपायो को श्रेष्ठ कहना, जिनके द्वारा समाज ने जीवन में यौन-प्रवृत्ति की व्यावहारिक समस्याओ को व्यवस्थित करने का यत्न किया है, हमे असम्भव मालूम हुआ है। हम आसानी से यह दिखला सकते है कि दुनिया जिसे अपनी नैतिक नियमावली कहती है, उसके लिए जितनी कुर्बानी करनी पडती है, उतनी की पात्र वह नही है, और इसका व्यवहार न तो ईमानदारी से निर्धारित हुआ है, और न समझदारी से। हम अपने रोगियो को ये आलोचनाए सुनने से नही रोकते। हम उन्हे यह आदत डालते है कि वे और सब मामलो की तरह यौन मामलो पर भी बिना किसी पूर्वग्रह के विचार कर सकें, और यदि इलाज के प्रभाव से स्वतन्त्र होने के बाद, वे असयत यौन स्वच्छन्दता और पूर्ण निवृत्ति के बीच का कोई रास्ता चुन लेते हैं, तो हमें कोई परेशानी नही होती, चाहे फिर उसका कुछ भी परिणाम हो। हम यह कहते है कि जिस आदमी ने अपने बारे में सच्ची बात समझना और पहचानना सीख लिया है, उसे अब अनैतिकता के खतरो से लडने का बल प्राप्त हो गया है, चाहे उसका नैतिकता का मानदण्ड कुछ दृष्टियो से प्रचलित मानदण्ड से भिन्न ही क्यो न हो। प्रसगत, हमे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हम स्नायु-रोग पैदा करने में इन्द्रिय सयम को बहुत अधिक महत्व न दे बैठें। उस तरह के सम्भोग से, जो बिना किसी कठिनाई के प्राप्त हो सकता है, कुठा से और तत्पश्चात् कुठा द्वारा प्रेरित राग-सचय से उत्पन्न रोगजनक स्थितियो में से बहुत थोडी-सी स्थितियो में ही, आराम मिल सकता है।

इस प्रकार, मनोविश्लेपण के चिकित्सा सम्बन्धी प्रभाव की व्याख्या हम यह मानकर नही कर सकते कि यह रोगियो को यौन सम्भोग करने की खुली छूट देता है। आपको कोई और चीज भी देखनी होगी। मैं समझता हू कि आपके इस अनुमान पर विचार करते हुए मैंने जो बातें कही थी, उनमें से एक बात से आप सही रास्ते पर आ गए होगे। सम्भवत. किसी अचेतन चीज के स्थान पर किसी चेतन चीज के आ जाने, अचेतन विचारो के चेतन विचारो में रूपान्तरित हो जाने, से ही हमारा कार्य सफल होता है। आपका खयाल सही है। बिल्कुल यही स्थिति है। अचेतन का चेतन में विस्तार करके दमन दूर किए जाते है, लक्षण-निर्माण की अवस्थाए दूर की जाती है, और रोगजनक द्वन्द्व के स्थान पर प्रकृत सघर्ष लाया जाता है, जिसमें इधर या उधर फैसला अवश्य होना है। हम अपने रोगियो के लिए कुछ नही करते। उन्हे ऐसा करते है कि उनमें एक यह मानसिक परिवर्तन होने लगे। यह परिवर्तन उनमें जितनी अधिक मात्रा में कर दिया जाता है, उतना ही अधिक लाभ हम उन्हें पहुंचा देते है। जहा कोई दमन, या इस जैसा कोई और मानसिक प्रक्रम नही होता, जिसे दूर करना हो, वहां हमारी चिकित्सा के करने योग्य कोई

न्तुष्ट रहेगा। बहुत कम रोगियो में यह द्वन्द्व ऐसा स्थायी होता है जिसपर डाक्टर की राय से कोई प्रभाव पड सके, और इन रोगियो को वास्तव में विश्लेषण द्वारा इलाज की आवश्यकता नही होती। जिन लोगो पर डाक्टरो का इतनी आसानी से असर पड जाता है, उन्होने इस असर के बिना ही अपने द्वन्द्व को दूर करने का रास्ता निकाल लिया होगा। आखिरकार आप जानते है कि विपय-वासनाओ से बचकर रहनेवाला कोई नौजवान जव अवैध सम्भोग का इरादा करता है या, कोई असन्तुष्ट पत्नी जो कि किसी जार में सन्तुष्टि प्राप्त करती है, तब ऐसा करने के लिए किसी डाक्टर या मनोविश्लेपक की इजाज़त की राह नही देखते।

इस सवाल पर विचार करते हुए लोग आमतौर से कठिनाई के सबसे आवश्यक अग को भूल जाते है, कि स्नायु-रोगी में होनेवाला रोगजनक द्वन्द्व और एक ही मानसिक क्षेत्र में मौजूद सब विरोधी आवेगो में होनेवाला प्रकृत सघर्ष दो भिन्न चीजें है। यह प्रकृत सघर्ष दो ऐसे बलो की कुश्ती है जिनमें से एक को मन के पूर्व-चेतन और चेतन भाग की सतह तक आने में सफलता हुई है, जबकि रोगजनक द्वन्द्व अचेतन सतह पर ही घिरा रहा है। इसी कारण, इस द्वन्द्व का किसी एक तरफ अन्तिम फैसला कभी नही होगा। परस्पर विरोधी बल एक दूसरे के सामने नही आ पाते। निर्णायक फैसला तभी हो सकता है जब वे उसी मैदान में आमने-सामने आए, और मेरी राय में, यह स्थिति ला देना ही इलाज का एकमात्र कार्य है।

इसके अलावा, निश्चित समझिए कि यदि आपका ख्याल यह है कि जीवन-सम्वन्धी आचरण के विपय में सलाह और पथ-प्रदर्शन विश्लेषण की विधि का अखड भाग है तो आप वडी गलतफहमी में है। इसके विपरीत, हम यथासम्भव उपदेशक का काम करने से बचते है। हम यही चाहते है कि रोगी अपने लिए स्वय अपने समाधान ढूढ ले। इसके लिए हम चाहते है कि वह अपने जीवन को प्रभावित करने-वाले महत्वपूर्ण निश्चय, जैसे जीवन-कार्य का चुनाव, व्यवसाय, विवाह या तलाक इलाज के दिनो में न करे, और इलाज पूरा हो जाने के वाद ही उनके वारे में तय करे। अव आपको स्वीकार कर लेना चाहिए कि आपने इससे वहुत भिन्न चीज की कल्पना की थी। थोडे-से वहुत कम आयु वाले, या विलकुल असहाय और सवल-हीन लोगो के लिए ही ऐसी सख्त पावन्दी में रहना असम्भव है। इन व्यक्तियो के लिए हम चिकित्सक और शिक्षक दोनो वन जाते हैं। तव हम अपनी जिम्मेदारी को अच्छी तरह समझते है और आवश्यक सावधानी से कार्य करते है।

मैंने इस आरोप से, कि विश्लेपण वाले इलाज में स्नायु-रोगियो को 'मुक्त जीवन विताने के लिए' उत्साहित किया जाता है, जिस उत्सुकता से अपनी सफाई पेश की है, उनसे आपको भ्रम में नही पडना चाहिए, और न यह नतीजा ही निकालना चाहिए कि हम उन्हे परम्परागत रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित कर रहे है। यह वात भी हमारे प्रयोजन से उतनी ही दूर है, जितनी वह। दूसरी वात यह कि

यद्यपि यह सच है कि हम सुधारक नही, वल्कि सिर्फ प्रेक्षक है, पर तो भी हम आलोचक की दृष्टि से प्रेक्षण किए बिना नही रह सकते, और परम्परागत यौन नैतिकता का समर्थन करना या उन उपायो को श्रेष्ठ कहना, जिनके द्वारा समाज ने जीवन में यौन-प्रवृत्ति की व्यावहारिक समस्याओ को व्यवस्थित करने का यत्न किया है, हमें असम्भव मालूम हुआ है। हम आसानी से यह दिखला सकते है कि दुनिया जिसे अपनी नैतिक नियमावली कहती है, उसके लिए जितनी कुर्बानी करनी पडती है, उतनी की पात्र वह नही है, और इसका व्यवहार न तो ईमानदारी से निर्धारित हुआ है, और न समझदारी से। हम अपने रोगियो को ये आलोचनाएं सुनने से नही रोकते। हम उन्हे यह आदत डालते है कि वे और सब मामलो की तरह यौन मामलो पर भी बिना किसी पूर्वग्रह के विचार कर सकें, और यदि इलाज के प्रभाव से स्वतन्त्र होने के बाद, वे असयत यौन स्वच्छन्दता और पूर्ण निवृत्ति के बीच का कोई रास्ता चुन लेते है, तो हमें कोई परेशानी नही होती, चाहे फिर उसका कुछ भी परिणाम हो। हम यह कहते है कि जिस आदमी ने अपने बारे में सच्ची बात समझना और पहचानना सीख लिया है, उसे अब अनैतिकता के खतरो से लडने का बल प्राप्त हो गया है, चाहे उसका नैतिकता का मानदण्ड कुछ दृष्टियो से प्रचलित मानदण्ड से भिन्न ही क्यो न हो। प्रसगत, हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हम स्नायु-रोग पैदा करने में इन्द्रिय सयम को बहुत अधिक महत्व न दे बैठें। उस तरह के सम्भोग से, जो बिना किसी कठिनाई के प्राप्त हो सकता है, कुंठा से और तत्पश्चात् कुंठा द्वारा प्रेरित राग-सचय से उत्पन्न रोगजनक स्थितियो में से बहुत थोड़ी-सी स्थितियो में ही, आराम मिल सकता है।

इस प्रकार, मनोविश्लेषण के चिकित्सा सम्बन्धी प्रभाव की व्याख्या हम यह मानकर नही कर सकते कि यह रोगियो को यौन सम्भोग करने की खुली छूट देता है। आपको कोई और चीज भी देखनी होगी। मै समझता हू कि आपके इस अनुमान पर विचार करते हुए मैने जो बातें कही थी, उनमें से एक बात से आप सही रास्ते पर आ गए होगे। सम्भवत किसी अचेतन चीज के स्थान पर किसी चेतन चीज़ के आ जाने, अचेतन विचारो के चेतन विचारो में रूपान्तरित हो जाने, से ही हमारा कार्य सफल होता है। आपका खयाल सही है। बिलकुल यही स्थिति है। अचेतन का चेतन में विस्तार करके दमन दूर किए जाते है लक्षण-निर्माण की अवस्थाएं दूर की जाती है, और रोगजनक द्वन्द्व के स्थान पर प्रकृत सघर्ष लाया जाता है, जिसमें इधर या उधर फैसला अवश्य होता है। हम अपने रोगियो के लिए कुछ नही करते। उन्हे ऐसा करते हैं कि उनमें एक यह मानसिक परिवर्तन होने लगे। यह परिवर्तन उनमें जितनी अधिक मात्रा में कर दिया जाता है, उतना ही अधिक लाभ हम उन्हें पहुचा देते है। जहा कोई दमन, या उस जैसा कोई और मानसिक प्रक्रम नही होता, जिसे दूर करना ही वहां हमारी चिकित्सा के करने योग्य कोई

न्तुष्ट रहेगा। बहुत कम रोगियो में यह द्वन्द्व ऐसा स्थायी होता है जिसपर डाक्टर की राय से कोई प्रभाव पड सके, और इन रोगियो को वास्तव में विश्लेषण द्वारा इलाज की आवश्यकता नही होती। जिन लोगो पर डाक्टरो का इतनी आसानी से असर पड जाता है, उन्होने इस असर के बिना ही अपने द्वन्द्व को दूर करने का रास्ता निकाल लिया होगा। आखिरकार आप जानते है कि विपय-वासनाओं से बचकर रहनेवाला कोई नौजवान जब अवैध सम्भोग का इरादा करता है या, कोई असन्तुष्ट पत्नी जो कि किसी जार में सन्तुष्टि प्राप्त करती है, तब ऐसा करने के लिए किसी डाक्टर या मनोविश्लेषक की इजाजत की राह नही देखते।

इस सवाल पर विचार करते हुए लोग आमतौर से कठिनाई के सबसे आवश्यक अग को भूल जाते है, कि स्नायु-रोगी मे होनेवाला रोगजनक द्वन्द्व और एक ही मानसिक क्षेत्र में मौजूद सब विरोधी आवेगो में होनेवाला प्रकृत सघर्ष दो भिन्न चीजे है। यह प्रकृत सघर्ष दो ऐसे बलो की कुश्ती है जिनमें से एक को मन के पूर्व-चेतन और चेतन भाग की सतह तक आने में सफलता हुई है, जबकि रोगजनक द्वन्द्व अचेतन सतह पर ही घिरा रहा है। इसी कारण, इस द्वन्द्व का किसी एक तरफ अन्तिम फैसला कभी नही होगा। परस्पर विरोधी बल एक दूसरे के सामने नही आ पाते। निर्णायक फैसला तभी हो सकता है जब वे उसी मैदान में आमने-सामने आए, और मेरी राय में, यह स्थिति ला देना ही इलाज का एकमात्र कार्य है।

इसके अलावा, निश्चित समझिए कि यदि आपका ख्याल यह है कि जीवन-सम्बन्धी आचरण के विपय में सलाह और पथ-प्रदर्शन विश्लेषण की विधि का अखड भाग है तो आप बडी गलतफहमी में है। इसके विपरीत, हम यथासम्भव उपदेशक का काम करने से बचते है। हम यही चाहते है कि रोगी अपने लिए स्वय अपने समाधान ढूढ़ ले। इसके लिए हम चाहते है कि वह अपने जीवन को प्रभावित करने-वाले महत्वपूर्ण निश्चय, जैसे जीवन-कार्य का चुनाव, व्यवसाय, विवाह या तलाक इलाज के दिनो में न करे, और इलाज पूरा हो जाने के बाद ही उनके बारे मे तय करे। अब आपको स्वीकार कर लेना चाहिए कि आपने इससे बहुत भिन्न चीज की कल्पना की थी। थोडे-से बहुत कम आयु वाले, या बिलकुल असहाय और सबल-हीन लोगो के लिए ही ऐसी सख्त पाबन्दी में रहना असम्भव है। इन व्यक्तियो के लिए हम चिकित्सक और शिक्षक दोनों बन जाते है। तब हम अपनी जिम्मेदारी को अच्छी तरह समझते है और आवश्यक सावधानी से कार्य करते है।

मैंने इस आरोप से, कि विश्लेषण वाले इलाज मे स्नायु-रोगियो को 'मुक्त जीवन बिताने के लिए' उत्साहित किया जाता है, जिस उत्सुकता से अपनी सफाई पेश की है, उनमे आपको भ्रम में नही पडना चाहिए, और न यह नतीजा ही निकालना चाहिए कि हम उन्हे परम्परागत रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित कर रहे है। यह बात भी हमारे प्रयोजन मे उतनी ही दूर है, जितनी वह। दूसरी बात यह कि

यद्यपि यह सच है कि हम सुधारक नही, वल्कि सिर्फ प्रेक्षक हैं, पर तो भी हम आलोचक की दृष्टि से प्रेक्षण किए विना नही रह सकते, और परम्परागत यौन नैतिकता का समर्थन करना या उन उपायो को श्रेष्ठ कहना, जिनके द्वारा समाज ने जीवन में यौन-प्रवृत्ति की व्यावहारिक समस्याओ को व्यवस्थित करने का यत्न किया है, हमें असम्भव मालूम हुआ है। हम आसानी से यह दिखला सकते हैं कि दुनिया जिसे अपनी नैतिक नियमावली कहती है, उसके लिए जितनी कुर्वानी करनी पडती है, उतनी की पात्र वह नही है, और इसका व्यवहार न तो ईमानदारी से निर्धारित हुआ है, और न समझदारी से। हम अपने रोगियो को ये आलोचनाए सुनने से नही रोकते। हम उन्हे यह आदत डालते हैं कि वे और सव मामलो की तरह यौन मामलो पर भी विना किसी पूर्वग्रह के विचार कर सकें, और यदि इलाज के प्रभाव से स्वतन्त्र होने के वाद, वे असयत यौन स्वच्छन्दता और पूर्ण निवृत्ति के वीच का कोई रास्ता चुन लेते हैं, तो हमें कोई परेशानी नही होती, चाहे फिर उसका कुछ भी परिणाम हो। हम यह कहते हैं कि जिस आदमी ने अपने वारे में सच्ची वात समझना और पहचानना सीख लिया है, उसे अव अनैतिकता के खतरो से लडने का वल प्राप्त हो गया है, चाहे उसका नैतिकता का मानदण्ड कुछ दृष्टियो से प्रचलित मानदण्ड से भिन्न ही क्यो न हो। प्रसगत, हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हम स्नायु-रोग पैदा करने में इन्द्रिय संयम को वहुत अधिक महत्व न दे वैठे। उस तरह के सम्भोग से, जो विना किसी कठिनाई के प्राप्त हो सकता है, कुठा से और तत्पश्चात् कुठा द्वारा प्रेरित राग-सचय से उत्पन्न रोगजनक स्थितियो में से वहुत थोड़ी-सी स्थितियो में ही, आराम मिल सकता है।

इस प्रकार, मनोविश्लेषण के चिकित्सा सम्वन्धी प्रभाव की व्याख्या हम यह मानकर नही कर सकते कि यह रोगियो को यौन सम्भोग करने की खुली छूट देता है। आपको कोई और चीज भी देखनी होगी। मैं समझता हू कि आपके इस अनुमान पर विचार करते हुए मैंने जो वातें कही थी, उनमें से एक वात से आप सही रास्ते पर आ गए होंगे। सम्भवत किसी अचेतन चीज के स्थान पर किसी चेतन चीज के आ जाने, अचेतन विचारो के चेतन विचारो मे रूपान्तरित हो जाने, से ही हमारा कार्य सफल होता है। आपका खयाल सही है। विल्कुल यही स्थिति है। अचेतन का चेतन में विस्तार करके दमन दूर किए जाते हैं लक्षण-निर्माण की अवस्थाए दूर की जाती हैं, और रोगजनक द्वन्द्व के स्थान पर प्रकृत सघर्ष लाया जाता है, जिसमें इधर या उधर फैसला अवश्य होता है। हम अपने रोगियो के लिए कुछ नही करते। उन्हे ऐसा करते हैं कि उनमें एक यह मानसिक परिवर्तन होने लगे। यह परिवर्तन उनमें जितनी अधिक मात्रा में कर दिया जाता है, उतना ही अधिक लाभ हम उन्हें पहुचा देते हैं। जहा कोई दमन, या इस जैसा कोई और मानसिक प्रक्रम नहीं होता, जिसे दूर करना हो वहां हमारी चिकित्सा के करने योग्य कोई

न्तुष्ट रहेगा। बहुत कम रोगियो में यह द्वन्द्व ऐसा स्थायी होता है जिसपर डाक्टर की राय से कोई प्रभाव पड सके, और इन रोगियो को वास्तव में विश्लेषण द्वारा इलाज की आवश्यकता नही होती। जिन लोगो पर डाक्टरो का इतनी आसानी से असर पड जाता है, उन्होने इस असर के बिना ही अपने द्वन्द्व को दूर करने का रास्ता निकाल लिया होगा। आखिरकार आप जानते है कि विषय-वासनाओ से बचकर रहनेवाला कोई नौजवान जब अवैध सम्भोग का इरादा करता है या, कोई असन्तुष्ट पत्नी जो कि किसी जार में सन्तुष्टि प्राप्त करती है, तब ऐसा करने के लिए किसी डाक्टर या मनोविश्लेषक की इजाजत की राह नही देखते।

इस सवाल पर विचार करते हुए लोग आमतौर से कठिनाई के सबसे आवश्यक अग को भूल जाते है, कि स्नायु-रोगी में होनेवाला रोगजनक द्वन्द्व और एक ही मानसिक क्षेत्र में मौजूद सब विरोधी आवेगो में होनेवाला प्रकृत सघर्ष दो भिन्न चीजें है। यह प्रकृत सघर्ष दो ऐसे बलो की कुश्ती है जिनमें से एक को मन के पूर्व-चेतन और चेतन भाग की सतह तक आने में सफलता हुई है, जबकि रोगजनक द्वन्द्व अचेतन सतह पर ही घिरा रहा है। इसी कारण, इस द्वन्द्व का किसी एक तरफ अन्तिम फैसला कभी नही होगा। परस्पर विरोधी बल एक दूसरे के सामने नही आ पाते। निर्णायक फैसला तभी हो सकता है जब वे उसी मैदान में आमने-सामने आए, और मेरी राय में, यह स्थिति ला देना ही इलाज का एकमात्र कार्य है।

इसके अलावा, निश्चित समझिए कि यदि आपका ख्याल यह है कि जीवन-सम्बन्धी आचरण के विषय में सलाह और पथ-प्रदर्शन विश्लेषण की विधि का अखड भाग है तो आप बडी गलतफहमी में है। इसके विपरीत, हम यथासम्भव उपदेशक का काम करने से बचते है। हम यही चाहते है कि रोगी अपने लिए स्वय अपने समाधान ढूढ ले। इसके लिए हम चाहते है कि वह अपने जीवन को प्रभावित करने-वाले महत्वपूर्ण निश्चय, जैसे जावन-कार्य का चुनाव, व्यवसाय, विवाह या तलाक इलाज के दिनो में न करे, और इलाज पूरा हो जाने के बाद ही उनके बारे में तय करे। अब आपको स्वीकार कर लेना चाहिए कि आपने इससे बहुत भिन्न चीज की कल्पना की थी। थोडे-से बहुत कम आयु वाले, या बिलकुल असहाय और सबल-हीन लोगो के लिए ही ऐसी सख्त पाबन्दी में रहना असम्भव है। इन व्यक्तियो के लिए हम चिकित्सक और शिक्षक दोनो बन जाते है। तब हम अपनी जिम्मेदारी को अच्छी तरह समझते है और आवश्यक सावधानी से कार्य करते है।

मैने इस आरोप से, कि विश्लेषण वाले इलाज में स्नायु-रोगियो को 'मुक्त जीवन बिताने के लिए' उत्साहित किया जाता है, जिस उत्सुकता से अपनी सफाई पेश की है, उससे आपको भ्रम में नही पडना चाहिए, और न यह नतीजा ही निकालना चाहिए कि हम उन्हे परम्परागत रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित कर रहे है। यह बात भी हमारे प्रयोजन से उतनी ही दूर है, जितनी वह। दूसरी बात यह कि

यद्यपि यह सच है कि हम सुधारक नही, बल्कि सिर्फ प्रेक्षक है, पर तो भी हम आलोचक की दृष्टि से प्रेक्षण किए बिना नही रह सकते, और परम्परागत यौन नैतिकता का समर्थन करना या उन उपायो को श्रेष्ठ कहना, जिनके द्वारा समाज ने जीवन में यौन-प्रवृत्ति की व्यावहारिक समस्याओ को व्यवस्थित करने का यत्न किया है, हमें असम्भव मालूम हुआ है। हम आसानी से यह दिखला सकते हैं कि दुनिया जिसे अपनी नैतिक नियमावली कहती है, उसके लिए जितनी कुर्बानी करनी पडती है, उतनी की पात्र वह नही है, और इसका व्यवहार न तो ईमानदारी से निर्धारित हुआ है, और न समझदारी से। हम अपने रोगियो को ये आलोचनाए सुनने से नही रोकते। हम उन्हे यह आदत डालते हैं कि वे और सब मामलो की तरह यौन मामलो पर भी बिना किसी पूर्वग्रह के विचार कर सके, और यदि इलाज के प्रभाव से स्वतन्त्र होने के बाद, वे असयत यौन स्वच्छन्दता और पूर्ण निवृत्ति के बीच का कोई रास्ता चुन लेते हैं, तो हमे कोई परेशानी नही होती, चाहे फिर उसका कुछ भी परिणाम हो। हम यह कहते हैं कि जिस आदमी ने अपने बारे मे सच्ची बात समझना और पहचानना सीख लिया है, उसे अब अनैतिकता के खतरो से लडने का बल प्राप्त हो गया है, चाहे उसका नैतिकता का मानदण्ड कुछ दृष्टियो से प्रचलित मानदण्ड से भिन्न ही क्यो न हो। प्रसगत, हमे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हम स्नायु-रोग पैदा करने में इन्द्रिय सयम को बहुत अधिक महत्व न दे बैठें। उस तरह के सम्भोग से, जो बिना किसी कठिनाई के प्राप्त हो सकता है, कुठा से और तत्पश्चात् कुंठा द्वारा प्रेरित राग-सचय से उत्पन्न रोगजनक स्थितियो में से बहुत थोडी-सी स्थितियो में ही, आराम मिल सकता है।

इस प्रकार, मनोविश्लेपण के चिकित्सा सम्बन्धी प्रभाव की व्याख्या हम यह मानकर नही कर सकते कि यह रोगियो को यौन सम्भोग करने की खुली छूट देना है। आपको कोई और चीज भी देखनी होगी। मैं समझता हू कि आपके इस अनुमान पर विचार करते हुए मैंने जो बातें कही थी, उनमें से एक बात से आप सही रास्ते पर आ गए होगे। सम्भवत किसी अचेतन चीज के स्थान पर किसी चेतन चीज के आ जाने, अचेतन विचारो के चेतन विचारो में रूपान्तरित हो जाने, से ही हमारा कार्य सफल होता है। आपका खयाल सही है। बिलकुल यही स्थिति है। अचेतन का चेतन में विस्तार करके दमन दूर किए जाते हैं, लक्षण-निर्माण की अवस्थाए दूर की जाती है, और रोगजनक द्वन्द्व के स्थान पर प्रकृत सघर्ष लाया जाता है, जिसमें इधर या उधर फैसला अवश्य होता है। हम अपने रोगियो के लिए कुछ नही करते। उन्हे ऐसा करते है कि उनमें एक यह मानसिक परिवर्तन होने लगे। यह परिवर्तन उनमें जितनी अधिक मात्रा में कर दिया जाता है, उतना ही अधिक लाभ हम उन्हें पहुंचा देते है। जहा कोई दमन, या इस जैसा कोई और मानसिक प्रक्रम नही होता, जिसे दूर करना हो, वहा हमारी चिकित्सा के करने योग्य कोई

भी काम नही होता ।

हमारे प्रयत्नो का लक्ष्य अनेक सूत्रो के रूप में प्रकट किया जा सकता है, जैसे अचेतन को चेतन बनाना, दमनो को हटाना, स्मृति में खाली स्थानो को भरना, ये सब समान बातें हैं, पर शायद आप इस कथन से असन्तुष्ट हैं। आपने स्नायु-रोगी के स्वास्थ्य-लाभ की कुछ और ही कल्पना की थी। आपने सोचा था कि मनोविश्लेपण के परिश्रमपूर्ण कार्य के बाद वह बिलकुल ही नया आदमी बन जाएगा और अब आपसे यह कहा जा रहा है कि बात सिर्फ इतनी है कि उसमें जितना अचेतन पहले था अब कुछ कमी हो गई है, और जितना पहले चेतन था उसमें कुछ वृद्धि हो गई है। असलियत यह है कि शायद आप इस तरह के भीतरी परि-वर्तन के महत्व को पूरी तरह समझ नही पाते। जिस स्नायु-रोगी का इलाज हो जाता है, वह सचमुच ही एक नया आदमी बन जाता है, यद्यपि मूलत वह पहले की तरह ही होता है, अर्थात् वह अपने सर्वोत्तम रूप में आ जाता है। वह वैसा ही बन जाता है, जैसा सबसे अनुकूल परिस्थितियो में बना होता, परन्तु यह बहुत बडी चीज है। फिर, जब आपको वे सब बातें पता चलेंगी जो उसके मानसिक जीवन में यह मामूली-सा लगने वाला परिवर्तन लाने के लिए करनी होगी, तब इन अनेक मानसिक सतहो के इन अन्तरो का अर्थ आपको अधिक समझ में आएगा।

मैं जरा-सा विपयान्तर करके यह पूछना चाहता हू कि क्या आपको पता है कि 'नैमित्तिक चिकित्सा'[1] का क्या अर्थ है ? नैमित्तिक चिकित्सा उस प्रक्रिया को कहते हैं जो रोग के अभिव्यक्त रूपो को छोडकर रोग के कारण को दूर करने के लिए कोई कमजोर पहलू तलाश करती है। अब प्रश्न यह है कि मनोविश्लेपण नैमित्तिक चिकित्सा है या नही ? इसका उत्तर सरल नही है, पर इससे हमें ऐसे प्रश्नो की व्यर्थता अच्छी तरह समझने का मौका मिल सकता है। जहा तक इसका प्रश्न है कि मनोविश्लेपण चिकित्सा का लक्ष्य लक्षणो को तत्काल दूर करना नही होता, उस सीमा तक यह नैमित्तिक चिकित्सा के रूप में की जाती है। और दृष्टियो से यह कहा जा सकता है कि यह नैमित्तिक चिकित्सा नही, क्योकि हम कारण-शृखला पर पीछे की ओर चलते-चलते दमन से परे नैसर्गिक पूर्वप्रवृत्तियो, शरीर-रचना, उनकी आपेक्षिक तीव्रता और उनके परिवर्धन के मार्ग में होने वाले विप-थनो तक पहुचे हैं। अब मान लीजिए कि किसी रासायनिक साधन से इस मनोयन्त्र पर असर डाला जा सकता, किसी खास समय उपलब्ध राग की मात्रा को बढ़ाया-घटाया जा सकता, या एक आवेग की ताकत छीनकर दूसरे आवेग की ताकत बढाई जा सकती, तो यह शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से नैमित्तिक चिकित्सा होती, और हमारा विश्लेपण उसका अनिवार्य आरम्भिक कार्य होता। जैसा कि आप जानते हैं,

---

१ Casual therapy

इस समय रोग के प्रक्रमो पर ऐसे किसी प्रभाव का प्रश्न नही है। हमारी मानसिक चिकित्सा इस शृंखला के एक और स्थान पर हमला करती है। यह स्थान बिलकुल वही नही है, जहा रोग के अभिव्यक्त रूप जमे हुए दिखाई देते है, पर फिर भी यह लक्षणो से बहुत पीछे है। यह स्थान बडी विशिष्ट परिस्थितियो में हमारे काबू मे आ जाता है।

तो, रोगी में जो कुछ अचेतन है, उसे चेतना मे लाने के लिए हमें क्या करना पडता है? किसी समय हमने समझा था कि यह बडा सरल काम होगा। हमें सिर्फ इतना करना होगा कि हम इस अचेतन वस्तु को पहचान ले और फिर रोगी को यह बता दे कि यह वस्तु क्या है, परन्तु हम पहले ही यह समझ चुके हैं कि वह हमारी अदूरदर्शिता थी। उसमे जो कुछ अचेतन है, उसके बारे मे हमें जानकारी होना, और रोगी को जानकारी होना एक ही बात नही है। जब हम उससे वे बातें कहते हैं जो हम जानते हैं, तो वह उन्हे अपने निज के अचेतन विचारो के **स्थान पर** नही अपनाता, बल्कि उनके **साथ-साथ** अपनाता है, और उसमें कुछ भी परिवर्तन नही होता। हमें इस अचेतन सामग्री पर स्थानवृत्तीय दृष्टि से विचार करना पडता है। हमें उसकी स्मृति में वह असली जगह खोजनी पडती है, जिसमें इसका दमन शुरू मे आरम्भ हुआ। पहले इस दमन को हटाना होगा, और फिर सीधे ही अचेतन विचार के स्थान पर चेतन विचार लाया जा सकता है। इस तरह के दमन को कैसे हटाया जाए? यहा हमारे कार्य की दूसरी कला प्रारम्भ होती है। प्रथम तो दमन को खोजना, और फिर उस प्रतिरोध को हटाना, जो इस दमन को कायम रखता है।

इस प्रतिरोध से कैसे पिंड छूट सकता है? एक ही तरीका है इसका पता लगाकर, और रोगी को इसके बारे में बताकर। प्रतिरोध भी किसी दमन मे से पैदा होता है—या तो यह उसी दमन मे से पैदा होता है, जिसे हम दूर करने की कोशिश कर रहे थे, या किसी पहले वाले दमन से पैदा होता है। यह उस प्रति आवेश द्वारा स्थापित किया जाता है जो प्रतिकर्षी आवेग[1] का दमन करने के लिए पैदा हुआ था। इस प्रकार हम ठीक वही कार्य कर रहे हैं जो पहले करने की कोशिश कर रहे थे। हम रोगी का निर्वचन करते है, उसे ठीक-ठीक पहचानते हैं, और जानकारी देते हैं, पर इस बार हम यह काम ठीक स्थान पर कर रहे हैं। प्रति आवेग या प्रतिरोध अचेतन का भाग नही, बल्कि अहम् का भाग है, जो हमारे साथ सहयोग करता है और इसके वास्तव में चेतन न होने पर भी यही बात रहती है। हमें मालूम है कि यहा 'अचेतन' शब्द का अर्थ एक ओर तो एक घटना या क्रिया, और दूसरी ओर एक संस्थान होने के कारण कठिनाई पैदा होती है। यह बात बडी अस्पष्ट और

---

१. Repellent impulse.

कठिन मालूम होती है, पर आखिरकार यह उस बात को दोहराना मात्र है, जो हमने पहले कही थी। इस बात पर हम बहुत पहले पहुच चुके है। तो, इस प्रकार हम यह आशा करते है कि जब हम अपने निर्वचन-कार्य द्वारा प्रतिरोध और प्रति-आवेश को पहचान लेंगे, तब यह प्रतिरोध दूर हो जाएगा, और प्रति आवेश हट जाएगा। ऐसा कर सकने के लिए हमारे पास कौन-से नैसर्गिक नोदक (अर्थात् धकेलने वाले) बल है? प्रथम तो, रोगी की स्वास्थ्य-लाभ की इच्छा, जिससे प्रेरित होकर उसने हमारे सहयोग से विश्लेषण आरभ किया और दूसरे उसकी बुद्धि की मदद जिसे हम अपने निर्वचन द्वारा मदद देते हैं। इसमें कोई सन्देह नही कि रोगी के लिए प्रतिरोध को अपनी बुद्धि से पहचानना और अपने अचेतन में से इसके सवादी मनोबिंब को पकडना तब अधिक आसान हो जाता है, जब हमने उसे कोई ऐसा मनोबिंब प्रस्तुत कर दिया हो जो इसके विषय में उसमें आशाए पैदा कर दे। यदि मै आपसे कहू "आकाश की ओर देखिए तो आपको एक गुब्बारा दिखाई देगा", तो आपको गुब्बारा उस समय की बनिस्बत अधिक जल्दी दिखाई दे जाएगा जब मै आपसे यह कहू कि ऊपर देखकर बताइए कि क्या दिखाई देता है। सूक्ष्म-दर्शी या माइक्रोस्कोप सबसे प्रथम बार देखने वाले छात्र को शिक्षक यह बता देता है कि उसे क्या देखना है, अन्यथा उसे कुछ भी नही दिखाई देता, यद्यपि कोई चीज वहा है और काफी साफ दिखाई देती है।

और अब तथ्य को लीजिए। बहुत-से स्नायु-रोगियो, जैसे हिस्टीरिया, चिंता-दशाए, मनोग्रस्तता-रोग, में हमारी परिकल्पना पूरी उतरती है। इस प्रकार, दमन को खोजकर, प्रतिरोधो का पता लगाकर, दमित को निर्दिष्ट करके कार्य में सफलता पाना, प्रतिरोधो को दूर करना, दमन को हटा देना और अचेतन वस्तु को चेतन वस्तु में बदल देना सचमुच सम्भव है। जब हम यह काम करते है तब हमें पता चलता है कि प्रत्येक प्रतिरोध को दूर करने के समय रोगी की आत्मा में एक भीषण युद्ध होने लगता है—यह उसी मैदान में लड रही दो प्रवृत्तियो के बीच प्रति आवेश को कायम रखने में यत्नशील प्रेरक भावो और उसे दूर करने को तत्पर प्रेरक-भावो के बीच प्रकृत मानसिक सघर्ष है। इनमें से पहले प्रेरक भाव वे पुराने प्रेरक भाव होते है जिन्होने शुरू में दमन को कायम किया था। दूसरे प्रेरक भावो में वे नए प्रेरक भाव है जो कुछ ही समय पहले प्राप्त हुए है, और जिनसे आशा है कि वे इस द्वद्व का हमारे पक्ष में फैसला कर देंगे। हमें दमन के पुराने द्वद्व को फिर से जीवित करने में, इतने समय पहले निर्णीत प्रश्न को दुबारा विचार के लिए पेश करने में सफलता मिली है। हमने इसमें जो नया कार्य किया है, वह प्रथम तो यह है कि हमने यह दिखला दिया कि पहले वाले समाधान से रोग पैदा हुआ, और यह आशा दिलाई कि इससे भिन्न समाधान से यह स्वास्थ्य फिर प्राप्त होगा, और दूसरे हमने यह जतला दिया कि जब इन आवेगो को शुरू में अस्वीकार किया गया

था, तब से परिस्थितिया बहुत बदल चुकी थी। उस समय अहम् दुर्बल और शैश-वीय था, और शायद राग की प्रवृत्तियो को अपने लिए खतरनाक मानकर भय से संकुचित होता था। आज वह सबल और अनुभवी हो चुका है, और साथ ही चिकित्सक के रूप मे एक सहायक उसके पास है। हम यह आशा कर सकते है कि यह पुनर्जीवित द्वद्व दमन की अपेक्षा किसी अच्छे परिणाम पर पहुचेगा, और जैसा कि कहा जा चुका है, हिस्टीरिया, चिंता-स्नायु-रोग और मनोग्रस्तता-रोग मे प्राप्त सफलता से हमारे कथन की सचाई सिद्ध होती है।

रोग के कुछ अन्य रूप भी है, जिनमें हमारा इलाज कभी सफल नही होता, यद्यपि अवस्थाए एक-सी होती है। उनमे भी शुरू मे अहम् और राग में द्वन्द्व हुआ था, और फिर दमन हुआ था, यद्यपि इस द्वन्द्व मे और स्थानान्तरण स्नायु-रोगो के द्वन्द्व मे स्थानवृत्तीय फर्क थे। उनमे भी रोगी के जीवन का वह स्थान खोजा जा सकता है, जिसमे दमन हुए। हम वही विधि अपनाते है, वही आश्वासन देने को तैयार है, रोगी को यह बतलाकर कि वह क्या चीज खोजे, उसे वही सहायता पेश करते है, और यहा भी जिस समय दमन हुए थे, उसके और आज के बीच का समयान्तर द्वन्द्व का अधिक अच्छा परिणाम होने के लिए अनुकूल है, और फिर भी हम उसके एक भी प्रतिरोध को हटाने या एक भी दमन को दूर करने में सफल नही हो सकते। ये रोगी, जो पैरानोइआ, मैलाकोलिया (उदासी रोग) और डेमेन्शिया प्रीकौक्स के रोगी होते है, मनोविश्लेषण के इलाज के लिए चिकने घडे सिद्ध होते है। इसका क्या कारण हो सकता है? बुद्धि की कमी इसका कारण नही है। यह ठीक है कि विश्लेषण के लिए बौद्धिक क्षमता की कुछ मात्रा स्वभावत आवश्यक है, पर उदाहरण के लिए, बड़े हाजिर-जवाब डिडेक्टिव-पैरानोइआ-रोगी में इस दृष्टि से कोई कमी नही होती। इसी तरह, दूसरे प्रेरक बल भी सदा अनुपस्थित नही होते, उदाहरण के लिए, पैरानोइआ-रोगियो के मुकाबले उदासी रोगी इस बात को बहुत अधिक अनुभव करते है कि वे रोगी है, और उनके कष्टो का कारण यह रोग है, पर इसके कारण उनपर अधिक आसानी से प्रभाव नही पडता। इस तरह हमारे सामने एक ऐसा तथ्य आ जाता है जिसे हम नही समझ पाते, और इसीलिए यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या हमने दूसरे स्नायु-रोगो में सफलता पाने के लिए आवश्यक सब अवस्थाओ को वास्तव में समझ लिया है?

जब हम हिस्टीरिया और मनोग्रस्तता के रोगियो पर विचार करते है, तब हमारे सामने शीघ्र ही एक दूसरा बिलकुल असम्भावित तथ्य आ जाता है। कुछ समय इलाज होने के बाद हम देखते है कि इन रोगियो का हमारे प्रति बडा अजीब व्यवहार होता है। हमने सचमुच समझा था कि हमने इलाज सम्बन्धी प्रेरक बलो पर विचार कर लिया है, और अपने तथा रोगी के बीच की स्थिति को इतनी अच्छी तरह स्पष्ट कर लिया है कि वह गणित की राशि के समान सन्तुलित हो गई है।

पर अब फिर कोई ऐसी चीज बीच में आ गई मालूम होती है, जो हमारी गणना से बिलकुल छूट गई थी। इस नई और अप्रत्याशित बात के खुद बहुत-से पहलू और उलझनें हैं। सबसे पहले मैं इसके अधिक आम और सरल रूप आपके सामने पेश करूगा।

तो, हम देखते हैं कि रोगी में, जिसके मन में अपने को परेशान करने वाले द्वन्द्वो के समाधान के अलावा कोई और बात नही होनी चाहिए, डाक्टर के व्यक्तित्व में विशेष दिलचस्पी पैदा होने लगती है। उसे इस व्यक्ति से सम्बन्धित हर बात अपने निजी मामलो से अधिक महत्व की लगने लगती है, और उसके रोग से उसका ध्यान हटाने लगता है। तब रोगी के साथ सम्बन्ध कुछ समय के लिए बडे मधुर हो जाते हैं। यह बिलकुल आपकी इच्छा के अधीन चलने लगता है, जहा मौका मिले वही अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करने की कोशिश करता है, चरित्र की निर्मलता और अन्य ऐसे श्रेष्ठ गुण प्रदर्शित करता है, जिनकी हमने उसमें पहले शायद कल्पना नही की थी। इस प्रकार, रोगी के बारे में विश्लेषक की राय बहुत अच्छी हो जाती है और वह ऐसे गुणी व्यक्ति का सहायक बनने को अपना सौभाग्य समझने लगता है। यदि डाक्टर को रोगी के रिश्तेदारो से मिलने का मौका पडता है, तो उनसे यह सुनकर उसे सन्तोष होता है कि यह समादर दोतरफा है। रोगी अपने घर पर विश्लेषक की प्रशसा करता और उसमें नए-नए गुण बताता हुआ कभी नही थकता। "वह तो आपके पीछे पागल हो गया है, उसे आप पर पूरा भरोसा है, आपकी कही हुई हर बात उसके लिए ईश्वर की वाणी जैसी है,"—ये बातें रिश्तेदार उसे बताते हैं। कोई अधिक तीव्र दृष्टि वाला व्यक्ति यह भी कह देता है "वह आपके सिवाय और कोई बात ही नही करता, जिससे जी बिलकुल ऊब जाता है, वह हर समय आपकी ही बातो के उद्धरण देता है।"

हमें यही आशा करनी चाहिए कि डाक्टर में इतनी विनय होगी कि वह रोगी द्वारा की हुई अपनी प्रशसा का यह मतलब बताएगा कि रोगी को मेरे बताए हुए तरीको से स्वास्थ्य-लाभ की आशा हो गई है, और इस इलाज में होने वाले आश्चर्यजनक रहस्योद्घाटनो और उनके मुक्तिकारक प्रभाव के परिणामस्वरूप रोगी का बौद्धिक क्षितिज विस्तृत हो गया है। इन अवस्थाओ में विश्लेषण भी बडे अच्छे ढग से आगे बढता है। रोगी अपने सामने पेश किए गए सुझावो को समझता है, इलाज के लिए आवश्यक कार्यो पर ध्यान देता है, आवश्यक सामग्री—उसकी पुरानी स्मृतिया और साहचर्य—बडी मात्रा में उपलब्ध हो जाती है। वह विश्लेषक को उसके निर्वचन की निश्चितता और सत्यता से आश्चर्य में डाल देता है, और विश्लेषक को यह देखकर बडा सन्तोष होता है कि रोगी व्यक्ति उन सारे नए मनोवैज्ञानिक विचारो को कितनी आसानी से और तत्परता से स्वीकार कर लेता है, जिनपर बाहरी दुनिया में स्वस्थ व्यक्ति इतना गरमागरम वाद-विवाद

करते है। विश्लेपक के इस मधुर सम्बन्ध के साथ-साथ रोगी की दशा में भी सामान्य सुधार दिखाई देता है, जिसकी सब ओर से वैज्ञानिक पुष्टि हो जाती है।

पर ऐसी बहार सदा नही रह सकती। एक दिन आता है, जब कि घटा घिर आती है, विश्लेपण में कठिनाइया पैदा होने लगती है। रोगी कहता है कि मुझे और कोई बताने लायक बात नही सूझती। स्पष्ट यही दिखाई देता है कि अब उसे इस कार्य में दिलचस्पी नही रही, और वह अपने को दिए गए इस आदेश की बीच-बीच में उपेक्षा कर रहा है कि अपने मन में आने वाली प्रत्येक बात वह कह डाले, और अपने मन में आने वाले आलोचनात्मक आक्षेपो में से किसीसे न दबे। उसके व्यवहार का रूप इलाज की स्थिति के कारण ऐसा नही होता। ऐसा लगता है कि जैसे उसने डाक्टर से उस आशय का इकरार ही नही किया था। स्पष्टत वह किसी और बात में व्यस्त है, और साथ ही यह बात वह किसीसे कहना भी नही चाहता। इस स्थिति में इलाज को खतरा है। साफ बात यह है कि कोई बहुत प्रबल प्रतिरोध पैदा हो गया है। फिर, क्या बात हो सकती है?

यदि इस स्थिति को स्पष्ट किया जा सके तो यह पता चलता है कि इस गड-बडी का कारण यह है कि रोगी ने अनुराग की कुछ तीव्र भावनाए डाक्टर पर स्थानान्तरित कर दी है, और इसका कारण न तो डाक्टर का व्यवहार है और न इलाज से पैदा होनेवाला सम्बन्ध। यह अनुरागपूर्ण भावना जिस रूप मे प्रकट होती है, और जिस लक्ष्य पर पहुंचना चाहती है, वे स्वभावत दोनो व्यक्तियो के बीच की स्थिति के हालात पर निर्भर होते है। यदि उनमें से एक, जवान लडकी हो और दूसरा अभी नौजवान-सा ही हो, तो उनमे प्रकृत प्रेम की-सी धारणा पैदा होती है। यह स्वाभाविक लगता है कि कोई लडकी ऐसे आदमी के साथ प्रेम करने लगे जिसके साथ वह बहुत समय एकान्त में रहती है और जिससे वह अपनी बहुत गुप्त बातें भी कह सकती है, और जो अधिकारपूर्वक सलाह देने वाले की स्थिति में है—हम सम्भवत इस तथ्य को भूल जाएगे कि स्नायु-रोग से पीडित लडकी में प्रेम करने की क्षमता मे कुछ गडबडी की आशा करनी ही चाहिए। दोनो व्यक्तियो की बीच की स्थिति इस कल्पित उदाहरण मे जितनी अधिक भिन्न होगी, उतना ही कठिन यह बताना होगा कि अन्य रोगियो में भी इसी तरह की भावना क्यो दिखाई देती है। यदि कोई जवान स्त्री, जो अपने विवाह से सुखी नही हुई, अपने चिकि-त्सक के प्रति गम्भीर प्रेमावेश से अभिभूत मालूम हो, जो कि अभी अविवाहित है, और वह तलाक लेने के लिए और अपने को उसको अर्पित करने के लिए तैयार हो जाए, या जहा परिस्थितियो के कारण ऐसा न हो सकता हो, वहा उसके साथ गुप्त प्रेम सम्बन्ध रखने लगे तो यह बात फिर भी समझ में आ जाती है। सच पूछिए तो इस तरह की बात मनोविश्लेषण से भिन्न क्षेत्र में हो चुकी है, पर इस स्थिति में स्त्रिया और लडकिया बडे आश्चर्यजनक रहस्य प्रकट करती है, जिनसे

यह पता चलता है कि चिकित्सा की समस्या पर उनका बडा अजीब रुख है। वे सदा यह समझती रही हैं कि प्रेम के अलावा और किसी चीज से उनका इलाज नही होगा, और इलाज के आरम्भ से उन्हे यह आशा थी कि जो चीज उन्हे अब तक जीवन में नही मिल सकी, वह अब आखिरकार इस सम्बन्ध से मिल जाएगी। इस आशा से ही उन्होने अपने सब विचार प्रकट करने में आने वाली सारी कठि-नाइयो को दूर किया, और विश्लेषण के लिए इतना कष्ट उठाया। इतनी बात हम और जोड दें 'और जिन बातो को समझना आम तौर से इतना कठिन है, उन्हे इतनी आसानी से समझ लिया था।' पर इस तरह की स्वीकारोक्ति से हम अवाक् रह जाते हैं। हमारे सब हिसाब-किताब बेकार हो जाते हैं। कही ऐसा तो नही कि हमने सारी समस्या के सबसे महत्वपूर्ण अश को छोड दिया है ?

और सचमुच यही बात है। हमें जितना अधिक अनुभव प्राप्त हो जाता है, हमारे लिए इस नए कारक का, जिसने सारी समस्या को बदल दिया और हमारी वैज्ञानिक गणनाओ को तुच्छ बना दिया, मुकाबला करना उतना ही कम सम्भव हो जाता है। शुरू में कुछ वार तो आदमी यह सोच सकता है कि एक आकस्मिक घटना के रूप में, जो विश्लेपण के प्रयोजन से असम्बन्धित है और जिसके पैदा होने का इसके साथ कोई सिलसिला नही जुडता, एक बाधा आ गई है जिसपर आकर विश्लेपण का इलाज व्यर्थ हो गया है। पर जब यह होता है कि चिकित्सक के प्रति इस तरह का अनुराग हर नए रोगी में सदा दिखाई देता है और बहुत प्रतिकूल अवस्थाओ में भी,और बडी अटपटी परिस्थितियो में भी सदा दिखाई देता है—जैसे बुजुर्ग स्त्रियो में सफेद दाढी वाले लोगो के प्रति, और ऐसे अवसरो पर भी जब हमें वुद्धि से यही निश्चय होता है कि वहा कोई प्रलोभन नही है—तब हमें आकस्मिक घटना का विचार छोड देना पडता है और यही मानना पडता है कि यह अपने आप में एक घटना है, जो रोग के स्वरूप के साथ सारत जुडी हुई है।

इस प्रकार जो नया तथ्य मानने को अनिच्छापूर्वक मजबूर होना पडता है, उसे हम **स्थानान्तरण** कहते हैं। इससे हमारा आशय यह है कि भावनाए डाक्टर के व्यक्तित्व पर स्थानान्तरित कर दी जाती है, क्योंकि हम यह नही समझते कि इलाज की स्थिति को ऐसी भावनाओ के जन्म का कारण कहा जा सकता है। हमें यह सन्देह करने की अधिक गुजाइश मालूम होती है कि भावना पनपाने की इस सारी तत्परता का जन्म एक और जगह होता है, कि यह रोगी में पहले ही बन चुकी थी और इलाज द्वारा प्रस्तुत अवसर का लाभ उठाकर अपने आपको डाक्टर के व्यक्तित्व पर स्थानातरित कर लिया गया है। यह स्थानान्तरण या तो आवेशपूर्ण प्रेम-याचना के रूप में प्रकट होना है, या इसमे कुछ हलके रूप ग्रहण कर सकता है। जहा लडकी जवान और पुरुप बुजुर्ग है, वहा पत्नी या रखैल बनने की इच्छा के स्थान पर लाडली पुत्री के रूप में स्वीकार किए जाने की इच्छा प्रकट हो सकती है, या

रागात्मक इच्छा अपने रूप में थोडा परिवर्तन करके स्थायी और आदर्श आत्मिक[1] मित्रता की इच्छा के रूप में सामने आ सकती है। बहुत-सी स्त्रिया यह समझती है कि स्थानान्तरण को ऐसा उदात्त रूप कैसे दिया जाए और इसको इस तरह कैसे ढाला जाए कि इसके अस्तित्व का एक तरह से औचित्य सिद्ध होने लगे। कुछ स्त्रिया इसे इसके स्थूल मौलिक, प्राय असम्भव, रूप में प्रकट करती है, पर सार रूप में यह सदा एक ही चीज होती है और इसका जन्म उसी स्रोत से होता है।

यह सोचने से पहले कि इस नए तथ्य को हम कहा जमाए, हम इसका वर्णन थोडा विस्तार से करेंगे। पुरुष रोगियो मे क्या होता है? उनके साथ कम से कम यह आशा तो की ही जा सकती है कि लिंग-भेद और लिंग-आकर्षण का परेशानी पैदा करने वाला अंश नही होगा, पर यहा भी उत्तर बहुत कुछ वही है जो स्त्रियो के मामले मे था—चिकित्सक के प्रति वही अनुराग, उसके गुणो का वही कीर्ति-गान, उसके स्वहितो को उसी तरह अपनाना, उससे सम्बन्धित सब व्यक्तियो से वही ईर्ष्या। पुरुष और पुरुष के बीच स्थानान्तरण के उदात्त स्वरूप अधिक मिलते है और सीधे यौन सम्बन्ध बहुत कम मिलते है। इनकी मात्रा इस बात पर निर्भर है कि रोगी की व्यक्त समकामिता दूसरे तरीको के, जिनसे यह घटक निसर्ग-वृत्ति अपनी अभिव्यक्ति कर सकती है, कहा तक अधीन है। इनके अलावा पुरुष-रोगियो मे ही विश्लेपक को स्थानान्तरण का वह रूप अधिक दिखाई देता है जो ऊपर से, उस वर्णन के विरुद्ध मालूम होता है जो अभी दिया गया है, अर्थात् विरोधी या ऋणात्मक स्थानान्तरण।

प्रथम तो हमे फौरन यह समझ लेना चाहिए कि स्थानान्तरण रोगी मे इलाज के शुरू से मौजूद होता है, और कुछ समय तक वह विश्लेपण-कार्य का सबसे प्रबल प्रेरक होता है। तब तक यह दिखाई नही देता और इसके विषय मे परेशान होने की आवश्यकता नही होती, जब तक इसका प्रभाव उस काम के अनुकूल होता है, जिसमें दो व्यक्ति सहयोग कर रहे है। जब यह प्रतिरोध के रूप में बदल जाता है, तब इसकी ओर ध्यान देना पडता है, और तब यह प्रतीत होता है कि इसमें दो भिन्न और परस्पर विरोधी मानसिक अवस्थाए बीच मे आ गई है, और उन्होने इलाज के प्रति उसके रुख को बदल दिया प्रथम तो जब अनुरागमय आकर्षण इतना प्रबल हो गया है, और उसका जन्म यौन इच्छा से होने के चिह्न इतने स्पष्ट दीखने लगे है कि इनसे अपने विरुद्ध एक आन्तरिक विरोध पैदा होना अनिवार्य था, और दूसरे जब यह अनुरागमय भावना के बजाय विरोधपूर्ण भावना का जन्म होता है। साधारणतया विरोधपूर्ण भावनाए अनुरागपूर्ण भावनाओ के बाद और उनकी आड़ में दिखाई देती है। जब वे दोनो इकट्ठी पैदा होती है, तब ये भावना

---

1. Platonic.

की उस उभयता का बहुत अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है जो दूसरे मनुष्यो के साथ हमारे अधिकतर घनिष्ठ सम्बन्धो की नियामक होती है। इसलिए विरोधी भावनाए भावना का वैसा ही लगाव सूचित करती है, जैसा अनुरागपूर्ण भावना का। इसमें कोई सन्देह नही हो सकता कि विश्लेषक-विरोधी भावनाओ को स्थानान्तरण कहना उचित है, क्योकि इलाज की स्थिति में उनके पैदा होने का कोई पर्याप्त मौका नही है। ऋणात्मक स्थानान्तरण को इस रूप में मानने की आवश्यकता से धनात्मक या अनुरागपूर्ण स्थानान्तरण के विषय में पहले दिए गए हमारे इसी तरह के विचार की पुष्टि होती है।

स्थानान्तरण कहा से पैदा होता है, इससे हमारे सामने कौन-सी कठिनाइया आ जाती है, हम उन्हे कैसे हल कर सकते हैं, और अन्त में हम इससे क्या लाभ उठा सकते है? इन प्रश्नो का ठीक-ठीक ढग से उत्तर विश्लेषण की विधि का टेक्निकल विवरण देकर ही किया जा सकता है। यहा तो मैं उनका सकेतमात्र कर सकता हू। यह तो प्रश्न ही पैदा नही होता कि हम अपने स्थानान्तरण के प्रभाव के वश में होकर रोगी जो कुछ कराना चाहता है, उसे करने लगें। उन्हे लापरवाही से ठुकरा देना मूर्खता होगी और रोप से ठुकरा देना और भी बडी मूर्खता। रोगी को यह जतलाकर स्थानान्तरण को दूर किया जा सकता है कि उसकी भावनाए वर्तमान स्थिति में नही पैदा हुई है, और वे असल में चिकित्सक के व्यक्तित्व से सम्बन्ध नही रखती, बल्कि वह किसी ऐसी चीज को फिर पैदा कर रहा है, जो बहुत पहले उसके साथ हुई थी। इस तरह हम उसकी **पुनरावृत्ति** को **पूर्वस्मरण** में बदलने के लिए कहते हैं। तब स्थानान्तरण, चाहे वह अनुरागपूर्ण था या विरोधपूर्ण था, जो इलाज के लिए सबसे बडा खतरा बन गया था, अब इसका सर्वोत्तम उपकरण बन जाता है, और इसकी सहायता से हम आत्मा के बन्द दरवाजो को खोल सकते है। पर आप पर इस असम्भावित घटना से लगे आघात से जो बुरा असर पडा होगा, उसे दूर करने के लिए कुछ शब्द कहना चाहता हू। आखिरकार, हमे यह नही भूलना चाहिए कि रोगी के जिस रोग का विश्लेपण करने की जिम्मेदारी हमने उठाई है, वह कोई अन्तिम रूप में तैयार पूर्ण वस्तु नही है, बल्कि वह जीवित वस्तु की तरह सारे समय बढ रही है, और अपना परिवर्धन जारी रखती है। पर ज्योही इलाज रोगी पर असर डालने लगता है, त्योही यह प्रतीत होता है कि इसके बाद रोग की सारी उत्पादकता एक दिशा में केन्द्रित हो जाती है और वह है चिकित्सक के प्रति सबध। तब स्थानान्तरण की तुलना वृक्ष की दारु[1] और छाल के बीच वाले एधास्तर[2] से की जा सकती है, जिससे नए ऊतक का निर्माण और तने के व्यास में वृद्धि होती है। ज्योही स्थानान्तरण इस रूप में आ जाता है, त्योही रोगी के पूर्वस्मरणो का विश्ले-

---

१ Wood २ Cambium layer

पण गौण पड जाता है। तब यह कहना गलत नही है कि अब हम पुराने रोग का सामना नही कर रहे, बल्कि एक नए पैदा हुए और रूपान्तरित स्नायु-रोग का सामना कर रहे है, जो पहले वाले रोग के स्थान में आ गया है। पुराने रोग का यह नया सस्करण अपने शुरू होने के समय से हमारी नजर मे है। हम इसे पैदा होते और बढते देखते है, और इससे इस कारण विशेष रूप से परिचित है क्योकि इसमें हम स्वय ही केन्द्र है। रोगी के सब लक्षणो का पहले वाला अर्थ खत्म हो गया है, और उन्होने एक नया अर्थ अपना लिया है, जो स्थानान्तरण के साथ उनके सम्बन्ध मे निहित है, अथवा सिर्फ वे लक्षण शेष रह गए है, जो इस तरह नए अर्थ के अनुकूल बन सकते थे। इस नए कृत्रिम रूप से उत्पन्न स्नायु-रोग पर विजय, इलाज से पहले मौजूद रोग को दूर करने, अर्थात् चिकित्सा-कार्य को पूरा करने, के साथ ही होती है। जो व्यक्ति प्रकृत हो गया है, और चिकित्सक के साथ अपने सम्बन्ध दमित नैसर्गिक प्रवृत्तियो के प्रभाव से मुक्त हो गया है, वह अपने जीवन से चिकित्सक के हट जाने पर भी वैसा ही बना रहता है।

स्थानान्तरण का हिस्टीरिया, चिन्ता-हिस्टीरिया और मनोग्रस्तता-रोग के इलाज में बहुत महत्वपूर्ण और बिलकुल केन्द्रीय महत्व है, और इसलिए इनको 'स्थानान्तरण स्नायु-रोग' समूह मे इकट्ठा रखना उचित ही है। जिस व्यक्ति ने मनोविश्लेषण के अनुभव से स्थानान्तरण के तथ्य की नही धारणा बना ली है, उसे दबे हुए आवेगो के स्वरूप के बारे में, जिन्होने लक्षणो के रूप मे अपने बाहर निकलने का एक रास्ता बना लिया है, फिर कभी सन्देह नही हो सकता, और उसे उनके रागात्मक स्वरूप के बारे मे इससे बडे किसी प्रमाण की आवश्यकता नही होगी। हम यह कह सकते है कि हमारा यह विश्वास स्थानान्तरण की घटना का मूल्याकन करने से अन्तिम रूप से और सुनिश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है, कि लक्षणो का अर्थ यह है कि वे राग की स्थानापन्न परितुष्टि है।

पर अब हमे इलाज के प्रक्रम के बारे में अपने पहले वाले गतिकीय अवधारण को सही करना होगा, और नई खोज के साथ इसका मेल बिठाना होगा। जब रोगी को प्रतिरोधो के साथ, जो हमने विश्लेषण द्वारा उसमें पता लगाए है, प्रकृत द्वन्द्व में जूझना पड़ता है, तब उसे स्वास्थ्य-लाभ की ओर ले जाने वाले हमारे सोचे हुए निश्चय की ओर धकेलने के लिए एक प्रबल नोदक (या धकेलने वाले) बल की आवश्यकता होती है, अन्यथा, हो सकता है कि वह पिछले परिणाम की पुनरावृत्ति करने का ही फैसला कर ले और जो चीज उभर कर चेतना में आ गई थी, उसे फिर दमन के प्रभाव में सरक जाने दे। इस द्वन्द्व का परिणाम उसकी बौद्धिक अन्तर्दृष्टि से तय नहीं होगा—ऐसे कार्य की सिद्धि के लिए न तो वह काफी प्रबल है और न काफी मुक्त—बल्कि चिकित्सक के साथ उसके सम्बन्ध से और सिर्फ इस सम्बन्ध से ही निर्धारित होगा। जहा तक उसका स्थानान्तरण धनात्मक है, वहा तक यह

चिकित्सक को अधिकार युक्त करता है, अपने आपको उसकी खोजो और उसके विचारो में श्रद्धा के रूप में वदल लेता है। इस तरह का स्थानान्तरण या ऋणात्मक स्थानान्तरण न हो तो चिकित्सक और उसकी युक्तियो की ओर रोगी कान भी नहीं देगा। श्रद्धा अपने जन्म का इतिहास दोहराती है। यह प्रेम से पैदा होती है और शुरू में इसे किन्ही दलीलो की आवश्यकता नही होती। बहुत बाद में यह दलीलो की ओर ध्यान देती है, पर उनपर आलोचनात्मक विचार तभी करती है जब वे किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा पेश की गई हो जो प्रिय है। इस सहारे के न होने पर रोगी के लिए दलीलो का कोई महत्व नही होता, और जीवन मे भी अधिकतर लोगो के लिए उनका कोई महत्व नही होता। इसलिए मनुष्य की बुद्धि पर भी वही तक असर डाला जा सकता है जहा तक वह आलम्बनो को राग से आच्छादित करने में समर्थ है, और हमें समझ-बूझकर यह आशका करनी चाहिए कि उसकी स्वरति की मात्रा उस पर विश्लेपण की सर्वोत्तम विधि का प्रभाव पडने में भी रुकावट बनेगी।

आलम्बन-आच्छादन में दूसरे व्यक्तियो के प्रति राग को विकीर्ण करने की क्षमता निस्सदेह सब प्रकृत लोगो में मौजूद मानी जा सकती है। तथाकथित स्नायु-रोगो की स्थानान्तरण की प्रवृत्ति एक व्यापक विशेषता का अपवाद रूप से होने वाला तीव्र रूप मात्र है। यदि इतने महत्व के और व्यापक मानवीय चरित्र-गुण को कभी न देखा गया होता और उसका उपयोग न किया गया होता तो यह वडी विचित्र वात होती, और इसे सचमुच देखा गया है। बर्नहीम ने बडे सही और स्पष्ट विचार द्वारा सम्मोहन सम्वन्धी व्यक्त रूपो का सिद्धान्त इसी उपपत्ति पर खडा किया कि सव मनुष्य कम या अधिक मात्रा में आदेश के वशीभूत हो जाते हैं, वे 'आदेशवश्य' होते है। जिसे उसने आदेशवश्यता कहा था, वह स्थानान्तरण की प्रवृत्ति के अलावा और कुछ नही है, पर उसे वहुत तग दायरे में रखने पर यह बात सच है कि ऋणात्मक स्थानान्तरण इसके क्षेत्र के भीतर नही आता। पर बर्नहीम यह कभी नही वता सका कि आदेश वास्तव में क्या है, या वे कैसे पैदा होते है। उसके लिए यह एक स्वयसिद्ध तथ्य था और इसके पैदा होने की वह कोई व्याख्या नही कर सकता था। वह यह नही पहचान पाया कि 'आदेशवश्यता' यौनवृत्ति पर राग के कार्य करने पर निर्भर है, और हमें यह स्वीकार करना पडता है कि हमने अपनी विधियो मे सम्मोहन का त्याग करके स्थानान्तरण के रूप में आदेश को फिर खोज लिया है।

पर अव मै जरा रुककर आपको सूत्र पकडने का मौका देता हू। मै देख रहा हू कि आपके विचारो में एक आक्षेप इतनी प्रवलता से घूम रहा है कि यदि उसे प्रकट न किया गया तो वह ध्यान केन्द्रित करने की आपकी सारी शक्ति छीन लेगा। "अव, इस प्रकार अन्त में आपने यह मान लिया कि आप भी सम्मोहको

की तरह आदेश की सहायता लेते हैं। हम तो सारे समय यही समझते रहे हैं। पर फिर, गुजरे हुए अनुभवो के द्वारा इन सब चक्करदार रास्तो का, अचेतन सामग्री को खोजने,विपर्यासो का निर्वचन करने और उन्हे फिर अनुवादित करने का, और समय, मेहनत और धन का इतना भारी खर्च करने का, क्या लाभ, जब अन्त में असली कार्यकारी साधन आदेश ही है? आप लक्षणो के विरुद्ध सीधे आदेश ही क्यो नही देते, जैसा कि दूसरे लोग कहते हैं, जो ईमानदारी से अपने आप को सम्मोहक बताते हैं। और इसके अतिरिक्त, यदि आप यह कहते हैं कि इन चक्करदार रास्तो के द्वारा आपने अनेक महत्वपूर्ण खोजे की हैं, जो सीधे आदेश मे छिपी रहती हैं, तो उनकी प्रामाणिकता की पुष्टि कौन करेगा? क्या वे भी आदेश का, अर्थात् अनभिप्रेत आदेश का, परिणाम नही हैं? क्या आप रोगी पर इस दिशा मे भी मनचाहा प्रभाव नही डाल सकते?"

इस तरह आप मुझपर जो आरोप लगाते हैं, वह बहुत अधिक मनोरजक है, और उसका जवाब देना होगा, पर वह मैं आज नही दूगा। हमारा समय पूरा हो गया है, इसलिए अगली बार सही। आप देखेंगे कि मैं आपकी आपत्ति का उत्तर दे सकूगा। आज मुझे एक बात खत्म करनी है,जो मैंने शुरू की थी। मैंने स्थानान्तरण के कारण के जरिये आपके सामने यह व्याख्या करने का वायदा किया था कि स्वरति सम्बन्धी स्नायु-रोगो मे हमारे चिकित्सा के प्रयत्न सफल क्यो नही होते।

यह व्याख्या मैं थोडे-से शब्दो में कर सकता हू और आप देखेगे कि कितनी सरलता से पहेली हल हो जाती है, और हर चीज कैसे एक दूसरे के साथ सम्बद्ध हो जाती है। अनुभव से पता चलता है कि स्वरतिक स्नायु-रोगो से पीडित स्नायु-रोगियो में स्थानान्तरण की क्षमता नही होती, या इसका नाकाफी अश होता है। वे उदासीन भाव से चिकित्सक से विमुख हो जाते हैं, विरोध भाव से नही। इसलिए चिकित्सक का उनपर प्रभाव नही पड सकता। चिकित्सक जो कुछ कहता है, उससे वे उदासीन रहते हैं, उनपर उसकी कोई छाप नही पडती और इसलिए इलाज का प्रक्रम, जो दूसरी बातो के, अर्थात् रोगजनक द्वन्द्व के पुनरुज्जीवन और दमन के कारण होने वाले प्रतिरोध को दूर करने के साथ-साथ चल सकता है, उनके साथ नही चलाया जा सकता। वे जैसे हैं, वैसे ही रहते हैं। उन्होने बहुत बार अपने आप स्वास्थ्य-लाभ के प्रयत्न किए हैं, जिनसे रोगात्मक परिणाम पैदा हुए हैं। हम इसे बदलने के लिए कुछ नही कर सकते।

इन रोगियो की रोग-परीक्षा के आधार पर हमने कहा था कि उन्होने राग से आलम्बनो का आच्छादन अवश्य त्याग दिया होगा और आलम्बन-राग को अहम्-राग में रूपान्तरित कर दिया होगा। इसके द्वारा, हमने उनमें स्नायु-रोगो

के प्रथम समूह (हिस्टीरिया, चिन्ता और मनोग्रस्तता) के रोगियो से अन्तर
था। उन्हे स्वस्थ करने की कोशिश के समय उनका जो व्यवहार दिखाई देत
उससे इस सदेह की पुष्टि होती है। वे कोई स्थानान्तरण नही पैदा करते
इसलिए हम उन तक नही पहुच सकते और उनका इलाज नही कर सकते।

विश्लेषण-चिकित्सा

आज हम जिस बात पर विचार करने वाले है, उसका आपको पता है । मैने यह स्वीकार किया कि मनोविश्लेपण-चिकित्सा के प्रभाव का अनिवार्य आधार स्थानान्तरण, अर्थात् आदेश, है, तब आपने मुझसे पूछा था कि हम सीधे ही आदेश का प्रयोग क्यो नही करते, और आपने यह सदेह भी पेश किया था कि जब आदेश इतना बडा कार्य करता है,तब भी क्या हम अपनी मनोवैज्ञानिक खोजो की आलम्बन-निष्ठता या वैज्ञानिकता का समर्थन कर सकते है ? मैने इसका पूरा उत्तर देने का आपसे वायदा किया था ।

सीधा आदेश वह आदेश है, जो लक्षणो द्वारा ग्रहण किए गए रूपो के विरुद्ध सीधे ही दिया जाता है । यह आपकी सत्ता और रोग की तह में मौजूद प्रेरक भावो के बीच एक द्वन्द्व है । इस द्वन्द्व में आप इन प्रेरक भावो के बारे में कुछ नही सोचते । आप सिर्फ यह आवश्यक समझते है कि रोगी लक्षणो के रूप में उनके व्यक्त होने को दवा दे । मुख्यत इससे कोई फर्क नही पडता कि आप रोगी को सम्मोहित करते है या नही । बर्नहीम ने बडे जोरदार शब्दो मे बार-बार कहा था कि आदेश सम्मोहन के व्यक्त रूपो का सार तत्व है, और सम्मोहन स्वय आदेश का परिणाम है, एक आदेशित अवस्था है । वह जागृत अवस्था में आदेश का प्रयोग करना पसन्द करता था, जिससे सम्मोहन में वही परिणाम प्राप्त हो सकते है ।

तो, अब मै अनुभव के परिणामो पर पहले विचार करू या सिद्धान्त सम्बन्धी विवेचनाओ पर ? हम अनुभव से शुरू करेगे । मैने १८८९ में नान्सी में बर्नहीम को जा पकड़ा, और मै उसका शिष्य बन गया । मैने उसकी आदेश वाली पुस्तक का जर्मन भाषा में अनुवाद किया । वर्षो तक मै सम्मोहन द्वारा इलाज करता रहा । पहले तो मै प्रतिषेधात्मक आदेशो द्वारा और बाद में ब्रायर की, रोगी के जीवन के बारे में पूरी जाच करने की प्रणाली को मिलाकर इलाज करता रहा । इसलिए सम्मोहन-चिकित्सा या आदेश द्वारा चिकित्सा के परिणामो के बारे में विस्तृत आधार पर बोल सकता हू । एक पुरानी डाक्टरी कहावत के अनुसार, आदर्श चिकित्सा-शैली शीघ्र कार्य करने वाली, भरोसा करने योग्य, और रोगी को प्रिय

लगने वाली होनी चाहिए। बर्नहीम की विधि से इसकी दो बातें निश्चित रूप से पूरी होती थी। यह बहुत शीघ्र, अर्थात् विश्लेषण-चिकित्सा की अपेक्षा बहुत ही अधिक शीघ्र कार्य करती थी और इसमें रोगी को किसी परेशानी या दुविधा में नही पडना पडता था। चिकित्सक के लिए यह अन्त में नीरस हो जाती थी। इसका मतलब यह था कि हर रोगी का एक ही तरीके से इलाज किया जाए। बडे भिन्न-भिन्न प्रकार के लक्षणो को रोकने के लिए सब कार्य सदा वैसे ही किए जाए और उनके अर्थ या आशय के बारे में कुछ भी न जाना जा सके। यह एक तरह का यान्त्रिक कार्य था, वैज्ञानिक कार्य नही। इससे जादू, मन्त्र-तन्त्र और झाड-फूक का स्मरण होता था, पर तब भी रोगी के हित की दृष्टि से उसकी ओर आख मूदनी पडती थी। पर तीसरी बात इसमें नही थी। यह किसी भी दृष्टि से भरोसा करने योग्य नही थी। इसका उपयोग कुछ रोगियो मे ही हो सकता था, सबमें नही। कुछ रोगियो में इससे बडी सफलता मिल जाती थी, और कुछ में कुछ भी सफलता नहीं मिलती थी, और इसका कारण कभी पता नही चलता था। पर इससे भी बुरी बात यह थी कि इसके परिणामो में स्थायित्व नही था। कुछ समय के बाद रोगी फिर आकर कहता था कि—रोग फिर दुबारा हो गया है, या उसके स्थान पर कोई और रोग हो गया है। तब आप उसे फिर सम्मोहित करना शुरू कर सकते है। साथ ही, आपको अनुभवी लोगो की यह चेतावनी भी ध्यान में रखनी थी कि बार-बार सम्मोहन करके रोगी से उसकी स्वतन्त्रता छीनना उचित नही, और उसे इस इलाज की आदत डाल देना ठीक नही, मानो यह कोई नीद लाने वाली दवा हो। उधर, यह भी सच है कि कभी-कभी सब चीज हमारे मन के अनुकूल हो जाती थी, मामूली परिश्रम से पूर्ण और स्थायी सफलता मिल जाती थी। पर इस सतोप-जनक परिणाम की अवस्थाए छिपी रहती थी। एक रोगिणी में मैंने थोडे-से सम्मोहन के इलाज द्वारा एक उग्र अवस्था को पूरी तरह दूर कर दिया, पर जब रोगिणी ने बिना उचित कारण के मेरे प्रति दुर्भाव अपनाया, तब वह रोग फिर उसी रूप में हो गया। तब आपसी समझौते के बाद मैंने फिर उसे और अधिक पूरी तरह दूर कर दिया। पर जब वह दूसरी बार मेरी विरोधी बनी, तब वह रोग फिर पैदा हो गया। एक और अवसर पर मुझे यह अनुभव हुआ। एक रोगिणी ने, जिसके स्नाय-विक लक्षण मैं कई बार दूर कर चुका था, एक विशेषरूप से जमे हुए रोग के इलाज के समय, एकाएक अपनी भुजाए मेरी गरदन में डाल दी। मैं चाहू या न चाहू, पर इस तरह की चीज ने अन्त में यह अनिवार्य कर दिया कि मै अपने आदेश देने के अधिकार की प्रकृति और स्रोत की समस्या की जाच करू।

इतनी बात तो अनुभव के बारे में हुई। इससे पता चलता है कि सीधे आदेश का त्याग करके हमने कोई ऐसी चीज नही त्याग दी, जिसके स्थान पर कोई और चीज न आ सकती हो। अब इन तथ्यो के साथ कुछ बातें और जोडनी है।

सम्मोहन की विधि का प्रयोग होने पर रोगी को और चिकित्सक को कुछ भी प्रयत्न नही करना पड़ता। यह विधि अधिकतर डाक्टरो द्वारा स्नायु-रोगो के बारे में माने जाने वाले आम विचार से पूरी तरह मेल खाती है। डाक्टर स्नायविक व्यक्ति से कहते हैं "आप में कोई रोग नही है। यह सिर्फ स्नायविकता है, इसलिए मेरे कुछ शब्दो से ही पाच मिनट में आपके सब कष्ट दूर हो जाएगे।" पर यह बात ऊर्जा के बारे में हमारे साधारण विश्वासो के विरुद्ध है, कि बहुत थोडा प्रयास किसी भारी बोझ को, बिना किसी उपयुक्त साधन की सहायता के, सीधे ही जाकर हटा सकता है। जहा तक दोनो परिस्थितियो की तुलना हो सकती है, वहा तक अनुभव से पता चलता है कि यह तिकडम स्नायु-रोगो मे सफल नही हो सकती। पर मै जानता हू कि यह युक्ति अकाट्य नही है, विस्फोटो जैसी चीजें भी होती हैं।

मनोविश्लेषण के द्वारा हमने जो जानकारी हासिल की है, उसे देखते हुए सम्मोहन के और मनोविश्लेषण के आदेशो के भेद का इन शब्दो मे वर्णन किया जा सकता है . सम्मोहन चिकित्सा-शैली मन मे चल रही बात को ढकने को जैसे मानो उस पर पोचा फेरने की कोशिश करती है, और विश्लेषण की शैली उसे उघाडने की और कुछ चीज् हटाने की कोशिश करती है। पहली, अर्थात् सम्मोहन की शैली प्रसाधन करती है, और विश्लेषण की शैली शल्यक्रिया। सम्मोहन-शैली आदेश का उपयोग लक्षणो को रोकने मे करती है, यह दमनो को और ताकत देती है, पर इतने काम के अलावा, उन सब प्रक्रमो को जैसे का तैसा छोड देती है, जिनसे लक्षण-निर्माण हुआ है। विश्लेषण-चिकित्सा-शैली नीचे गहराई में रोग की जडो के पास उन द्वन्द्वो में पहुंचती है जिनसे लक्षण पैदा होते हैं। यह आदेश का उपयोग उन द्वन्द्वो के परिणाम को बदलने में करती है। सम्मोहन-चिकित्सा-शैली रोगी को निष्क्रिय और अपरिवर्तित रहने देती है, और इसलिए वह रोग के प्रत्येक नए उत्तेजन के सामने असहाय होता है। विश्लेषण के इलाज में चिकित्सक की तरह रोगी को भी प्रयास करना पडता है, अर्थात् भीतरी प्रतिरोधो को खत्म करने के लिए उद्योग करना पडता है। इन प्रतिरोधो को दूर कर देने पर रोगी का मानसिक जीवन स्थायी रूप से बदल जाता है। वह परिवर्धन की अधिक ऊची सतह पर उठ आता है और रोग की नई सम्भावनाओ से अप्रभावित बना रहता है। प्रतिरोधो को दूर करने का परिश्रम विश्लेपण-चिकित्सा का आवश्यक कार्य है। रोगी को इसे पूरा करना पडता है, और चिकित्सक उसे आदेशो द्वारा, जो शिक्षण के रूप में होते हैं, इसे पूरा करने में सहायता देता है। इसलिए यह ठीक कहा गया है कि मनोविश्लेषण द्वारा इलाज एक प्रकार का **पुनः शिक्षण** है।

मुझे आशा है कि आदेश का चिकित्सा में उपयोग करने की हमारी विधि मे और सम्मोहन-चिकित्सा-शैली में इसका प्रयोग करने की पुरा नाम विधि में जो अन्तर है, वह मैने आपके सामने स्पष्ट कर दिया है। क्योंकि हमने आदेश का प्रभाव

पीछे की ओर जाकर स्थानान्तरण तक देखा है, इसलिए आप यह भी समझ गए होगे कि सम्मोहन-चिकित्सा-शैली में परिणाम इतना अविश्वमनीय क्यो होता है, और विश्लेषण-चिकित्सा-शैली, अपनी सीमाओ के अन्दर, क्यो भरोसे योग्य है। सम्मोहन का प्रयोग करते हुए हमें पूरी तरह रोगी के स्थानान्तरण की दशा पर निर्भर रहना पडता है, और फिर भी हम इस दशा पर कोई प्रभाव नही डाल सकते। जिस रोगी को सम्मोहित किया जा रहा है, उसका स्थानान्तरण ऋणात्मक भी हो सकता है, या उभयात्मक भी हो सकता है, जैसा कि आमतौर से होता है, या हो सकता है कि उसने विशेष रुख अपनाकर अपने स्थानान्तरण से अपने को बचाए रखा हो। इस सबके बारे में हमें कुछ पता नही चलता। मनोविश्लेपण में हम स्वय स्थानान्तरण पर विचार करते हैं। जो कुछ इसके मार्ग में बाधक होता है, उसे हटा देते हैं, और जिस साधन को कार्य करना है, उसे सचालित करते हैं। इस प्रकार आदेश की शक्ति से हम बिलकुल नए फायदे उठाते हैं। हम इसका नियन्त्रण कर सकते हैं। अब रोगी अकेला अपनी इच्छा के अनुसार अपनी आदेश-वश्यता की व्यवस्था नही करता, बल्कि जहा तक वह इसके प्रभाव के अधीन हो सकता है, वहा तक हम उसकी आदेशवश्यता को रास्ता दिखाते हैं।

अब आप कहेंगे कि इस बात की परवाह बिना किए कि विश्लेपण के पीछे मौजूद प्रेरक बल को स्थानान्तरण कहा जाए या आदेश, यह खतरा अब भी है कि रोगी पर हमारे प्रभाव के कारण, हमारी खोजो की आलम्बननिष्ठ निश्चितता पर सन्देह पैदा हो जाए, और जो चीज चिकित्सा में लाभकारक है, वही गवेपणा में हानिकारक है। यह आक्षेप मनोविश्लेपण पर बहुत बार किया गया और यह मानना होगा कि यद्यपि यह आक्षेप उचित नही कहा जा सकता, पर फिर भी यह तर्कविरुद्ध नही है। यदि इसे उचित सिद्ध किया जा सकता तो मनोविश्लेपण एक विशेप रूप से छिपाया हुआ और खास प्रभावकारी किस्म का आदेश वाला इलाज ही होता, और रोगी के पिछले जीवन के अनुभवो, मानसिक गतिकी, अचेतन, इत्यादि के बारे में इसके सब निष्कर्पो को हल के रूप में ही ग्रहण किया जा सकता था। इस प्रकार, हमारे विरोधी यह सोचते हैं कि सारे अनुभव न सही, तो भी यौन अनुभवो का महत्व, हमने पहले अपने भ्रष्ट मनो में ये सब बातें गढकर 'रोगी के मन में डाल दी हैं।' इन आरोपो का खडन सिद्धान्त की अपेक्षा अनुभव की सहायता से अधिक सन्तोपजनक रीति से हो जाता है। जिसने स्वय किसीका मनो-विश्लेपण किया है, उसे असख्य बार यह निश्चय हुआ होगा कि इस तरह रोगी के मन में बातें डाल देना असम्भव है। उसे किसी सिद्धान्त-विशेप का अनुयायी बना लेने में, और इस प्रकार चिकित्सक द्वारा माने जाने वाले किसी गलत विश्वास का विश्वासी बना लेने में कोई कठिनाई नही है। इस मामले में वह किसी आज्ञाकारी शिष्य की तरह व्यवहार करता है, पर इस तरह आपने सिर्फ उसकी बुद्धि पर असर

डाला है, रोग पर नही। उसके द्वन्द्वो का समाधान और उसके प्रतिरोधो की पराजय तभी होती है जब उसको अपने भीतर खोजने के लिए बताई बाते वही हो जो सचमुच उसमें मौजूद हैं। जो चीज़ चिकित्सक ने करने में गलत अनुमान की है, वह विश्लेषण के समय दूर हो जाएगी। इसे हटाना होगा और इसके स्थान पर अधिक सही चीज़ लानी होगी। चिकित्सक का लक्ष्य यह है कि वह बडी सावधानी से चलता हुआ आदेश से पैदा होने वाली अस्थायी सफलताओ को रोके, पर यदि वे पैदा हो जाती हैं तो कोई बडी हानि नही होती, क्योकि हम पहले परिणाम से ही सन्तुष्ट नही हो जाते। यदि रोग की सब अस्पष्ट बातो की व्याख्या न हो जाए, स्मृति के सब खाली स्थान न भर जाए, और दमनो के आरम्भिक अवसरो का पता न लग जाए तो हम विश्लेषण को अधूरा ही समझते हैं। जब परिणाम समय से पहले दिखाई देते हैं, तब हम उन्हे विश्लेषण-कार्य को आगे बढाने वाले के बजाय रोकने वाले समझते हैं, और बीच-बीच में उस स्थानान्तरण को उद्घाटित करके, जिस पर वे स्थिर होते हैं, उन्हे फिर नष्ट कर दिया जाता है। मूलत यह अन्तिम विशेषता विश्लेषण-कार्य और शुद्ध आदेश में भेद करती है, और यह स्पष्ट कर देती है कि हमारे परिणाम विश्लेषण के परिणाम हैं, आदेश के नही। दूसरे प्रकार के प्रत्येक आदेशात्मक इलाज मे स्थानान्तरण को सावधानी से जैसे को तैसा कायम रखा जाता है। विश्लेषण मे स्वय इसका इलाज किया जाता है और इसको इसके विविध रूपो मे काट-छाट दिया जाता है। विश्लेषण के बाद स्वय स्थानान्तरण ही नष्ट हो जाना चाहिए। यदि तब सफलता आती है और बनी रहती है, तो वह आदेश के आधार पर नही खडी है, बल्कि आदेश की सहायता से की गई, भीतरी प्रतिरोधो की विजय पर, रोगी के भीतर लाए गए आन्तरिक परिवर्तन पर, खड़ी है।

इलाज के समय आदेश के एकाकी प्रभावो को पैदा होने से सम्भवत. रोकने-वाली चीज वह द्वन्द्व है जो प्रतिरोधो के खिलाफ लगातार चल रहा है, और इन प्रतिरोधो को, अपने आपको ऋणात्मक (विरोधपूर्ण) स्थानान्तरण मे रूपान्तरित करना आता है। हम यह बताये बिना भी नही रह सकते कि विश्लेषण के बहुत सारे सूक्ष्म निष्कर्षों की, जिनके आदेश द्वारा उत्पन्न होने का शक हो सकता है, दूसरे अपत्तिजनीय स्रोतो से पुष्टि हो जाती है। हमारे पास इस सम्बन्ध मे असन्दिग्ध गवाह हैं, अर्थात् डेमेन्शिया रोगी और पैरानोइआ रोगी हैं, जिनके बारे में यह शक नही हो सकता कि वे आदेशो से प्रभावित हुए हैं। ये रोगी अपनी चेतना में घुसी हुई कल्पना-सृष्टियो और प्रतीको के अनुवादो के रूप में जो कुछ बताते हैं, वह स्थानान्तरण स्नायु-रोगियो के अचेतन के बारे में हमारी जाच-पडताल के परिणामो से बिलकुल मिलता है, और इस प्रकार हमारे दिए हुए निर्वचनो की, जिन पर प्राय सन्देह किया जाता है, आलम्बननिष्ठ सत्यता की पुष्टि हो जाती है।

मैं समझता हू कि यदि इन मामलो में आप विश्लेषण पर विश्वास करें तो आपका यह विश्वास गलत सिद्ध नही होगा।

अब हमें स्वास्थ्य-लाभ के प्रक्रम को राग-सिद्धान्त की पदावली में प्रकट करके उसके वर्णन को पूरा करना है। स्नायु-रोगी सुख-भोग में या कार्य-सिद्धि में असमर्थ है—सुख-भोग में तो इस कारण कि उसका राग किसी यथार्थ आलम्वन से नही लगा हुआ है, और कार्य-सिद्धि में इसलिए क्योकि बहुत अधिक ऊर्जा, जो वैसे उसके पास उपयोग करने के लिए होती है, राग को दमन किए रखने में और उसकी सिर उठाने की कोशिशो को विफल करने में ही खर्च हो जाती है। यदि उसके अहम् और राग के बीच चल रहा द्वद्व खत्म हो जाए और उसके अहम् को उपयोग करने के लिए राग फिर मिल जाए, तो वह स्वस्थ हो जाए। इसलिए इलाज का काम यह है कि वह इसके पहले वाले लगावो से राग को छुडाए, जो अहम् की पहुच से परे है, और इसे फिर अहम् के लिए उपयोगी बनाए। अब स्नायु-रोगी का राग कहा है? इसका आसानी से पता चल जाता है यह लक्षणो से लगा हुआ है जिनसे इसे इन परिस्थितियो में प्राप्त हो सकने वाली एकमात्र चीज—स्थानापन्न सन्तुष्टि—मिल जाती है। तो, हमें लक्षणो को अपने वश में करना होगा, उन्हे खत्म करना होगा, और रोगी हमसे यही चाहता है। लक्षणो को खत्म करने के लिए आवश्यक है कि हम पीछे लौटकर उस स्थान पर पहुचें, जिस स्थान पर वे शुरू में पैदा हुए थे। जिस द्वन्द्व से वे पैदा हुए, उसपर विचार करें, और उन नोदक बलो की सहायता से, जो उस समय उपलब्ध नही थे, इसे रास्ता दिखाते हुए नए समाधान की ओर ले जाए। दमन के प्रक्रम का यह सशोधन दमन तक पहुचाने वाले प्रक्रमो के स्मृति-लेशो की सहायता से अशत ही किया जा सकता है। इस कार्य का असली अश उन आरम्भिक द्वन्द्वो के नए सस्करण—चिकित्सक के साथ सम्बन्ध में 'स्थानान्तरण'—में पैदा करके किया जाता है, जिसमें रोगी वैसा ही व्यवहार करने की कोशिश करता है जैसा उसने पहले किया था, और चिकित्सक उसकी आत्मा के सब उपलब्ध बलो को ऐसे प्रेरित करता है कि वे उसे दूसरे निश्चय पर पहुचाए। इस प्रकार स्थानान्तरण वह युद्ध-क्षेत्र है जिसमें द्वन्द्व करने वाले सब बलो को मिलना पडता है।

सारा राग और इसका विरोध करने वाले सब बलो की पूरी शक्ति एक चीज—चिकित्सक के साथ सम्बन्ध—पर केन्द्रित हो जाती है। इस प्रकार यह अनिवार्य हो जाता है कि लक्षण अपने राग से वचित हो जाए। रोगी के पहले वाले रोग के स्थान पर कृत्रिम रूप से बनाया गया स्थानान्तरण विकार पैदा हो जाता है। उसके राग के अनेक अयथार्थ आलम्बनो के स्थान पर चिकित्सक के व्यक्तित्व का एक आलम्बन आ जाता है, और यह भी 'कल्पित' होता है। इस आलम्बन के विषय में यह जो नया द्वद्व पैदा होता है, वह विश्लेषक के आदेशो के ऊपरी तल पर, अधिक

ऊची मानसिक सतहो पर आए हुए विश्लेषक के आदेशो द्वारा पैदा हुआ है, और वहा यह एक प्रकृत मानसिक द्वन्द्व के रूप में चलाया जाता है। क्योंकि इस प्रकार एक नया दमन नही होने दिया जाता, इसलिए अहम् और राग के बीच विरोध खत्म हो जाता है। रोगी के मन में फिर एकता या अखडता पैदा हो जाती है। जब राग चिकित्सक के व्यक्तित्व-रूप अपने अस्थायी आलम्बन से अलग किया जाता है, तब यह अपने पहले वाले आलम्बनो पर नही लौट सकता, और अब यह अहम् के उपयोग के लिए उसकी सेवा में रहता है। इलाज के समय इस द्वन्द्व में हमारा विरोध करने वाले बलो में एक ओर तो राग की कुछ प्रवृत्तियो से अहम् की अरुचि है, जो प्रवृत्तियो का दमन करने के रूप मे प्रकट हुई है, और दूसरी ओर, राग की आसक्तता या लगन या 'चिपकूपन' है, जो उन आलम्बनो से आसानी से अलग नही होता, जिन्हे इसने एक बार आच्छादित किया है।

इस प्रकार चिकित्सा-कार्य में दो कलाए होती हैं। पहली कला मे सारे राग को लक्षणो से परे धकेलकर स्थानान्तरण में लाया जाता है और वहा इकट्ठा कर दिया जाता है, और दूसरी कला में इस नए आलम्बन के आसपास द्वन्द्व होता रहता है, और राग को इससे मुक्त किया जाता है। इस नए सघर्ष के सफल परिणाम का निश्चायक परिवर्तन यह है कि दमन को परे रखा जाय जिससे राग अचेतन मे भागकर अपने आपको अहम् से फिर न हटा सके। यह बात विश्लेषक के आदेशो के परिणामस्वरूप अहम् मे होने वाले परिवर्तनो से सम्भव हो जाती है। अचेतन को क्षीण करके अहम्, निर्वचन-कार्य द्वारा, जिसमे अचेतन सामग्री चेतन मे आ जाती है, विस्तृत हो जाता है। शिक्षण के द्वारा इसका राग से फिर मेल हो जाता है, और इसे राग को कुछ सन्तुष्टि देने के लिए तत्पर बना लिया जाता है, और अपने राग की माग से इसे जो भय था, वह इसके उस नए सामर्थ्य से कम हो जाता है, जो यह राग की कुछ मात्रा उदात्तीकरण में खर्च करने के लिए प्राप्त करता है। इलाज का रास्ता इस आदर्श वर्णन के जितना समीप होता है, मनोविश्लेषण-चिकित्सा मे उतनी ही सफलता होती है।

इसके मार्ग की रुकावटें है—राग की चलिष्णुता का अभाव, जो इसके आलम्बनो से मुक्त किए जाने का प्रतिरोध करता है, और रोगी की स्वरति की दृढता, जो आलम्बन-स्थानान्तरण को एक निश्चित मात्रा से अधिक नहीं पैदा होने देगी। शायद स्वास्थ्य-लाभ के प्रक्रम की गतिकी तब अधिक स्पष्ट हो जाएगी जब हम उसका वर्णन यो करें कि स्थानान्तरण के जरिए इसका एक भाग अपनी ओर खीच-कर हम राग की उस सारी मात्रा को इकट्ठा कर लेते है, जो अहम् के नियन्त्रण से हटाई गई है।

यहा यह स्पष्ट कर देना भी उचित होगा कि विश्लेषण के समय और विश्ले-षण के द्वारा राग के जो वितरण हुए हैं, उनसे पहले वाले रोग में इसके स्वभाव

के विषय में कोई सीधा अनुमान नही किया जा सकता। मान लो कि कोई प्रबल पिता-स्थानान्तरण कायम करके और फिर उसे चिकित्सक के व्यक्तित्व पर लाकर किसी रोगी का सफलता से इलाज कर दिया जाता है, पर इसका यह आवश्यक निष्कर्ष नही है कि रोगी पहले अपने पिता पर राग का अचेतन सयोग करके इस तरह रोगी हुआ था। पिता-स्थानान्तरण सिर्फ वह युद्ध-क्षेत्र है जिसपर हम राग को जीतते और कैदी बना लेते हैं। रोगी के राग को अन्य स्थानो से हटाकर यहा खीच लिया गया है। आवश्यक नही कि यह रण-क्षेत्र दुश्मन का सबसे महत्वपूर्ण मोर्चा हो। दुश्मन की राजधानी की रक्षा इसके द्वारो से ठीक पहले करने की आवश्यकता नही। स्थानान्तरण की फिर समाप्ति हो जाने के बाद ही चिकित्सक अपनी कल्पना में रोग द्वारा निरूपित राग के स्थानो की पुन रचना आरम्भ कर सकता है।

राग-सिद्धान्त के प्रकाश में स्वप्नो के बारे में एक अन्तिम बात कहनी होगी। स्नायु-रोगी की 'गलतियो' और उसके मुक्त साहचर्यो की तरह उसके स्वप्नो की सहायता से हम लक्षणो का अर्थ जान पाते हैं, और राग के स्थानो का पता लगा सकते हैं। उनमें इच्छा-पूर्ति जो रूप ग्रहण करती है, उनसे हमें यह पता चलता है कि दमन किए गए इच्छा-आवेग कौन-से हैं, और वे आलम्बन कौन-से हैं, जिनपर अहम् से हटने के बाद राग ने अपना लगाव किया है। इसलिए मनोविश्लेषण-चिकित्सा में स्वप्नो का निर्वचन बहुत बडा कार्य करता है, और बहुत-से रोगियो में यह बहुत समय तक विश्लेषण का सबसे महत्वपूर्ण साधन होता है। हम पहले देख चुके हैं कि नीद की अवस्था अपने आप ही दमनो को कुछ शिथिल कर देती है। इसपर जो भारी दबाव होता है, उसमें यह कमी होने पर यह दमित इच्छा स्वप्न में अपनी इतनी स्पष्ट अभिव्यक्ति कर सकती है जितनी दिन में लक्षणो के रूप में नही की जा सकती। इसलिए दमित अचेतन की जानकारी का, जो अहम् से हटे हुए राग का घर है, सबसे आसान रास्ता स्वप्नो का अध्ययन ही हो जाता है।

पर स्नायु-रोगियो के स्वप्नो में और प्रकृत लोगो के स्वप्नो में कोई सारभूत भेद नही होता। सच पूछिए तो शायद इनको उनसे अलग भी नही किया जा सकता। स्नायु-रोगियो के स्वप्नो की ऐसे तरीके से व्याख्या करना, जो प्रकृत लोगो के स्वप्नो पर ठीक न बैठे, तर्क विरुद्ध होगा। इसलिए हमें यह निष्कर्ष निकालना पडता है कि स्नायु-रोग और स्वास्थ्य का अन्तर सिर्फ दिन के समय होता है—स्वप्न-जीवन में कायम नही रहता। इस प्रकार, यह आवश्यक हो जाता है कि कुछ ऐसे निष्कर्ष, जो स्नायु-रोगियो के स्वप्नो और लक्षणो के परस्पर सम्बन्ध के परिणामस्वरूप प्राप्त हुए हैं, स्वस्थ व्यक्तियो पर लागू किए जाए। हमें मानना पडता है कि स्वस्थ आदमी में भी मानसिक जीवन के वे कारक होते हैं, जो स्वप्न का या लक्षण का निर्माण कराने वाले एकमात्र कारक हैं, और हमें यह निष्कर्ष भी निका-

लना पडता है कि स्वस्थ व्यक्तियो में भी दमन मौजूद होते है, और उन्हे कायम रखने के लिए ऊर्जा की कुछ मात्रा खर्च करनी पड़ती है। इसी तरह, हमें यह भी मानना पडता है कि उनके अचेतन मनो में भी दमित आवेग रहते हैं, जिनमें अब भी ऊर्जा होती है, और **उनमें भी राग का कुछ हिस्सा अहम् के उपयोग से हटाया हुआ होता है**। इसलिए स्वस्थ आदमी भी, फलत , स्नायु-रोगी होता है, पर उसमे ऐसा एकमात्र लक्षण, जो परिवर्धित होने में समर्थ प्रतीत होता है, स्वप्न ही है। जब आप उसके जागृत जीवन की आलोचनात्मक जाच करते हैं, तब आपको एक ऐसी चीज मिलती है जो इस तर्कसगत मालूम होने वाले निष्कर्ष का खडन करती है, क्योंकि ऊपर से स्वस्थ लगने वाले इस जीवन में असख्य छोटे-छोटे और व्यवहार की दृष्टि से महत्वहीन लक्षण-निर्माण व्याप्त है।

इसलिए स्नायविक स्वास्थ्य और स्नायविक रोग (स्नायु-रोग) का अतर कम होकर एक व्यावहारिक अतर या विभेद रह जाता है, और उसका निश्चय व्यावहारिक परिणाम द्वारा किया जाता है—कोई व्यक्ति जीवन में सुख-भोग और सक्रिय कार्य-सिद्धि के सामर्थ्य की काफी मात्रा का अनुभव करने में कहा तक समर्थ है? सम्भवत. इस अन्तर का रूप उस अनुपात के अनुरूप होता है, जो उसके पास मौजूद मुक्त ऊर्जा में और दमन से बधी हुई ऊर्जा में होता है, अर्थात् यह मात्रात्मक अन्तर है, गुणात्मक नही। मुझे आपको यह याद दिलाने की आवश्यकता नही कि इस विचार से हमारे इस विश्वास का सैद्धान्तिक आधार बनता है कि स्नायु-रोगो का सारत इलाज अवश्य किया जा सकता है चाहे उनका आधार शरीर-रचना पर आश्रित स्वभाव या मनोविन्यास भी हो।

इसलिए स्वास्थ्य की विशेषताओ की जानकारी प्रदान करते हुए इतनी बात, स्नायु-रोगी और स्वस्थ व्यक्तियो के स्वप्न समान होने से, अनुमित की जा सकती है। पर स्वय स्वप्नो के बारे में एक और अनुमान निकालना होगा, और वह यह है कि उन्हे स्नायविक लक्षणो के साथ उनके बन्धन से पृथक् नही किया जा सकता, कि हम यह मानने के लिए स्वतत्र नही हैं कि उनकी सारभूत प्रकृति उन्हे इस सूत्र में बाद लेने से खत्म हो जाती है, कि वे 'विचारो का, अभिव्यक्ति के बहुत पुराने और अप्रचलित रूपो में अनुवाद' हैं। और हमें यह निष्कर्ष निकालना होगा कि उनमे राग के वे विन्यास और इच्छा के वे आलम्बन प्रकट होते हैं, जो उस समय सचमुच क्रियाशील और प्रबल है।

अब हम लगभग अन्त पर आ गए है। शायद आप इस बात से निराश होंगे कि मनोविश्लेषण-चिकित्सा की चर्चा करते हुए मैंने सिर्फ सिद्धान्त पर विचार किया है, और जिन अवस्थाओ में इलाज किया जाना है या इसके जो परिणाम होते है, उनके बारे में मैंने आपको कुछ नही बताया, पर मैं इन दोनो को छोडता हू. पहले को तो इस कारण कि मेरा आशय यह कभी भी नही था कि मै आपको

विश्लेषण की विधि का प्रयोग करने की क्रियात्मक शिक्षा दे दू, और पिछले को इस कारण, क्योकि इसके विरोध में मेरे मन में अनेक भाव है। इन व्याख्यानो के आरम्भ में मैंने वलपूर्वक कहा था कि अनुकूल परिस्थितियो में हम ऐसे इलाज करने में सफल हो जाते है जो अन्य चिकित्सा-शैलियो के सर्वोत्तम इलाजो से किसी तरह भी घटिया नही होते। शायद मै यह भी कह सकता हू कि ये परिणाम और किसी विधि से प्राप्त नही किये जा सकते। यदि मै इससे अधिक कहूगा तो यह सन्देह किया जाएगा कि मै आत्मविज्ञापन द्वारा अपने विरोधियो की निन्दाकारक आवाज को दबा देना चाहता हू। 'सहयोगी' चिकित्सको ने सार्वजनिक सम्मेलनो में भी मनोविश्लेषको को वार-वार यह धमकी दी है कि हम विश्लेषण की विफलताओ और हानिकारक प्रभावो का सग्रह प्रकाशित करके इलाज की इस विधि की निरर्थकता के बारे में जनता की आखें खोल देंगे। इस तरह की कार्यवाही द्वेषपूर्ण और खण्डनात्मक तो होगी ही, पर उस बात को छोड दिया जाए, तो भी, इस तरह के सग्रह को विश्लेषण के चिकित्सा सम्बन्धी परिणामो के बारे में सही अन्दाजा लगाने के लिए ठीक गवाही नही माना जा सकता। मनोविश्लेषण-चिकित्सा-शैली, जैसा कि आप जानते हैं, अभी शैशव काल में है। इसकी विधि को पूरा वनाने में अनेक वर्ष लगेंगे, और यह काम विश्लेषण करते हुए, अनुभव वढने के साथ-साथ ही किया जा सकता है। इसकी विधियो की शिक्षा देने में जो कठिनाइया हैं, उनके कारण नए आदमी को अपनी क्षमता वढाने के लिए अधिकतर अपनी ही सूझ-बूझ पर निर्भर होना पडता है और उसके आरम्भिक वर्षो के परिणामो को विश्लेषण-चिकित्सा की अधिकतम सम्भव सफलताओ का सूचक नही माना जा सकता।

मनोविश्लेषण के आरम्भ में किये गए इलाज के वहुत-से प्रयत्न विफल रहे थे, क्योकि वे प्रयत्न ऐसे रोगियो में किए गए जो इसकी प्रक्रिया के लिए बिलकुल अनुपयुक्त थे, और जिन्हे आज हम कुछ सकेतो का अनुसरण करके अलग कर देते है। पर इन सकेतो का पता जाच करने से ही चलता है। शुरू में हम यह नही जानते थे कि पैरानोइआ और डेमेन्शिया प्रीकौक्स जव पूर्णत परिवर्धित होते है, तव वे विश्लेषण से कावू में नही आते। फिर भी, सव तरह के रोगो पर इस विधि की परख करना उचित है। पर उन आरम्भिक वर्षो की अधिकतर विफलताओ का कारण चिकित्सक की त्रुटिया पात्र के चुनाव में अनुपयुक्तता नही थी, वल्कि प्रतिकूल वाह्य अवस्थाए थी। मैने सिर्फ आन्तरिक प्रतिरोधो की चर्चा की है, जो रोगी की ओर से किए जाते हैं—ये अनिवार्य है और इन्हे दूर किया जा सकता है। रोगी की परिस्थितिया और वातावरण विश्लेषण के विरूद्ध जो वाह्य प्रतिरोध खडे कर देते है, उनका सैद्धान्तिक महत्व कुछ भी नही है पर व्यावहारिक महत्व वहुत अधिक है। मनोविश्लेपण द्वारा इलाज की तुलना शल्य-कार्य या शरीर के आपरेशन से की जा

सकती है, और उसकी तरह इसे भी अपनी सफलता के लिए अनुकूलतम परिस्थितियो में किए जाने का अधिकार है। सर्जन या शल्य-चिकित्सक जो पूर्व व्यवस्थाए करता है उनसे आप परिचित हैं—उपयुक्त कमरा, काफी प्रकाश, विशेषज्ञ सहायक, रिश्तेदारो को अलग हटा देना, आदि। अब आप बताइए कि यदि आपरेशन करने के समय उसका सारा परिवार आपरेशन स्थल मे झाक रहा हो, और हर नश्तर लगने पर जोर से चीख रहा हो तो कितने आपरेशन सफल होगे! मनोविश्लेषण द्वारा इलाज में रिश्तेदारो का दखल पूरा खतरा है, और साथ ही ऐसा खतरा है जिसको दूर करने का तरीका हमारी समझ में नही आता। हमारे पास रोगी के भीतरी प्रतिरोधो को, जिन्हे हम आवश्यक मानते हैं, दूर करने का उपाय है, पर इन बाहरी प्रतिरोधो से हम अपने आप को कैसे बचाए? कितना भी स्पष्टीकरण कीजिए, पर रिश्तेदारो को समझा लेना असम्भव है, और न आप उनसे कह सकते ह कि वे इस सारे मामले से बिलकुल अलग रहे। आप उन्हे अपने मन की बाते भी नही बता सकते, क्योकि तब यह खतरा है कि रोगी को हम पर विश्वास नही रहेगा, क्योकि वह यह चाहता है, और ठीक ही चाहता है, कि जिस मनुष्य को वह अपने मन की बात बताता है, वह उसका ही पक्ष ले। जिसे पारिवारिक जीवन में आमतौर से फूट डालने वाले मतभेदो की जानकारी है उसे, विश्लेषक के नाते, यह देखकर कुछ भी आश्चर्य नही होगा कि रोगी के निकटतम लोग बहुधा उसके इलाज में कम और उसके वर्तमान रूप को कायम रखने मे ज्यादा दिलचस्पी रखते हैं। जब ऐसा होता है कि स्नायु-रोग परिवार के विभिन्न सदस्यो के आपसी सघर्षो से सम्बन्धित होता है, तब स्वस्थ व्यक्ति अपने निजी हित को रोगी के स्वास्थ्य-लाभ के मुकाबले अधिक महत्व देता है। आखिर यह कोई आश्चर्य की बात नही कि पति ऐसे इलाज को पसन्द नही करता जिसमे, जैसी कि उसकी सही कल्पना है, उसके सब पाप खुल जाएगे। हम इसपर आश्चर्य भी नहीं करते, पर जब हमारे प्रयत्न निष्फल रहते है और वे बीच में ही इसलिए छोड देने पडते है कि रोगी-पत्नी के प्रतिरोधो के साथ पति का भी प्रतिरोध आ मिला, तब हम अपने आप को दोष नही दे सकते। इतना ही है कि हमने एक ऐसा काम उठा लिया था, जो मौजूदा अवस्थाओ में किया नहीं जा सकता।

आपके सामने बहुत सारे रोगियो का वर्णन करने के बजाय मैं सिर्फ एक रोगी की चर्चा करूगा, जिसके मामले में मुझे अपने पेशे के प्रति सच्चा रहने की खातिर कष्ट उठाना पड़ा। बहुत वर्ष पहले मैंने एक नौजवान लड़की का विश्लेषण द्वारा इलाज शुरू किया। पहले बहुत समय तक वह डर के कारण घर से बाहर नही जा सकती थी और न अकेली घर पर रह सकती थी। बहुत हिचकिचाहट के बाद उसने स्वीकार किया कि उसके मन में उस अनुराग के कुछ चिह्न बहुत नहिर है जो उसने अपनी माता और उस परिवार के एक धनी मित्र के बीच देख

विश्लेषण की विधि का प्रयोग करने की क्रियात्मक शिक्षा दे दू, और पिछले को इस कारण, क्योकि इसके विरोध में मेरे मन में अनेक भाव है। इन व्याख्यानो के आरम्भ में मैने वलपूर्वक कहा था कि अनुकूल परिस्थितियो में हम ऐसे इलाज करने में सफल हो जाते है जो अन्य चिकित्सा-शैलियो के सर्वोत्तम इलाजो से किसी तरह भी घटिया नही होते। शायद मै यह भी कह सकता हू कि ये परिणाम और किसी विधि से प्राप्त नही किये जा सकते। यदि मै इससे अधिक कहूगा तो यह सन्देह किया जाएगा कि मै आत्मविज्ञापन द्वारा अपने विरोधियो की निन्दाकारक आवाज को दबा देना चाहता हू। 'सहयोगी' चिकित्सको ने सार्वजनिक सम्मेलनो में भी मनोविश्लेपको को वार-वार यह धमकी दी है कि हम विश्लेषण की विफलताओ और हानिकारक प्रभावो का सग्रह प्रकाशित करके इलाज की इस विधि की निरर्थकता के बारे में जनता की आखें खोल देंगे। इस तरह की कार्यवाही द्वेषपूर्ण और खण्डनात्मक तो होगी ही, पर उस बात को छोड दिया जाए, तो भी, इस तरह के सग्रह को विश्लेषण के चिकित्सा सम्बन्धी परिणामो के बारे में सही अन्दाजा लगाने के लिए ठीक गवाही नही माना जा सकता। मनोविश्लेषण-चिकित्सा-शैली, जैसा कि आप जानते है, अभी शैशव काल में है। इसकी विधि को पूरा वनाने में अनेक वर्ष लगेंगे, और यह काम विश्लेपण करते हुए, अनुभव बढने के साथ-साथ ही किया जा सकता है। इसकी विधियो की शिक्षा देने में जो कठिनाइया है, उनके कारण नए आदमी को अपनी क्षमता वढाने के लिए अधिकतर अपनी ही सूझ-बूझ पर निर्भर होना पडता है और उसके आरम्भिक वर्षो के परिणामो को विश्लेवण-चिकित्सा की अधिकतम सम्भव सफलताओ का सूचक नही माना जा सकता।

मनोविश्लेपण के आरम्भ में किये गए इलाज के वहुत-से प्रयत्न विफल रहे थे, क्योकि वे प्रयत्न ऐसे रोगियो में किए गए जो इसकी प्रक्रिया के लिए बिलकुल अनुपयुक्त थे, और जिन्हे आज हम कुछ सकेतो का अनुसरण करके अलग कर देते है। पर इन सकेतो का पता जाच करने से ही चलता है। शुरू में हम यह नही जानते थे कि पैरानोइआ और डेमेन्शिया प्रीकौक्स जव पूर्णत परिवर्धित होते है, तव वे विश्लेपण से कावू में नही आते। फिर भी, सव तरह के रोगो पर इस विधि की परख करना उचित है। पर उन आरम्भिक वर्षो की अधिकतर विफलताओ का कारण चिकित्सक की त्रुटिया पात्र के चुनाव में अनुपयुक्तता नही थी, वल्कि प्रतिकूल वाह्य अवस्थाए थी। मैने सिर्फ आन्तरिक प्रतिरोधो की चर्चा की है, जो रोगी की ओर से किए जाते है—ये अनिवार्य है और इन्हे दूर किया जा सकता है। रोगी की परिस्थितिया और वातावरण विश्लेपण के विरूद्ध जो वाह्य प्रतिरोध खडे कर देते हैं, उनका सैद्धान्तिक महत्व कुछ भी नही है पर व्यावहारिक महत्व वहुत अधिक है। मनोविश्लेपण द्वारा इलाज की तुलना शल्य-कार्य या शरीर के आपरेशन से की जा

सकती है, और उसकी तरह इसे भी अपनी सफलता के लिए अनुकूलतम परिस्थितियो में किए जाने का अधिकार है। सर्जन या शल्य-चिकित्सक जो पूर्व व्यवस्थाए करता है उनसे आप परिचित हैं—उपयुक्त कमरा, काफी प्रकाश, विशेषज्ञ सहायक, रिश्ते-दारो को अलग हटा देना, आदि। अब आप बताइए कि यदि आपरेशन करने के समय उसका सारा परिवार आपरेशन स्थल में झाक रहा हो, और हर नश्तर लगने पर जोर से चीख रहा हो तो कितने आपरेशन सफल होगे। मनोविश्लेषण द्वारा इलाज मे रिश्तेदारो का दखल पूरा खतरा है, और साथ ही ऐसा खतरा है जिसको दूर करने का तरीका हमारी समझ में नही आता। हमारे पास रोगी के भीतरी प्रतिरोधो को, जिन्हे हम आवश्यक मानते हैं, दूर करने का उपाय है, पर इन बाहरी प्रतिरोधो से हम अपने आप को कैसे बचाए? कितना भी स्पष्टीकरण कीजिए, पर रिश्तेदारो को समझा लेना असम्भव है, और न आप उनसे कह सकते ह कि वे इस सारे मामले से बिलकुल अलग रहे। आप उन्हे अपने मन की बाते भी नही बता सकते, क्योंकि तब यह खतरा है कि रोगी को हम पर विश्वास नही रहेगा, क्योकि वह यह चाहता है, और ठीक ही चाहता है, कि जिस मनुष्य को वह अपने मन की बात बताता है, वह उसका ही पक्ष ले। जिसे पारिवारिक जीवन में आमतौर से फूट डालने वाले मतभेदो की जानकारी है उसे, विश्लेपक के नाते, यह देखकर कुछ भी आश्चर्य नही होगा कि रोगी के निकटतम लोग बहुधा उसके इलाज में कम और उसके वर्तमान रूप को कायम रखने मे ज्यादा दिलचस्पी रखते हैं। जब ऐसा होता है कि स्नायु-रोग परिवार के विभिन्न सदस्यो के आपसी सघर्षो से सम्बन्धित होता है, तब स्वस्थ व्यक्ति अपने निजी हित को रोगी के स्वास्थ्य-लाभ के मुकाबले अधिक महत्व देता है। आखिर यह कोई आश्चर्य की बात नही कि पति ऐसे इलाज को पसन्द नही करता जिसमें, जैसी कि उसकी सही कल्पना है, उसके सब पाप खुल जाएगे। हम इसपर आश्चर्य भी नही करते, पर जब हमारे प्रयत्न निष्फल रहते है और वे बीच मे ही इसलिए छोड देने पडते हैं कि रोगी-पत्नी के प्रतिरोधो के साथ पति का भी प्रतिरोध आ मिला, तब हम अपने आप को दोष नही दे सकते। इतना ही है कि हमने एक ऐसा काम उठा लिया था, जो मौजूदा अवस्थाओ मे किया नही जा सकता।

आपके सामने बहुत सारे रोगियो का वर्णन करने के बजाय मैं सिर्फ एक रोगी की चर्चा करूगा, जिसके मामले में मुझे अपने पेशे के प्रति सच्चा रहने की खातिर कष्ट उठाना पडा। बहुत वर्ष पहले मैंने एक नौजवान लडकी का विश्लेषण द्वारा इलाज शुरू किया। पहले बहुत समय तक वह डर के कारण घर से बाहर नही जा सकती थी और न अकेली घर पर रह सकती थी। बहुत हिचकिचाहट के बाद उसने स्वीकार किया कि उसके मन मे उस अनुराग के कुछ चिह्न बहुत अधिक है जो उसने अपनी माता और उस परिवार के एक धनी मित्र के बीच देख

लिया था। उसने तव वडे व्यवहार शून्य तरीके से—अथवा वडी चतुराई से—अपनी माता को सकेत से यह वता दिया कि विश्लेपण के समय क्या वातचीत हुई थी। ऐमा उसने अपनी माता के प्रति अपना व्यवहार वदलकर, यह जिद करके कि उसे अकेलेपन के भय से मात। के अलावा और कोई नही बचा सकता, और जव उसने घर से जाने की कोशिश की तब उस दरवाजे को पकडे रखकर, यह वात जताई। उसकी माता भी पहले बहुत स्नायविक थी, पर कई वर्प पहले एक जल-चिकित्सा के अस्पताल में जाने से स्वस्थ हो गई थी या दूसरे शब्दो में यो कह सकते है कि उसने वहा एक आदमी से अच्छा परिचय कर लिया था, और उसके साथ ऐसा सम्बन्ध स्यापित कर लिया था जो एक से अधिक वातो में तृप्तिकारक सिद्ध हुआ था। अपनी पुत्री की जिद से सदेह पैदा होजाने पर माता एकाएक **समझ गई** कि लडकी के भय का क्या अर्थ है। वह अपनी माता को रोके रखने के लिए और उसे अपने प्रेमी से अपना सम्बन्ध बनाए रखने के लिए आवश्यक आजादी से वचित करने के लिए रोगी हो गई थी। माता ने तुरन्त निश्चय कर लिया। उसने इस हानिकारक इलाज को बन्द कर दिया। लडकी को स्नायु-रोगियो के एक आश्रम में भेज दिया गया, और बहुत वर्पो तक उसे दिखाकर यह कहा जाता रहा कि यह 'वेचारी मनोविश्लेपण की मारी हुई' है, और मेरे इलाज के दुष्परिणामो के वारे में भी ऐसी ही विरोधी अफवाहे उडती रही। मै चुप रहा, क्योकि मै यह समझता था कि मै अपने पेशे की गोपनीयता के नियमो से बधा हुआ हू। वर्पो वाद मुझे एक सहयोगी से पता लगा, जो उस आश्रम में गया था और जिसने अकेलेपन से डरने वाली उस लडकी को देखा था, कि उसकी माता और उस धनी आदमी के सम्बन्ध के वारे में हर कोई जानता है, और सम्भवत उस स्त्री का पति और लडकी का पिता जान-बूझकर इसकी ओर से आखें बन्द किये हुए है। इस 'रहस्य' पर उस लडकी के इलाज को कुर्वान कर दिया गया।

युद्ध से पहले के वर्पो में, जवकि वहुत-से देशो से रोगियो के आ जाने के कारण म गपने नगर की खुशी-नाखुशी पर निर्भर नही रहा था, तव मैने यह नियम वना लिया था कि मै ऐसे व्यक्ति का इलाज अपने हाथो में नही लेता था जो जीवन के सव आवश्यक रिश्तो से स्वतन्त्र न हो। हरेक मनोविश्लेपक यह नियम नही बना सकता। रिश्तेदारो के वारे में मेरी चेतावनियो से शायद आप यह निष्कर्प निकालेंगे कि मनोविश्लेपक को, मनोविश्लेपण के हित की दृष्टि से, रोगी को उसके परिवार के वातावरण से अलग कर देना चाहिए, और यह चिकित्सा उनकी ही करनी चाहिए जो निजी सस्थाओ में रहते है। पर मैं इस विचार का समर्थन नही कर सकता। रोगियो के लिए—कम से कम उन रोगियो के लिए जिनकी हालत वहुत गिरी हुई नही है—यही अधिक लाभदायक है कि वे इलाज के दिनो में उन परिस्थितियो में रहे जिनमें उन्हे अपने सामान्य जीवन की आवश्यकताओ से द्वद्व

करना पडे । पर रिश्तेदारो को अपने व्यवहार से इस लाभ को नष्ट नहीं होने देना चाहिए, और सबसे वडी वात यह है कि उन्हे डाक्टर के चिकित्सा-प्रयत्नो का विरोध नही करना चाहिए। पर जिन लोगो से आप नही मिलते, उन्हे यह रुख अपनाने के लिए आप कैसे प्रेरित करेंगे ? स्वभावत आप यह नतीजा निकालेंगे कि इलाज की सफलता पर सामाजिक वातावरण का और रोगी के निकटतम लोगो की सुसस्कृति की मात्रा का वडा असर पडेगा ।

यदि हम अपनी बहुत सारी विफलताओ का कारण इन वाधाकारक वाह्य कारको को वता दें, तो भी चिकित्सा-शैली के रूप मे मनोविश्लेषण की प्रभावकारिता के लिए वडा निराशामय क्षेत्र है । मनोविश्लेपण के प्रेमियो ने हमें यह सलाह दी है कि विफलताओ के सग्रह के मुकावले में हम अपनी सफलताओ के आकडे तैयार करें । मैंने यह सुझाव भी पसन्द नही किया । मैंने यह युक्ति पेश की कि यदि इकट्ठे किए गए अलग-अलग रोगी एक जैसे नही हैं, तो आकडे अर्थहीन हो जाते हैं, और जिन रोगियो का इलाज किया गया है, वे असल में वहुत-सी दृष्टियो से एक जैसे नही थे । इसके अलावा, जितने समय पर विचार किया गया था, वह इनना थोड़ा था कि उसके आधार पर इलाजो के स्थायित्व का निर्णय नही किया जा सकना, और कुछ रोगियो के वारे में तो कुछ भी विवरण देना असम्भव है। वे ऐसे लोग थे जिन्होने अपने रोग और इलाज, दोनों को गुप्त रखा था, और इसलिए उनके स्वास्थ्यलाभ को भी उसी तरह गुप्त रखना था । पर इसके खिलाफ सवसे जवरदस्त दलील यह है कि हम जानते हैं कि चिकित्सा-शैली के मामलो मे मनुष्य जाति सवसे अधिक विवेकहीन है । इसलिए तर्कसगत दलीलो से उसे प्रभावित कर सकने की कोई सम्भावना नही है । इलाज के सवध में नई वात को या तो वडे प्रवल उत्साह से ग्रहण किया जाता है, जैसे कि उदाहरण के लिए, तव हुआ था जव कोच ने ट्युवरक्युलिन के वारे में अपने परिणाम पहले पहल प्रकाशित किए थे; अथवा, इसपर वहुत अधिक अविश्वास किया जाता है, जैसा जेनर के टीके (वैक्सीनेशन) के वारे में हुआ था, जो असल मे एक स्वर्गीय वरदान था, पर जिसके विरोधी आज भी मौजूद हैं । मनोविश्लेपण के खिलाफ एक वहुत स्पष्ट पक्षपात दिखाई देता है। जव आप किसी वडे कठिन रोगी का इलाज कर देते हैं, तव लोग कहते हैं "इससे कुछ भी सिद्ध नही होता । इतने दिनो वाद वह अपने आप ठीक हो जाता," और जव एक रोगी, जो गिरावट और उन्माद के चार चक्रों में से गुज़र चुकने के वाद उदासी रोग के वाद के मध्यान्तर में मेरे पास आया और तीन सप्ताह वाद उसमें फिर उन्माद का दौरा दिखाई देने लगा, तव परिवार के सव लोगो की और जो वड़े-वडे डाक्टर वुलाए गए थे, उन सव की यह निश्चित धारणा थी कि नया दौरा विश्लेषण के प्रयत्न का परिणाममात्र है । पूर्वग्रह का आप कोई उपाय नहीं कर सकते, जैसे कि आप आज फिर युद्ध में लगे हुए प्रत्येक राष्ट्र-समूह में

देख रहे है, जिनमें एक दूसरे के विरुद्ध पूर्वग्रह पैदा हो गए है । सबसे अ
समझदारी की बात यह है कि प्रतीक्षा करो और समय बीतने के साथ उन्हे दू
जाने दो । एक दिन आता है जब वही लोग उन्ही वस्तुओ को पहले से भिन्न रू
देखने लगते है । पहले उनका विचार क्यो और था,यह बात सदा छिपी रहती

सम्भवत विश्लेपण-चिकित्सा-शैली के विरुद्ध पूर्वग्रह ढीला पडने लगा
विश्लेपण के सिद्धान्त के लगातार फैलते जाने से और अनेक देशो में विश्ले
चिकित्सा अपनाने वाले डाक्टरो की सख्या से यही बात सूचित होती है । ज
युवक था, तब सम्मोहन के आदेश-इलाज के लिए चिकित्सक वर्ग में मेरे वि
रोप का तूफान आ गया था, और आज 'समझदार और गम्भीर लोग' उसे
विश्लेपण के विरोध मे रखते है । पर चिकित्सा के साधन रूप में सम्मोहन से
आशाए की गई थी, उन्हें वह पूरा नही कर सका । हम मनोविश्लेपक लोग
सच्चे उत्तराधिकारी होने का दावा कर सकते है, और हमे यह नहीं भू
चाहिए कि इससे हमे कितना अधिक बढावा और सैद्धातिक प्रकाश प्राप्त हुआ
मनोविश्लेपण के जो हानिकारक प्रभाव हुए बताए जाते है, वे सिर्फ द्वद्व की
शयता या प्रकोप के बीच मे आने वाले रूप तक ही सीमित है, और ये रूप
पैदा हो सकते है, जब विश्लेषण ठीक तरह न किया जाए, या इसे एकाएक
दिया जाए। हम अपने रोगियो के साथ जो कुछ करते है, उसका वर्णन आप
सकते है, और अब आप स्वय यह फैसला कर सकते है कि क्या हमारे प्रयत
स्थायी हानि हो सकती है ? विश्लेपण का दुरुपयोग कई तरह किया जा सकत
विशेष रूप से स्थानान्तरण धूर्त चिकित्सक के हाथ मे बडा खतरनाक हथिया
पर कोई भी दवाई दुरुपयोग से नही बच सकती । यदि किसी चाकू में धार नह
तो वह शल्य चिकित्सक के लिए भी बेकार है ।

अब मै समाप्त ही करने वाला हू । मै सिर्फ परम्परागत औपचारिकता के
में यह बात नही कह रहा कि मैने आपके सामने जो व्याख्यान दिए है, उनकी ब
सी त्रुटियो से मै स्वय बहुत परेशान हू । मुझे इस बात का सबसे अधिक खेद
अनेक बार मैने किसी विपय का सक्षिप्त उल्लेख करने के बाद आगे फिर उ
विचार करने का वचन दिया, और फिर जिस प्रसग में मै अपना वचन पूरा
सकता था, वह नहां आया । मैने एक ऐसी चीज का विवरण आपके सामने
करने का भार उठाया था, जो अभी अधूरी है, और परिवर्धित हो रही है,
अब मेरा सक्षिप्त साराश भी अधूरा रह गया है। बहुत-से स्थानो पर मैने नि
निकालने के लिए सारी चीज तैयार कर दी पर निष्कर्ष नही निकाला, पर मै आ
मनोविश्लेपण का विशेषज्ञ बनाने का लक्ष्य नही रख सकता था । मै तो सिप
चाहता था कि आपको इसकी समझ के रास्ते पर डाल दू, और इसमें आ
दिलचस्पी पैदा कर दू ।

○ ○